

Barcode : 1990010092684
Title - Dhrupad aur uska vikas
Author - Kailash Chandra dev
Language - hindi
Pages - 434
Publication Year - 1976
Barcode EAN.UCC-13



ध्रुवपद और उसका विकास

संगीतमहामहोपाध्याय विद्यावारिधि
आचार्य कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-४

प्रकाशक :

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-८००००४

© बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

प्रथम संस्करण : २०००

शकाब्द १८६८; विक्रमाब्द २०३३; ख्रिष्टाब्द १९७६

मूल्य : २२.०० रुपये

मुद्रक :

श्रीकृष्णचन्द्र बिशुनोई

मोहन प्रेस

लंगरटोली, पटना-८००००४

वक्तव्य

आज हमें 'ध्रुवपद और उसका विकास' नामक ग्रन्थ विद्वज्जनों के सामने उपस्थित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह परिषद् द्वारा आयोजित भाषणमाला-कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत संगीत-विषयक भाषण का पुस्तक-रूप है। इसके लेखक संस्कृत, हिन्दी, अँगरेजी, फारसी आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् संगीतमहामहोपाध्याय विद्यावारिधि आचार्य श्रीकैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति हैं।

आचार्य बृहस्पति न केवल अनेक भाषाओं के माने हुए विद्वान् हैं, संगीत की शास्त्रीय परम्परा की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पद्धति के पारगामी प्रवक्ता भी हैं। पाण्डित्य के साथ संगीतशास्त्र की पारगामिता आपको अपनी कुलक्रमागत पैतृक धरोहर के रूप में प्राप्त हुई है। आप संगीत-कला के प्रमाणभूत विशेषज्ञ हैं।

ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है कि संगीतशास्त्र की एक महत्वपूर्ण प्राचीन विधा 'ध्रुवपद' इसका प्रतिपाद्य विषय है। विचारक मनीषी ने अपनी पैनी सूझ-बूझ तथा विचक्षण वाचोयुक्तियों से ध्रुवपद के उद्भव और विकास की परम्परा का महत्वपूर्ण एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। पूरी विवेचना वैदिक ऋचाओं, शास्त्रीय उक्तियों और आचार्य भरत तथा परवर्ती व्याख्याताओं के साक्ष्यभूत उद्धरणों के साथ ही ऐतिहासिक विवरणों तथा प्रामाणिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित की गई है। जहाँतक हमारी जानकारी है, हिन्दी-भाषा के माध्यम से ध्रुवपद-विषयक सांगोपांग विश्लेषण उपस्थित करनेवाला यह प्रथम ग्रन्थ है। इसकी महनीय उपलब्धि का लेखा-जोखा संगीत के विशेषज्ञ विद्वान् ही कर सकते हैं। इसलिए, हम इस ग्रन्थ के मूल्य और महत्त्व को आँकने का उत्तरदायित्व साहित्य और संगीत के विशेषज्ञों को ही सौंपते हैं।

इस गरिमापूर्ण और अछूते विषय के ग्रन्थ को प्रकाशित कर परिषद् सहज ही आह्लादित है और इसके लिए विद्वान् लेखक के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती है। साथ ही, जिज्ञासु पाठकों और नीरक्षीरविवेकी अधीती चिन्तकों से साग्रह अनुरोध करती है कि परिषद् के अन्य प्रकाशनों की भाँति इस ग्रन्थ को भी अपनाकर वे हमारे स्वीकृत सारस्वत अध्यवसाय को मान्यता देते हुए हमारी उत्साहपूर्ण प्रगति में स्फूर्ति तथा प्रेरणा का संचार करें।

पटना

प्रबोधिनी एकादशी, २०३३ वि०

२ नवम्बर, १९७६ ई०

विनीत

हंसकुमार तिवारी

निदेशक

दो शब्द

भगवत्कृपा से प्रस्तुत कृति के प्रकाशन का मुहूर्त आ गया और यह सुविज्ञ पाठकों के करकमलों में पहुँच रही है, यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष का अवसर है। प्रस्तुत दिशा में सम्भवतः यह सर्वप्रथम प्रयत्न है, अतः इसका दोषपूर्ण होना स्वाभाविक है, फिर भी मर्मज्ञ पाठकों को यदि इसमें कुछ भी उपयोगी मिला, तो लेखक का परिश्रम सफल होगा।

राजनीतिक कारणों से महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त की वह परम्परा उच्छिन्न हो गई, जो नाद के 'स्वरवान्' रूप पर भी विचार करती थी और 'अभिधानवान्' रूप पर भी। कहा जाता है कि आचार्य अभिनवगुप्त ने वर्तमान गुलमर्ग मार्ग पर स्थित 'मगम' नामक ग्राम के समीप अपने बारह सौ शिष्यों के साथ समाधि ली थी। सम्भव है, महमूद गजनवी के आक्रमणों के कारण आचार्य अभिनवगुप्त ने धर्मरक्षा के लिए यह निर्णय किया हो। अस्तु; यह सत्य है कि महामाहेश्वर भरत-नाट्यशास्त्र के अन्तिम व्याख्याता हुए। उनके पश्चात् ही सम्भवतः 'संगीत' और 'साहित्य' की धाराएँ पृथक्-पृथक् हो गईं। परिणाम यह हुआ कि साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों में पाठ्य काव्य तो विचारका विषय बना, गेय काव्य मौखिक परम्परा में होने के कारण कालकवलित हो गया।

हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में 'पद'-साहित्य भी आया और राज्याश्रित कवियों का वह काव्य भी, जिसको कवित्तों और सवैयाओं का आश्रय प्राप्त था; परन्तु इस तथ्य पर लोगों का ध्यान न गया कि 'घनाक्षरी' और 'सवैया' जैसे छन्द गेय होने के कारण भी राज-सभाओं में समादृत थे।

वह ध्रुवपद-साहित्य, जिसमें छन्द का बन्धन नहीं था, श्रेष्ठ आलोचकों द्वारा भी 'ऊबड़-खाबड़' समझा गया; क्योंकि उसमें आलोचकों को 'गति' और 'यति' के दर्शन न होते थे। फलतः, एक ओर जहाँ साहित्य-जगत् द्वारा रस-निर्झर ध्रुवपद-साहित्य की भी उपेक्षा हुई, वहाँ भातखण्डे जैसे अहिन्दीभाषियों ने ध्रुवपद-संग्रहों की ओर दृष्टिपात तक न किया; क्योंकि वे तो केवल स्वरलिपि चाहते थे, गेय विषय की ओर उनका ध्यान न था।

ऐसी स्थिति में इन पंक्तियों के लेखक को यह आशंका है कि इस ग्रन्थ को पढ़ेगा कौन? संगीतज्ञों को इसमें स्वरलिपियाँ न मिलेंगी और छन्द के मर्मज्ञ इसमें स्वच्छन्दता पायेंगे। फिर, भी जो सज्जन इस ग्रन्थ को कुतूहलपूर्वक उठायेंगे और इसकी विषय-सूची देखने का कष्ट करेंगे, उन्हें लगेगा कि इस ग्रन्थ में कुछ ऐसी बातें कहने की चिन्ता चेष्टा है, जिन्हें हिन्दी-वाङ्मय में आना चाहिए था।

यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का शीर्षक 'वैदिक गान' है, तथापि इसमें 'साम' की अन्वर्थता ही वैदिकत्व है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ही वैदिकों के, क्रमशः चतुः-श्रुति, द्विश्रुति और त्रिश्रुति स्वर हैं, तथा समस्त 'स्वरविधि' में कारणभूत हैं।^१ नाट्य-

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ 'संगीतचिन्तामणि' (द्वितीय संस्करण), प्रकाशक : संगीत-कार्यालय, हाथरस, पृ० २५-२६, १५१-१५३।

शास्त्र में संगीत सामवेद से ही संगृहीत हुआ है, अतः सप्तरूप तथा सप्तगीत का विवेचन इस अध्याय में है । ध्रुवाओं और प्रबन्धों के विषय में ज्ञातव्य सामग्री भी दी गई है और उन 'ध्रुव'-प्रबन्धों के सोलह भेद भी हैं, जो व्रजभाषा-ध्रुवपदों के बीज हैं ।

द्वितीय अध्याय में संगीत की अनादि परम्परा के उच्छेद का इतिहास तो है ही, उन कारणों की भी चर्चा है, जिन्होंने विशेषतया मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पश्चात् संगीत के क्षेत्र को प्रभावित किया । चिश्ती-परम्परा के सूफियों, उनके शिष्य-प्रशिष्यों और उनसे प्रभावित सम्राटों तथा अन्य राजपुरुषों की चर्चा इस अध्याय में है ।

तीसरे अध्याय में ध्रुवपदकारों के आश्रयदाताओं की चर्चा है, जिनमें प्रतापी मुसलमान-सम्राट् भी हैं और कुछ हिन्दू-नरेश भी ।

चतुर्थ अध्याय में मानसिंह तोमर के कृतित्व और उससे प्रभावित परम्परा का वर्णन है ।

पंचम अध्याय में विभिन्न ध्रुवपदकारों का इतिवृत्त है, जिसमें अनेक कपोल-कल्पनाओं का निराकरण करके सत्य को उद्घाटित करने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

छठे अध्याय में ध्रुवपदों का शिल्प-विधान और साहित्यशास्त्रीय मूल्यांकन है ।

परिशिष्ट 'अ' में आश्रयदाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद हैं और परिशिष्ट 'आ' में ध्रुवपदकारों की । इनमें अनेक ध्रुवपद पहली बार प्रकाश में आ रहे हैं ।

रामपुर के 'रजा-पुस्तकालय' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ-भाण्डार के विद्वान् प्रबन्धक मौ० इम्तियाज अली खाँ 'अर्शो' ने मेरा ध्यान 'सहसरस' की ओर आकृष्ट किया, जो मुगल-सम्राट् शाहजहाँ के द्वारा कराया गया नायक बख्श के ध्रुवपदों का संग्रह है । मैंने इस संग्रह की चर्चा कुमारी निर्मला जोशी से की और उन्होंने इण्डिया-ऑफिस-लाइब्रेरी से 'सहसरस' की दो विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों की 'फोटोस्टैट'-कॉपियाँ मँगवाई । अनेक दुर्निवार कारणों से हमें 'सहसरस' के सम्पादन का अवसर न मिला, परन्तु हर्ष का विषय है कि 'सहसरस' का प्रकाशन सन् १९७२ ई० में संगीत-नाटक-अकादमी के द्वारा हो चुका है । डॉ० प्रेमलता शर्मा के कुशल सम्पादन और विद्वत्तापूर्ण भूमिका से 'सहसरस' की श्रीवृद्धि हुई है । खेद है कि हम इस पुस्तक में 'सहसरस' की सामग्री का उपयोग नहीं कर सके ।

मेरी सहधर्मिणी श्रीमती सुलोचनाजी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मेरा भार हल्का किया है और 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के निदेशक पं० हंसकुमार तिवारी ने प्रशंसनीय तत्परता के साथ इस कृति को यथाशीघ्र प्रकाशित किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

विद्वद्वशंवद
बृहस्पति

भूमिका

आप संगीत के किसी भी विद्यार्थी से 'ध्रुवपद' की चर्चा करें, वह निस्संकोच कह देगा, 'ध्रुवपद' का आविष्कार मानसिंह तोमर ने किया; क्योंकि रागदर्पणकार फकीरुल्लाह ने औरंगजेब के युग में यही लिखा है। भातखण्डेजी ने ध्रुवपद की गान-शैली को मर्दाना और जोरदार कहा है, उनकी सम्मति में ध्रुवपद-गान में राग श्रेष्ठ रहता है। ऐतिहासिक तथ्य भी यह है कि अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब तक के दरबार में मूर्द्धन्य स्थान 'कलावन्तों' को ही प्राप्त था, जो ध्रुवपद-गायक या बीनकार थे, परन्तु 'ध्रुवपद' शब्द की अन्वर्थता अथवा 'ध्रुवपद' शब्द के मूल की ओर ध्यान देने की आवश्यकता आज संगीत का विद्यार्थी नहीं समझता।

यदि आप संगीत के सामान्य विद्यार्थी से यह पूछें कि 'ध्रुवपद' से पहले क्या गाया जाता था, तो आपको तत्काल उत्तर मिलेगा, 'प्रबन्ध' गाये जाते थे, वह यह नहीं जानता कि संगीत-जगत् में बहुप्रचलित 'बन्दिश' शब्द 'प्रबन्ध' का ही फारसी-अनुवाद है और ध्रुवपद भी प्रबन्ध का ही एक प्रकार है। इस पुस्तक के विद्वान् लेखक की स्थापना यह है कि मानसिंह तोमर ने 'ध्रुव' नामक प्रबन्ध-भेदों को अपने युग की लोकभाषा का सम्बल दिया। 'पद' शब्द का अर्थ सार्थक शब्दसमूह या भाषा है। वह 'पद', जो 'ध्रुव' नामक गेय प्रबन्धों में प्रयुक्त हो, 'ध्रुवपद' है; अतः 'ध्रुवपद' शब्द 'ध्रुव' नामक प्रबन्धों के भाषापक्ष का बोधक है।

'ध्रुव' नामक प्रबन्धों के सोलह भेद होते थे। मानसिंह तोमर के राज्याभिषेक से चालीस-पचास वर्ष पूर्व 'संगीतरत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार कल्लिनाथ ने लिखा है कि उनके युग में ध्रुवों के अक्षरसंख्या-नियम में कहीं-कहीं शिथिलता भी दिखाई देती है, अतः यह सिद्ध है कि 'ध्रुवपद' मानसिंह तोमर का आविष्कार नहीं है, अपितु मानसिंह तोमर ने उत्तर भारत में इसे पुनरुज्जीवित किया, लोकभाषा के माध्यम से यह सर्वजनप्रिय हुआ और राजसभा का लाड़ला होने के कारण यह अभिजात-वर्ग को भी प्रिय हुआ।

ध्रुवपद के पुनरुत्थान में लोगों को भारतीयता का पुनरुत्थान दिखाई देता है, जो खिलजियों, तुगलकों और पठान-बादशाहों के दरबार से बहिष्कृत थी।

अकबर की नीति ने जहाँ राजपूतों को मुगलों का पक्षधर बनाया, कलावन्तों और पण्डितों को दरबार में सम्माननीय स्थान दिलाया, वहाँ ब्रजभाषा-कवियों को भी मुगल-विरुदावली का गायक बना दिया। इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि ब्रजभाषा-काव्य के लौकिक विषय ही ध्रुवपदों के भी विषय हो गये, साथ ही घनाक्षरी और सवैया जैसे छन्द ध्रुवपद-गायकों और प्रवीनराय जैसी कोकिलकण्ठियों के कण्ठ से भी गुंजित होने लगे। स्थिति यह हो गई कि बिहारी ने 'तन्वी-नाद, सरस राग, कवित्त-रस और रति-रंग' में सर्वांगमग्न व्यक्तियों को ही सहृदय माना। वह युग दरबारों में साहित्य और संगीत के अलौकिक संगम का था।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में महाकवि देव और उनके शिष्य प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक और बीनकार नेमत खाँ 'सदारंग' साहित्य और संगीत की इस परम्परा के अन्तिम प्रतिनिधि हुए।

इस युग के पश्चात् कुछ देशी रियासतों में इस परम्परा के कुछ अवशेष रहे, उत्तर-प्रदेश की भूतपूर्व मुस्लिम-रियासत रामपुर में महाकवि ग्वाल, महाकवि दाग, महाकवि अमीर मीनार्ह, महापण्डित दत्तराम जैसी विभूतियों को उन्नीसवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में आश्रय मिला। महापण्डित दत्तराम के प्रपौत्र एवं इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य बृहस्पति इस युग में इस परम्परा के एकमात्र प्रतिनिधि हैं।

संगीत के शास्त्रीय पक्ष की ओर भी मुगल-दरबार का ध्यान गया था और अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के दरबार में वह 'संगीतरत्नाकर' विचार का विषय बनता था, जिसकी दक्षिण भारत में उपेक्षा हो रही थी।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' में भरत मुनि की स्वरविधि को बोधगम्य बनाया और संगीत के इतिहास में पहली बार कहा : 'स्थायी स्वर पर आलम्बित, उनके तांतादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और संचारी स्वरों द्वारा परिपोषित वह चेतना-विशेष 'रस' है, जिसकी अनुभूति के समय रजस्तमोगुणजनित उनकी रागद्वेपादि ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती हैं।' अपने एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीतविन्तामणि' में उन्होंने संगीत के अन्य अनेक पक्षों पर विचार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जहाँ हमें 'ऋक्' से 'ध्रुव'-प्रबन्धों तक का संक्षिप्त परिचय देता है, वहाँ यह हमें संगीत की अनादि परम्परा के उच्छेद के कारण भी बताता है और विशेषतया यह सिद्ध करता है कि चिन्ती-परम्परा ने उत्तर और दक्षिण भारत के संगीत को प्रभावित किया, राग-वर्गीकरण का एक नया सिद्धान्त दिया।

मानसिंह तोमर के संकल्प और उसके परिणामों का तर्कशुद्ध विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है और ध्रुवपदकारों और उनके आश्रयदाताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव जानकारी देने की चेष्टा की गई है। विशेषतया, तानसेन के विषय में जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है, वे चौंका देनेवाले हैं।

अपने एक अन्य ग्रन्थ 'मुसलमान और भारतीय संगीत' में उन्होंने इस तथ्य की ओर इंगित किया है कि शाहजहाँ के अनुसार अकबर ने तानसेन को 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि दी थी। संस्कृत-भाषा की ऐसी उपाधि केवल हिन्दू-जाति के लोगों को दी जाती थी।

'ध्रुवपदों का शिल्प-विधान' संगीत के विद्यार्थियों की आँखें खोल देनेवाला है, तो ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन काव्य के पारखियों को अनेक ध्रुवपद-संग्रहों की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित करता है।

दो परिशिष्टों में अनेक बहुमूल्य ध्रुवपद संगृहीत हैं, जिनमें शोधार्थियों के लिए प्रचुर सामग्री है।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने 'रागमाला' नामक एक ध्रुवपद-संग्रह की सामग्री का भी उपयोग किया है, जिसकी फोटोस्टैट-कॉपी संगीत-नाटक-अकादमी में सुरक्षित है। पृ० २१६ पर 'रागमाला' के एक पृष्ठ का ब्लॉक छपा है। अलाउद्दीन और गोपाल नायक के साक्षात् को प्रयोजित करनेवाला साहित्य जहाँ इस संग्रह में उपलब्ध है, वहाँ तानसेन-कृत वह सैद्धान्तिक ध्रुवपद भी इसी संग्रह में मिला है, जो 'मूर्च्छना' और 'मेल' के रहस्य को स्पष्ट करता है।

उदयपुर-निवासी कृष्णानन्द 'रागसागर' ने 'रागकल्पद्रुम' के नाम से बारह लाख पच्चीस हजार गेय पदों का संग्रह किया था। ग्रियर्सन ने अपने 'साहित्य का इतिहास' में इस सामग्री का भरपूर उपयोग किया, परन्तु उसके पश्चात् गेय पदों के संग्रहों की ओर प्रायः लोगों का ध्यान नहीं गया। आचार्य बृहस्पति ने 'रागमाला' नामक जिस संग्रह का उपयोग किया है, उसे ग्वालियर-परम्परा का संग्रह कहा जा सकता है।

विशिष्ट घटना के अवसर पर तत्काल-निर्मित गेय पद 'समय' कहलाते हैं, ऐसे 'समय' दोनों परिशिष्टों में यत्न-तत्न हैं।

गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। गीत में चार तत्त्व स्वर (राग), पद (भाषा), ताल और मार्ग हैं, फलतः शोध की दृष्टि से संगीत में आज सम्भावनाओं की कमी नहीं है, परन्तु अधिकारी मार्गदर्शक इस क्षेत्र में अँगुलियों पर गिनने योग्य हैं, उत्तरप्रदेश के एक विश्वविद्यालय में इस दिशा में प्रशस्य कार्य हुआ है, और स्थानों पर भी हुआ होगा, परन्तु निस्सन्देह इस दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

मतभेद का अर्थ युद्ध या वैर नहीं है, परन्तु शोध के महत्त्व से अपरिचित कुछ सज्जन भातखण्डेजी से मतभेद प्रकट करना 'कुफ्र' से कम नहीं समझते और यदि तानसेन के विषय में गुप्त तथ्यों का उद्घाटन किया जाय, तो बेचैन होने लगते हैं। जान-बूझकर अतथ्य से चिपटे रहना न तो बुद्धिमत्ता है, न ईमानदारी। प्रस्तुत ग्रन्थ में कही हुई कुछ बातों से भी लोगों को मतभेद हो सकता है, यदि उसके पीछे तर्क और प्रमाण का बल है, तो वह लेखक के लिए अवश्य स्वीकरणीय होगा।

यदि भूमिका-लेखिका और ग्रन्थ-लेखक परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में बँधे हों, साथ ही भूमिका-लेखिका ग्रन्थकार की शिष्या भी हो, तो उसका क्षेत्र सीमित हो जाता है, अतः मैं यह कहकर अपनी बात समाप्त करती हूँ कि ग्रन्थ संगीत-जगत् को सादर समर्पित है, वह नीरक्षीर-विवेक स्वयं कर लेगा।

संगीत-विभाग, दौलतराम-कॉलेज
दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुलोचना यजुर्वेदी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय (वैदिक गान) :

देवताओं का आश्रय 'साम'—साम की अन्वर्थता १; वैदिक संगीत से लौकिक संगीत की ओर ३; नाट्य में संगीत ४; महाकवि और संगीत ५; आचार्य और संगीत ६; ध्रुवा और प्रबन्ध ६; ध्रुवालक्षण ६; प्रकरणगीत ६; सप्तरूप और सप्तगीत में प्रयोज्य अंग १०; नाट्य में ध्रुवा का ग्रहण और उसके कारण १४; नाद की व्यञ्जकता, अवाचक गीत (स्वर-सन्निवेश) की व्यञ्जकता और रसोद्बोधकता १४; ध्रुवा-विकल्प में कारण, ध्रुवायोजन में ध्यान देने योग्य तत्त्व १६; नाट्य में पंचविध ध्रुवा-गान १६; ध्रुवा के नामगत छह भेद १८; प्रबन्ध २०; प्रबन्ध के छह अंग २२; प्रबन्धों की जातियाँ २३; प्रबन्धों की विविधता २५; एला-प्रबन्ध का सामान्य लक्षण २५; प्रबन्ध के सोलह पदों में प्राणों की योजना २८; गद्य-प्रबन्ध और उसकी विशेषताएँ ३१; प्रबन्ध-प्रयोज्य भाषाएँ ३४; यमक-प्रयोगयुक्त प्रबन्ध ३४; सालग-सूड-प्रबन्धों के सात भेद ३५; ध्रुव-प्रबन्धों के सोलह भेद ३६; ध्रुवपद ३८ ।

द्वितीय अध्याय (संगीत की अनादि परम्परा का उच्छेद और उसके कारण) :

महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के आक्रमण ३६-४०; बलबन ४३; कैकुबाद ४४; जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी ४५; कुतुबुद्दीन खिलजी ४७; खुसरो खाँ ४७; गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद तुगलक ४६; फिरोज तुगलक ५०; चिश्ती-परम्परा और संगीत ५१; निजामुद्दीन चिश्ती और खुसरो ६६; निजामुद्दीन और संगीत ६६; खुसरो और तत्कालीन परिस्थितियाँ ७३; इन्द्रप्रस्थ-मत के उद्गम और प्रसार का कारण ७६; भारतीय रागों के वर्गीकरण का मुस्लिम-आधार ८१; बंगाल और बिहार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा ८६; दक्षिण में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा ९१; शेख निजामुद्दीन चिश्ती का भक्त बहमनी-साम्राज्य ९२; खुसरो की पद्धति से प्रभावित विजयनगर-साम्राज्य ९७; दक्षिण के संगीत पर मुस्लिम-प्रभाव १०० ।

तृतीय अध्याय (ध्रुवपदकारों का आश्रयदाता) :

गीतों में अलाउद्दीन खिलजी १०३; हुसेनशाह शर्की १०३; मानसिंह तोमर १०४; सुलतान मुजफ्फर गुजराती १०५; सुलतान बहादुरशाह गुजराती १०५; इस्लाम-शाह सूर १०६; मोहम्मद आदिलशाह अदली १०६; दौलत खाँ १०७; बाजबहादुर १०८; ध्रुवपदों में राजा रामचन्द्र बघेला १११; मधुकरशाह ११३; बैरम खाँ खानखाना ११३; अकबर ११४; जहाँगीर १२१; जहाँगीरकालीन अन्य आश्रयदाता १२३; शाहजहाँ १२४; समकालीन आश्रयदाता १२७; दक्षिण में ध्रुवपद का

प्रभाव १३०; औरंगजेब १३३; समकालीन आश्रयदाता १३८; आजम १४०; वेदार बख्त १४२; बहादुरशाह प्रथम १४३; जहाँदारशाह १४५; मुहम्मदशाह रंगीला १४६; समकालीन आश्रयदाता १५०; आलमगीर द्वितीय १५१; समकालीन आश्रयदाता १५२; शाह आलम १५७; चेतसिंह १५४; राजा छत्रसिंह १५५; महाराजा जगतसिंह १५७; रतनसिंह १५७; प्रतापसिंह 'व्रजनिधि' १५८; विक्रमसाह १५९; अज्ञातपरिचय आश्रयदाता १५९ ।

चतुर्थ अध्याय (मानसिंह तोमर और उसकी परम्परा) :

मानसिंह तोमर के समकालीन संगीतानुरागी नरेश १६१; तोमरों का उत्थान और पतन १६३; मानसिंह तोमर के विचार १६७; मानकुनूहल की विषयवस्तु १६८; गीत-रचना १६९; मानसिंह तोमर की परम्परा और विभिन्न दरबार १७० ।

पंचम अध्याय (व्रजभाषा के ध्रुवपदकार) :

गोपाल नायक १७८; बैजू १८२; बख्शू १८५; तानसेन १८७; बाबा रामदास २१३; व्यास २१४; चंचलसप्त २१५; सुरज्ञान खाँ २१५; ज्ञानगुरु २१६; धौधू २१६; चरजू २१७; रूपमती २१७; लाल २१७; गंग २१८; हरिदास डागुर २१८; तानतरंग खाँ २२०; सूरदास (गायक) २२१; जगन्नाथ कविराय २२२; शेख बहाउद्दीन २२३; शेख पीर मोहम्मद २२३; स्वामी हरिदासजी २२५; खुशहाल खाँ कलावन्त २२८; सवादखाँ ठारी २२९; किशनसेन नायक अफजल २२९; गुलाम मुहीउद्दीन २३०; किशन खाँ कलावन्त २३०; सालिम खाँ डागुर २३०; कसबकुव्वत ठारी २३०; पूजा २३०; रहीमदाद ठारी २३१; मुहम्मद बाकी २३१; मियाँ डालू ठारी २३१; मधुनायक २३१; बिसरामखाँ २३२; मिसरीन्दाँ ठारी २३३; भूपत २३२; रसबैनखाँ २३२; नायक पूरन २३२; मुबारक २३३; सदारंग (नैमत खाँ) २३३; अदारंग २३४; इंठावरस २३५; प्रेमदास २३६; मनरंग २३६; शम्भु २३७; आलम २३७; देवीदत्त २३७; चेतसिंह राजबहादुर २३७; शेख मीर २३८; गुलाब २३९; कृष्णानन्द रागमागर २३९; मियाँ ज्ञानी २४१; अचपल २४१; कवि गोपाल २४१; अज्ञातपरिचय ध्रुवपदकार २४२ ।

षष्ठ अध्याय (ध्रुवपदों का शिल्प-विधान और साहित्यिक मूल्यांकन) :

व्रजभाषा-ध्रुवपद की परिभाषाएँ, बानियाँ, धातुएँ और अंग २४४; वाग्गेयकारों की परम्परा और ध्रुवपद के विषयों का स्रोत २५२; स्तुति २५९; अलख २६१; इस्लाम-प्रशंसा २६१; वैराग्य २६२; गुरुमहिमा २६२; कृष्णसम्बन्धिनी रचनाएँ २६३; ऋतु-वर्णन २६५; संगीत २६६; नख-शिख-वर्णन २६७; नेत्र-वर्णन २६९; नायकरूप-वर्णन २६९; दम्पती-केलि २७१; नायिका-भेद २७१; बैजू की रचनाएँ २७७; बख्शू की रचनाएँ २८०; गोपाल द्वितीय की रचनाएँ २८१; स्वामी हरिदासजी की रचनाएँ २८१; भगवन्त की रचनाएँ २८४; तानसेन की रचनाएँ २८४; बाबारामदास २८९; व्यास की रचनाएँ २८९;

चंचलसस की रचनाएँ २८६; सुरज्ञानखाँ की रचनाएँ २९०; ज्ञानगुरु २९१; मदनराय ढारी २९१; धौधू २९२; चरजू २९२; रूपमती २९२; लाल २९३; गंग की रचनाएँ २९३; तानतरंग की रचनाएँ २९५; सूरदास की रचनाएँ २९६; विलासखाँ की रचनाएँ २९७; आनन्द प्रभु की रचनाएँ २९७; धीरज २९८; जगन्नाथ कविराय की रचनाएँ ३००; शेख बहाउद्दीन, पीरमोहम्मद ३०१; खुशहालखाँ कलावन्त की रचनाएँ ३०३; मियाँ डालू ढारी की रचनाएँ ३०५; मधुनायक की रचनाएँ ३०५; भूपत की रचनाएँ ३०६; रसबैनखाँ की रचनाएँ ३०६; मुबारक ३०७; सदारंग की रचनाएँ ३०७; अदारंग की रचनाएँ ३०८; इंछाबरस की रचनाएँ ३०९; प्रेमदास की रचनाएँ ३१०; मनरंग की रचनाएँ ३११; सिम्भू, आलम, देवीदत्त और चेतसिंह राजबहादुर की रचनाएँ ३१२; शेख मीर ३१३; गुलाब की रचनाएँ; ३१३; कृष्णानन्द रागसागर की रचनाएँ; ३१४; मियाँ ज्ञानी अचपल और कवि गोपाल की रचनाएँ ३१५; अदारस, आदिनराइन, इस्करंग और खेमरसिक की रचनाएँ ३१६; जुगराजदास तानबरस और नूररंग की रचनाएँ ३१७; प्रेमरंग, महानादसेन, मुरसद, रामराय और लक्ष्मणदास की रचनाएँ ३१८; वंशीधर, सबरंग, साजन, वाणीविलास और रसनिधान की रचनाएँ ३२०; उपसंहार ३२० ।

परिशिष्ट 'अ'

आश्रयदाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद । ३२२ ।

परिशिष्ट 'आ'

ध्रुवपदकारों की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद ३६७ ।



ध्रुवपद और उसका विकास

प्रथम अध्याय

वैदिक गान

(क) पूर्वाभास

भारतीय आस्तिक मान्यता के अनुसार वेद अपौरुषेय, अनादि एवं समस्त विद्याओं के स्रोत हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि कब किस व्यक्ति को वैदिक ऋचाओं के गान का विचार सूझा। परन्तु, यह अवश्य पता चलता है कि किसी काल में किसी युगपुरुष के मन में यह विचार आया था कि वैदिक ऋचाओं को गाकर प्रयुक्त किया जाय। गीयमान ऋचाओं के प्रयोग से गाता और श्रोता दोनों को आनन्द आया, अतः ऋचाओं का गेय रूप देवताओं के लिए भी प्रीतिकर माना गया। यह विश्वास हो गया कि देवता न ऋक् का आश्रय लेते हैं, न यजुष् का, अपितु वे ऋचाओं के स्वर-संवलित रूप साम का ही आश्रय लेते हैं।^१ ऋचाओं को 'वर्णन', यजुष् को 'यजन' और साम को 'स्तुति' का साधन मना गया।^२ साम चारों वेदों में श्रेष्ठ कहा गया और भगवान् कृष्ण के मुख से, वेदव्यास के अनुसार, यह शब्द निकले कि, मैं वेदों में सामवेद हूँ।

साम की अन्वर्थता के सम्बन्ध में ऐतरेयब्राह्मण एक छोटी-सी कहानी प्रस्तुत करता है कि प्राचीन काल में ऋक् और साम थे। सा ही ऋक् थी और अम (आलापात्मक स्वर) साम था। ऋक् ने साम से कहा कि सन्तान के लिए हम दोनों दाम्पत्य-बन्धन में बँध जायें। साम ने अस्वीकृति व्यक्त करते हुए कहा कि मैं 'ज्यायान्' (ऋक् की अपेक्षा अधिक बड़ा) हूँ, इसलिए मेरी महिमा है। ऋक् ने दो रूप धारण करके वही याचना की और उसे पुनः वही उत्तर मिला। तब ऋक् ने तीन रूप धारण किये और साम का सम्बन्ध ऋचा से हो गया। इसलिए, तीन ऋचाओं से स्तुति करते हैं, तीन ऋचाओं से गाते हैं, साम तीन ऋचाओं से युक्त होता है। सा और अम परस्पर संयुक्त हो गये और उनकी संज्ञा 'साम' हो गई।^३

१. देवा वै नचि न यजुष्यश्रयन्त ते सामन्येवाश्रयन्त ।—तैत्तिरीयसंहिता, २।५।७।

२. ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति ।—उपरिवत्, २।५।८।

३. ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्, सैव नाम ऋगासीदमो साम नाम, सा वा ऋक् सामोपावदन्मिथुनं सम्भवाव प्रजात्या इति, नेत्यब्रवीत् साम, ज्यायान् वा अतो मम महिमेति, ते द्वे भूत्वोपावदताम्, ते प्रति च न समवदत्, तास्तिस्त्रो भूत्वोपावदं-स्तत् तिसृभिः समभवत्, तस्मात् तिसृभिः स्तुवन्ति, तिसृभिरुद्गायन्ति, तिसृभिर्हि साम सम्मितम्... यद्वैतत्सा चामश्च समभवताम् तत् सामाभवत्, तत्साम्नः सामत्वम् ।—ऐ० ब्रा०, १२।

गीति साम कहलाती है। गीतिरूप मन्त्र साम हैं। इस प्रकार के वचनों से युक्त साम नामक गीतिमन्त्र उपलब्ध होते हैं। साम शब्द का प्रयोग सामान्यतः गानमात्र में है।^१ इस प्रकार के वाक्य सिद्ध करते हैं कि साम शब्द का अर्थ ही गान है। गीत, वाद्य और नृत्य को वैदिकों की भाषा में त्रिवृत् शिल्प कहा जाता था।^२ पश्चाद्वर्ती युगों में इस त्रिवृत् शिल्प के लिए लोक ने 'सगीत' शब्द का प्रयोग किया।^३

यज्ञ के अवसरों पर वैदिक काल के ऋषि वेद की ऋचाओं का गान करते थे। यह गान किसी नवीन ऋचा का भी हो सकता था और किसी प्राचीन ऋचा को भी गेय रूप देकर किया जा सकता था। किसी सामगान-कुशल वंश या सम्प्रदाय के ऋषि सामगान करते थे। ऋग्वेद में ऐसे वाक्य आते हैं, जिनसे अंगिरा के वंशजों द्वारा सामगान की चर्चा मिलती है।^४ भरद्वाज के द्वारा 'बृहत्' (सामभेद) का आवाहन,^५ वशिष्ठ के द्वारा 'रथन्तर' का धारण^६ और सुतसोम नामक यज्ञ में साम के द्वारा स्तुति,^७ ये तीनों ही ऋग्वेद में चर्चा का विषय बने हैं और भरद्वाज या वशिष्ठ ऋषियों को साम-विशेष का गायक सिद्ध करते हैं।

छन्दोबद्ध ऋचाओं को गानेवाले 'छन्दोग' कहलाते थे। उत्कृष्ट साम-गायकों को 'उद्गाता' कहा जाता था। पक्षियों के कलरव की, उद्गाता के सामगान से उपमा दी गई है।^८

वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन बताता है कि वैदिक काल में संगीतजीवी जातियाँ भी उत्पन्न हो गई थीं। सायणाचार्य ने 'गान्धर्व' शब्द की निरुक्ति करते हुए कहा है कि गीतिरूप वचन ही 'गाः' है, उन्हें धारण करनेवाला ही गान्धर्व है।^९

तैत्तिरीय आरण्यक में स्वान, भ्राट्, अन्धारि, बम्भारि, हस्त, सुहस्त, कृशानु, विश्वावसु, मूर्धन्वान्, सूर्यवर्चा और कृति नाम के ग्यारह गान्धर्वगणों की चर्चा है।^{१०} तैत्तिरीयसंहिता के अनुसार, स्वान से कृशानु तक सात गान्धर्व सोमवल्ली-विक्रयी

१. गीतिषु सामाख्या । गीतिरूपाः मन्त्राः सामानि । इत्यादिवचनैः सामनाम्ना गीतिरूपा मन्त्रा लभ्यन्ते । सामशब्दस्तु सामान्यतः गानमात्र एव वर्तते ।

—पूर्वाचिक छन्दसी, पृ० ४६ (भाण्डारकर इंस्टीट्यूट) ।

२. त्रिवृत् वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादित्रं च ।—शांखायन ब्राह्मण (२६।५) ।

३. गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते ।—सं० २०, स्वर०, पृ० १३ ।

४. अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।—ऋग्वेद, २।४३।२ ।

५. भरद्वाजो बृहदाचक्रे अग्ने ।—उपरिवत्, १०।१८।२ ।

६. उपरिवत् ।

७. बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे ।—उपरिवत्, ८।५५।१ ।

८. उद्गातेव शकुने साम गायसि ।—उपरिवत्, २।४३।२ ।

९. गीतिरूपा वाचो गाः तान् धारयति इति गान्धर्वः ।—अथर्ववेद, भाष्य, पृ० ७-८ ।

१०. तैत्तिरीय आरण्यक, १।६।३ ।

बताये गये हैं ।^१ तैत्तिरीयसंहिता में पुंजिकस्थला, कृतस्थला, मेनका, सहजन्त्या, प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, विश्वाची, घृताची, उर्वशी और पूर्वचित्ति अप्सराओं के नाम आये हैं ।^२

उर्वशी, मेनका और तिलोत्तमा नामक अप्सराएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं तथा चित्ररथ गन्धर्व की भी ख्याति पर्याप्त है ।

गायत्री छन्द में गान करनेवाले ऋषि गायत्री^३ और गाथा नामक सामभेद के गानेवाले गाथी^४ कहलाते थे । जिस ऋक्-समूह में किसी देवता-विशेष की प्रशंसा की जाती हो, उसे गाथा कहा जाता था । सायण के अनुसार, वे ऋचाएँ यमगाथाएँ हैं, जिनमें यम का यश गाया जाता है ।

गाथाओं का एक भेद 'नाराशंसी' भी था । तैत्तिरीय ब्राह्मण में नाराशंसी से सम्बद्ध एक मनोरंजक उक्ति है कि देवों ने वेद तथा अन्न का मल निकाल दिया । जो वेदों का मल था, वही नाराशंसी गाथा हुआ । अन्न के मल ने सुरा का रूप धारण किया । अतः, गायक एवं प्रमत्त से दान नहीं लेना चाहिए । जो लेगा, वह मल ग्रहण करेगा ।^५

नाराशंसी गाथा का अर्थ आगे चलकर वह गान हो गया था, जिसमें राजा एवं प्रमात्य इत्यादि की प्रशंसा हो, फलतः इस कार्य को करनेवाले चाटुकारों और शराबियों के धन को अपवित्र माना जाने लगा था ।

देवताओं की प्रशंसा से युक्त गान वैदिक साम और लौकिक व्यक्तियों की प्रशंसा में गाया जानेवाला गान गान्धर्व था । इन दोनों प्रकार के गानों में निपुण गायकों की एकत्र गोष्ठियाँ भी हो सकती थीं ।

वैदिक संगीत से लौकिक संगीत की ओर :

किसी काल में ऋचाओं की भाषा लोकभाषा थी । कालान्तर में लोकभाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न हो गई । ऋचाओं के मूल रूप की रक्षा के लिए यह विधान किया गया था कि वैदिक वाक्यों के पर्यायवाची लौकिक वाक्यों को अदृष्ट फल की दृष्टि से वह महत्त्व नहीं दिया जा सकता, जो वैदिक संस्कृत में निबद्ध अनादि कहे जानेवाले वाक्यों को है । अतः, सामगान का रूप अक्षुण्ण रहा ।

एक युग में शैव सम्प्रदाय ने लौकिक वाक्यों का गान ऋक्, गाथा और साम की शैली में किया और वैदिक शैली में गीयमान लौकिक वाक्यों की संज्ञा भी लौकिक ऋक्,

१. तैत्तिरीयसंहिता, १।५।६ ।

२. उपरिचत् ।

३. गायन्ति त्वा गायत्रिणः ।—ऋ०, १।१०।१ ।

४. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् ।—ऋ०, १।७।१ ।

५. देवा वै ब्रह्मणश्चान्नस्य शमलमपाध्नन् । यद् ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंस्यभवत् । यदन्नस्य सा सुरा । तस्माद्गायतः मत्तस्य च न प्रतिगृह्यम् । यत्प्रतिगृहणीयात्, शमलं प्रतिगृहणीयात् ।—तै० ब्रा०, १।२।३ ।

लौकिक गाथा और लौकिक साम रखी। जैव सम्प्रदायों में कहा गया कि ऐसे गीतों का निर्माण ब्रह्मा ने शिवस्तुति के लिए किया है और इनसे मोक्षप्राप्ति होती है।

वैदिक छन्दों में गाने के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए 'ओंकार' और 'हिकार' नामक अक्षरों का प्रयोग किया जाता था। लौकिक गीतों में प्रयोग के लिए इन दोनों वैदिक स्तोभाक्षरों का ग्रहण तो किया ही गया, दस और स्तोभाक्षर या शुष्काक्षर अस्तित्व में आये, जिन्हें ब्रह्मप्रोक्त कहा गया। इनका प्रयोजन छन्द और ताल में सामंजस्य स्थापित करना था।

शुष्काक्षरों तथा सार्थक वाक्यों से युक्त चौदह प्रकरण-गीतों की रचना हुई, जिनका विषय शिवस्तुति तक सीमित था।

इन प्रकरण-गीतों की चर्चा यथास्थान की जायगी। प्रकरण-गीतों में वैदिक छन्दों के 'वृत्त' नामक विकारों का उपयोग भी किया गया।

चौदहों प्रकरण-गीतों के वृत्तों की संज्ञा ध्रुवा थी, इसका मकारण विवेचन आगे किया जायगा।

नाट्य में संगीत :

प्रकरण-गीतों के प्रयोग को 'पूर्वरंग' में स्थान देकर इसका प्रयोजन शिव की प्रसन्नता बताया गया। 'ध्रुवा' की परिभाषा व्यापक हो गई और ध्रुवाओं में प्राकृत-भाषाओं का प्रयोग भी पात्र की हैसियत के अनुसार होने लगा।

नाट्य में छन्दों का विभाग पाठ्य एवं नाट्य दो वर्गों में कर दिया गया। ताल-योजना की दृष्टि से गेय छन्दों का चयन किया गया था। महाकाव्यों में प्रयुक्त अधिकांश छन्द पाठ्यमात्र हैं।

साथ ही, नाट्य में गृहीत संगीत में रागों की जननी जातियों का ग्रहण किया गया था और उनसे उत्पन्न रागों और उनमें विनियोज्य तालों का भी विकास एक सीमा तक हो चुका था।

प्रकरण-गीतों का समस्त संगीत नाटक के पूर्वरंग में मंगलार्थ ले लिया गया था, परन्तु प्रकरण-गीतों का उद्देश्य जहाँ शिवस्तुति था, वहाँ नाट्य में प्रयुज्यमान संगीत का प्रयोजन जन-मनोरंजन था। अदृष्ट फल की अपेक्षा इस दृष्टफल की ओर झुकाव नाट्य-संगीत की अपनी विशेषता है।

नाट्यवेद में सभी वर्णों को अधिकार दिया गया है। लोक-जीवन इसका आधार बना; क्योंकि सुखदुःखात्मक लोकावस्था का अभिनय ही नाट्य का क्षेत्र है।

मनुष्यों का गुणगान करनेवाले जिन कलाकारों को वैदिक युग में हेय दृष्टि से देखा गया, नाट्य में उनकी प्रतिष्ठा थी। नाट्यवेद के आदिम प्रयोक्ता भरत को ब्रह्मा का शिष्य कहा गया और उनका विशेषण मुनि हुआ। वे आप्त कोटि में रखे गये।

नाट्यशास्त्र में वर्णन है कि भरत के नाट्यवेद-कुशल पुत्रों ने ऋषियों की खिल्ली उड़ाई और उनकी चेष्टाओं का अभिनय करके उनका उपहास किया, परिणामतः भरत-पुत्रों को शाप मिला कि वे शूद्राचार हो जायेंगे। भरत-पुत्रों के इस कृत्य में वस्तुतः उस घृणा की प्रतिक्रिया है, जो संगीतजीवियों के प्रति वैदिकों के मन में थी।

अस्तु; नाट्य में नायक का महत्त्व सर्वाधिक था, जिसकी कुलीनता अनिवार्य थी। राजाओं को नायक मानकर नाटक लिखे गये। राजाओं के आश्रय में नाट्य, काव्य और संगीत का रूप फूला-फला।

‘नाट्यशास्त्र’ (काशी-संस्करण) के अनुसार, भगवान् वाल्मीकि भरत से नाट्यवेद के श्रवण करनेवाले ऋषियों में थे। लव-कुश के संगीतगुरु महर्षि वाल्मीकि ही थे, जिन्होंने अपने आदिकाव्य की रचना में श्रव्यता और गेयता दोनों का समावेश किया था।

नरेश या आश्रयदाता लोक में इन्द्र के स्थानीय थे। अतः, उनके आश्रित वाग्गेयकार (वाणी और गेय दोनों की रचना में निष्णात आचार्य) राजसभा के भरत मुनि, गायक गन्धर्व और गायिकाएँ अप्सराएँ, बनीं। इन्द्रसभा राजसभा के लिए आदर्श हो गई। जिसकी आशा मरने के पश्चात् की जाती थी, लौकिक रूप में उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए प्राणत्याग करना अनिवार्य न रहा।

महाकवि और संगीत :

काव्य में नाटक को सर्वश्रेष्ठ माना गया और जिन महाकवियों ने नाटक लिखे, वे संगीत-निष्णात थे। भास, कालिदास तथा अन्य महाकवियों के नाटक उनकी संगीत-मर्मज्ञता के प्रबल प्रमाण हैं।

नाट्य-रचना जिन्होंने न भी की, वाल्मीकि से श्रीहर्ष तक, वे कवि भी संगीत-निष्णात थे; क्योंकि कोई शब्द, कोई वाक्य, कोई कला ऐसी नहीं, जो काव्य का अंग न हो। ‘वाल्मीकिरामायण’ हो या ‘नैषधीयचरित’, ये महाकाव्य अपने रचयिताओं के संगीतनैपुण्य के प्रबल परिचायक हैं। इन्होंने सांगीतिक परिभाषाओं अथवा प्रयोगों की चर्चा चलते रूप में न करके साभिप्राय की है।

नाटक के समस्त अंगों के प्रगाढ़ परिचय के बिना ‘स्वप्नवासवदत्तम्’ अथवा ‘मालविकाग्निमित्रम्’ की रचना असम्भव थी। राजाओं की गोद में खेलनेवाले इनके रचयिताओं को नाट्याचार्यों एवं कलाकारों का साहचर्य प्रतिक्षण प्राप्त था और उनकी दृष्टि मँजती रहती थी।

श्रव्यकाव्यों के राजाश्रित रचयिता संगीत-गोष्ठियों के प्राण थे, निपुण सुन्दरियाँ इनकी शिष्या होती थीं और अपने अभिनय से इन महाकवियों की कल्पनाओं को मूर्त रूप देती थीं। ये महाकवि झोंपड़ों में रहकर महलों के स्वप्न देखनेवाले नहीं थे। जिन महाकवियों के गेय काव्य प्राप्त नहीं, उन्हें असंगीतज्ञ समझना भारी भूल होगी। इनके श्रव्य-

काव्य तो पण्डित-परम्परा में सुरक्षित रहे, परन्तु न जाने इन जैसे महाकवियों की कितनी गेय रचनाएँ ऐसी होंगी, जिन्हें संगीतज्ञों के सम्प्रदाय अपनी निधि मानते होंगे।

आचार्य और संगीत :

भारत के रस-सम्बन्धी प्रसिद्ध सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की कृपा से ही आज हमें जिन मीमांसक आचार्य भट्टलोल्लट, नैयायिक आचार्य शंकु, सांख्यवादी आचार्य भट्टनायक एवं आलंकारिक आचार्य अभिनवगुप्त का नाम याद रह सका है, वे सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र के समर्थ व्याख्याता थे। इसमें अन्तिम आठ अध्यायों का विषय विशुद्ध संगीत है।

(ख) ध्रुवा और प्रबन्ध

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार चराचर जगत् नाद से उत्पन्न हुआ है, नाद ही जगत् में व्याप्त है, वही परायोनि है।^१ नादब्रह्म समस्त भूतों का चैतन्य है, उससे पृथक् चराचर प्रपञ्च की प्रतीति अविद्या के कारण होती है। आनन्दरूप नाद उपास्य है।^२

ब्रह्मा, विष्णु, परा शक्ति एवं महेश्वर नादरूप हैं। इनके नादात्मक होने के कारण नाद की उपासना से ही इनकी उपासना भी स्वतः हो जाती है।^३

नाद के दो भेद—'अनाहत' और 'आहत' हैं।^४ 'अनाहत' नाद महाशून्य में तथा मानव-हृदय में स्थित दहराकाश में स्वतः गुंजित होता रहता है। आहत की उत्पत्ति प्रयत्न से होती है। दूसरे शब्दों में हम 'अनाहत' को निर्गुण और 'आहत' को सगुण कह सकते हैं। निर्गुण की उपासना से 'मुक्ति' और सगुण की उपासना से भुक्ति की प्राप्ति होती है।^५

कुछ कहने की इच्छा होने पर आत्मा से मन को प्रेरणा मिलती है, मन देह में स्थित वह्नि का आहनन करता है, आहत वह्नि वायु को प्रेरणा देती है। ब्रह्मग्रन्थि में स्थित वायु क्रमशः ऊर्ध्वमार्ग की ओर संचरण करता हुआ नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा में

१. ध्वनिर्योनिः परा ज्ञेया ध्वनिः सर्वस्य कारणम् ।

आक्रान्तं ध्वनिना सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥—बृहद्देशी, पृ० २ ।

२. चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना ।

नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे ॥—सं० २०, प्र० खं०, अ० सं०, पृ० ६२-६३ ।

३. नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः ।

नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः ॥—बृहद्देशी, पृ० २ ।

नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥—सं० २०, प्र० खं०, पृ० ६३ ।

४. आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।—सं० २०, प्र० खं०, पृ० २१ ।

५. तत्र स्यात् सगुणाद् ध्यानाद् भुक्तिर्मुक्तिस्तु निर्गुणात् ।—उपनिषत्, पृ० ६१ ।

ध्वनि का आविर्भाव करता है ।^१ मानव के शरीर में आहत नाद की उत्पत्ति का यही प्रकार है ।

आहत नाद की उपासना करने से भी अनाहत की प्राप्ति उसी प्रकार सम्भव है, जिस प्रकार मणि की प्रभा से आकृष्ट व्यक्ति के लिए मणि की प्राप्ति ।^२

आहत नाद के व्यवहार्य रूप दो हैं : 'भाषा' और 'गीत' । 'गीत' का पारिभाषिक अर्थ रंजक स्वरसन्निवेश-विशेष है ।

'भाषा' और 'गीत' की पृथक्-पृथक् सत्ता है, दोनों का ही कार्य भावबोधन है और दोनों परस्पर पूरक हैं । 'गीत' भावमात्र का बोधक होता है, भाव के प्रगाढत्व अथवा परिमाण का बोधन 'गीत' का कार्य है, परन्तु वह भाव या क्रिया के काल अथवा पृथक्-पृथक् पदार्थों के बोधन में असमर्थ है । इसी वास्तविक उतार-चढ़ाव की सहायता के बिना वाक्य वास्तविक अर्थ का बोध नहीं कराता, कभी-कभी तो विशिष्ट बल के अभाव अथवा अनुचित प्रयोग से अपेक्षित अर्थ से विपरीत अर्थ का बोधन भी कराने लगता है ।

आंगिक चेष्टाएँ भी भावाभिव्यक्ति का साधन हैं ।^३ मौन धारण करनेवाले, मूक या अत्यन्त दूर पर स्थित व्यक्ति आंगिक चेष्टाओं से अपने भाव की अभिव्यक्ति करते हैं ।

गति से भी भाव-व्यंजना होती है ।^४ प्रकृति (पात्र का स्वभाव), रस, अवस्था, देश और काल के भेद से 'गति' में भेद होता है । उत्तम पात्रों की गति धैर्ययुक्त, मध्यम पात्रों की गति मध्यम और अधम पात्रों की गति प्रायः द्रुत होती है । इस प्रकार, गति पात्रों के सत्त्व या स्वभाव का परिचय देती है ।^५

१. आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः ।

देहस्थं वह्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥

ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वपथे चरन् ।

नाभिहृत्कण्ठमूर्धास्येष्वविर्भावयति ध्वनिम् ॥—सं० २०, प्र० खं०, पृ० ६४ ।

२. परावाक् पर्यायस्य ब्रह्मशक्तेर्नादस्य ब्रह्मणोऽत्यन्तप्रत्यासन्नत्वात्तदुपासनायां कृतायां ब्रह्मप्राप्तिर्मणिप्रभाप्रवृत्तस्य मणिलाभवद्भवेदिति ।—कलानिधि, प्रथम खण्ड, पृ० ६३ ।

३. तथैव व्यञ्जकत्वं... वाचकानां शब्दानामवाचकानां च गीतध्वनीनामशब्दरूपाणां च चेष्टादीनां यत्सर्वेषामनुभवसिद्धमेव तत्केनापह्नूयते ।—ध्व०, कारिका ३३, वृ०, पृ० ३७२ ।

४ गतिश्च प्रकृतिं 'रसमवस्थां देशं कालं चापेक्ष्य वक्तव्या ।'—अभिनव०, ना० शा०, गा० सं०, अध्याय १२, पृ० १२६ ।

५. धैर्योपपन्ना गतिरुत्तमानां मध्या गतिर्मध्यमसम्मतानाम् ।

द्रुता गतिश्च प्रचुराधमानां लयत्रयं सत्त्ववशेन योज्यम् ॥

—ना० शा०, गा० सं०, अ० १२, श्लोक १३ ।

‘लय’ भी भाव-व्यंजना में कारण है। ‘हास’ या ‘रति’ की स्थिति में हमारी क्रियाएँ मध्यमलय-युक्त होती हैं। करुणापूर्ण स्थिति में हमारी चेष्टाएँ शिथिल हो जाती हैं, फलतः हमारी समस्त क्रियाएँ विलम्बित होती हैं। उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा और भय की अवस्था में हमारी चेष्टाएँ द्रुत होती हैं। इसीलिए, शृंगार एवं हास्य में ‘मध्यम’, करुण में ‘विलम्बित’ तथा वीर, रौद्र, बीभत्स और अद्भुत एवं भयानक रसों में ‘द्रुत’ लय विनियुक्त हैं।^१

ज्वरार्त, क्षुधार्त, तपःश्रान्त, भयान्वित, विस्मित, अवहित्थयुक्त (लज्जा, भय, पराजय, गौरव, कुटिलता इत्यादि भावों के कारण अपने आकार के प्रच्छादन में प्रयत्नशील), औत्सुक्ययुक्त, विरही, शोकयुक्त और स्वच्छन्द विहार के लिए घूमनेवाले व्यक्ति की गति भी विलम्बित होती है।

बान्धवों का अनिष्ट सुनने, तस्त होने, अद्भुत वस्तु के दर्शन की उत्सुकता एवं प्रयोजन के शीघ्र सम्पादन की इच्छा होने पर गति ‘द्रुत’ होती है।^२ चिन्तित व्यक्ति की गति मध्यम होती है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि चाल (गति) भी मानव की मनःस्थिति का बोध कराती है।

अन्धकार, नदी, नाव, प्रासाद पर चढ़ने-उतरने, वृक्ष पर चढ़ने इत्यादि के समय भी स्वभावतः गति में परिवर्तन हो जाता है। परिणामस्वरूप, ‘गति’ स्थान की भी परिचायिका है।

वार्द्धक्य, उन्मत्तता, पंगुता, वामनता इत्यादि से भी गति प्रभावित होती है, अतः उससे अवस्थाओं का बोध होता है।

१. द्रुतमध्यविलम्बितास्त्रयो लया रसेषूपपाद्याः । तत्र हास्यशृङ्गारयोर्मध्यलयः, करुणं विलम्बितो वीररौद्राद्भुतबीभत्सभयानकेषु द्रुत इति ।—ना० शा०, गा० सं०, पृ० ३६६ ।

२. ज्वरार्तं च क्षुधार्तं च तपःश्रान्ते भयान्विते ।
विस्मये चावहित्थे च तथौत्सुक्यसमन्विते ॥
शृङ्गारे चैव शोके च स्वच्छन्दगमने तथा ।
गतिः स्थितलया कार्याधिकलान्तरपातिता ॥
पुनश्चिन्तान्विते चैव गतिः कार्या चतुष्कला ।
अस्वस्थकामिते चैव भये वित्रासिते तथा ।
आवेगे चैव हर्षे च कार्ये यच्च त्वरान्विते ।
अनिष्टश्रवणे चैव क्षेपे चाद्भुतदर्शने ॥
अपि चात्ययिके कार्ये दुःखिते शत्रुमार्गणे ।
अपराद्धानुसरणे श्वापदानुगतौ तथा ॥

—ना० शा०, गा० सं०, अ० १२, पृ० १३८-१३९ ।

ध्रुवालक्षण :

भाषा स्वर, गति इत्यादि आवश्यक व्यंजक तत्त्वों को लेकर 'ध्रुवा' की सृष्टि हुई। अभिनवगुप्त का कथन है कि 'गीति' का आधार नियत 'पदसमूह' ध्रुवा कहलाता है।^१ वाक्य, वर्ण (विशिष्ट सांगीतिक स्वर-सन्निवेश), सांगीतिक अलंकार, यति, पाणि और लय के 'ध्रुव' (नित्य) रूप में अन्योन्याश्रित रूप को 'ध्रुवा' कहते हैं।^२ भरत का कथन है कि सप्तरूप के प्रमाण और अंग भी ध्रुवा कहलाते हैं और 'ऋक्' (गीतिविशेष) 'गाथा' तथा 'पाणि' भी 'ध्रुवा' के ही अन्तर्गत हैं।^३

प्रकरण-गीत :

प्रकरण-गीत चौदह हैं। इनमें से सात 'गीतक' और सात 'गीत' कहलाते हैं। गीतकों की ही संज्ञा 'सप्तरूप' भी है। इन चौदहों प्रकरण-गीतों का विनियोग ब्रह्मा ने 'शिवस्तुति' में किया है।^४

ये प्रकरण-गीत तालप्रधान होते हैं, इसीलिए प्राचीन संगीताचार्यों ने इनकी गणना अपने ग्रन्थों के ताल-प्रकरण में की है। सप्तरूप गीतों के कुछ अंग छन्दोबद्ध भी हो सकते हैं, उनकी संज्ञा ध्रुवा है; क्योंकि ध्रुवा के लिए छन्दोबद्धता अनिवार्य है^५, परन्तु साथ-ही-साथ भरत की व्यवस्था यह भी है कि गान-समाश्रित पद अवृत्त होता ही नहीं।^६ छन्दोहीन शब्द की सत्ता सम्भव नहीं और न छन्द ही शब्दहीन होता है।^७

१. 'ध्रुवा'—गीत्याधारो नियतः पदसमूहः ।—भ०, ना० शा०, गा० सं० २, अध्या० ६, पृ० २७० ।
२. वाक्यवर्णा ह्यलङ्कारा यतयः पाणयो लयाः ।
ध्रुवमन्योन्यसम्बद्धा यस्मात्तस्माद् ध्रुवाः स्मृताः ॥—भ०, ब० सं०, पृ० ५३ ।
३. या ऋचः पाणिका गाथाः सप्तरूपाङ्गमेव च ।
सप्तरूपप्रमाणं च तद्ध्रुवेत्यभिसंज्ञितम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५३३ ।
४. शिवस्तुतौ प्रयोज्यानि मोक्षाय विदधे विधिः ।—सं० १०, अ० सं०, ताला०, पृ० २६ ।
५. यान्यङ्गानि कलाश्चैव गीतकान्तर्गतानि तु ।
तानि छन्दोगतैर्वृत्तैर्विभाव्यन्ते ध्रुवास्तथा ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३३ ।
यानि चैव निबद्धानि छन्दोवृत्तविधानतः ।
ध्रुवासंज्ञानि पूर्वाणि तानि सर्वाणि रञ्जयेत् ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३६ ।
६. नास्ति किञ्चिदवृत्तं तु पदं गानसमाश्रयम् ।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६७ ।
७. छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम् ।—ना० शा०, गा० सं० १, अ० १४, पृ० २३५ ।

सप्तरूप (गीतक) :

सप्तगीतकों की संज्ञा क्रमशः मद्रक, अपरान्तक, उल्लोप्य, प्रकरी, ओवेणक, रोविन्दक और उत्तर है ।^१

सप्तगीत :

सप्तगीतों की संज्ञा छन्दक, आसारित, वर्द्धमानक, पाणिक, ऋक्, गाथा और साम है ।^२

सप्तरूप में प्रयोज्य अंग :

सप्तरूपों में ताल की प्रधानता होती है । उनके कुछ विशिष्ट अंग छन्दोबद्ध होते हैं । ये अंग ताल, वाक्य, स्वर-सन्निवेश और छन्द के सामंजस्य के कारण 'ध्रुवा' कहलाते हैं । सप्तरूपों का छन्दोहीन भाग 'ध्रुवा' नहीं कहलाता ।

विभिन्न सप्तरूपों में आनेवाले 'अंग' निम्नांकित हैं :

मुख, प्रतिमुख, वैहायसिक, स्थित, प्रवृत्त, वज्र, गन्धि, संहरण, प्रस्तार, माषघात, उपवर्त्तन, उपपात, प्रवेणी, चतुरस्र, शीर्षक, संविष्टक, अन्ताहरण, महाजनिक ।^३

सप्तगीतों में ध्रुवाएँ : सप्तगीतों में 'ऋक्', 'पाणिका' और 'गाथा' को 'ध्रुवा' कहा जाता है । इनका सम्पूर्ण रूप छन्दोबद्ध होता है । इनकी गणना लौकिक गान में है, परन्तु वैदिक गान से इनका सीधा सम्बन्ध है ।

'ऋक्'^४ : 'ऋक्' नासक गीत के गान में अष्टाक्षरचरणयुक्त अनुष्टुप् छन्द से द्वादशाक्षरचरणयुक्त 'जगती' छन्द तक का प्रयोग होता है । ये छन्द पाँच हैं :

१. तेषामाद्यं तु मद्रकम् ।

अपरान्तकमुल्लोप्यं प्रकरोवेणकं ततः ।

रोविन्दकोत्तरे सप्त गीतकानीत्यवादिषुः ॥—सं० २०, अ० स०, ताला०, पृ० २६ ।

२. छन्दकासारिते वर्द्धमानकं पाणिकं तथा ।

ऋक् गोथाश्च सामानि गीतानीति चतुर्दश ॥—उपरिचत् ।

३. मुखं प्रतिमुखं चैव वैहायसिकमेव च ।

स्थितप्रवृत्ते वज्रं च सन्धिः संहरणं तथा ॥

प्रस्तारो माषघातः स्यादुपवर्त्तनमेव च ।

उपघातः (उपपातः ?) प्रवेण्यौ (णी ?) च चतुरस्रं सशीर्षकम् ।

संपि (वि ?) ष्टकान्ताहरणे माहाजनिकमुच्यते (मेव च) ॥

ध्रुवाणामङ्गसंज्ञानि पञ्चानामपि नित्यशः ।—ना० शा०, ब० सं०,

अ० ३२, पृ० ५३२-५३३ ।

४. आरभ्यानुष्टुभं वृत्तैर्जगत्यन्तैः पदैरपि ।

लौकिकैर्वैदिकैर्वापि गातव्या मृचमृचिरे ॥

अष्टाक्षरचरणयुक्त 'अनुष्टुप्', नवाक्षरचरणयुक्त 'बृहती', दशाक्षरचरणयुक्त 'पंक्ति', एकादशाक्षरचरणयुक्त 'त्रिष्टुप्' तथा द्वादशाक्षरचरणयुक्त 'जगती' इन पाँचों छन्दों से उत्पन्न 'वृत्तों' का प्रयोग भी 'ऋक्' में होना चाहिए। इस प्रकार, वैदिक गान में प्रयोज्य इन छन्दों के मूल रूप तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले लौकिक वृत्त, दोनों ही 'ऋक्' में प्रयुक्त होते हैं।

'ऋक्' गीत में वैदिक संस्कृत का भी प्रयोग किया जा सकता है और लौकिक संस्कृत का भी।

तालशास्त्र की एक मात्रा का परिमाण पंचनिमेषकाल है, जिसकी संज्ञा 'लघु' है। इससे द्विगुण, अर्थात् दशनिमेषकाल को 'गुरु' या 'कला' कहते हैं।^१ 'ऋक्' में अड़तालीस 'कलाएँ' या छियानब्बे 'मात्राएँ' होती हैं। एक 'कला' में ही अक्षर का प्रयोग होना चाहिए।

छन्दःशास्त्र एवं शब्दशास्त्र में एक लघु अक्षर का परिमाण एक निमेष होता है और तालशास्त्र में 'पंचनिमेष'। छन्द का 'गुरु' अक्षर दो निमेषों का होता है और ताल का दस निमेषों का। अतः, तालशास्त्रीय 'गुरु' का प्रमाण छन्द के दस 'लघु' के समान होता है। इस बात को यों कहा जा सकता है कि छन्द का एक 'लघु' जब ताल के 'लघु' काल में प्रयुक्त होगा, तब उसका उच्चारण-काल पंचनिमेष होगा। इस काल में छन्द के 'प्लुत' का, एक 'गुरु' और एक 'प्लुत' का, पाँच लघुओं का, दो 'गुरु', एक 'लघु' का एवं एक गुरु तथा दो लघुओं का प्रयोग सुविधापूर्वक हो सकेगा।

एक 'कला' (तालशास्त्रीय गुरु, अर्थात् दशनिमेषकाल) में एक छन्दःशास्त्रीय अक्षर का गान 'ऋक्' में विहित है।

यदि पूर्वोक्त छन्दों में से किसी के अक्षरों से अड़तालीस कलाओं की पूर्ति न हो सके, तो ब्रह्मप्रोक्त 'स्तोभाक्षरों' से अवशिष्ट कलाओं की पूर्ति कर देनी चाहिए। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्थिति स्पष्ट होती है।

(अ) 'अनुष्टुप्' के एक चरण में आठ अक्षर होते हैं। ऐसे छह चरणों में अड़तालीस अक्षर होते हैं। अतः, अनुष्टुप् के छह चरणों का एक-एक अक्षर एक-एक कला में गाने से ऋक् की अड़तालीस कलाओं का सामंजस्य छन्द के साथ हो जाता है। यहाँ स्तोभाक्षरों के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं।

एकाक्षराः कला अष्टाचत्वारिंशदिहोदिताः ।

कलानां पूरणं मन्त्रपदैः स्तोभाक्षरैरपि ॥

तान्यत्र ब्रह्मगीतानि निर्दिश्यन्तेऽधुना यथा ।

ओङ्कारश्च हकारोऽपि स्वरव्यञ्जनसंयुतः ॥

त्रिकलः षट्कलो वात्र स्तोभः स्यान्मुनिसम्मतः ।

प्रस्तावादीनि सप्तापि सामाङ्गान्यत्र चावदन् ॥

यथाशोभं विदारी च वर्णाश्च रेचयेदिह । सं० २०, अ० सं०, ताला०, पृ० १२६ ।

१. निमेषाः पञ्च मात्रा स्यात् ।—ना० शा०, ब० सं०, पा० टि० में पाठान्तर, पृ० ४७५ ।

२. मात्राद्वयं गुरुः ।—सि० भू०, सं० २०, ताला०, पृ० ८ ।

(आ) 'बृहती' छन्द के एक चरण में नौ अक्षर होते हैं। ऐसे पाँच चरणों में अक्षर-संख्या पैंतालीस होती है, अड़तालीस कलाओं से सामंजस्य करने के लिए छन्द के पैंतालीस अक्षरों के साथ तीन स्तोभाक्षरों का प्रयोग तीन कलाओं में करने से छन्द और ताल में सामंजस्य हो जाता है।

(इ) 'पंक्ति' छन्द के एक चरण में दस अक्षर होते हैं। ऐसे चार चरणों की अक्षर-संख्या ४० होती है। इनमें स्तोभाक्षर सम्मिलित करने से छन्द और ताल का सामंजस्य हो जाता है।

(ई) 'त्रिष्टुप्' के एक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। ऐसे चार चरणों में चौआलीस अक्षर हुए। चार स्तोभाक्षर सम्मिलित करके अड़तालीस कलाओं से सामंजस्य बैठाया जाता है।

(उ) 'जगती' के एक चरण में बारह मात्राएँ होती हैं। ऐसे चार चरणों से अड़तालीस अक्षरों की संख्या पूरी हो जाती है। स्तोभाक्षरों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती।

स्तोभाक्षर : स्तोभाक्षरों से बने हुए पद दस हैं, जो ब्रह्मप्रोक्त हैं : १. झण्टुं, २. जगतिय, ३. वलितक, ४. कुचझल, ५. तितिझल, ६. पशुपति, ७. दिगिदिगि, ८. दिग्ने, ९. गणपति, १०. तितिधा।^१

'झण्टुं' के स्थान पर 'ऋण्टुं', 'जगतिय' के स्थान पर 'जगतिप', 'वलितक' के स्थान पर 'वलिकित', 'तितिझल' के स्थान पर 'गितिकल', 'दिगिदिगि' के स्थान पर 'दिगिनिगि', 'दिग्ने' के स्थान पर 'वादिगों', अथवा 'वादिगों' और 'तितिधा' के स्थान पर 'तिचा' पाठ भी मिलता है। 'वादिगों' और 'तिचा' सर्वथा अशुद्ध हैं; क्योंकि प्रत्येक स्तोभपद का परिमाण छन्दःशास्त्रीय चार मात्राओं के बराबर होना चाहिए, जो इनमें पूरा नहीं होता।

व्यंजनयुक्त 'ओंकार' और 'स्वरसहित' 'हकार' का प्रयोग भी स्तोभाक्षर के रूप में होता है। वैदिक ऋचाओं के गान में यही स्तोभाक्षर होते हैं। व्यंजनयुक्त ओंकार तथा स्वरसहित हकार को तीन या छह कलाओं के काल में प्रयुक्त करना चाहिए। वैदिक ऋचाओं के गान में पदपूरण लौकिक स्तोभाक्षरों के स्थान पर मन्त्र के शब्दों से होना चाहिए।

१. (अ) 'झण्टुं' जगतिय वलिकित कुचझल तितिझल पशुपति दिगिदिगि दिग्ने गणपति तितिधा ।'—सं० २०, अ० सं० ताला०, पृ० १२६।

(आ) 'झण्टुं' जगतिय वलितक कुचझल तितिझल पशुपति दिगिदिगि, वादिगों गणपति तितिधा ।'—सं० २०, अ० सं०, ताला०, पृ० ४२६।

(इ) 'झण्टुं', जगतिप, वलितक, कुचझल, गितिकल, पशुपति, दिगिनिगि, दिग्ने, गणपति, तिचा ।'—नान्यदेव, भ० कौ०, पृ० ७४।

गाथा^१

गाथा में एक 'कला' के अन्तर्गत चार अक्षरों का प्रयोग विहित है । एक सौ अट्ठाईस कलाएँ 'गाथा' में होती हैं । कलाओं की पूर्ति 'मात्रावृत्तों' एवं 'स्तोभाक्षरों' से होती है । 'एकक' नामक गीतांग का प्रयोग 'गाथा' में होता है तथा सामवेद के प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक अंगों का प्रयोग-बाहुल्य होता है ।

साम^२ : 'साम' नामक गीत में वैदिक साम की भाँति स्तोभ-शैली का प्रयोग होता है । वैदिक साम के पाँच अंग 'प्रस्ताव', 'उद्गीथ', 'प्रतिहार', 'उपद्रव' और 'निधन' की संज्ञा लौकिक साम में क्रमशः 'उद्ग्राह', 'अनुद्ग्राह', 'सम्बन्ध', 'ध्रुवक' और 'आभोग' हो जाता है । कलापूरण के लिए लौकिक 'साम' में वैदिक साम के ओंकार और हिंकार का प्रयोग होता है, अन्य स्तोभाक्षरों का नहीं ।

षडक्षरचरण 'गायत्री' से चतुर्विंशत्यक्षरचरण 'संकृति' तक के छन्दों का प्रयोग लौकिक साम में होता है ।

कुछ लोगों के मत में 'गाथा' में छियानब्बे कलाएँ होती हैं और 'साम' में उससे आधी, अर्थात् अड़तालीस कलाएँ ।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सप्तरूपों, अर्थात् 'मद्रक' इत्यादि गीतकों में प्रयोज्य 'मुख', 'प्रतिमुख' इत्यादि अंगों में काव्यरचना की स्वतन्त्रता है । हाँ, उसका विषय 'शिवस्तुति' ही होना चाहिए । ऋक्, गाथा, पाणिका और साम में भी काव्यरचना के लिए स्वतन्त्रता है ।

वैदिक पदों (शब्दों) के स्थान पर लौकिक पदों के प्रयोग की अनुमति हमें 'ऋक्', 'गाथा', 'पाणि' और 'साम' जैसे गीतों में भी है ।

१. कला मुनिजनैरुक्ता गाथायाश्चतुरक्षरा ।

अध्यष्टाविंशतिशतं कलानां तत्र कीर्तितम् ॥

मात्रावृत्तैः कलानां च पूर्तिः स्तोभाक्षरैरपि ।

कर्तव्यान्येककान्यत्रवर्णालंकारगीतयः ॥

सामाङ्गानि च भूयांसि विविधानामिहाल्पता ।—सं० २०, अ०सं०, ताला०, पृ० १३१ ।

२. स्तोभभङ्गीं विजानीयात्साम्नो वैदिकसामवत् ॥

ब्रह्मणा च पुरा गीतं प्रस्तावोद्गीथकौ तथा ।

प्रतिहारोपद्रवौ च निधनं पञ्चमं मतम् ।

ततो हिङ्कार ओङ्कारः सप्ताङ्गानीति तत्र तु ।

उद्ग्राहः स्यादनुद्ग्राहः सम्बन्धो ध्रुवकस्तथा ॥

आभोगश्चेति पञ्चानामाद्यानामभिधाः क्रमात् ।

हिङ्कारोङ्कारयोस्तत्र कलापूरकता मता ॥

वैदिक छन्दों से बने हुए अनेक वृत्तों का विनियोग भी गीतों में है । वैदिक शब्दावली और वैदिक छन्दों के स्थान पर लौकिक भाषा (संस्कृत) और लौकिक वृत्तों के विधान की स्थिति हमें बताती है कि लौकिक 'गीतकों' और 'गीतों' की, वैदिक गान से विकसित होने पर भी, स्वतन्त्र स्थिति अत्यन्त प्राचीन काल में थी, जबकि 'नाट्यवेद' का निर्माण भी नहीं हुआ था ।

नाट्य में ध्रुवा का ग्रहण और उसके कारण :

'भाषा', 'अभिनय' और 'गीत' (स्वर-सन्निवेश) स्वतन्त्र या पृथक्-पृथक् रहकर भी व्यंजक और रसोद्बोध में कारण होते हैं । 'वाचक' शब्दों, 'अवाचक' गीतध्वनियों (स्वरसन्निवेश-विशेषों) का 'व्यंजकत्व' प्रत्यक्ष है । यदि ये तीनों मिल जायें, तो कहना ही क्या है । भाषा स्वर-संवलित होकर और भी प्रभावशाली हो जाती है तथा अंगचेष्टाएँ अमूर्त को मूर्त कर देती हैं ।

इस स्थान पर आचार्यों की कुछ उक्तियों का स्मरण अप्रासंगिक न होगा ।

नाद की व्यंजकता :

व्याकरण की दृष्टि से नाद का जो रूप निरर्थक है, वह भी भाव-व्यंजना करता है । तिर्यक् योनि में उत्पन्न प्राणी अपने भावों की अभिव्यक्ति नाद के द्वारा ही करते हैं । भाषा भले ही कभी-कभी ठीक-ठीक मनोभावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ न हो, परन्तु नाद कभी असफल नहीं होता । हर्ष, शोक इत्यादि चित्तवृत्तियों को व्यक्त करनेवाले नाद-रूप सार्वभौम हैं, वे भाषा की भाँति एकदेशीय नहीं ।^१

अवाचक 'गीत' (स्वर-सन्निवेश) की व्यंजकता एवं रसोद्बोधकता :

अभिधा एवं लक्षणा के माध्यम से भाषा व्यंजक होती है, परन्तु स्वरसन्निवेश-विशेष, अर्थात् 'गीत' अवाचक होने पर भी व्यंजक होता है ।^२ विषयास्वाद अथवा भाषा से सर्वथा

गायत्रीप्रभृतिच्छन्दः सङ्कृत्यन्तमिहेष्यते ।

ऋण्व्यूढमिति सामोक्तं गद्ये षण्णवतिः कलाः ॥

एकाक्षराः सामगाने तदर्द्धमपरे जगुः ।

अत्रापि मन्त्रस्तोभानामृचां च त्रिकलादिकम् ॥

—सं० २०, अ० सं०, ताला०, पृ० १३१-१३२ ।

१. तथा च प्राण्यन्तरस्य मृगसारमेयादेरपि नादमाकर्ण्य भयरोषशोकादि प्रतिपद्यते, तदयं नादाच्चित्तवृत्त्यान्वयगमोऽनुनातं तावत् । ये त्वेते वर्णविशेषास्ते तन्नादरूप-सानान्यात्मकपदतन्त्रं (न्तु) ग्रन्थिमया इव प्राच्यप्रयत्नातिरिक्तनिमित्तान्तरापेक्षाः, तत एवानभिप्रेतेऽन्यथापि प्रयोक्तुं शक्याः, अतएव दृष्टव्यभिचाराः । नादस्तु झटित्युद्भिन्नमुखरागपुलकस्थानीयो नान्यथासिद्धोऽन्यथासिद्धं शब्दार्थ बाधते ।

—अभि० ना० शा०, गा० सं० १, अध्याय १७, पृ० ३८७ ।

२. नहि यैवाभिधानशक्तिः सैवावगमनशक्तिः । अवाचकस्यापि गीतशब्दादेः रसादिलक्षणार्थावगमात् ।—ध्व०, कारि० ३३, पृ० ३४६; तथाहि गीतादि-

अपरिचित बालक भी 'गीत' से प्रभावित होकर रोते-रोते चुप हो जाता है ।^१ कालिदास के मूलकाव्य का आनन्द असंस्कृतज्ञ व्यक्ति नहीं ले सकता, परन्तु 'गीत' प्रत्येक व्यक्ति के लिए आनन्ददायक होता है ।

जो लोग स्वभाव से ही स्वच्छ दर्पण के समान हृदय से युक्त हैं, वे अपने मन को संसारोचित क्रोध, लोभ, इच्छा आदि के वशीभूत नहीं होने देते, उसके लिए रूपक के दस भेदों के श्रवणमात्र से वह 'रस' स्पष्ट होता है, जो साधारण रसनात्मक चर्वणा के द्वारा ग्राह्य है । जो लोग उतने विशुद्धान्तःकरण नहीं हैं, उन्हें भी सहृदयों के समान चर्वणा कराने के लिए नट इत्यादि की प्रक्रिया है । ऐसे लोगों के क्रोध, शोक आदि से ग्रस्त हृदय की ग्रन्थियों का भंजन करने के लिए महर्षि भरत ने गीत आदि (वाद्य, नृत्य, अभिनय) की प्रक्रिया विरचित की है ।^२

'ध्रुवा' गीति का आधार पदसमूह है । वाक्य (भाषा, अर्थात् काव्य), वर्ण (स्वर-सन्निवेश), 'अलंकार' (सांगीतिक एवं साहित्य-सम्बद्ध), 'यति' (छन्द), 'पाणि' (तालसंकेत) और 'लग्न' (गतिविशेष) उसके अनिवार्य तत्त्व हैं । इसीलिए, 'ध्रुवा' को नाट्य का प्राण कहा गया है । रसानुकूल ध्रुवाओं का प्रयोग नाट्य को उसी प्रकार सुशोभित करता है, जिस प्रकार नक्षत्र आकाश को शोभित करते हैं ।^३

नाट्यवेद के निर्माण में ब्रह्मा ने ऋग्वेद से 'पाठ्य', सामवेद से 'गीत', यजुर्वेद से 'अभिनय' और अथर्ववेद से 'रस' का ग्रहण किया ।^४ 'रस' लक्ष्य है और पाठ्य, गीत तथा

शब्देभ्योऽपि रसाभिव्यक्तिरस्ति न च तेषामन्तरावाच्यपरामर्शः ।—उपरिवत्, पृ० ३३४ ।

तथैव व्यञ्जकत्वं वाचकानां शब्दानामवाचकानां च गीतध्वनीनामशब्दरूपाणां च चेष्टादीनां यत्सर्वेषामनुभवसिद्धमेव केनापहनूयते ।—उपरिवत्, पृ० ३७६ ।

१. अज्ञातविषयास्वादो बालः पर्यङ्गिकागतः ।

रुदन् गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥

—सं० २०, अ० सं०, स्वरगता०, पृ० १६ ।

२. तत्र ये स्वभावतो निर्मलमुकुरहृदयास्त एवं संसारोचितक्रोधमोहाभिलाष-परवशमनसो न भवन्ति । तेषां तथाविधदशरूपकाकर्णनसमये साधारण-रसनात्मकचर्वणाग्राह्यो रससञ्चयो नाट्यलक्षणः स्फुट एव । ये त्वतथाभूता-स्तेषां प्रत्यक्षोचिततथाविधचर्वणालाभाय नटादिप्रक्रिया । स्वगतक्रोधशोकादि-सङ्गरुदहृदयग्रन्थिभञ्जनाय गीतादिप्रक्रिया च मुनिना विरचिता ।

—अभिनव०, गा० सं० २, अ० ६, पृ० २६१ ।

३. तथा रसकृता नित्यं ध्रुवाः प्रकरणाश्रयाः ।

नक्षत्राणीव गगनं नाट्यमुद्योतयन्ति ताः ॥ —ना० शा०, ब० सं० अ० ३२।६०३ ।

४. जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥ —ना० शा०, ब० सं०, पृ० २ ।

अभिनय उसके अभिव्यंजन के साधन है। 'ध्रुवा' में भाषा, अभिनय और गीत सभी होते हैं। 'वाद्य' गीत का अनुगामी होता है और नृत्य वाद्य का। गीत के पश्चात् वाद्य का और तत्पश्चात् नृत्य का विनियोग है। गीत, वाद्य और अंग (अभिनय और नृत्य) का संयोग ही नाट्य में प्रयोग कहलाता है।^१ अतः, रसोद्बोध में ध्रुवा का महत्त्व स्पष्ट है।

ध्रुवा-विकल्प में कारण^२ :

'ध्रुवा' के पाँच विकल्पों के पाँच कारण—'जाति', 'स्थान', 'प्रकार', 'प्रमाण' और 'नाम' हैं। ध्रुवा-प्रयोज्य 'वृत्तों' का प्रमाण ही जाति है। 'स्थान' के दो भेद 'आत्मस्थ' और 'परस्थ' हैं। पात्र के द्वारा गेय ध्रुवा 'आत्मस्थ' और 'नेपथ्य' में गेय ध्रुवा 'परस्थ' होती है। वृत्तों के 'सम', 'विषम' और 'अर्द्धसम' इत्यादि भेद 'प्रकार' कहलाते हैं। ताल की दृष्टि से 'षट्कल' और 'अष्टकल' भेद 'प्रमाण' कहलाते हैं और ध्रुवाओं की संज्ञाएँ 'नाम' कहलाती हैं।

ध्रुवायोजन में ध्यान देने योग्य तत्त्व :

वस्तु, प्रयोग, प्रकृति, रस, भाव, देश, काल और अवस्था को दृष्टि में रखकर 'ध्रुवा' का प्रयोग होना चाहिए।^३

नगर अथवा वन में घटित हुई घटना या कवि का उद्देश्य 'वस्तु' कहलाता है। गीत, वाद्य और अंग का संयोग दो प्रकार का है : 'दिव्य' और 'मानुष'। पात्रों का उत्तम, मध्यम और अधम स्वभाव 'प्रकृति' कहलाता है। 'रस' और 'भाव' प्रसिद्ध हैं। कक्षा और

१. पूर्व गानं ततो वाद्यं ततो नृत्तं प्रयोजयेत् ।

गीतवाद्याङ्गसंयोगः प्रयोग इति संज्ञितः ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६७ ।

२. जातिस्थानं प्रकारश्च प्रमाणं नाम चैव हि ।

ज्ञेया ध्रुवाणां गीतज्ञैर्विकल्पाः पञ्चहेतुकाः ॥

वृत्ताक्षरप्रमाणं हि जातिरित्यभिसंज्ञितम् ।

समार्द्धविषमाभिश्च प्रकारः परिकीर्तितः ॥

षट्कलाष्टकले चैव प्रमाणे द्विविधे स्मृते ।

यथागोत्रकुलाचारैर्नृणां नामाभिधीयते ॥

एवं नामाश्रयोपेतं ध्रुवाणामपि चेष्ट्यते ।

—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५८८-५८९ ।

३. वस्तु प्रयोगं प्रकृतं (ति ?) रसभावाश्रितं च यत् (रसभावौ ऋतुर्वयः ?) ।

देशं कालमवस्थां च ज्ञात्वा योज्या ध्रुवा बुधैः ॥—ना० शा०, अ० सं०, पृ० ५६३ ।

वस्तु प्रयोगं प्रकृतिं रसभावं ऋतुं वयः ।

देशं कालमवस्थां च ज्ञात्वा तत्तद्विधा ध्रुवा ॥

प्रयोक्तव्या प्रयोगज्ञैः... .. । —वेम, भ० कौ०, पृ० ३०२ ।

दिशा के विभाग से 'देश' दो प्रकार का है; रात, दिन, ऋतु इत्यादि 'काल' हैं। शैशव, यौवन, वृद्धत्व इत्यादि आयु हैं तथा सुख एवं दुःख 'अवस्था' हैं।^१

नाट्य में पंचविध ध्रुवागान^२ :

१. प्रावेशिकी : पात्रों के प्रवेशकाल में विभिन्न रसों और अर्थों से युक्त गाई जानेवाली ध्रुवा 'प्रावेशिकी' कहलाती है।^३
२. नैष्कामिकी : अंक के अन्त में पात्रों के निष्क्रमण के समय गाई जानेवाली ध्रुवा 'नैष्कामिकी' कहलाती है।^४
३. आक्षेपिकी : विधि के जाननेवाले प्रयोक्ता नाट्य में क्रम का उल्लंघन करके जिस ध्रुवा का प्रयोग करते हैं, वह आक्षेपिकी है।^५
४. प्रासादिकी : जो ध्रुवा अपने प्रयोग के द्वारा अन्य रस को प्राप्त अवस्था का परिवर्तन करके रंगस्थल में प्रसन्नता ला देती है, उसकी संज्ञा 'प्रासादिकी' है।^६
५. अन्तरा : पात्र के विषादयुक्त, विस्मृत, क्रुद्ध, सुप्त, मत्त, विश्रान्त या पतित होने पर दोषाच्छादन के लिए प्रयुज्यमान ध्रुवा 'अन्तरा' कहलाती है।^७

१. वस्तुद्देश्यसमुत्थं तु नगरारण्यसम्भवम् ।
प्रयोगश्चैव विज्ञेयो दिव्यमानुषसंश्रयः ॥
उत्तमाधममध्या तु त्रिविधा प्रकृतिः स्मृता ।
रसभावौ तु पूर्वोक्तावृतुः कालकृतस्तथा ॥
शिशुयौवनवृद्धत्वं वयश्चैव प्रकीर्तितम् ।
कक्षादिभावजनितो देशस्तु द्विविधः स्मृतः ॥
कालो रात्रिन्दिवकृतो वासरादिविनिश्चितः ।
अवस्था चैव विज्ञेया सुखदुःखसमुद्भवा ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६५ ।
२. प्रवेशाक्षेपनिष्क्रामप्रासादिकमथान्तरम् ।
गानं पञ्चविधं विद्यात् ध्रुवायोगसमन्वितम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५८६ ।
३. नानारसार्थयुक्ता नृणां या गीयते प्रवेशेषु ।
प्रावेशिकी तु नाम्ना विज्ञेया सा ध्रुवा तज्ज्ञैः ॥—उपरिवत्, पृ० ५८६ ।
४. अङ्कान्ते निष्क्रमणे पात्राणां गीयते प्रयोगेषु ।
निष्क्रामोपगतगुणां विद्यान्नैष्कामिकीं तां तु ॥—उपरिवत्, पृ० ५८६ ।
५. क्रममुल्लङ्घ्य विधिज्ञैः क्रियते या द्रुतलयेन नाट्यविधौ ।
आक्षेपिकी ध्रुवासौ द्रुता स्थिता वापि विज्ञेया ॥—उपरिवत्, पृ० ५८६ ।
६. या च रसान्तरमुपगतमाक्षेपवशाद् द्रुतं प्रसादयति ।
रागप्रसादजननीं विद्यात्प्रासादिकीं तां तु ॥—उपरिवत्, पृ० ५८६ ।
७. विषसम्मूर्च्छिते भ्रान्ते वस्त्राभरणसंयमे ।
दोषप्रच्छादने या च गीयते सान्तराच्छदा ॥—उपरिवत् ।

ध्रुवा के नामगत छह भेद :

१. शीर्षिका : प्रयोग में शीर्षस्थानीय होने के कारण इसकी संज्ञा शीर्षिका या शीर्षिकी है । यह शृंगाररस में उत्तम प्रकृति के पात्रों का आश्रय होती है तथा इसमें मृदु वर्णों और पदों का प्रयोग होता है ।^१
२. उद्गता (उद्धता) : उद्धत होने के कारण इसकी संज्ञा 'उद्गता' है । प्रधानतया वीर एवं रौद्र रस में इसका प्रयोग होता है । उद्धत पात्रों में इसका विनियोग है । आश्चर्य-दर्शन, रोष, विषाद, सम्भ्रम, उत्पात, विशेष श्रम, प्रत्यक्षवेदन के समय में तथा भयानक रस में भी द्रुत लय में इसका प्रयोग विहित है ।^२
३. अनुबन्ध (अनुबन्धा) : यति, लय, वाद्यगति, पद, वर्ण, अक्षर, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव को गीत एवं रस में नियतरूपेण अनुबद्ध करने के कारण इस ध्रुवा की संज्ञा 'अनुबन्धा' है ।^३
४. विलम्बिता : पात्रों के मनोगत भावों का भली भाँति परिचय देनेवाली ध्रुवा 'विलम्बिता' कहलाती है । इसकी संज्ञा 'स्थिता' भी है । इसकी गति द्रुत नहीं होती । अपविद्ध (नृत्यगत कार्यविशेष), औत्सुक्य, विलाप, श्रम, दैन्य, चिन्ता और प्रत्यक्ष दुःख में विलम्बित लयवाली विलम्बिता ध्रुवा का प्रयोग कर्तव्य है ।^४

१. शिरःस्थानीयमेतद् हि यस्मात्तस्मात्तु शीर्षिका ।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६१ ।
शृङ्गाररससम्पूर्णा मृदुवर्णपदान्विता ।
या चोत्तमाश्रिता सेयं शीर्षिकी परिकीर्तिता ॥—वेम, भ०, कौ० पृ० ५६३ ।
२. उद्गता (तैः ?) उद्धता यस्मात् तस्माज्ज्ञेया ध्रुवा बुधैः ।
—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६ ।
वीररौद्रप्रधाना च स्फुटवर्णनिबन्धना ।
उद्धतप्रायसञ्चारा सा भवेदुद्गता ध्रुवा ॥
आश्चर्यदर्शने रोषे विषादे सम्भ्रमे तथा ।
उत्पाते विश्रमे चैव प्रत्यक्षवेदने तथा ॥
वीरे भयानके रौद्रे कार्य्या द्रुतलया ध्रुवा ॥—वेम०, भ०, कौ०, पृ० ७६ ।
३. यतिलयौ वाद्यगति पदवर्णमथाक्षरम् ।
विभावांश्चानुभावांश्च भावांश्च व्यभिचारिणः ॥
गीते रसे च नियतमनुबध्नाति या क्रमात् ।
सा ध्रुवा चानुबन्धान्या नाट्यविद्भिर्निरूपिता ॥—वेम, भ०, कौ०, पृ० १५-१६ ।
४. (क) नातित्वरितसञ्चारा नाट्यधर्ममनुव्रता ।
सविलम्बितसञ्चारा भवेदथ विलम्बिता ॥ (शोधित पाठ)—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६१ ।

५. अङ्गिता : शृंगाररस-सम्भूत और शृंगारोत्पन्न गुणों से युक्त, सापेक्षभाव और मनोहर ध्रुवा 'अङ्गिता' कहलाती है। दिव्यांगना तथा राजस्त्रियों में इस ध्रुवा का विनियोग होता है।^१

६. अवकृष्टा : अवकृष्ट अक्षरों से युक्त होने के कारण इसकी संज्ञा 'अवकृष्टा' है। बद्ध, निरुद्ध, पतित और व्याधित अवस्था के प्रदर्शन के लिए करुण रस में इसका विनियोग है। तार स्वर से इसका आरम्भ होता है।^२

पद : अक्षरसम्बद्ध प्रत्येक वस्तु पद कहलाती है।^३ उसके दो प्रकार 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध' हैं।^४ उसके दो अन्य प्रकार 'अताल' और 'सताल' भी हैं। 'ध्रुवा' में 'निबद्ध' और 'सताल' पद का ही प्रयोग होता है।^५ नियत अक्षरों से सम्बद्ध, छन्द एवं यति से युक्त और जिसके अक्षरों पर ताल पड़ता हो, ऐसा वाक्य 'निबद्ध' पद कहलाता है।^६

ध्रुवापद : सभी छन्द 'गान' के लिए उपयुक्त नहीं होते। अतः, नाट्यशास्त्र में ध्रुवा-गेय छन्दों अथवा वृत्तों का विधान 'ध्रुवाध्याय' में पृथक् किया गया है।^७ यह 'वृत्त' तालान्वित होने पर 'पद' कहलाते हैं।^८

ध्रुवा-प्रयोज्य त्रिविध वृत्त : विभिन्न 'गायत्री' इत्यादि 'जातियों' (छन्दों) से उत्पन्न वृत्त तीन प्रकार के होते हैं, १. 'गुरुप्राय', जिनमें दीर्घ अक्षरों की अधिकता हो; २. लघुप्राय,

(ख) अपविद्धे तथौत्सुक्ये विषादे परिदेविते ।

श्रमे दैन्ये च चिन्तायां दुःखे प्रत्यक्षजे तथा ॥

स्थिता ध्रुवा प्रयोक्तव्या नाट्यलक्षणवेदिभिः ।—वेम, भ० कौ०, पृ० ६१७ ।

१. अङ्गिता तूत्कटगुणा शृङ्गाररससम्भवा ।

यस्मात् स्थानप्रसन्ना च तस्मादेवाङ्गिता स्मृता ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६२ ।

शृङ्गाररससम्भूता तद्भूतगुणशालिनी ।

सापेक्षभावा हृद्या या सामवेदाङ्गिता ध्रुवा ॥

अङ्गिता तु ध्रुवा कार्या दिव्यपार्थिवयोषिताम् ।—वेम० भ० कौ०, पृ० १० ।

२. अवकृष्टाक्षरा ज्ञेया विकृष्टा करुणाश्रया ।

अवकृष्टा ध्रुवा बद्धे निरुद्धे पतिते तथा ॥

व्याधिते सादितारा च प्रयोज्या करुणाश्रया ।—वेम० भ० कौ०, पृ० ३६ ।

३. यत्स्यादक्षरसम्बद्धं तत्सर्वं पदसंज्ञितम् ।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३५ ।

४. निबद्धं चानिबद्धं च ह्येवमेतद् द्विधा स्मृतम् ।—उपरित्, पृ० ५३५ ।

५. अतालं च सतालं च द्विप्रकारं तदुच्यते ।

सतालं च ध्रुवार्थेषु निबद्धं सर्वसाधकम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५३५ ।

६. नियताक्षरसम्बद्धं छन्दोयतिसमन्वितम् ।

निबद्धं तु पदे ज्ञेयं सतालपतनाक्षरम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५३५ ।

७. ध्रुवायोगं तु वक्ष्यामि तेषामेव विकल्पनम् ।—ना० शा०, गा० सं० १, अ० १५।२८ ।

जिनमें लघु अक्षरों की अधिकता हो और 'गुरुलघ्वक्षर', जिनमें गुरु एवं लघु अक्षर प्रायः समान संख्या में हों ।

नाट्यशास्त्र के बत्तीसवें अध्याय में ध्रुवा-प्रयोज्य वृत्तों का सविस्तर वर्णन है ।

ध्रुवा-प्रयोज्य भाषाएँ : आश्रय (दिव्य, मानुष) के अनुसार विभिन्न भाषाओं के प्रयोग का बिधान ध्रुवा-प्रयोग में विहित है । 'शौरसेनी' जैसी लोकभाषा की ध्रुवा-प्रयोज्यता नाट्यशास्त्र में विहित है ।^१

प्रबन्धः

रञ्जक स्वर-सन्दर्भ 'गीत' कहलाता है । उसके दो भेद 'गान्धर्व' और 'गान'^२ हैं ।

'गान्धर्व' और 'गान' : सात प्रकरण गीतक और सात प्रकरण गीत तथा अन्य ध्रुवा-प्रयोग की संज्ञा 'गान्धर्व' है । अनादिसम्प्रदाय होने के कारण 'गान्धर्व' की संज्ञा 'मार्ग' भी है ।^३ पश्चाद्वर्ती आचार्य अनादिसम्प्रदाय 'मार्गसंगीत' को वेद के समान अपौरुषेय मानते थे ।^४ गीत के 'गान्धर्व' और 'गान' जैसे दो भेद नाट्यशास्त्र में नहीं हैं । 'गान' का दूसरा नाम 'देशी' है । देश-देश में लोकरुचि के अनुसार जन्म लेने के कारण इसे 'देशी' कहा गया ।^५

गान : 'गान' के दो प्रकार हैं : 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध' । 'धातुओं' और 'अंगों' की दृष्टि से व्यवस्थित गान 'निबद्ध' कहलाता है और बन्धनहीन होने के कारण 'आलप्ति' 'अनिबद्धगीत' कहलाती है ।^६ अनिबद्ध गान हमारे विचार-क्षेत्र से बाहर है । अतः, निबद्ध गान पर विचार किया जाता है ।

१. भाषा तु शूरसेनी स्यात् ध्रुवाणां... ।—उपरिवत्, पृ० ५६८, पाठान्तर, १, २ ।

२. रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते ।

गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥—सं० २०, अ० सं०, प्रबन्धा०, पृ० १८७ ।

३. अनादिसम्प्रदायं यद्गान्धर्वः सम्प्रयुज्यते ।

नियतश्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्बुधाः ॥—उपरिवत्, पृ० १८८ ।

... .. तत्र मार्गः उच्यते ।

यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥

—सं० २०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४ ।

४. अनादिसम्प्रदायमित्यनेन गान्धर्वस्य वेदवदपौरुषेयत्वं सूचितं भवति ।—कल्लिनाथ, अ० सं०, प्रब०, पृ० १८८ ।

५. देशे देशे जनानां यद् रुच्या हृदयरञ्जकम् ।

गीतं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥—सं० २०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४-१५ ।

६. अधुना गानमुच्यते ।

निबद्धमनिबद्धं तद् द्वेधा निगदितं बुधैः ॥

बद्धं धातुभिरङ्गैश्च निबद्धमभिधीयते ।

आलप्तिर्बन्धहीनत्वादननिबद्धमितीरिता ॥—सं० २०, प्रब०, पृ० १८८ ।

निबद्धगान अथवा प्रबन्ध : निबद्ध गान की तीन संज्ञाएँ हैं—‘प्रबन्ध’, ‘वस्तु’ और ‘रूपक’ ।^१ चार ‘धातुओं’ और छह ‘अंगों’ से प्रबद्ध होने के कारण निबद्धगान ‘प्रबन्ध’, नायक इत्यादि के आरोपण का कारण होने से ‘रूपक’ और ‘उद्ग्राह’ आदि धातुओं और ‘स्वर’ आदि छह अंगों का निवासस्थान होने के कारण ‘वस्तु’ कहलाता है ।^२

प्रबन्ध में चार धातु^३ : मानव-शरीर को धारण करने के कारण जिस प्रकार वात, पित्त और कफ की संज्ञा धातु है, उसी प्रकार ‘उद्ग्राह’, ‘मेलापक’, ‘ध्रुव’ और ‘आभोग’ प्रबन्ध के ‘धातु’ कहलाते हैं ।^४ ये धातु प्रबन्ध के अवयव हैं ।

१. उद्ग्राह : यह प्रबन्ध का प्रथम धातु है । गीत का ‘उद्ग्राहण’ या ‘प्रारम्भ’ इस धातु से होता है, अतः इसकी संज्ञा ‘उद्ग्राह’ है ।^५
२. मेलापक : प्रथम धातु ‘उद्ग्राह’ और तृतीय धातु ‘ध्रुव’ को मिलानेवाला होने के कारण यह धातु ‘मेलापक’ कहलाता है ।^६
३. ध्रुव : प्रबन्ध के दूसरे ‘मेलापक’ और चतुर्थ धातु ‘आभोग’ का लोप सम्भव है, परन्तु तृतीय धातु ‘ध्रुव’ का नहीं । इस अविलोप्यता अथवा नित्यता के कारण इसकी संज्ञा ‘ध्रुव’ है ।^७

-
१. संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वास्तरूपकम् ।—उपरिवत्, पृ० १८८ ।
 २. चतुर्भिर्धातुभिः षड्भिश्चाङ्गैर्यस्मात्प्रबध्यते ।
तस्मात्प्रबन्धः कथितो गीतलक्षणकोविदैः ॥
रागाद्यारोपणे नेतुः स्यादस्मिन्नूपकाभिधा ।
उद्ग्राहाद्यास्तु चत्वारि स्वरादीनि च षट् तथा ॥
वसन्ति यत्र तज्ज्ञेयः प्रबन्धो वस्तुसंज्ञया । —पाश्वर्देव, सिंहभूपालोद्धृत,
उपरिवत्, पृ० १९४ ।
 ३. प्रबन्धावयवो धातुः स चतुर्धा निरूपितः ।
उद्ग्राहः प्रथमस्तत्र ततो मेलापकध्रुवौ ॥
आभोगश्चेति... ।—स० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १८८-१८९ ।
 ४. वातपित्तकफा देहधारणाद्धातवो यथा ।
एवमेते प्रबन्धस्य धातवो देहधारणात् ॥—उपरिवत्, पृ० १९० ।
 ५. उद्ग्राहः प्रथमो भागः ।—उपरिवत्, पृ० १८९; उद्गृह्यते प्रारभ्यते येन गीतं स
उद्ग्राह इति प्रबन्धस्य प्रथमावयवोऽन्वर्थसंज्ञः ।—कल्लिनाथ, उपरिवत्,
पृ० १८९ ।
 ६. उद्ग्राहध्रुवयोर्मेलनकारकत्वान्मेलापक इति द्वितीयोऽप्यवयवोऽन्वर्थो द्रष्टव्यः ।—
कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १८९ ।
 ७. तृतीयावयवस्य नित्यत्वं तावदुद्ग्राहव्यतिरिक्ततरापेक्षया सकलप्रबन्धेष्वनपायात् ।
तेन द्विधातुषु प्रबन्धेषु मेलापकाभोगयोस्त्रिधातुषु प्रबन्धेषु सर्वत्र मेलापकस्यैव
परित्यागः । ध्रुवस्य न क्वचिदपि परित्याग इत्यर्थः ।—उपरिवत्, पृ० १८९ ।

४. आभोगः आभोग शब्द का अर्थ परिपूर्णता है । प्रबन्ध का अन्तिम भाग या उसे पूर्ण करनेवाला अन्तिम धातु होने के कारण इस धातु की संज्ञा 'आभोग' है ।^१

'अन्तर' नामक एक पाँचवाँ धातु और है, परन्तु उसका प्रयोग कुछ विशिष्ट प्रबन्धों में 'ध्रुव' और 'आभोग' के मध्य में होता है ।^३

प्रबन्ध के छह अंग :

मानव-शरीर के अंगों की भाँति प्रबन्ध के भी अंग होते हैं । ये छह हैं : १. स्वर, २. विरुद, ३. पद, ४. तेनक, ५. पाट और ६. ताल ।^३

इनमें 'तेन' नामक अंग मंगलवाची है । 'ओं तत्सत्', 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों में 'तत्' शब्द ब्रह्म का वाचक है । 'तत्' शब्द की तृतीया विभक्ति में 'तेन' रूप होता है, जिसका अर्थ 'उस (ब्रह्म) ने' होता है । 'उसने, अर्थात् मंगलात्मा ब्रह्म ने यह प्रबन्ध अंकित किया है ।^४ इस अर्थ की ध्वनि 'तेन' नामक अंग में है, जिसकी अनेक आवृत्तियाँ प्रबन्ध में होती हैं । 'तेन' नामक अंग प्रबन्धपुरुष का एक नेत्र है ।

'पद' (सार्थक वाक्यसमूह) नामक अंग अर्थ का प्रकाशक है^५ और प्रबन्धपुरुष का दूसरा नेत्र है ।

मृदंग इत्यादि वाद्यों में करों के आघात से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियाँ 'पाट' कहलाती हैं । शंख इत्यादि मुखवाद्यों की ध्वनियाँ भी 'पाट' कहलाती हैं ।^६ 'पाट' प्रबन्धपुरुष का एक हाथ है ।

१. अन्तिमो धातुः प्रबन्धस्य परिपूर्ण(ता)हेतुत्वादाभोग इति कारणे कार्योपचार उक्तः । 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यभिधानादाभोगशब्दस्य परिपूर्णतावाचकत्वम् ।—उपरिवत्, पृ० १८६ ।

२. ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः ।

स तु सालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते ॥—सं० २०, उपरिवत्, पृ० १८६ ।

३. अङ्गानि षट् तस्य स्वरश्च विरुदं पदम् ।

तेनकः पाटतालौ च प्रबन्धपुरुषस्य... .. ॥—सं० २०, अ० सं०, प्रबन्धा०, पृ० १६० ।

४. (क) ओं तत्सदिति निर्देशस्तत्त्वमस्यादिवाक्यतः ।

तदिति ब्रह्म तेनायं ब्रह्मणात्मना लक्षितस्तेन तेनेति... ॥—सं० २०, अ० सं० प्रब०, पृ० १६२ ।

(ख) उपलक्षणे च तृतीया ततश्च तेनेन कल्याणरूपेण ब्रह्मोपलक्षितमर्थं वदति । तेन हेतुना तेनतेनेत्ययं शब्दो मङ्गलार्थप्रकाशको भवति ॥—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६६ ।

५. अर्थप्रकाशकं पदम् ।—कल्लिनाथ०, उपरिवत्, पृ० १६१ ।

६. पाटोऽक्षराणि तावत्कराभ्यां मृदङ्गादिवादनादेव प्रभवन्ति ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६५; पाटो वाद्याक्षरोत्करः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० १६२ ।

नायक के गुणों को 'विरुद' कहते हैं ।^१ प्रबन्धपुरुष का यह दूसरा हाथ है । ताल और स्वर, प्रबन्ध की गति में कारण होने से प्रबन्धपुरुष के चरण हैं ।

प्रबन्धों की जातियाँ :

प्रबन्धों की पाँच जातियाँ—१. मेदिनी, २. आनन्दिनी, ३. दीपनी, ४. भावनी और ५. 'तारावली' हैं ।^२ छह अंगों की जाति 'मेदिनी', पाँच अंगों से युक्त जाति 'आनन्दिनी' चार अंगों से युक्त 'दीपनी', तीन अंगों से युक्त 'भावनी' और दो अंगों से युक्त जाति 'तारावली' है ।^३

मतान्तर से प्रबन्धों की छह जातियाँ :

कुछ लोगों के मत में षडंग जाति का नाम 'श्रुति' है; क्योंकि 'श्रुति' अर्थात् वेद के भी छह अंग शिक्षा, ज्यौतिष, निरुक्त, निघण्टु, छन्द और व्याकरण हैं ।^४

नीति : पंचांग जाति 'नीति' कहलाती है; क्योंकि कर्मरम्भ का उपाय, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकाल-विभाग, विनिपात-प्रतीकार और कार्यसिद्धि ये पाँच नीति के अंग हैं ।^५

सेना : चतुरंग जाति को 'सेना' कहते हैं; क्योंकि सेना में चार अंग—हाथी, घोड़े, पैदल और रथ होते हैं ।^६

कविता : तीन अंगोंवाली प्रबन्ध-जाति की संज्ञा 'कविता' है; क्योंकि 'कविता' के शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास ये तीन अंग होते हैं ।^७

चम्पू : दो अंगोंवाला प्रबन्ध 'चम्पू' है; क्योंकि चम्पू में गद्य और पद्य दो अंग होते हैं ।^८

१. गुणो नाम भुजबलभीमादिविरुदशब्देनोच्यते ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६५ ।

२. मेदिन्यथानन्दिनी स्याद्दीपनी भावनी तथा ।

तारावलीति पञ्च स्युः ... ते... ॥—सं० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १६६ ।

३. षड्भिरङ्गैर्बद्धा मेदिनीजातिः, पञ्चभिरानन्दिनी, चतुर्भिर्दीपनी, त्रिभिर्भावनी, द्वाभ्यां तारावलीति क्रमो द्रष्टव्यः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६६ ।

४. श्रुतेर्वेदस्य शिक्षाज्यौतिषनिरुक्तनिघण्टुच्छन्दोव्याकरणानि षडङ्गानि ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६८ ।

५. नीतेः पञ्चाङ्गानि कर्मणामारम्भोपायः, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकालविभागः, विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिश्च ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६८ ।

६. सेनायाश्चत्वार्यङ्गानि हस्त्यश्वरथपदातिरूपाणि ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६२ ।

७. कवितायास्त्रीण्यङ्गानि, शक्तिव्युत्पत्त्यभ्यासश्चेति ।—उपरिवत्, पृ० १६८ ।

८. चम्पूवा द्वे अङ्गे, गद्यं पद्यं चेति ।—उपरिवत्, पृ० १६८ ।

प्रबन्धों की एक और द्विविधता :

‘अनियुक्त’ और ‘नियुक्त’ ये प्रबन्धों के दो अन्य प्रकार हैं । छन्द और ताल के नियम से हीन ‘अनियुक्त’ और छन्द एवं ताल के नियम से युक्त प्रबन्ध ‘नियुक्त’ है ।^१

प्रबन्धों की एक और त्रिविधता :

प्रबन्धों के अन्य तीन प्रकार हैं—‘सूडस्थ’, ‘आलिसंश्रय’ एवं ‘विप्रकीर्ण’ ।^२

सूड : एला, करण, ढेंकी, वर्तनी, झोम्बड, लम्भ, रास और एकताली ये आठ प्रकार सूड के हैं । ‘सूड’ एक देशज शब्द है, जो गतिविशेष के समूह का वाचक है । इन ‘एला’ आदि शब्दों में कुछ रूढ हैं और कुछ अन्वर्थ ।^३

आलिक्रमस्थ : वर्ण, वर्णस्वर, गद्य, कैवाड, अंकचारिणी, कन्द, तुरगलीला, गज-लीला, द्विपदी, चक्रवाल, कौंचपद, स्वरार्थ, ध्वनिकुट्टनी, आर्या, गाथा, द्विपथक, कलहंस, तोटक, ‘आलिघट’, वृत्त, मातृका, रागकदम्बक, पञ्चतालेश्वर, तालार्णव ये चौबीस प्रबन्ध ‘आलिक्रमस्थ’ हैं ।^४

यदि इनमें से कोई सूडक्रम प्रबन्ध के मध्य में हो, तो वह भी आलिक्रमस्थ कहलाता है । सूडस्थ और आलिक्रमस्थ प्रबन्धों की सम्मिलित संख्या बत्तीस है ।^५

१. अनियुक्तश्च नियुक्तः प्रबन्धो द्विविधो मतः ।

छन्दस्तालाद्यनियमादाद्यः स्यान्नियमात्परः ॥—सं० २०, प्रब०, पृ० १६६ ।

२. पुनः प्रबन्धास्त्रिविधाः सूडस्था आलिसंश्रयाः ।

विप्रकीर्णाश्च... .. ॥—उपरिवत्, पृ० १६६ ।

३. एलाकरणढेंकीभिर्वर्तन्या झोम्बडेन च ।

लम्भरासैकतालीभिरष्टाभिः सूड उच्यते ॥—सं० २०, प्र०, पृ० १६६ ।

सूड इति गीतविशेषसमूहवाची देशी शब्दः । अत्रोद्दिष्टानामेलादिशब्दानां मध्ये केषाञ्चिद्रूढतैव केषाञ्चिदन्वर्थत्वं चेत्यवगन्तव्यम् ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६७ ।

४. वर्णो वर्णस्वरो गद्यं कैवाडश्चाङ्कचारिणी ।

कन्दस्तुरगलीला च गजलीला द्विपद्यपि ॥

चक्रवालः कौञ्चपदः स्वरार्थो ध्वनिकुट्टनी ।

आर्या गाथा द्विपथकः कलहंसश्च तोटकम् ॥

घटो वृत्तं मातृका च ततो रागकदम्बकः ।

पञ्चतालेश्वरस्तालार्णवः ॥

—सं० २०, उपरिवत्, पृ० १६६—१६६ ।

५. इत्येषु कश्चन... .. ।

सूडक्रमस्थमध्ये चेदसावालिक्रमो भवेत् ॥—सं० २०, उपरिवत्, पृ० १६७ ।

विप्रकीर्ण प्रबन्धों के भेद :

विप्रकीर्ण प्रबन्ध अन्त हो सकते हैं । रत्नाकरकार ने यथानिर्दिष्ट छत्तीस प्रबन्ध गिनाये हैं—श्रीरंग, श्रीविलास, पंचभंगी, पंचानन, उमातिलक, त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी, वस्तु, विजय, त्रिपथ, चतुर्मुख, सिंहलील, हंसलील, दण्डक, झम्पट, कन्दुक, त्रिभंगी, हरविलास, सुदर्शन, स्वरांग, श्रीवर्द्धन, हर्षवर्द्धन, वन्दन, चच्चरी, चर्या, पद्धडी, राहडी, वीरश्री, मंगलाचार, धवल, मंगल, ओवी, लोली, ढोल्लरी और दन्ती ।^१

यद्यपि हमारे विचार की सीमा प्रबन्धों का विषय, भाषा और छन्द है, तथापि एक-आध प्रबन्ध का रूप इस अवसर पर समझ लेना अप्रासंगिक न रहेगा ।

एला-प्रबन्ध का सामान्य लक्षण :

एला-प्रबन्ध में पहले-पहल तीन 'पादों' का गान होता है,^२ पाँच 'पद' मिलकर एक- 'पाद' कहलाते हैं ।^३

पहले 'पाद' (अंघ्रि) में दो खण्ड होते हैं, जिन दोनों खण्डों में सानुप्रासता (दोनों खण्डों में अन्त्यानुप्रास) होती है, उन दोनों खण्डों में वाक्य-रचना विभिन्न होने पर भी स्वर-रचना सदृश होती है ।^४

इन दोनों खण्डों के पश्चात् 'प्रयोग' नामक अक्षरवर्जित 'गमकालप्ति' होती है ।^५ तत्पश्चात् 'पल्लव' नामक पदत्रिक होता है । इन तीनों पदों में दो विलम्बित लय में गाये

१. श्रीरङ्गः श्रीविलासः स्यात्पञ्चभङ्गिगतः परम् ।
पञ्चाननोमातिलकौ त्रिपदी च चतुष्पदी ॥
षट्पदी वस्तुसंज्ञश्च विजयस्त्रिपथस्तथा ।
चतुर्मुखः सिंहलीलो हंसलीलोऽथ दण्डकः ॥
झम्पटः कन्दुकः स्यात्त्रिभङ्गिर्हरविलासकः ।
सुदर्शनः स्वराङ्कः श्रीवर्द्धनो हर्षवर्द्धनः ॥
वन्दनं चच्चरी चर्या पद्धडी राहडी तथा ।
वीरश्रीर्मङ्गलाचारो धवलो मङ्गलस्तथा ॥
ओवी लोली ढोल्लरी च दन्ती षट्त्रिंशदित्यमी ॥

—सं० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १६७ ।

२. एलायाः प्रथमं तावत्पादत्रयं गेयम् ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६८ ।

३. पञ्चपदानि मिलित्वैकः पादः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६९ ।

४. अङ्गौ खण्डद्वयं सानुप्रासमेकेन धातुना ।

—सं० २०, उपरिवत्, अ० सं०, प्रब०, १६८ ।

५. ततः खण्डद्वयानन्तरं ... प्रयोगोऽक्षरवर्जिता गमकालप्तिः कार्य्या ।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६९ ।

जाते हैं और एक द्रुत लय में गीयमान होता है ।^१ इतना भाग एक 'पाद' कहलाता है । इस प्रकार के तीन भाग मिलकर 'उद्ग्राह' कहलाते हैं, इन तीनों भागों में संगीत-रचना सदृश, परन्तु वाक्य-रचना असदृश होती है । तीसरे पाद में सम्बोधनयुक्त एक पद होता है ।^२ इससे ध्वनित होता है कि प्रथम दो पादों में भी 'प्रयोग' के अन्तर्गत सम्बोधन-सहित एक-एक पद होता है, अन्यथा अर्थहीन होने के कारण प्रयोग को 'पद' ही नहीं कहा जा सकता ।^३ पहले दोनों 'प्रयोगों' से भिन्न संगीत-योजना तृतीय 'प्रयोग' में होनी चाहिए । तीसरे भाग में 'पल्लव' नामक 'पद' की स्थिति भी नहीं होती, अतः इसमें दो पद ही होते हैं ।^४

एला-प्रबन्ध को त्रिधातुक माननेवाले आचार्य इन बारह पदों को मिलाकर 'उद्ग्राह' कहते हैं तथा इस प्रबन्ध को चतुर्धातुक माननेवाले सोमेश्वर इत्यादि आचार्य ग्यारह 'पदों' को 'उद्ग्राह' कहकर बारहवें पद को 'मेलापक' कहते हैं ।^५

तत्पश्चात् 'स्तुत्य' व्यक्ति के नाम से युक्त तीन पदों का गान करना चाहिए, जिनमें प्रथम दो का गान मध्य लय एवं तृतीय का विलम्बित लय में होना चाहिए । प्रथम दो पदों की संगीत-रचना सदृश और तीसरे पद की संगीत-रचना भिन्न होनी चाहिए । ये तीनों पद मिलकर 'ध्रुव' कहलाते हैं ।^६

ध्रुव के पश्चात् वाग्गेयकार को अपने नाम से युक्त 'आभोग' का गान करना चाहिए । इन पूर्वोक्त सोलहों पदों का दो बार गान करके 'ध्रुव' के अन्तर्गत तेरहवें पद पर समाप्ति कर देनी चाहिए ।^७

१. तदनुपल्लवाख्यं पदत्रयम् ।

द्वे स्तो विलम्बिते तत्र तृतीयं द्रुतमानतः ॥—सं० २०, उपरिखत्, पृ० १६६ ।

२. एवं पादत्रयं गेयमुद्ग्राहे तुल्यधातुकम् ।

केवलं तु तृतीयेऽङ्गघ्नौ सम्बोधनपदान्वितः ॥—सं० २०, उपरिखत्, पृ० १६६ ।

३. 'एतेन प्रथमद्वितीयाङ्गघ्नगतप्रयोगद्वयस्य सम्बोधनार्थकपदयोगाभ्यनुज्ञा... विज्ञायते । अन्यथा ह्यक्षरवर्जितत्वात्प्रयोगाणामर्थवत्त्वाभावात्पदत्वं न सिद्ध्येत् ।'

—कल्लि०, उपरिखत्, पृ० १६६ ।

४. प्रयोगोऽन्यो विधातव्यो न पल्लवपदस्थितिः ।

—सं० रत्नाकर, उपरिखत्, पृ० २०० ।

५. एलाप्रबन्धस्य त्रिधातुकत्वमुपगच्छतामेतानि द्वादशपदान्युद्ग्राहो भवन्तीति मतम् । चतुर्धातुकमभ्युपगच्छन्तः सोमेश्वरादयस्त्वेकादशानामेवोद्ग्राहकत्वमुक्त्वा द्वादशपदं मेलापकमाहुः ।—कल्लि०, उपरिखत्, पृ० २०० ।

६. स्तुत्यनामाङ्गिकतो मध्यविलम्बितपदत्रयः ।

ध्रुवस्ततस्तत्र पूर्वमेकधातु पदद्वयम् ॥

भिन्नधातु तृतीयं स्यात् ।—सं० २०, उपरिखत्, पृ० २००—२०१ ।

७. आभोगस्तदनन्तरम् ।

गेयो वाग्गेयकारेण स्वाभिधानविभूषितम् ॥

पुनर्गोत्वा ध्रुवे त्यागो ग्रहस्तु विषमो भवेत् ।—उपरिखत्, पृ० २०२ ।

प्राचीन आचार्यों ने एला-सामान्य का यह लक्षण किया है । मण्ठ, द्वितीय कंकाल एवं प्रतिताल में इसकी योजना होती है ।^१

इस प्रबन्ध का विषय त्याग, सौभाग्य, शौर्य इत्यादि का वर्णन होता है । एला-प्रबन्धों के अनेक भेद हैं ।

अकार का देवता विष्णु, इकार का कामदेव और लकार की लक्ष्मी हैं । 'एला' अकार, इकार और लकार वर्णों का समुच्चय है ।

एला-प्रयोज्य सोलह पदों की संज्ञाएँ क्रमशः काम, मन्मथवत्, कान्त, जित, मत्त, विकारी, मान्धाता, सुमति, शोभी, सुशोभी, गीतक, उचित, विचित्र, वासव मृदु और सुचित्र हैं ।

* सोलह पदों के देवता क्रमशः पद्मालया, पत्त्रिणी, रंजनी, सुमुखी, शची, वरेण्या, वायुवेगा, वेदनी, मोहिनी, जया, गौरी, ब्राह्मी, मातंगी, चण्डिका, विजया और चामुण्डा हैं ।

इन सोलह पदों में दस प्राण समान, मधुर, सान्द्र, कान्त, दीप्त, समाहित, अग्राम्य, सुकुमार, प्रसन्न और ओजस्वी हैं ।^२

१. एलासामान्यलक्ष्मैतत्पूर्वाचार्यैरुदीरितम् ।

मण्ठद्वितीयकङ्कालप्रतितालेषु कश्चन ॥

तालोऽस्यां ।—उपरिवत्, पृ० २०० ।

२. ... अस्यां त्यागसौभाग्यशौर्यधैर्यादिवर्णनम् ।

एलानां बहवः सन्ति विशेषास्तेषु केचन ॥

व्युत्पत्तये निरूप्यन्ते मतङ्गादिमतोदिताः ।

अकारे दैवतं विष्णुरिकारे कुसुमायुधः ॥

लक्ष्मीर्लकार एलानामिति वर्णेषु देवताः ।

काममन्मथवत्कान्तजितमत्तविकारिणः ॥

मान्धातृसुमती शोभिसुशोभी गीतकोचितौ ।

विचित्रो वासवमृदुसुचित्रा इति षोडश ॥

नामान्येषां पदानां स्युः षोडशानामनुक्रमात् ।

पद्मालया पत्त्रिणी च रञ्जनी सुमुखी शची ॥

वरेण्या वायुवेगा च वेदनी मोहिनी जया ।

गौरी ब्राह्मी च मातङ्गी चण्डिका विजया तथा ॥

चामुण्डैलापदेवताः क्रमात्षोडश देवताः ।

समानो मधुरः सान्द्रः कान्तो दीप्तः समाहितः ॥

अग्राम्यः सुकुमारश्च प्रसन्नो जस्विनाविति ।

—सं० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०२-३ ।

प्रबन्ध के सोलह पदों में प्राणों की योजना :

समान : समान नामक प्राण में अक्षर और स्वर अल्प होते हैं । इस प्राण की योजना प्रथम एवं द्वितीय पाद के 'मन्मथवत्' और 'मान्धाता' नामक पदों में करना चाहिए ।^१

मधुर : यह प्राण स्वल्पनाद-मूर्च्छना से युक्त होता है । आदिम स्वर के पश्चात् आरोह-गति अथवा अवरोह-गति में स्वरों का स्पर्शमात्र करके अन्तिम स्वर पर रुकने से मूर्च्छना स्वल्पनाद हो जाती है । इस प्राण की योजना प्रथम एवं द्वितीय चरण 'कान्त' और 'सुमति' नामक पदों में करना चाहिए, जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं ।^२

सान्द्र : इस प्राण में स्वरों की अपेक्षा अक्षरों की संख्या अधिक होती है । तार स्थान तक इसकी गति होती है । प्रथम एवं द्वितीय पाद के पल्लवों में स्थित 'जित' और 'शोभि' पदों में इस प्राण की योजना होती है, जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं ।^३

कान्त : इस प्राण में स्वरों का रंजन अत्यधिक होता है । दोनों पादों के पल्लव के अन्तिम पद 'मत्त' और 'सुशोभि' कान्त नामक प्राण से युक्त होते हैं, जिनका गान द्रुत लय में होता है ।^४

दीप्त : तार स्थान के स्वरों का प्रयोग इस प्राण में होता है । तीनों पादों में द्विखण्डात्मक 'काम' 'विकारि' एवं 'गीत' नामक पदों में इसकी योजना होती है ।^५

१. समानोऽल्पाक्षरध्वानः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०४ ।

२. मधुरः स्वल्पनादया अल्पमूर्च्छनया युक्तः ।—सं० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०४ ।
मूर्च्छनाया अल्पत्वं... आदिमस्वरमुच्चार्यारोहेण वावरोहेण वा क्रमेण मध्य-
स्थितानां स्वराणां स्पर्शमात्रेणान्तिमस्वरोच्चारणे सति भवतीति मन्तव्यम् ।... अयं
प्राणः प्रथमद्वितीयाङ्गिगतयोर्विलम्बितमानयोः कान्तसुमतिसंज्ञयोः पल्लव-
पदेष्वदिमयोः पदयोर्गोर्जनीयः ।—कल्लि०, सं० २१०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०४ ।

३. सान्द्रस्तु निविडाक्षरः । अल्पध्वनिस्तारगतिः ।—उपरिवत्, पृ० २०४ ।
प्रथमद्वितीयाङ्गिगतयोर्विलम्बितमानयोः पल्लवमध्यस्थितयोजितशोभिसंज्ञयोः
पदयोः पूर्वपदापेक्षया किञ्चिदुच्चत्वेन सान्द्रप्राणाश्रयत्वं कर्तव्यम् ।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५ ।

४. कान्तः कान्तध्वनिर्मतः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०५ ।

अङ्गिद्वयपल्लवान्तिमयोर्द्रुतमानयोर्मत्तसुशोभिसंज्ञयोः पदयोः कान्तो नाम
प्राणो योजनीयः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५ ।

५. दीप्तस्तु दीप्तनादः स्यात् ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०५ ।

अयं प्राणोऽङ्गित्रयादिमेषु द्विखण्डात्प्रकेषु कामविकारिगीतसंज्ञकेषु पदेषु
योजनीयः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५ ।

समाहित : 'स्थायी वर्ण' (गानक्रियाविशेष) में स्थित होने के कारण यह 'समाहित' कहलाता है। 'उचित' नामक बारहवें पद में इसकी योजना होती है।^१

अग्राम्य : गीत के वाक्यावयवरूप पदों में जो अक्षर हों, उनमें पूर्व और अन्तिम दो या तीन अक्षरों का पश्चाद्वर्ती पदों से पूर्व चक्रवाल-रीति से उच्चारण और इसी प्रकार उन अक्षरों से सम्बद्ध स्वरों का उच्चारण 'अग्राम्य' नामक प्राण कहलाता है। इसकी योजना 'ध्रुव' के चित्र नामक प्रथम पद में होती है, जो मध्य लय में गाया जाता है।^२

सुकुमार : अक्षर एवं स्वरों की कोमलता इस प्राण का अभिव्यंजन करती है। 'ध्रुवा' खण्ड के 'वासव' नामक द्वितीय पद में इसकी योजना होती है, जो मध्य लय में गाया जाता है।^३

प्रसन्न : शब्द, स्थान, स्वर इत्यादि की स्पष्टता 'प्रसाद' है। प्रसादयुक्त प्राण प्रसन्न कहलाता है। इसकी योजना 'ध्रुव' के अन्तिम पद 'मृदु' में होती है, जो विलम्बित लय में गाया जाता है।^४

ओजस्वी : शब्दों में समास की अधिकता और तानों में गठाव का नाम 'ओज' है। ओजोयुक्त प्राण 'ओजस्वी' कहलाता है।^५ आभोग के पद सुचित्र में इस प्राण की योजना होती है।^६

एला-प्रबन्ध का यह सामान्य लक्षण है। एला के मुख्य भेद 'गणैला', 'वर्णैला', 'मात्रैला' और 'देशाख्यैला' हैं। अक्षरों से निर्मित गणों से युक्त 'गणैला', मात्रानिर्मित गणों से युक्त 'मात्रैला', वर्णों (ह्रस्व-दीर्घ-नियम से रहित अक्षरों से) युक्त 'वर्णैला' और कर्णाट, लाट, गौड, आन्ध्र एवं द्राविड भाषाओं से युक्त एलाएँ 'देशाख्या' कहलाती हैं।

१. स्थायिस्थस्तु समाहितः ।—सं० २०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०५।

पूर्वप्रयोगद्वयादन्यप्रयोगात्मके ह्युचितसंज्ञके द्वादशे पदे तत्र तत्रोचितान् स्थायिनः कृत्वा अक्षरवर्जितायां गमकालप्तौ कृतायां समाहिताख्यः प्राणस्तत्र योजितो भवति।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

२. अग्राम्योऽक्षरनादानामावृत्या समुदाहृतः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०५।

एवं द्विविधया आवृत्या निष्पन्नोऽग्राम्यो नाम प्राणो ध्रुवखण्डादिमे मध्यलययुक्ते चित्राख्ये पदे योजनीयः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

३. सुकुमारो वर्णनादमूर्च्छनाकोमलत्वतः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०५।

अयं वासवाख्ये मध्यलययुक्ते ध्रुवखण्डस्य द्वितीये पदे योजनीयः ।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

४. प्रसन्नः स्थापदस्थानस्वरादीनां प्रसादतः ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०५।

अयं प्राणो ध्रुवखण्डान्तिमे विलम्बितयुक्ते मृदुसंज्ञके पदे योजनीयः ।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०६।

५. ओजोबहुल ओजस्वी... ।—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २०६।

६. अयमाभोगात्मनि सुचित्रसंज्ञके षोडशे पदे योजनीयः ।—कल्लि० उपरिवत्, पृ० २०६।

एलां-सामान्य : एक दृष्टि में

धातु	पाद	पद	नाम	देवता	विशेषता	प्राण	प्राण का स्पष्टीकरण	लय
१	२	३	४	५	६	७	८	९
उद्ग्राह	प्रथम	१	काम	पद्मालया	दो खण्ड सानुप्रास तुल्य-धातुक, भिन्नमातुक प्रयोग, अक्षरवर्जित	दीप्त	दीप्तनाद	—
		२	मन्मथवत्	पत्निणी	गमकालप्ति सम्बोधन-पद	समान	अल्पाक्षर ध्वनि	—
		३	कान्त	रंजनी	पल्लव (प्रथम)	मधुर	स्वल्पनाद-मूर्च्छनायुक्त	विल०
		४	जित	सुमुखी	पल्लव (द्वितीय)	सान्द्र	निबिडाक्षर, अल्पध्वनि, तारगति	विल०
द्वितीय		५	मत	शची	पल्लव (तृतीय)	कान्त	कान्तध्वनि-निर्मित	द्रुत०
		६	विकारी	वरेण्या	दो खण्ड-सानुप्रास तुल्यधातु, भिन्नमातु	दीप्त	दीप्तनाद	
		७	मान्धाता	वायुवेगा	प्रयोग, दूसरे पद के समान	समान	अल्पाक्षरध्वनि	
		८	सुमति	वेदिनी	पल्लव (प्रथम)	मधुर	स्वल्पनाद मूर्च्छनायुक्त	विल०
		९	शोभि	मोहिनी	पल्लव (द्वितीय)	सान्द्र	निबिडाक्षर अल्पध्वनि, तारगति	विल०
		१०	सुशोभि	जया	पल्लव (तृतीय)	कान्त	कान्तध्वनि-निर्मित	द्रुत
तृतीय		११	गीतक	गौरी	खण्डद्वय, सानुप्रास तुल्यधातु, भिन्नमातु	दीप्त	दीप्तनाद	
		१२	अंचित (उचित)	ब्राह्मी	सम्बोधन-पदान्वित प्रयोग	समाहित	स्थायिस्थ	
ध्रुव		१३	विचित्र	मानंगी	तुल्यधातु, भिन्नमातु	अग्राम्य	अक्षरनादावृत्तियुक्त	मध्य०
		१४	वासव	चण्डिका	तुल्यधातु, भिन्नमातु	सुकुमार	वर्णनाद-मूर्च्छना-कोमलत्वयुक्त	मध्य०
		१५	मृदु	विजया	भिन्नधातु, भिन्नमातु	प्रसन्न	पदस्थान-स्वर, प्रसादयुक्त	विल०
आभोग		१६	सुचित्र	चामुण्डा	स्वाभिधानयुक्त	ओज	ओजोबहुल	

वर्णों अथवा मात्राओं के नियम का विनियोग प्रत्येक 'चरण' या 'पाद' के उन दोनों खण्डों के लिए है, जहाँ किसी पद में 'धातु' एवं 'मातु' के सम्बन्ध में निर्देश है। अन्य पदों में गण इत्यादि का नियम नहीं और वहाँ वाग्गेयकार को रचना की स्वतन्त्रता है।

एला-प्रबन्ध का यह रूप हमें बताता है कि प्रबन्धों के शिल्प में सार्थक, परन्तु तालहीन पद भी होते थे और सार्थक सताल पद भी। इनकी रचना में जहाँ काव्यशास्त्र की मर्मज्ञता आवश्यक थी, वहाँ संगीतशास्त्र की भी। गेय भाग छन्दोयुक्त हो सकते थे और अनिर्युक्त प्रबन्धों में भाषा का छन्दोहीन अथवा तालहीन रूप भी गेय होता था। यही नहीं, अर्थहीन 'पाटाक्षर' भी गेयत्व-संवलित होने पर षडंग प्रबन्धों का अनिवार्य अंग हो सकते थे।

प्रबन्ध के अर्थहीन अंगों का विचार प्रतिज्ञात सीमा-रेखा में नहीं है, परन्तु उसके सार्थक वाक्यों में काव्य की सभी विशेषताएँ यथास्थान आवश्यक होती हैं।

प्रबन्धों में गद्य :

अनेक प्रबन्धों में छन्द का बन्धन नहीं। यहाँतक कि गेय प्रबन्धों में एक प्रबन्ध का नाम ही 'गद्य' है। इसके निम्नांकित छह भेद हैं, जो कोष्ठक में स्पष्ट किये गये हैं :

गद्य-प्रबन्ध और उसकी विशेषताएँ^१

संज्ञा	रस	वर्ण	देवता	रीति	वृत्ति
१	२	३	४	५	६
१. उत्कलिका	वीर	रक्त	रुद्र	गौडी	आरभटी

१. गद्यं निगद्यते छन्दोहीनं पदकदम्बकम् ।
तत्षोढोत्कलिका चूर्णं ललितं वृत्तगन्धि च ॥
खण्डं चित्रं च तेषां च प्रभवः सामवेदतः ।
गातव्योत्कलिका वीरे रक्ता रुद्राधिदेवता ॥
गौडीयरीतिरुचितां वृत्तिमारभटीं श्रिता ।
चूर्णं शान्ते रसे पीतं गातव्यं ब्रह्मदैवतम् ॥
वैदर्भरीतिसम्पन्नं सात्त्वतीं वृत्तिमाश्रितम् ।
सितं मदनदैवत्यं शृङ्गाररसरञ्जितम् ॥
ललितं कैशिकीं वृत्तिपाञ्चालीं रीतिमाश्रितम् ।
वृत्तगन्धि रसे शान्ते पीतं च मुनिदैवतम् ॥
पाञ्चालरीतौ भारत्यां पद्यभागविमिश्रितम् ।
खण्डं गणेशदैवत्यं सात्त्वतीं वृत्तिमाश्रितम् ॥
श्वेतं हास्यकृतारम्भं वैदर्भीभङ्गिसम्भवम् ।
शृङ्गारे वैष्णवं चित्रं चित्रकैशिकवृत्तिजम् ॥
वैदर्भ्या रचितं रीत्या नानारीतिविचित्रया ।

संज्ञा	रस	वर्ण	देवता	रीति	वृत्ति
१	२	३	४	५	६
२. चूर्ण	शान्त	पीत	ब्रह्मा	वैदर्भी	सात्त्वती
३. ललित	शृंगार	सित	मदन	पांचाली	कैशिकी
४. वृत्तगन्धि	शान्त	पीत	मुनि	पांचाली	भारती (पद्यभाग- मिश्रित)
५. खण्ड	हास्य	श्वेत	गणेश	वैदर्भी	सात्त्वती
६. चित्र	शृंगार	श्वेत	विष्णु	वैदर्भी	चित्रकैशिकी

एक विशिष्ट सम्प्रदाय में गद्य के दो और भेद 'वेणी' तथा 'मिश्र' होते हैं। छहों प्रकार के गद्य से मिश्रित 'वेणी' तथा 'चूर्णक' एवं 'वृत्तगन्धि' भेदों से मिश्रित गद्य-प्रबन्ध 'मिश्र' कहलाता है।^१

गद्य की छह गतियाँ निम्नांकित हैं^२ :

१. द्रुता : लघु अक्षरों के बहुल प्रयोग से द्रुता गति होती है।
२. विलम्बिता : लघु अक्षरों के अत्यल्प प्रयोग से विलम्बिता गति होती है।
३. मध्या : लघु और गुरु अक्षरों के समान प्रयोग से 'मध्या' गति होती है।
४. द्रुतविलम्बिता : प्रथम अर्द्ध भाग में लघु और अन्तिम अर्द्ध भाग में गुरु अक्षरों का प्रयोग द्रुतविलम्बिता गति को जन्म देता है।
५. द्रुतमध्या : पूर्वार्द्ध में लघु-गुरु अक्षरों का समसंख्य प्रयोग द्रुतमध्या का जनक है।
६. मध्यविलम्बिता : प्रथमार्द्ध में लघुओं तथा उत्तरार्द्ध में गुरुओं का प्रयोग मध्यविलम्बिता का जनक है।

गद्य-प्रबन्ध के छत्तीस भेद :

पूर्वोक्त छह गद्य-प्रबन्धों में इन छह गतियों का योग प्रत्येक के साथ करने से गद्य-प्रबन्धों के छत्तीस प्रकार हो जाते हैं।^३

१. वेणी मिश्रमिति प्राहुरन्ये भेदद्वयं परम्।
वेणी सर्वैः कृता मिश्रं चूर्णकैर्वृत्तगन्धिभिः ॥—उपरिबत्, पृ० २५१।
२. द्रुता विलम्बिता मध्या द्रुतमध्या तथा परा।
गतिद्रुतविलम्बा स्यात्षष्ठी मध्यविलम्बिता।
इति गद्यस्य षट् प्रोक्ता गतयः पूर्वसूरिभिः ॥
लघुभिर्बहुलैरल्पैः समैराद्यत्रयं क्रमात्।
पृथग्लगत्वे मिश्रैस्तु लगैस्तद्वत्परं त्रयम् ॥—सं० २०, प्रब०, पृ० २५१।
३. प्रत्येकं गतिषट्केन षट्त्रिंशद्गद्यजा भिदाः।—उपरिबत्, पृ० २५२।

गद्य-प्रबन्ध का प्रयोग :

गद्य-प्रबन्ध में उद्ग्राह, ध्रुव और आभोग तीन भाग होते हैं। 'उद्ग्राह' नामक धातु ताल-रहित होता है, 'ध्रुव' नामक धातु सताल होता है, जिसके दो पदों को दो-दो बार गाया जाता है और 'आभोग' नामक अन्तिम धातु 'सताल' होता है, जिसके आरम्भ में अक्षर-हीन गमकों की 'प्रयोग' नामक आलप्ति होती है।

'उद्ग्राह' का आरम्भ 'ओंकार' से होता है, जिसमें समस्त गमकों तथा गान-क्रियाओं का प्रयोग विहित है, ताल-रहित शब्दों के अवसान पर स्वरों का प्रयोग होता है।

ध्रुव नामक धातु में प्रबन्ध का नाम तथा दो 'पद' होते हैं, जिनमें प्रत्येक दो बार गाया जाता है, इन दोनों पदों में से किसी एक में प्रयोज्य प्रबन्ध का नाम रखा जाता है। इस ताल-सहित धातु का गान विलम्बित लय में किया जाता है।

आभोग धातु भी सताल होता है, इसमें गायक और वर्णनीय व्यक्ति के नाम का गान होता है। इस धातु के आरम्भ में गमकालप्ति का प्रयोग जिस ताल में होता है, उससे भिन्न ताल में गायक एवं वर्ण्य का प्रयोग होता है।

इस समस्त प्रबन्ध का द्रुत लय में एक बार पुनः गान करके विलम्बित लय में प्रयुज्यमान पदों के गान के पश्चात् समाप्ति होती है।^१ 'मुक्तावली' जैसे प्रबन्ध छन्दोहीन ही होते हैं।

गद्य अथवा पद्य के विकल्प से युक्त प्रबन्ध :

तुरंगलीला, चक्रवाल, कौंचपद, मातृका, तालार्णव इत्यादि प्रबन्ध गद्यज भी होते हैं और पद्यज भी।

गद्य-पद्य-मिश्र :

'निःसार' नामक प्रबन्ध में गद्य-पद्य का मिश्रण होता है।

विभिन्न छन्दोयुक्त प्रबन्ध :

नन्द्यावर्त्त प्रबन्ध में चार 'वृत्तों' का एकत्र प्रयोग विहित है।

छन्दोविशेषयुक्त प्रबन्ध :

आर्या, तोटक, कलहंस इत्यादि प्रबन्धों के नाम अपने छन्द के कारण ही पड़े हैं। इन प्रबन्धों का सम्पूर्ण भाग ही छन्दोविशेषमय होता है।

१. प्रणवाद्यमतालं च गमकैरखिलैर्युतम् ।

वर्णैश्चातालशब्दानां स्वरैरन्तेऽन्तरान्तरा ।

प्रबन्धाङ्कं सतालं च पदद्वन्द्वं पृथक्ततः ॥

द्विर्गोत्वा गीयते यत्र प्रयोगोऽपि विलम्बितः ।

गातनाम सतालं च सतालं वर्ण्यनाम च ॥

विलम्बितेन मानेन पुनरप्यविलम्बितम् ।

गीत्वा विलम्बितालेन न्यासो गद्यं तदिष्यते ॥—सं० २०, प्रब०, पृ० २५३ ।

प्रबन्ध-प्रयोज्य भाषाएँ :

देशाख्य एला-प्रबन्धों की चर्चा पहले आ चुकी है, भाषा-भेद के कारण ही जिनके पाँच भेद होते हैं। कन्द^१, त्रिपदी^२, षट्पदी^३, प्रबन्धों में कर्णाटि-भाषा का प्रयोग विहित है। आर्या-प्रबन्ध में यदि प्राकृत-भाषा का प्रयोग किया जाय, तो उसकी संज्ञा 'गाथा' हो जाती है।^४ 'ओवी'-प्रबन्ध भी देशभाषा में गाया जाता है,^५ महाराष्ट्र में 'ओवी' आज भी गाया जाता है, जिसे अज्ञान के कारण आज शास्त्रीयता की परिधि से बाहर निकाल दिया गया है।

'द्विपथ' अथवा 'दोधक' प्रबन्ध की संज्ञा ही आज से सात-आठ सौ वर्ष पूर्व लोकभाषा में 'दोहा' हो गई थी।^६ इसी प्रकार, चच्चरी प्रबन्ध की संज्ञा का अपभ्रंश है। 'दोहा' और 'चाचर' जैसे प्रबन्धों में संस्कृत-भाषा का प्रयोग अविहित है।

यमक-प्रयोग-युक्त प्रबन्ध :

'चतुष्पदी' जैसे प्रबन्धों में भिन्नार्थ-यमक का प्रयोग अनिवार्य है।^७

अन्त्यानुप्रास-युक्त :

'एला'-प्रबन्ध के तीनों पादों के प्रथम पद में स्थित दोनों खण्डों को [सानुप्रास (अन्त्यानुप्रास-युक्त) बताया जा चुका है। 'पद्धड़ी' जैसे प्रबन्धों के समस्त पदों में भी पादान्त्यानुप्रास की सत्ता अनिवार्य है।^८ 'चच्चरी' के सोलह पदों में दो-दो पदों की तुक मिलनी चाहिए।^९ 'ओवी' के तीन चरणों की 'तुक' एक होती है।^{१०}

सालगसूड-प्रबन्ध और उनके भेद :

'सूड' देशज शब्द है और 'सालग' संस्कृत-शब्द 'छायालग' का अपभ्रंश है।^{११} 'एला' इत्यादि प्रबन्ध 'मार्ग', 'गीतकों' और 'गीतों' की सदृशता के कारण औपचारिक रूप में 'शुद्ध'

१. कर्णाटिपदैः... कन्दः स्यात्... ।—उपरिखत्, सं० २०, प्रब०, पृ० २०५ ।
२. स्यात् त्रिपदी तालहीना कर्णाटिभाषया... ।—उपरिखत्, पृ० २६१ ।
३. षट्पदी मता, कर्णाटिभाषया... ।—उपरिखत्, पृ० २६३ ।
४. आर्यैव प्राकृते गेया... गाथेति... ।—उपरिखत्, पृ० २७२ ।
५. गीयते देशभाषया, ओवीपदं... ।—उपरिखत्, पृ० ३०६ ।
६. असौ द्विपथकः प्राकृते 'दोहा' इत्युच्यते ।—सिंह० उपरिखत्, पृ० २७५ ।
७. यस्यां भिन्नार्थयमकावद्धौ सा च चतुष्पदी ।—उपरिखत्, पृ० २६२ ।
८. चरणान्तसमप्रासा पद्धडीच्छन्दसा युता ।—उपरिखत्, पृ० ३०४ ।
९. यस्यां षोडशमात्राः स्युद्धौ द्वौ च प्राससंयुता ।
सा वसन्तोत्सवे गेया चच्चरी प्राकृतैः पदैः ॥—उपरिखत्, पृ० ३०२ ।
१०. खण्डत्रयं प्रासयुतं गीयते देशभाषया ।
ओवीपदं तदन्ते चेदोवी तज्ज्ञस्तदोदिता ॥—उपरिखत्, पृ० ३०६ ।
११. सालग इतिच्छायालगशब्दस्यापभ्रंशोऽपि लोकप्रसिद्धया प्रयुक्त इति वेदितव्यः ।
—कल्लि०, प्रब०, पृ० ३१० ।

कहलाते और 'शुद्ध सूड' प्रबन्धों में परिगणित होते हैं, परन्तु 'ध्रुव' इत्यादि प्रबन्धों में मार्ग-संगीत के नियमों का अतिलंघन होता है, अतः इनको 'सालगसूड' कहा जाता है ।^१

सालगसूड प्रबन्धों के सात भेद :

ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, निःसारुक, अड्डताल, रास और एकताली ये सात सालगसूड प्रबन्ध हैं ।^२

ध्रुव : ध्रुव-प्रबन्ध में, उद्ग्राह धातु की रचना में दो खण्ड होते हैं । इन दोनों की गेयता सदृश होती है और वाक्य-रचना भिन्न । तत्पश्चात् 'अन्तर' नामक धातु का निर्माण एक खण्ड से होता है, जो उद्ग्राह की अपेक्षा उच्च स्वरों में गाया जाता है । 'उद्ग्राह' और 'अन्तर' को दो बार गाने के पश्चात् 'आभोग' नामक धातु का गान होता है, जिसमें दो खण्ड होते हैं । इन दोनों खण्डों में से प्रथम खण्ड दो अवान्तर खण्डों में विभक्त है, जिनकी गेयता समान होती है । दूसरा खण्ड प्रथम खण्ड की अपेक्षा उच्चतर स्वरों में गाया जाता है । आभोग में स्तुत्य (नायक) का नाम रहता है । इतना गाने के पश्चात् उद्ग्राह का प्रथम खण्ड गाकर समाप्ति की जाती है ।^३

ध्रुव-प्रबन्ध के सोलह भेद होते हैं । ग्यारह अक्षरों के खण्ड से छब्बीस अक्षरों के खण्डवाले ध्रुव-प्रबन्धों का प्रयोग शास्त्रविहित है ।

१. एलादिः शुद्ध इत्युक्तो ध्रुवादिः सालगो मतः ।

छायालगत्वमेलादेर्यद्यप्याचार्यसम्मतम् ॥

लोके तथापि शुद्धोऽसौ शुद्धसादृश्यतो मतः ।

जात्याद्यन्तरभाषान्तं शुद्धं प्रकरणान्वितम् ॥—सं० २०, उपरिवत्, पृ० २१० ।

अतः शुद्धत्वमौपचारिकमेलादेः ।

ध्रुवादेस्तु नियमातिलङ्घनात्सर्वथा सालगत्वमिति भावः ।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० ३१० ।

२. आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठप्रतिमण्ठनिसारुकाः ।

अड्डतालस्ततो रास एकतालीत्यसौ मतः ॥—सं० २०, उपरिवत्, पृ० ३११ ।

३. एकधातुर्द्विखण्डः स्याद्यत्रोद्ग्राहस्ततः परम् ।

किञ्चिदुच्चं भवेत्खण्डं द्विरस्यस्तमिदं त्रयम् ॥

ततो द्विखण्ड आभोगस्तस्य स्यात्खण्डमादिमम् ।

एकधातु द्विखण्डं च खण्डमुच्चतरं परम् ॥

स्तुत्यनामाङ्कितश्चासौ क्वचिदुच्चैकखण्डकः ।

उद्ग्राहस्याद्यखण्डे च त्यासः सध्रुवको भवेत् ॥

—सं० २०, प्रब०, पृ० ३१३ ।

ध्रुव-प्रबन्धों के सोलह भेद^१

नाम	अक्षर-संख्या	ताल ^१	रस	फल
१. जयन्त	११	आदि- ताल	शृंगार	नायक, श्रोता और गायक की आयु और श्री का वर्द्धन
२. शेखर	१२	निःसार	वीर	ऋद्धि और सौभाग्य का दान
३. उत्साह	१३	प्रति- मण्ड	हास्य	वंशवृद्धि
४. मधुर	१४	हय- लीला	करुण	भोग
५. निर्मल	१५	क्रीडा	शृंगार	प्रभाववर्द्धन
६. कुन्तल	१६	लघु- शेखर	अद्भुत	अभीष्ट-सिद्धि

१. आदितालेन शृङ्गारे जयन्तो गीयते बुधैः ।
 स नेतृश्रोतृगातृणामायुः श्रीवर्द्धनो मतः ॥
 ऋद्धिसौभाग्यदो वीरे निःसारौ शेखरो भवेत् ।
 प्रतिमण्डेन हास्ये स्यादुत्साहो वंशवृद्धिकृत् ॥
 मधुरो भोगदो गेयः करुणे हयलीलया ।
 क्रीडातालेन शृङ्गारे निर्मलस्तनुते प्रभाम् ॥
 लघुशेखरतालेन कुन्तलोऽभीष्टदोऽद्भुते ।
 कामलो विप्रलम्भे स्याज्जन्मपातालेन सिद्धिदः ॥
 हर्षोत्कर्षप्रदश्चारो वीरे निःसारतालतः ।
 नन्दनो वीरशृङ्गार एकताल्येष्टसिद्धिदः ॥
 वीरे हास्ये च शृङ्गारे प्रतिमण्डेन गीयते ।
 अभीष्टफलदः श्रोतृगातृणां चन्द्रशेखरः ॥
 प्रतिमण्डेन शृङ्गारे कामोदोऽभीष्टकामदः ।
 हास्ये द्वितीयतालेन विजयो नेतुरायुषे ॥
 हास्यशृङ्गारकरुणेष्वदितालेन गीयते ।
 कन्दर्पो भोगदो नृणां श्रीसदाशिवसम्मतः ।
 क्रीडातालेन शृङ्गारे वीरे च जयमङ्गलः ॥
 जयोत्साहप्रदः पुंसां ध्रुवकस्तिलकाभिधः ।
 रसे वीरे च शृङ्गारे एकताल्या प्रगीयते ॥

नाम	अक्षर-संख्या	ताल	रस	फल
७. कामल	१७	झम्पा	विप्रलम्भ	सिद्धिदायित्व
८. चार	१८	निःसार	वीर	हर्षोत्कर्ष-प्रदान
९. नन्दन	१९	एकताली	वीर, शृंगार	इष्टसिद्धि
१०. चन्द्रशेखर	२०	प्रतिमण्ड	वीर, हास्य, शृंगार	अभीष्ट-फलप्राप्ति
११. कामोद	२१	प्रतिमण्ड	शृंगार	„
१२. विजय	२२	द्वितीय	हास्य	नायक की दीर्घायु
१३. कन्दर्प	२३	आदि	हास्य, शृंगार, करुण	भोग-प्राप्ति
१४. जयमंगल	२४	क्रीडा	शृंगार, वीर	जय, उत्साह
१५. तिलक	२५	एकताली	„	„
१६. ललित	२६	प्रतिमण्ड	शृंगार	सर्वसिद्धि

ध्रुव नामक प्रबन्ध के सभी खण्डों की रचना यथाबोधित अक्षर-संख्या के अनुसार की जा सकती है और यह भी हो सकता है कि अक्षर-संख्या के नियम का पालन केवल प्रथम दो खण्डों में किया जाय तथा अवशिष्ट खण्डों में अक्षर-संख्या यथारुचि रखी जाय । मुनिसत्तम (भरत) के कथनानुसार इन ध्रुव-प्रबन्धों का गान समस्त यज्ञों के फल का देनेवाला है ।^३

पन्द्रहवीं शती ई० में 'ध्रुव' के जयन्त आदि सोलह भेदों में अक्षर-संख्या के नियम का उल्लंघन होने लगा था । कल्लिनाथ ने यह कहकर इस दोष का परिहार किया है कि 'अक्षर' शब्द से 'पद' (शब्द) का भी ग्रहण हो जाता है । 'अक्षरार्थ' और 'पदार्थ' शब्द समानार्थवाची हैं । अतः, जहाँ अक्षर-नियम न दिखाई दे, 'पदों' की संख्या देखनी चाहिए । जहाँ इस दृष्टि से भी नियम-राहित्य दिखाई दे, वहाँ समझना चाहिए कि ऐसे प्रबन्धों के गान से अदृष्टफल की प्राप्ति नहीं होगी, परन्तु जनरंजन इत्यादि दृष्टफल की

१. स्याद्वर्णनियमः सर्वखण्डः खण्डद्वये तथा ।

यथोक्तान्यो जयन्तादीनामेन्निपुणया धिया ॥

सर्वऋतुफलं तस्येत्यवोचन्मुनिसत्तमः ।

—सं० २०, प्रब०, पृ० ३१५ ।

प्राप्ति तो होगी ही । उद्ग्राह आदि अवयवों में अक्षरनियम-रहितता होने पर भी रस-तालयुक्तता के कारण 'ध्रुव' शब्द का व्यवहार तो होगा ही, भले ही उन्हें पूर्वोक्त संज्ञाओं में से कोई विशेष संज्ञा न दी जा सके ।^१

ध्रुवपद

एला इत्यादि शुद्ध सूड-प्रबन्धों के 'ध्रुव' नामक धातु में नियोजित पद तो 'ध्रुवपद' कहलाते ही थे, परन्तु 'ध्रुव-प्रबन्ध' में नियोजित पद भी 'ध्रुवपद' कहलाते थे । वहाँ 'पद' का खण्ड 'पक्ति' समझना चाहिए । 'ध्रुवपदों' में 'पद्यत्व' अनिवार्य नहीं था ।

१. ननु जयन्तादिषु षोडशसु ध्रुवेषु योऽक्षरसङ्ख्यानियम उक्तः, स वर्तमानेषु केषुचिद्ध्रुवेषु न वृक्ष्यते । तत्कथं तेषां लक्षणहीनत्वेऽपि लोके परिग्रह इति चेत्, सत्यमेतत् । अत्राक्षरशब्देन पदान्यप्युच्यन्ते । यथायमक्षरार्थ इति पदार्थो वर्ण्यते । तेन क्वचित्पदानां वा सङ्ख्यानियमो द्रष्टव्यः यत्र सोऽपि नास्ति तत्राक्षरादेः सङ्ख्यानियमाभावान्नियमोक्तादृष्टफलस्याभाव एव, न तु दृष्टफलस्य जनरञ्जनादेरपि । तेन तेषां लोकपरिग्रहोऽप्युपपन्न एव । अनियताक्षररसतालयुक्तस्योद्ग्राहाद्यवयवसन्निवेशस्याविशिष्टत्वेन तेषामपि लक्षण-त्वाद्ध्रुवव्यवहारो न हीयत एव ।

द्वितीय अध्याय

संगीत की अनादि परम्परा का उच्छेद और उसके कारण

दशम शती ई० के अन्त में वितस्ता नदी के तट पर स्थित प्रवरपुर के एक मठ में महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त ने 'नाट्यशास्त्र' पर 'अभिनवभारती' की रचना की। इस टीका का अध्ययन यह बताता है कि आचार्य अभिनवगुप्त के समय नाट्यशास्त्र की परम्परा कश्मीर में भली भाँति प्रचलित थी। महामाहेश्वर आचार्य अभिनव स्वयं एक महान् वैणिक थे।^१

इस युग में भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण आरम्भ हुए। उसका प्रथम अभियान सन् १००० ई० में हुआ और अन्तिम अभियान सन् १०२६ ई० में। इन सत्रह अभियानों में महमूद ने वाहिद-नरेश जयपाल को पेशावर में पराजित किया, पंजाब के शासक आनन्दपाल को रौंदा, मुलतान के शासक अबुलफतह दाऊद का मान-मर्दन किया, नगरकोट जीता, नारदीन अथवा नन्दनाथ के शासक भीमपाल को आक्रान्त किया, कश्मीर को लूटा, थानेश्वर को जीतकर नरमेध किया, कन्नौज को पददलित किया, मथुरा और वृन्दावन में विनाश-लीला की, चन्देल-शासक राज्यपाल को वशवर्त्ती बनाया, ग्वालियर जीता, सोमनाथ पर आक्रमण किया और नमक के पहाड़ पर बसे हुए जाटों पर आक्रमण किया।

भारत पर महमूद के आक्रमणों का वर्णन करते हुए उसके आश्रित इतिहासकार अलबेरुनी ने लिखा है कि महमूद ने इस देश की समृद्धि को पूर्णतया समाप्त कर दिया तथा ऐसा आश्चर्यजनक उत्पीड़न किया कि जिससे हिन्दू-जाति चतुर्दिक् बिखरे हुए धूलिकणों के समान हो गई और किंवदन्तियों का विषयमात्र रह गई। इस जाति के अवशिष्ट अंश अपने मन में मुसलमान-मात्र के प्रति घोर घृणा की भावनाओं का पोषण करने लगे हैं। यही कारण है कि भारतीय विद्याएँ उन स्थानों से बहुत दूर हट गई हैं, जिनको हमने जीत लिया है और ऐसे स्थानों में पलायन कर गई है, जहाँतक अभी हमारे हाथ नहीं पहुँचे हैं।^२

संस्कृत की एक उक्ति है कि जब राष्ट्र शास्त्र के द्वारा रक्षित होता है, तभी शास्त्र-चिन्तन होता है, अतः विद्वान् लोग अपने अमूल्य ग्रन्थों को लेकर सुरक्षित प्रदेशों में चले गये। संगीत को आश्रय देनेवाले राजा थे, अथवा मन्दिरों में संगीतज्ञों को आश्रय मिलता था। राजाओं की पराजय और मन्दिरों के ध्वंस ने कलाकारों को भी निराश्रय बनाकर इधर-उधर पलायन के लिए विवश कर दिया।

१. भरत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० २६८।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० १०२।

महमूद गजनवी ने आनेवाली पीढ़ियों को लूट-मार का मार्ग दिखा दिया था। हिन्दुस्तान का पर्याप्त भाग गजनी-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था, पेशावर मुलतान, भटिण्डा, काँगड़ा इत्यादि इसके अभिन्न अंग बन गये थे।

महमूद की मृत्यु सन् १०३० ई० के ३० अप्रैल को हुई। महमूद के भाई मसऊद खिलजी ने महमूद के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद को हटाकर सन् १०३१ ई० में सिंहासन पर अधिकार किया।

दक्षिण में अभी तक मुसलमानों की शनिदृष्टि नहीं पड़ी थी। प्रसिद्ध कवि बिल्हण के आश्रयदाता परमर्दी सोमेश्वर (शा० का० सन् १०७६—११२६ ई०), इनके पुत्र और कुण्डलीनृत्त के आविष्कारक सोमेश्वर (रा० का० सन् ११२७—११३४ ई०) तथा इनके पुत्र जगदेकमल्ल सगीत के साधक, विद्वान् और ग्रन्थकार थे। उत्तर से दूर होने के कारण इनपर मुसलमानों के आक्रमण का कोई साक्षात् प्रभाव नहीं पड़ा।

महाराज सोमेश्वर ने 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' की रचना की, जिसे विश्वकोश समझा जाना चाहिए। इस ग्रन्थ के चौथे प्रकरण में सगीतविषयक एक सहस्र एक सौ सोलह श्लोक हैं। छियानव्वे देशी रागों का इनके द्वारा किया हुआ वर्णन साक्षी है कि दक्षिण में इनकी राजधानी 'कल्याण' में सगीत की प्राचीन परम्परा प्रचार में थी। महाराज जगदेकमल्ल का ग्रन्थ 'संगीतचूडामणि' में रागजननी जातियों के ध्यान भी हैं और वर्णन का विषय प्रबन्ध, ताल, राग, वाद्य एवं नृत्य है।

सौराष्ट्र-नरेश महाराज हरिपाल भी चालुक्यवंशीय क्षत्रिय थे। इनकी राजधानी अभिनवपुर (वर्तमान नवानगर) थी। ये महाराज भीमदेव के पुत्र थे। 'संगीतसुधाकर' इनकी प्रौढ़ रचना है, जो बताती है कि सौराष्ट्र में उस समय प्राचीन सम्प्रदाय प्रचलित था।

सम्राट् अजयपाल और भीमपाल के वेत्राधिपति सोमराजदेव ने सन् ११८० ई० के लगभग अपने ग्रन्थ 'संगीतरत्नावली' की रचना की, जिसमें स्वर, ग्राह, प्रबन्ध, राग, ताल और वाद्य का विवेचन है। ये सभी ग्रन्थ समस्त भारत में प्रचलित एक ही परम्परा के प्रभाव हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं शती ई० में विरचित इन सभी ग्रन्थों का आधार 'नाट्यशास्त्र' है।

मुहम्मद गोरी ने गजनी के साम्राज्य पर सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया। सन् ११८१ ई० में वह लाहौर पर चढ़ आया और उसने गजनवी-वंश के खुसरो मल्लिक को धर दबाया। खुसरो मल्लिक सन्धि करने के लिए विवश हुआ और उसे जमानत के रूप में अपना चतुर्वर्षीय पुत्र मुहम्मद गोरी के पास रखना पड़ा। सन् ११८६ ई० में उसने लाहौर पर पुनः आक्रमण किया। झूठे वचन और आश्वासन देकर खुसरो मल्लिक को बाहर बुलाया गया और बन्दी बनाकर गजनी भेज दिया गया।

इसी आक्रमण के समय प्रसिद्ध सूफी ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी भी मुहम्मद गोरी की सेनाओं के साथ लाहौर आये। इनका जन्म ईरान में और पालन-पोषण खुरसान में हुआ था। इन्हें हारून, बगदाद, हमदाद, इस्फहान, तबरेज, खरकान, अस्तराबाद, हिरात,

बलख और गजनी के ऐसे अनेक सूफियो का सहयोग और आशीर्वाद प्राप्त था, जिनकी प्रसिद्धि भारतीय मुसलमानों में भली भाँति हो चुकी थी। सभी मुस्लिमों की श्रद्धा शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को प्राप्त था और इनके चमत्कारों की अनेक कहानियाँ जनता में प्रचलित हो रही थी।

लाहौर से शेख मुईनुद्दीन चिश्ती दिल्ली आये और वहाँ से अजमेर। पृथ्वीराज इनकी ओर से सशक था। उसने इनसे अजमेर छोड़कर कहीं बाहर जाने के लिए कहलवाया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं पृथ्वीराज के हाथ बाँधकर उसे किसी अन्य बादशाह के हाथ में दे दूँगा।^१

सन् ११६१ ई० में थानेश्वर से १४ मील दूर तराइन के मैदान में मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज ने मुठभेड़ हुई, जिसमें मुहम्मद गोरी की घोर पराजय हुई और वह भागकर गजनी पहुँचा।

सन् ११६२ ई० में मुहम्मद गोरी ने पुनः आक्रमण किया। युद्ध हुआ, पृथ्वीराज की पराजय हुई और उन्होंने युद्ध में वीरगति प्राप्त की। मुहम्मद गोरी ने सिरसुती, सामाना, कुहराम तथा हाँसी पर सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया। अजमेर पहुँचकर लूट-मार, नरमेध, मन्दिर-ध्वंस इत्यादि कृत्य किये। मस्जिदें बनवाई गईं; मकतबों (पाठशालाओं) की स्थापना हुई, अजमेर का शासन पृथ्वीराज के एक पुत्र को सौंप दिया गया, जिसने नियमित रूप से कर देने का वचन दिया।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती का वचन सत्य हुआ, वे उस समय अजमेर में ही विराजमान थे।

अपने भारतीय प्रदेशों का शासन अपने विश्वस्त नायक कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंपकर मुहम्मद गोरी गजनी लौट गया।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को कुतुबुद्दीन ऐबक ने जागीर में गाँव दिये। कहा जाता है कि शेख मुईनुद्दीन चिश्ती ने अपने जीवनकाल में एक करोड़ हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। वे गान-सभाओं का आयोजन करते थे, जिनमें उनके विचारों को प्रचारित करने-वाली कव्वालियाँ भारतीय भाषा में गाई जाती थी। मुहम्मद गोरी की विजय की अपेक्षा शेख निजामुद्दीन चिश्ती की धार्मिक विजय का महत्त्व अधिक और गम्भीर था। इन्होंने अजमेर के एक शिष्या मुसलमान सैयद हुसेन मशहूदी की कन्या से विवाह कर लिया था।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने थोड़े ही समय में मेरठ, कोल (अलीगढ़ के समीप एक स्थान) तथा दिल्ली को जीतकर दिल्ली को राजधानी बनाया।

सन् ११९३ ई० में मुहम्मद गोरी गजनी से चला। भारत पहुँचते ही वह कन्नौज और बनारस की ओर बढ़ा और उसने सन् ११९४ ई० में जयचन्द को परास्त किया, जयचन्द मारा गया।

१. चेहलरोजः, पृ० ६००-१०००।

सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाला के राजा भीमदेव को परास्त किया। सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रसिद्ध सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बिहार पर अधिकार करके अपने स्वामी के दर्शन किये। प्रायः सन् ११९९ ई० में बगाल पर अधिकार कर लिया गया, नदिया नगर नष्ट कर दिया गया और गौड़ को इस प्रदेश की राजधानी बनाया गया। सन् १२०२ ई० में कालिंजर भी कुतुबुद्दीन ऐबक के अधिकार में आ गया।

सन् १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी का देहान्त हो गया और कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट् हुआ। महोबा और बदायूँ भी दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिये गये।

सन् १२०१ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक का देहान्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् राज्य चार भागों में बँट गया, परन्तु सन् १२१० ई० में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था, उसने शीघ्र ही विभक्त राज्य को पराक्रम के बल पर एक कर लिया। बगाल, बिहार, जाजिनगर, कामरूप, निरहुत, गौड़प्रदेश, रणथम्भौर, मण्डोर इत्यादि पर दिल्ली-साम्राज्य का पुन अधिकार हो गया। बगदाद के खलीफा ने शम्सुद्दीन अलतमश के राज्याधिकार को प्रमाणित किया। सन् १२३५ ई० में मुलतान शम्सुद्दीन अलतमश की मृत्यु हुई।

शम्सुद्दीन अलतमश शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के खलीफा (शिष्य, उत्तराधिकारी) ख्वाजा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का बड़ा प्रभाव था। इन्हीं की स्मृति में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया, जिसे शम्सुद्दीन अलतमश ने पूरा किया।^१ शम्सुद्दीन अलतमश के प्रतिनिधि अजमेर के शासक ने जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की वह जागीर जन्त कर ली, जो उन्हें कुतुबुद्दीन ऐबक से मिली थी, तब वे इस जागीर को छुड़ाने के लिए दिल्ली आये और अपने खलीफा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के पास ठहरे। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने जब शम्सुद्दीन अलतमश के पास जाकर सारा हाल कहा, तब शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को उनकी जागीर वापस मिली।^२

ये घटनाएँ इन सूफी महापुरुषों के प्रभाव और दरबार के साथ इनके सम्बन्धों का परिचय देती हैं। सगीत के विद्यार्थी के लिए इन घटनाओं का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि चिश्ती फकीरों की इसी परम्परा के कारण भारतीय सगीत में महान् परिवर्तन हुआ। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का स्वर्गवास कव्वाली सुनते-सुनते ही हुआ।

मुलतान के प्रसिद्ध सूफी शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी (जन्म : सन् ११८२ ई० ; मृत्यु : सन् १२६७ ई०) शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से भली भाँति परिचित थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुलतान को मुस्लिम-विद्याओं का केन्द्र बना दिया था। शेख जकरिया मुलतानी सगीत के महान् मर्मज्ञ और 'मुलतानीश्री' राग के आविष्कारक थे। इन लोगों की परम्परा में सगीत को गणित की एक शाखा माना जाता था। शम्सुद्दीन की मृत्यु (सन् १२३५ ई०) के समय शेख बहाउद्दीन जकरिया की आयु तिरपन वर्ष की थी।

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ५२९।

२. चेहलरोजः, पृ० १००-१०१।

मुलतान, दिल्ली, अजमेर इत्यादि में जब कव्वाली का भली भाँति प्रचार हो चुका था और पेशावर, लाहौर, मुलतान, उच्छ, भक्कर, सिन्ध, अनहिलवाड, उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, बदायूँ, बुलन्दशहर, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, लखनौती, गौड आदि सभी जब दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे, तब देवगिरि में सिंहण-नरेश के आश्रित कश्मीरी विद्वान् शाङ्गदेव क्षत-विक्षत भारतीय संगीत-पद्धति को एकत्र सँजोने के लिए प्रायः सन् १२३० ई० में 'संगीतरत्नाकर' का प्रणयन कर रहे थे।

देवगिरि पर उस समय तक विदेशी आक्रान्ताओं की शनिदृष्टि नहीं पड़ी थी। आचार्य शाङ्गदेव के पितामह भास्कर बारहवीं शती ई० में कश्मीर छोड़कर देवगिरि में जा बसे थे। उनके पुत्र सोढल देवगिरि-नरेश भिल्लम और तत्पश्चात् सिंहण (रा० का० सन् १२१०-१२४७ ई०) के आश्रित थे। सिंहण और शम्सुद्दीन अल्तमश का राज्यारोहण-वर्ष एक ही है।

पृथ्वीराज और कन्नौज की पराजय शाङ्गदेव की किशोरावस्था में हुई। उत्तर के विध्वंस की कहानियाँ उनसे छिपी न थी, वे कश्मीर-निवासी आनुवंशिक विद्वान्, राजनीतिज्ञ, वेदान्ती, आयुर्वेदज्ञ और संगीतमर्मज्ञ थे। प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ के अतिरिक्त बारहवीं शती ई० में लिखे हुए ग्रन्थ भी उनके पास थे, अतः उन्होंने अनेक दृष्टियों से 'संगीतरत्नाकर' का प्रणयन आवश्यक समझा। सिंहण के मृत्यु-वर्ष में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु नौ वर्ष की थी और उनका पालन-पोषण एवं शिक्षण उत्तरप्रदेश के एक नगर बदायूँ में हो रहा था। 'संगीतरत्नाकर' की रचना करके एक ओर आचार्य शाङ्गदेव एक महान् कार्य कर रहे थे और दूसरी ओर भवितव्यता 'संगीतरत्नाकर' के भविष्य पर मुस्करा रही थी।

'संगीतरत्नाकर' की रचना (प्रायः सन् १२३० ई०) से केवल ६५-७० वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण ने सन् १२९६ ई० में देवगिरि-नरेश रामदेव पर अकस्मात् आक्रमण करके देवगिरि-वंश की जड़ें हिला दी। 'संगीतरत्नाकर' की रचना से प्रायः चौबीस वर्ष बाद व्रज के एटा जिले के अन्तर्गत पटियाली ग्राम में अमीर खुसरो का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्नों का परिणाम भारतीय संगीत-सम्प्रदाय का उच्छेद सिद्ध हुआ।

बलबन (सन् १२६६-१२८६ ई०) :

शम्सुद्दीन अल्तमश के पुत्र रुक्नुद्दीन (मृ० का० सन् १२६६ ई०), पुत्री रजिया (मृ० का० सन् १२४० ई०) और पुत्र नासिरुद्दीन महमूद (रा० का० सन् १२४६-१२६६ ई०) के बाद बलबन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

बलबन बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर का बड़ा भक्त था, जो कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के खलीफा (आध्यात्मिक प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी) थे। चिश्ती सूफियों के प्रति दिल्ली के सुलतानों की भक्ति सदैव रही और दरबार पर सूफियों का प्रभाव सदा रहा।

सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाला के राजा भीमदेव को परास्त किया। सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रसिद्ध सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बिहार पर अधिकार करके अपने स्वामी के दर्शन किये। प्रायः सन् ११९९ ई० में बगाल पर अधिकार कर लिया गया, नदिया नगर नष्ट कर दिया गया और गौड को इस प्रदेश की राजधानी बनाया गया। सन् १२०२ ई० में कालिजर भी कुतुबुद्दीन ऐबक के अधिकार में आ गया।

सन् १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी का देहान्त हो गया और कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट् हुआ। महोबा और बदायूँ भी दिल्ली-साम्राज्य में मिला लिये गये।

सन् १२०१ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक का देहान्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् राज्य चार भागों में बँट गया, परन्तु सन् १२१० ई० में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था, उसने शीघ्र ही विभक्त राज्य को पराक्रम के बल पर एक कर लिया। बगाल, बिहार, जाजनगर, कामरूप, तिरहुत, गौडप्रदेश, रणथम्भौर, मण्डोर इत्यादि पर दिल्ली-साम्राज्य का पुनः अधिकार हो गया। बगदाद के खलीफा ने शम्सुद्दीन अलतमश के राज्याधिकार को प्रमाणित किया। सन् १२३५ ई० में मुलतान शम्सुद्दीन अलतमश की मृत्यु हुई।

शम्सुद्दीन अलतमश शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के खलीफा (शिष्य, उत्तराधिकारी) ख्वाजा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का बड़ा प्रभाव था। इन्हीं की स्मृति में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया, जिसे शम्सुद्दीन अलतमश ने पूरा किया।^१ शम्सुद्दीन अलतमश के प्रतिनिधि अजमेर के शामक ने जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की वह जागीर जप्त कर ली, जो उन्हें कुतुबुद्दीन ऐबक से मिली थी, तब वे इस जागीर को छुड़ाने के लिए दिल्ली आये और अपने खलीफा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के पास ठहरे। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने जब शम्सुद्दीन अलतमश के पास जाकर सारा हाल कहा, तब शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को उनकी जागीर वापस मिली।^२

ये घटनाएँ इन सूफी महापुरुषों के प्रभाव और दरबार के साथ इनके सम्बन्धों का परिचय देती हैं। संगीत के विद्यार्थी के लिए इन घटनाओं का बड़ा महत्त्व है; क्योंकि चिश्ती फकीरों की इसी परम्परा के कारण भारतीय संगीत में महान् परिवर्तन हुआ। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का स्वर्णवास कव्वाली सुनते-सुनते ही हुआ।

मुलतान के प्रसिद्ध सूफी शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी (जन्म: सन् ११८२ ई०; मृत्यु: सन् १२६७ ई०) शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से भली भाँति परिचित थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुलतान को मुस्लिम-विद्याओं का केन्द्र बना दिया था। शेख जकरिया मुलतानी संगीत के महान् मर्मज्ञ और 'मुलतानीश्री' राग के आविष्कारक थे। इन लोगों की परम्परा में संगीत को गणित की एक शाखा माना जाता था। शम्सुद्दीन की मृत्यु (सन् १२३५ ई०) के समय शेख बहाउद्दीन जकरिया की आयु तिरपन वर्ष की थी।

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ५२६।

२. चेहलरोजः, पृ० १००-१०१।

मुलतान, दिल्ली, अजमेर इत्यादि में जब कव्वाली का भली भाँति प्रचार हो चुका था और पेशावर, लाहौर, मुलतान, उच्छ, भक्कर, सिन्ध, अनहिलवाड, उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, बदायूँ, बुलन्दशहर, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, लखनौती, गौड आदि सभी जब दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे, तब देवगिरि में सिंहण-नरेश के आश्रित कश्मीरी विद्वान् शाङ्गदेव क्षत-विक्षत भारतीय संगीत-पद्धति को एकत्र सँजोने के लिए प्रायः सन् १२३० ई० में 'संगीतरत्नाकर' का प्रणयन कर रहे थे।

देवगिरि पर उस समय तक विदेशी आक्रान्ताओं की शनिदृष्टि नहीं पड़ी थी। आचार्य शाङ्गदेव के पितामह भास्कर बारहवीं शती ई० में कश्मीर छोड़कर देवगिरि में जा बसे थे। उनके पुत्र सोढल देवगिरि-नरेश भिल्लम और तत्पश्चात् सिंहण (रा० का० सन् १२१०-१२४७ ई०) के आश्रित थे। सिंहण और शम्सुद्दीन अल्तमश का राज्यारोहण-वर्ष एक ही है।

पृथ्वीराज और कन्नौज की पराजय शाङ्गदेव की किशोरावस्था में हुई। उत्तर के विध्वंस की कहानियाँ उनसे छिपी न थी, वे कश्मीर-निवासी आनुवंशिक विद्वान्, राजनीतिज्ञ, वेदान्ती, आयुर्वेदज्ञ और संगीतमर्मज्ञ थे। प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ के अतिरिक्त बारहवीं शती ई० में लिखे हुए ग्रन्थ भी उनके पास थे, अतः उन्होंने अनेक दृष्टियों से 'संगीतरत्नाकर' का प्रणयन आवश्यक समझा। सिंहण के मृत्यु-वर्ष में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु नौ वर्ष की थी और उनका पालन-पोषण एवं शिक्षण उत्तरप्रदेश के एक नगर बदायूँ में हो रहा था। 'संगीतरत्नाकर' की रचना करके एक ओर आचार्य शाङ्गदेव एक महान् कार्य कर रहे थे और दूसरी ओर भवितव्यता 'संगीतरत्नाकर' के भविष्य पर मुस्करा रही थी।

'संगीतरत्नाकर' की रचना (प्रायः सन् १२३० ई०) से केवल ६५-७० वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण ने सन् १२९६ ई० में देवगिरि-नरेश रामदेव पर अकस्मात् आक्रमण करके देवगिरि-वंश की जड़ें हिला दी। 'संगीतरत्नाकर' की रचना से प्रायः चौबीस वर्ष बाद व्रज के एटा जिले के अन्तर्गत पटियाली ग्राम में अमीर खुसरो का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्नों का परिणाम भारतीय संगीत-सम्प्रदाय का उच्छेद सिद्ध हुआ।

बलबन (सन् १२६६-१२८६ ई०) :

शम्सुद्दीन अल्तमश के पुत्र रुक्नुद्दीन (मृ० का० सन् १२६६ ई०), पुत्री रजिया (मृ० का० सन् १२४० ई०) और पुत्र नासिरुद्दीन महमूद (रा० का० सन् १२४६-१२६६ ई०) के बाद बलबन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

बलबन बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर का बड़ा भक्त था, जो कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के खलीफा (आध्यात्मिक प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी) थे। चिश्ती सूफियों के प्रति दिल्ली के सुलतानों की भक्ति सदैव रही और दरबार पर सूफियों का प्रभाव सदा रहा।

बलबन के काल में निजामुद्दीन चिश्ती

बाबा फरीद के 'खलीफा' अपने पीर के प्रतिनिधि के रूप में सन् १२६१ ई० में दिल्ली आ चुके थे। उस समय बलबन नासिरुद्दीन महमूद का महामन्त्री था। सन् १२६१ ई० में शेख निजामुद्दीन चिश्ती (जन्म सन् १२३८ ई०) की आयु तेईस वर्ष की थी और बलबन के राज्यारोहण के समय वे अठ्ठाईस वर्ष के थे। उस समय अमीर खुसरो और प्रसिद्ध कवि हसन शेख निजामुद्दीन चिश्ती से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। अमीर खुसरो (जन्म सन् १२५४ ई०) की आयु उस समय बारह वर्ष की थी। शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी तब तक जीवित थे और अगले वर्ष ही उनकी मृत्यु हुई।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती संगीत के मर्मज्ञ थे। उस युग में संगीत के ज्ञान के बिना गणित का ज्ञान अपूर्ण समझा जाता था। चौबीस वर्ष की आयु तक अमीर खुसरो और हसन निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में रहे। इन दोनों की काव्य-प्रतिभा की चर्चा बलबन के पुत्र मुहम्मद के कान में पड़ी, वह अपने पिता की ओर से मुलतान का सूबेदार था। मुहम्मद ने खुसरो और हसन दोनों को अपने पास बुला लिया। पाँच वर्ष तक ये दोनों मुलतान में रहे। मंगोलों द्वारा मुहम्मद के वध के पश्चात् बन्दी होने पर इन्हें दो वर्ष हिरात और बलख में रहना पड़ा। इकतीस वर्ष की आयु में अमीर खुसरो बलबन की सेवा में आये। मुहम्मद की मृत्यु के सम्बन्ध में अपने द्वारा रचित शोक-काव्य खुसरो ने बलबन को सुनाया, जिसे सुनकर वह अत्यन्त शोकाकुल हुआ और सन् १२८६ ई० में उमका देहान्त हो गया।

निजामुद्दीन चिश्ती के शिष्यों की मुलतान में नियुक्ति और बलबन के द्वारा खुसरो का सम्मान दोनों ही बातें बलबन और उसके पुत्र पर सूफी प्रभाव का परिचय देती हैं।

कैकुबाद (सन् १२८६—१२९० ई०) :

सत्रह वर्ष की आयु में दिल्ली के कोतवाल मलिक फखरुद्दीन के प्रयत्नों से कैकुबाद दिल्ली के सिंहासन पर विठाया गया। वह ललित-कलाओं का मर्मज्ञ था, शीघ्र ही विलास में डूब गया। कैकुबाद का पिता बुगरा खाँ सेनाओं-महिन्त बंगाल से दिल्ली रवाना हुआ। निजामुद्दीन चिश्ती के संकेत पर अमीर खुसरो ने कैकुबाद और उसके पिता बुगरा खाँ में सन्धि करा दी। इस सन्धि के विषय में अमीर खुसरो ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'किरानुस्सादैन' लिखा।

भारतीय नारियों और विदेशी मुसलमानों के विवाह से उत्पन्न सन्तानों में परस्पर अत्यधिक स्नेह होता था। कैकुबाद और अमीर खुसरो दोनों ने ही भारतीय नारियों के गर्भ से जन्म लिया था, अतः कैकुबाद अमीर खुसरो से स्नेह करता था। उसने सन् १२८८ ई० में खुसरो को अपना राजकवि नियुक्त किया था। 'किरानुस्सादैन' से ज्ञात होता है कि अमीर खुसरो ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे।

कैकुबाद का वध करके उसका शव यमुना में फेंक दिया गया और सन् १२९० ई० के १३ जून को जलालुद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा।

जलालुद्दीन खिलजी (सन् १२६०—१२६६ ई०) :

सिंहासन पर बैठने के समय जलालुद्दीन खिलजी की आयु ७० वर्ष थी। वह अत्यन्त दयालु एवं करुणहृदय व्यक्ति था, अतः उसके काल में उच्छृंखलता बढ़ गई थी।

बाबा फरीद के एक 'मुरीद' सूफी सीदी मौला उस समय दिल्ली में रहते थे। ये मुक्त हस्त से प्रतिदिन निर्धनों को ऐसा भोजन कराते थे, जिसका आयोजन कोई खान या मलिक भी न कर सकता था। लोगों का विचार था कि सीदी मौला सिद्धिबल अथवा पारस पत्थर के प्रभाव से इतना धन जुटा लेते हैं। काजी जलाल काशानी की प्रेरणा से यह निश्चित हुआ कि जलालुद्दीन को सामूहिक नमाज के समय मारकर सीदी मौला को बादशाह बनाया जाय। भेद खुल गया और सीदी मौला को बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। शेख अबूबक्र तुसी के शिष्य दरवेशों में एक ने सीदी मौला पर उस्तरे से आक्रमण किया और शाहजादा अरकुली खाँ के सकेत पर सीदी मौला को हाथी से कुचलवा दिया गया।

जलालुद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो के वेतन में वृद्धि की थी और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। जलालुद्दीन खिलजी ने छद्म वेश में निजामुद्दीन चिश्ती से मिलना चाहा, परन्तु वे चुपचाप अजोधन चले गये। सीदी मौला शेख निजामुद्दीन चिश्ती के पीरभाई थे। कुछ लोगों का विचार था कि सीदी मौला निर्दोष थे और षड्यन्त्रकारियों से उनका सम्बन्ध न था। कारण कुछ भी हो, निजामुद्दीन चिश्ती ने लोकापवाद की ग्राशका से अथवा अपनी कुशल-कामना की दृष्टि से जलालुद्दीन खिलजी को दूर ही रखना उचित समझा। जलालुद्दीन खिलजी के हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी पर निजामुद्दीन चिश्ती का परम अनुग्रह रहा। अतः, यह अनुमान किया जा सकता है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती जलालुद्दीन खिलजी से सम्भवतः सन्तुष्ट न थे। यह सब कुछ होने पर भी अमीर खुसरो जलालुद्दीन खिलजी के दरबार में प्रतिष्ठित थे।

अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२६६—१३१६ ई०) :

अपने श्वशुर और चाचा जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। अलाउद्दीन का वजीर खतीरुद्दीन, कोतवाल अलाउल्मुल्क, युवराज शादी खाँ, उसका छोटा भाई खिज्र खाँ तथा अन्य अनेक अमीर और सरदार ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। अमीर खुसरो को अलाउद्दीन ने ही 'खुसरू ए शाह्रॉ' की उपाधि दी थी। हाँ, उनका वेतन अवश्य घटा दिया था।

अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के प्रसिद्ध सेनापति मलिक काफूर की विजयों का वर्णन 'खजाइनुल-फुतूह' में और 'मिप्रतातुल् फुतूह' में अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन किया। खुसरो द्वारा लिखित 'तारीखे अलोई' में अलाउद्दीन के युग का इतिहास है।

दिल्ली पर घेरा डालनेवाला दूसरा मंगोल नायक तरगी भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रभाव में था और अलाउद्दीन भी उनका कृपापात्र था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के ही सकेत पर तरगी दिल्ली का घेरा उठाकर लौट गया था।

पूर्व में गौड, पश्चिम में सिन्ध और गुजरात, उत्तर में पंजाब और पेशावर और दक्षिण में मदुरा तक अलाउद्दीन का साम्राज्य विस्तृत था। अलाउद्दीन खिलजी के प्रताप ने समस्त भारत में चिश्ती-सम्प्रदाय के सूफियों के विचारों के प्रचार और कव्वालों की कव्वालियों के लिए द्वार खोल दिये थे।

गुजरात की विजय और अलाउद्दीन के अन्तःपुर में गुजरात की रानी के प्रवेश के कारण सन् १२६७ ई० में ही गुजरात की परवार, परवारी, बरवार, बरावें अथवा फरादू नामक एक सुन्दर संगीतजीवी जाति के सैकड़ों नरनारी बन्दी बनाकर लाये गये थे, अतः गुजराती संगीत दिल्ली में आ गया था। गुजरात के राजा कर्ण और उसकी पुत्री देवलदेवी ने देवगिरि में राजा रामचन्द्र का आश्रय लिया था, परन्तु सन् १३०७ ई० में राजा रामचन्द्र को अलाउद्दीन की सेवा में उपस्थित होना पड़ा, देवलदेवी पकड़ी गई और उसका विवाह अलाउद्दीन के पुत्र खिजू खों के साथ कर दिया गया। इस अवसर पर दक्षिण के कलाकार भी दिल्ली आये।

गुजरात और देवगिरि पर राजनीतिक विजयों के कारण वहाँ के संगीतज्ञों को दिल्ली आना पड़ा। द्वारसमुद्र और मदुरा पर राजनीतिक विजय का परिणाम भी दक्षिण की प्रतिभाओं का दिल्ली में विवश होकर आगमन था।

मलिक काफूर के दक्षिण अभियान में अमीर खुसरो काफूर के साथ थे, मलिक काफूर 'खम्बात' से एक हजार दीनार में खरीदकर लाया गया एक गुलाम था, जो गुजराती, तुर्की इत्यादि भाषाओं को भली भाँति बोलता और समझता था। अमीर खुसरो जैसे प्रतिभाशाली गुणग्राही मलिक काफूर के साथ थे। किसी भी प्रकार से दक्षिण के विद्वानों और कलाकारों को दिल्ली का भक्त बनाना इन लोगों का ध्येय था।

स्वर्गीय के० वासुदेव शास्त्री के अनुसार, चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती ई० में भी हिन्दू विद्वानों, वैज्ञानिकों और शिल्पियों को बलात् मुसलमान बनाया गया और उन्हें पकड़ा गया। पकड़े जाने और बलात् धर्मभ्रष्ट किये जाने के भय से अपने ज्ञान को छिपाने के लिए अनेक विद्वानों, वैज्ञानिकों और शिल्पियों ने अपने ग्रन्थ जला दिये अथवा भूमि में गाड़ दिये।^१

अस्तु; कारण कोई भी हो, अलाउद्दीन खिलजी के युग में दिल्ली विद्याओं का केन्द्र हो गया था। इतिहासकार बरनी (जो कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद, दिल्ली के कोतवाल अलाउल् मुल्क का भतीजा और अमीर खुसरो का मित्र था), कहता है कि अलाउद्दीन के युग में इतने विद्वान्, कलाकार और गण्य-मान्य व्यक्ति दिल्ली में एकत्र हो गये थे कि राजधानी उनसे भरी पड़ी थी। परन्तु, अलाउद्दीन ने उन प्रतिष्ठित लोगों के सम्मान की ओर उचित ध्यान न दिया। एक बार अलाउद्दीन ने अपनी महफिल में गर्व करते हुए कहा था कि मेरे राज्य में इतने अद्वितीय कलाकार एकत्र हो गये हैं कि

इनमें से यदि कोई भी किसी अन्य राज्यकाल में होता, तो भगवान् ही जानता है कि उसका कितना आदर-सम्मान होता ।^१

अस्तु, अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु १३१६ ई० की २ जनवरी को हुई ।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मलिक काफूर ने अलाउद्दीन खिलजी के छह वर्ष के एक पुत्र उम्बर खा को दिल्ली का बादशाह घोषित किया और स्वयं उसका सरक्षक बन बैठा, परन्तु मलिक काफूर का वध करके अलाउद्दीन का पुत्र मुबारक कुतुबुद्दीन खिलजी के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा ।

कुतुबुद्दीन खिलजी (सन् १३१६—१३२० ई०) :

कुतुबुद्दीन खिलजी गुजरात की पूर्वोक्त संगीतजीवी परवार-जाति के निकट सम्पर्क में था और इस जाति का एक परम सुन्दर नवमुस्लिम नवयुवक, खुसरो खाँ कुतुबुद्दीन खिलजी का परम कृपापात्र और प्रेमपात्र था ।

कुतुबुद्दीन खिलजी ने इस गुजराती युवक खुसरो खाँ को दरबार में अच्छा पद दिया । खुसरो खाँ ने तैलंगाना और वारंगल पर कुतुबुद्दीन खिलजी की आज्ञा से एक अत्यन्त सफल अभियान किया था । अमीर खुसरो ने इस अभियान का वर्णन अपने ग्रन्थ 'नूह-सिपहर' में किया है ।

कुतुबुद्दीन खिलजी का अधिकार संगीत और नृत्य पर भली भाँति था । वह नर्तकी-वेष में नृत्य करता था और रूपाजीवाग्री की कला का सम्मान भी । कुतुबुद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो के एक कसीदे पर प्रसन्न होकर एक हाथी के भार के बराबर स्वर्ण और रत्न अमीर खुसरो को दिये थे । खुसरो खाँ का प्रभाव कुतुबुद्दीन खिलजी पर इतना था कि कुतुबुद्दीन खिलजी के काल में लिखित अपने ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में अमीर खुसरो भारत, भारतीय संगीत, भारतीय भाषाओं इत्यादि के विषय में खुलकर अपने मन की बात प्रशंसात्मक रूप में कह सके । अमीर खुसरो पर जहाँ कुतुबुद्दीन खिलजी की इतनी कृपा थी, वहाँ शेख निजामुद्दीन कुतुबुद्दीन खिलजी से सन्तुष्ट न थे । कुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके उसका प्रेमपात्र खुसरो खाँ सन् १३२० ई० में 'नासिरुद्दीन' उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा ।

खुसरो खाँ नासिरुद्दीन (शासनकाल कुछ महीने)

खुसरो के विषय में उस युग के मुसलमान-इतिहासकारों ने लिखा है .

१. मस्जिदों में मूर्तियों की स्थापना की गई और कुरान की प्रतियों को इन मूर्तियों का आसन बनाया गया ।

२. शाही हरम की तथा अमीरों और सरदारों की स्त्रियों को खुसरो खाँ के सजातीयों ने परस्पर बाँट लिया ।

१. खिलजी-कालीन भारत, पृ० १६५ ।

३ लोगों को अपने अनुकूल करने के लिए उन्हें धन तथा मूल्यवान् उपहार दिये गये ।

४ हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया गया ।

हमारी दृष्टि में यह उन कार्यों की प्रतिक्रिया-मात्र थी, जो कार्य जन्मतः हिन्दू खुसरो खाँ की जन्मभूमि में केवल बीस वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति उलुग खाँ और नुसरत खाँ ने सन् १२६७ ई० में किये थे । उन कार्यों की सूची इस प्रकार है :

१. महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् ब्राह्मणों ने सोमनाथ के मन्दिर में जिस मूर्ति की स्थापना की थी, वह मूर्ति विजय-चिह्न के रूप में दिल्ली भेजी गई थी ।

२. गुजरात की रानी कर्णवती को बलात् अलाउद्दीन खिलजी के अन्तःपुर में भेजा गया था । उसकी पुत्री देवदेवी का विवाह भी अलाउद्दीन के पुत्र खिज़्र खाँ के साथ बलात् किया गया था और खुसरो खाँ के सजातीय नर-नारियों को बलात् बन्दी बनाकर दिल्ली में उनका उच्छृंखल उपयोग किया गया था ।

३ कुतुबुद्दीन खिलजी स्वयं खुसरो खाँ को अपनी काम-वासना का साधन बनाता था ।

‘चेहलरोज’ के अनुसार, खुसरो खाँ ने अपनी जाति के चालीस हजार लोग दिल्ली में जमा कर लिये थे । वह हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के लिए निजामुद्दीन चिश्ती के हिन्दू मुरीद हरदेव से विचार-विनिमय भी किया करता था ।

इन सब बातों से यही प्रतीत होता है कि अपने राजा-रानी, राजकुमारी और जाति के अपमान का घूँट खुसरो खाँ मन-ही-मन पी रहा था । उसने जान-बूझकर कुतुबुद्दीन खिलजी को विलासप्रिय और दुश्चरित्र बना दिया, उसके संरक्षण में युद्ध-कला की शिक्षा ली, तैलंगाना और वारगल के राजाओं को कुचलकर शिक्षा दी, जो गुजरात के विनाश और अपमान को चुपचाप देखते रहे थे ।

मलिक काफूर की स्थिति भी यही थी, वह भी पकड़कर बलात् मुसलमान बना दिया गया था । अपने अप्रतिम सौन्दर्य के कारण वह अलाउद्दीन खिलजी की काम-वासना की पूर्ति का साधन था । गुजरात के अपमान और विनाश को चुपचाप देखनेवाले और बलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को अस्पृश्य समझनेवाले हिन्दुओं को कुचलने में उसे भी आनन्द आता था, परन्तु अवसर मिलते ही उसने अलाउद्दीन खिलजी की बेगम को बन्दी बना लिया, अलाउद्दीन के पुत्र खिज़्र खाँ और शादी खाँ की आँखें निकलवा लीं, अलाउद्दीन के सरदारों को पदच्युत किया, उनके पदों की पूर्ति नीचकुलोत्पन्न लोगों से की, कुतुबुद्दीन खिलजी के भी वध का असफल प्रयत्न किया, परन्तु उसी के सेवकों ने विश्वासघात करके उसका वध कर दिया ।

खुसरो खाँ को हिन्दू-राजाओं से सहायता न मिली । डॉ० ईश्वरीप्रसाद का कथन है कि यदि उस समय कोई हिन्दू-शासक अपने साथी राजाओं का संघ बनाकर दिल्ली पर

चढ आता, तो उसे दिल्ली पर अधिकार करने में कोई कठिनाई न होती और मुसलमानों की शक्ति सरलतापूर्वक समाप्त हो गई होती।^१

संगीत के विद्यार्थी की दृष्टि में तो केवल यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि सन् १२९७ से १३१६ ई० तक, अर्थात् उन्नीस वर्ष तक गुजरात का मलिक काफूर और गुजरात का ही खुसरो खाँ क्रमशः अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन खिलजी को अपने रूपजाल में वेश्याओं की भाँति फँसाकर नचाते रहे और परवारी-जाति के नर-नारियो ने दिल्ली के समाज को अपनी कला से इतना प्रभावित किया कि कुतुबुद्दीन खिलजी नर्तकी-वेष में नाचने लगा।

मलिक काफूर और खुसरो खाँ की कृपा से अमीर खुसरो को असंख्य भारतीय कलाकारों से निकट सम्पर्क का अवसर मिला।

गाजी मलिक ने खुसरो खाँ को पराजित करके उसका वध कर दिया और वह सन् १३२० ई० में गयासुद्दीन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा।

गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०-१३२५ ई०) :

गयासुद्दीन तुगलक के राज्यकाल का इतिहास अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'तुगलक-नाम' में लिखा है। गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रति सदैव रोष प्रकट किया। खुसरो खाँ ने शासन की बागडोर सँभालने पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में भी पाँच लाख तके भिजवाये थे। सिंहासनासीन होने पर गयासुद्दीन तुगलक ने वह धन निजामुद्दीन चिश्ती से वापस मँगवाये, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह धन अनाथों और दरिद्रों को बँटवा दिया गया।^२

कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। उसके वध में अँगरेज-इतिहासों को शेख निजामुद्दीन के संकेत की गन्ध आई है और गयासुद्दीन तुगलक के वध में भी। अस्तु; यह वास्तविकता है कि चेहलरोजः के अनुसार गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को सदैव एक अवाञ्छनीय व्यक्ति समझा, परन्तु खुसरो को अपने दरबार में रखा और बगाल के अभियान में वह अमीर खुसरो को अपने साथ ले गया।

सुलतान जब दिल्ली लौटा, तब एक प्रवेशद्वार से दबकर, एक षड्यन्त्र के फलस्वरूप, उसकी मृत्यु हो गई।

मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५-१३५१ ई०) :

मुहम्मद तुगलक शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम भक्त था और उसे शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम अनुग्रह प्राप्त था। मुहम्मद तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के एक मुरीद अहमद अयाज (देवगिरि-वश के राजकुमार हरदेव) के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था और अन्त में उसे 'ख्वाजा जहाँ' की पदवी देकर अपना महामन्त्री बनाया था।

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २५३।

२. चेहलरोजः, पृ० २८४।

मुहम्मद तुगलक के राज्यारोहण के कुछ महीने पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती का स्वर्गवास हो गया और कुछ ही समय बाद उसी वर्ष अमीर खुसरो दिवगत हो गये। दिल्ली की दरगाह में दोनों के मजार पास-पास है।

फीरोज तुगलक (सन् १३५१—१३८८ ई०) :

फीरोज तुगलक के पिता गयासुद्दीन का भाई रजब और माँ अबूहर के भट्टी-राजपूत सरदार रणमल्ल की पुत्री थी। फीरोज तुगलक को शेख नसीरुद्दीन चिराग देहली का आशीर्वाद और समर्थन प्राप्त था, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा थे। फीरोज तुगलक धर्मान्ध, विद्यानुरागी और संगीतरसिक बादशाह था। यह मद्यप भी था। बगाल, नगरकोट, थट्टा इत्यादि पर इसने अभियान किये। फीरोजाबाद इसी ने बसाया था।

इसका मन्त्री खानजहाँ मकबूल जन्मत तैलगाना का एक हिन्दू था, उसके अन्त पुर में दो सहस्र स्त्रियाँ थी, जिनके बच्चे पर्याप्त थे। सन् १३७० ई० में इस योग्य मन्त्री का देहान्त हुआ।

फीरोज के युग में दिल्ली-साम्राज्य और भी विघटित हुआ। सन् १३८८ ई० में अपने पौत्र फतह खाँ को राजदण्ड सौंपकर फीरोज तुगलक मर गया।

इसके दुर्बल उत्तराधिकारी द्वितीय गयासुद्दीन तुगलक, अबूबक्र, राजकुमार मुहम्मद हुमायूँ, नासिरुद्दीन महमूद इत्यादि का राज्यकाल अल्प अवधि का रहा।

सन् १३९८ ई० में तैमूर का विनाशकारी आक्रमण हुआ।

सन् १३९९ ई० में नुसरतशाह ने दिल्ली पर अधिकार किया। थोड़े ही दिनों के बाद इकबाल ने दिल्ली का अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

तुर्कवंश का अन्तिम सुलतान महमूद सन् १४१२ ई० में मरा।

सन् १४१४ ई० में खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार करके सैयद-वंश के शासन का आरम्भ किया।

फीरोज तुगलक और संगीत :

संगीत की ग्राह्यता और त्याज्यता के विषय में सूफियों अथवा मौलवियों का मत कुछ भी हो, परन्तु बादशाह, दरबारी तथा सैनिक भली भाँति संगीत का आनन्द लेते थे। आदर्श मुसलमान कहे जानेवाले फीरोज तुगलक के युग के विषय में शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम भक्त और अमीर खुसरो का परम मित्र इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी कहता है : 'दरबार का प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति सुन्दर गानेवाली रूपवती दासियों के सम्भोग का आनन्द लेने तथा चिन्ता से मुक्त होने के लिए उन्हें सैनिक अभियानों में साथ ले जाया करता था। प्रत्येक शिविर में गायक गाने गाया करते थे। सेना में अत्यधिक सम्पन्नता, सुख, आनन्द और निश्चिन्तता के कारण बहुत-से मुसलमान सुलतान के साथ फिरा करते थे, उन्हें सेना से लौटना अच्छा न लगता था।'^३

फीरोज तुगलक जैसा धर्मान्ध व्यक्ति शुक्रवार की नमाज के पश्चात् गायको का गाना सुनता था। सुलतान से प्राप्त होनेवाला पुरस्कार गायक-वर्ग के प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति को बाँटा जाता था, अतः दिल्ली के गायक-वादक अपने चार-पाँच वर्ष के पुत्रों तक को अपने साथ फीरोजाबाद ले जाते थे। सुलतान का आदेश था कि आयु तथा अन्य किसी दृष्टि से इनमें भेद-भाव न किया जाय।^१

ईद के उत्सव में समस्त गायक केसरिया वस्त्र धारण करते थे, उनके सिर पर जडाऊ पगड़ी होती थी। नर्तकियाँ जडाऊ बहुमूल्य वस्त्र धारण करती थी, जिनका मूल्य चालीस-चालीस हजार तक होता था। कव्वाल वाद्य हाथ में ले लेते थे, नर्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ कर देती थीं। कव्वालों और नर्तकियों को पारिश्रमिक मिलता था।^२ यह चित्र खिलजियों और तुगलकों के युग में संगीत की स्थिति का परिचायक है।

फीरोज तुगलक के द्वारा स्थापित मदरसे में 'प्रधान' मौलाना जलालुद्दीन रुमी थे, उनकी प्रसिद्धि बुखारा, समरकन्द, हिजाज, यमन और नज्द तक थी। ये चौदहो विज्ञान जानते थे। अन्य अध्यापक भी अनुपम और सकल कलाओं के मर्मज्ञ थे। सभी लोग शाम के लबादे और मिस्र की पगड़ियाँ पहनते थे।^३

चिश्ती-परम्परा और संगीत

निजामुद्दीन चिश्ती और राजनीतिक स्थिति :

निजामुद्दीन चिश्ती के पूर्वज चंगेज खाँ का आक्रमण होने पर बुखारा से लाहौर आये और वहाँ से उत्तरप्रदेश के नगर बदायूँ में आकर बसे। यद्यपि इनके नाना सैयद अरब सम्पन्न व्यक्ति थे, तथापि इनकी विधवा माँ ने इनके अनाथ होने पर पिता के घर से कोई सहायता न ली और इन्हें सूत कात-कातकर पाला।

इनके पिता सैयद अहमद इन्हे बच्चा छोड़कर ही मर गये। शेख निजामुद्दीन का जन्म सन् १२३८ ई० में हुआ, उस समय दिल्ली के सिहासन पर रजिया बेगम (राज्यकाल : सन् १२३६-१२४० ई०) का शासन था।

बदायूँ में इनकी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हुई, तो इनकी आयु सोलह वर्ष की थी। इनके विद्यागुरु बदायूँ-निवासी मौलाना अलाउद्दीन उसूली थे।

सोलह वर्ष की आयु में यह दिल्ली आये, इनकी माता बीबी जुलेखा, बहन बीबी जैनब और दासी इनके साथ थे। दिल्ली में इनका आगमन सन् १२५४ ई० में हुआ। इस समय दिल्ली पर नासिरुद्दीन महमूद का शासन (रा० का० सन् १२४६ से १२६६ ई०) था। सन् १२५० ई० में ये अजोधन जाकर बाबा फरीद के मुरीद हुए और सन् १२६१ ई० में इन्हें अपने पीर की खिलाफत मिली।

१. तुगलक-कालीनभारत, पृ० १४५-१४६।

२. उपरिबत्।

३. उपरिबत्, पृ० ४०६।

सन् १३२४ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। बलबन (रा० का० सन् १२६६-१२८६ ई०), कंकुबाद (सन् १२८६-१२९० ई०), जलालुद्दीन खिलजी (सन् १२९०-१२९६ ई०), अलाउद्दीन खिलजी (रा० का० सन् १२९६-१३१६ ई०), कुतुबुद्दीन खिलजी (रा० का० सन् १५१६-१५२० ई०) और गयासुद्दीन तुगलक (रा० का० सन् १३२०-१३२५ ई०) के राज्यकाल में यह चिश्ती-परम्परा के प्रतिनिधि रहे। मुहम्मद तुगलक (रा० का० सन् १३२५-१३५१ ई०) के शासनकाल के आरम्भ में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

तेईस वर्ष की आयु में यह अपने पीर के खलीफा हुए। बलबन की मृत्यु के समय इनकी आयु प्रायः अड़तालीस वर्ष, कंकुबाद की मृत्यु के समय बावन वर्ष, जलालुद्दीन खिलजी की मृत्यु के समय अठ्ठावन वर्ष, अलाउद्दीन की मृत्यु के समय अठहत्तर वर्ष, कुतुबुद्दीन खिलजी की मृत्यु के समय बयासी वर्ष और गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के समय सत्तासी वर्ष थी।

अमीर खुसरो का जन्म सन् १२५४ ई० में हुआ था, प्रायः दस वर्ष की आयु में ये निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद हुए। चौबीस वर्ष की आयु तक ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती से पढते रहे, अला हसन संजरी इनके सहपाठी थे। निजामुद्दीन चिश्ती खिलाफत मिलने के पर्याप्त समय पश्चात् तक अध्ययन-कार्य करते रहे थे।

बलबन का युवराज मुहम्मद सुलतान मुलतान का सूबेदार था। निजामुद्दीन चिश्ती के शिष्य अमीर खुसरो और अला हसन संजरी की काव्य-प्रतिभा की चर्चा उस तक पहुँची। निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति से वह इन दोनों को सन् १२७९ ई० में मुलतान ले गया।

निजामुद्दीन चिश्ती के 'पाँच प्यारों' में इन दो का दिल्ली के युवराज के दरबार में प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना थी।

राजदरबारों के विषय में सूफियों का दृष्टिकोण यह था कि बादशाह लोगों को यदि यह आशंका हो जाये कि किसी व्यक्ति से उनकी बादशाहत को खतरा है, तो वे उसका विनाश ही करके छोड़ते हैं, भले ही वह व्यक्ति उनका पिता, भाई, पुत्र, भतीजा, भानजा, गुरु, पीर कोई भी क्यों न हो। बादशाहों के इस दृष्टिकोण और आचरण को वे बादशाही कानून के अन्तर्गत एक प्रकार से उचित मानते थे, परन्तु समाज और धर्म के कल्याण और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए, वे राजसत्ता को अपने प्रभाव में रखना अवश्य चाहते थे।^१

बादशाहों के विषय में यही नीति निजामुद्दीन चिश्ती की भी थी। इसी नीति के परिणाम-स्वरूप उन्होंने अमीर खुसरो की प्रतिभा और विश्वसनीयता का भरपूर उपयोग किया। कंकुबाद का आश्रय अमीर खुसरो को सन् १२८८ ई० में मिला। इस समय निजामुद्दीन चिश्ती की आयु प्रायः पचास वर्ष और अमीर खुसरो की आयु चौतीस वर्ष थी।

कैकुबाद की मृत्यु के समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती बावन वर्ष के थे और खुसरो छत्तीस वर्ष के। जलालुद्दीन खिलजी के मृत्युकाल, अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी के राज्यरोहण-काल सन् १२६६ ई० में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु अठ्ठावन वर्ष और अमीर खुसरो की आयु बयालीस वर्ष थी।

अठ्ठावन वर्ष से अठहत्तर वर्ष की आयु तक शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अलाउद्दीन खिलजी और उसके दरबार को प्रभावित रखा और इस काल में बयालीस वर्ष से बासठ वर्ष की आयु तक अमीर खुसरो ने अपने पीर को योग दिया।

बलबन की मृत्यु के समय उसका पुत्र बुगरा खाँ बगाल का सूबेदार था, अतः बलबन के पोते मुईजुद्दीन कैकुबाद ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसका पिता उसके विरुद्ध सेना लेकर आया, तो अमीर खुसरो के परामर्श से कैकुबाद ने अपने पिता से सन्धि कर ली। अपने ग्रन्थ 'किरानुस्सादन' में अमीर खुसरो ने इसी घटना का वर्णन किया है। यह सन्धि शेख निजामुद्दीन के प्रभाव का ही परिणाम थी।

कैकुबाद की माँ हिन्दू थी और खुसरो भी हिन्दू माँ की सन्तान थे, अतः कैकुबाद खुसरो से अत्यन्त स्नेह करता था। कैकुबाद ने यमुना के किनारे एक प्रासाद बनवाया था, जिसका नामकरण 'कैलोकहरि' खुसरो ने किया था। इसमें 'कै' कैकुबाद के नाम का आद्यक्षर, 'लोक' बादशाहत की ओर संकेत करनेवाला अथवा आवास शब्द का पर्याय और 'हरि' ईश्वरवाची शब्द था। संस्कृत-भाषा के शब्द 'लोक' और 'हरि' का महल के नामकरण में प्रयोग खुसरो और कैकुबाद की रुचि का परिचायक है। 'कैलोकहरि' आज की भाषा में 'किलोखडी' हो गया है।^१

जलालुद्दीन खिलजी ने कैकुबाद का वध करके दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार किया और अमीर खुसरो को आश्रय दिया, उनका वेतन भी बढ़ा दिया। इस समय जलालुद्दीन खिलजी की आयु सत्तर वर्ष की थी। उसने निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित होने की इच्छा की, परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अनुमति नहीं दी। जब जलालुद्दीन ने छद्म वेश में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित होना चाहा, तब अमीर खुसरो ने बादशाह के इस संकल्प की सूचना, शेख निजामुद्दीन को दे दी। वे अजोधन चले गये। जब बादशाह को पता चला कि उसके संकल्प का भण्डाफोड़ खुसरो ने किया है, तब वह खुसरो पर बिगड़ उठा। उन्होंने उत्तर दिया कि आपका रहस्य प्रकट करने में जान का अन्देश था और छिपाने में ईमान का। मैंने जान के मुकाबले में ईमान को अधिक महत्त्व दिया।^२

जलालुद्दीन के सामने भरी सभा में युवराज अरकुली खाँ के सकेत पर प्रसिद्ध सूफी सन्त सीदी मौला और उसके अनुयायियों का हाथियों से कुचलवाकर वध करा दिया

१. खुसरो की उक्ति, चेहलरोजः, पृ० ३०; ह० नि०, पृ० ४५।

२. ह० नि०, पृ० ४७।

गया था । कुछ लोगों को यह भ्रम था कि सीदी मौला स्वयं बादशाह होना चाहते हैं, जब कि वे सर्वथा निर्दोष थे ।^१

सीदी मौला के वध का कलक जलालुद्दीन खिलजी के माथे पर था, ऐसी स्थिति में उसका सामीप्य लोक-संग्रह की दृष्टि से उचित न था । सम्भवतः, इसीलिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती जलालुद्दीन खिलजी से दूर रहते थे, वरना उसपर दृष्टि रखने के लिए उन्होंने अमीर खुसरो को जलालुद्दीन खिलजी के दरबार में नौकरी करने की अनुमति दे दी थी ।

जलालुद्दीन के हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी पर निजामुद्दीन चिश्ती की अत्यन्त कृपा थी । अलाउद्दीन खिलजी का महामन्त्री खतीरुद्दीन, कोतवाल अलाउल् मुल्क, युवराज खिज़्र खाँ और उसका अनुज शादी खाँ तथा अलाउद्दीन के अनेक अमीर और सैनिक सरदार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे, निजामुद्दीन चिश्ती इस प्रकार अलाउद्दीन के कार्य-कलाप पर दृष्टि रखते थे और अलाउद्दीन खिलजी के जासूस भी छद्म वेश में निजामुद्दीन चिश्ती की गोष्ठियों में आया करते थे ।^२

खुसरो की एक उक्ति के अनुसार, अलाउद्दीन खिलजी जानता था कि मारा भारतवर्ष शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मुट्ठी में है और अलाउद्दीन के राज्य का मंगल और विनाश शेख निजामुद्दीन चिश्ती की अँगुलियों के इशारे पर है ।^३

जब अलाउद्दीन खिलजी के युग में दिल्ली पर मुगलों का आक्रमण हुआ, तब अलाउद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में युवराज खिज़्र खाँ, मलिक नुसरत और अमीर खुसरो को भेजकर निवेदन किया कि इस विपत्ति से रक्षा कीजिए । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपने एक मुगल मुरीद को आक्रान्ताओं के सेनापति तरगी के पास भेजा । तरगी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के दूत का अत्यन्त सम्मान किया, भेंट के लिए अशर्कियाँ भेजी और अगले दिन ही वह दिल्ली का घेरा उठाकर वापस चला गया ।

कहा जाता है कि मुगलों के वापस लौट जाने की भविष्यवाणी शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने घेरा उठाने से एक दिन पूर्व ही कर दी थी और अपना रूमाल तरगी के पास भेजकर मुँह पर डालने के लिए कहा था । उसपर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया था और तरगी के देशवासी उसे सहायता के लिए पुकार रहे थे ।^४

अस्तु; वास्तविकता जो भी हो, इस बात से शेख निजामुद्दीन चिश्ती की प्रभाव-शालिता सिद्ध होती है ।

अलाउद्दीन खिलजी को भी अपना एक रूमाल शेख निजामुद्दीन ने अलाउल् मुल्क के द्वारा भिजवाया था । उसे सोते समय मुँह पर डाल लेने से अलाउद्दीन खिलजी के सम्मुख

१. खुसरो की उक्ति, चेहलरोजः, पृ० ३०-३४ ।

२. उपरिवत्, पृ० ३५ ।

३. उपरिवत् ।

४. चेहलरोजः, पृ० ८४-८६ ।

समस्त देश और दिल्ली के घर-घर का दृश्य आ जाता था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती का आदेश था कि बादशाह जो कुछ इस रूमाल के द्वारा देखे, उसे गुप्त रखे और दीनो-दुखियो की सहायता करें।^१

अलाउद्दीन खिलजी ने जब एक नया धर्म चलाना चाहा और विश्वविजय की इच्छा प्रकट की, तब निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद अलाउल्मुल्क कोतवाल ने ही अलाउद्दीन खिलजी को समझा-बुझाकर इन दोनों संकल्पों से विरत किया था।

अलाउद्दीन खिलजी की दृष्टि सब ओर रहती थी। निजामुद्दीन चिश्ती के एक हिन्दू मुरीद राजकुमार हरदेव को जासूसी के आरोप में गिरफ्तार करके अलाउद्दीन खिलजी के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था, परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कहने पर ससम्मान मुक्त कर दिया गया। कुछ और हिन्दुओं को मुलतान से पकड़कर लाया गया था, उनपर जासूसी का आरोप सिद्ध हो गया था, अलाउद्दीन खिलजी ने उनके वध का आदेश भी दे दिया था; परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कहने पर उन्हें भी क्षमा मिल गई थी।^२

अलाउद्दीन खिलजी का अत्यन्त प्रेमपात्र मलिक काफूर शेख निजामुद्दीन चिश्ती का विरोधी था और शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी सूफी फकीरों के प्रभाव में था।^३ अलाउद्दीन खिलजी और उसके दरबारियों पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव मलिक काफूर के हित में बाधक था। अलाउद्दीन खिलजी की रुग्णावस्था में उसने अलाउद्दीन की बेगम, निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद युवराज खिज़्र खाँ और उसके छोटे भाई शादी खाँ को ग्वालियर के किले में कैद करा दिया था, अलाउद्दीन खिलजी को समाप्त करके स्वयं बादशाह बनने का संकल्प उसने किया था। कहा जाता है कि उसी ने अलाउद्दीन को विष देकर मार डाला, उसके सप्तवर्षीय पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाया और स्वयं उसके प्रतिनिधि के रूप में शासन करने लगा। मलिक काफूर ने इस प्रकार पैंतीस दिन शासन किया और इसी अवधि में ग्वालियर के किले में बन्द खिज़्र खाँ को अन्धा करा दिया।

मलिक काफूर के दो सेवकों, मुबश्शिर और बशीर ने ही उसका वध रात के समय कर दिया, जबकि मलिक काफूर ने इन दोनों को कुतुबुद्दीन खिलजी के वध के लिए तैयार किया था। मुबश्शिर और बशीर अपने साथियों के साथ पुरस्कार के लोभ में कुतुबुद्दीन खिलजी के साथ मिल गये थे।

सम्राट् होते ही कुतुबुद्दीन खिलजी ने विश्वासघाती मुबश्शिर और बशीर का वध करा दिया।^४

१. चेहलरोजः, पृ० १६०-१६१।

२. उपरिचत्, पृ० २०१-२०६।

३. उपरिचत्, पृ० २२०।

४. उपरिचत्, पृ० २२५-२२७।

कुतुबुद्दीन खिलजी ने ग्वालियर के किले में बन्द खिज़्र खाँ और शादी खाँ का भी वध करा दिया, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे । अपने सब भाइयों का निर्दयतापूर्वक वध कराकर कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोध में लग गया; क्योंकि उसे भय था कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती अपने प्रभाव से दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लेंगे ।^१

कुतुबुद्दीन ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोध के लिए कमर बाँध ली । उसके परामर्शदाताओं ने कहा कि दिल्ली के चिश्तियों और मुलतान के सुहरवर्दियों में परस्पर विरोध है, अतः शेख बहाउद्दीन जकरिया के पोते शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी को यदि दिल्ली में बुला लिया जाय, तो अमीर और सरदार उनकी ओर उन्मुख हो जायेंगे और शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव घट जायगा ।^२

कुतुबुद्दीन खिलजी के निमन्त्रण पर शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी दिल्ली आये, तो एक पड़ाव आगे जाकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उनकी अगवानी की । अगले दिन शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी शेख निजामुद्दीन चिश्ती से मिलने आये और उन्होंने दिल्लीवासियों के सम्मुख निजामुद्दीन चिश्ती को 'शहशाहे दीन' कहा । शेख रुक्नुद्दीन के साथ उसके भाई भी थे ।^३

शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी और उनके साथियों के साथ बैठकर भोजन किया और उन्हें सौ अशर्फियाँ भेंट की । जब शेख निजामुद्दीन चिश्ती और शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी में मनमुटाव न हुआ, तब कुतुबुद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अन्य विरोधियों की खोज की । उस समय दिल्ली में तीन प्रधान सूफी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे : हजरत अहमद जाम के वंशज शेख शहाबुद्दीन, मौलाना जियाउद्दीन रूमी और शेख नूरुद्दीन फिरदौसी ।^४

इन तीनों में मौलाना जियाउद्दीन रूमी का प्रभाव दिल्ली में सबसे अधिक था । कुतुबुद्दीन खिलजी ने मौलाना जियाउद्दीन रूमी को बुलाया और वह उनका मुरीद हो गया । बादशाह के सकेत पर मौलाना जियाउद्दीन रूमी ने शेखजादे फरजाम शहाबुद्दीन और शेख नूरुद्दीन फिरदौसी को भी साथ में लेकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती का विरोध आरम्भ कर दिया ।^५

कुतुबुद्दीन खिलजी ने इसके पश्चात् एक दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश भेजा कि आप अपने आडम्बर को साथ लेकर दिल्ली छोड़ दें । आप अपरिग्रही होने का दावा

१. चेहलरोजः, पृ० २२८-२३० ।

२. उपरिवत्, पृ० २३१ ।

३. उपरिवत्, पृ० २३३-२३६ ।

४. उपरिवत्, पृ० २३७-२३८ ।

५. उपरिवत्, पृ० २३८ ।

करते हैं, परन्तु आपके अस्तबल में घोड़े सोने की मेखों से बाँधे जाते हैं। निजामुद्दीन चिश्ती ने उस आदेशपत्र पर लिख दिया कि मैंने सोने की मेखे मिट्टी में गाड़ी हैं, अपने दिल में नहीं।^१

निजामुद्दीन चिश्ती ने मौलाना जियाउद्दीन रूमी को भेजकर कहलवाया कि अपने मुरीद बादशाह को समझा दे कि वह दरवेशों को न सताये। राजकुमार हरदेव ने जियाउद्दीन रूमी के घर जाकर सुना कि मुरीद होने पर बादशाह ने पाँच हजार अशफियाँ भेजी थी, उन्हीं के बँटवारे पर मौलाना रूमी की पत्नियाँ और उनकी सन्तानों में झगडा हो रहा है। मौलाना रूमी ने एक पत्नी के घर खाना खाया था, तभी से बहुत बीमार है। अगले दिन जियाउद्दीन रूमी की मृत्यु हो गई।^२

मौलाना जियाउद्दीन रूमी के तीजे के दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती भी गये। कुतुबुद्दीन खिलजी वहाँ बैठा हुआ कुरान का पाठ कर रहा था। कुतुबुद्दीन खिलजी ने निजामुद्दीन चिश्ती से कहलवाया कि चाहे, तो उस समय बादशाह से मिल सकते हैं। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिलवा दिया, पवित्र कुरान के पाठ में विघ्न उचित नहीं। कुछ देर बाद कुतुबुद्दीन खिलजी वक्र दृष्टि से शेख की ओर देखता हुआ चला गया।^३

कुछ दिनों के बाद अपने अमीरों के द्वारा कुतुबुद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती से कहलवाया कि चाँदरात को सभी सूफी मुझे सलाम करने और दुआ देते आते हैं, आप अपने स्थान पर अपने दास ख्वाजः इकबाल को भेज देते हैं, इसमें सम्राट् का अपमान है, इस चाँदरात को आप भी आये। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिलवाया, दुआ के लिए एकान्त आवश्यक है, दरबारों में जाकर दुआ देना मेरी परम्परा के विरुद्ध है।^४ चाँदरात आने पर कुतुबुद्दीन खिलजी ने आदेश दिया कि यदि शेख निजामुद्दीन चिश्ती दुआ देने के लिए दरबार में स्वयं न आये, तो उन्हें तलवार के जोर से लाया जाय।

यद्यपि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अनेक मुरीद सशस्त्र होकर शेख की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गये थे, तथापि शेख ने उन्हें अपने-अपने घर भेज दिया और रफीउद्दीन हारून, ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम और राजकुमार हरदेव के साथ भोजन करके नमाज पढ़ी और उस दिन नमाज की जमात में राजकुमार हरदेव को भी सम्मिलित किया। हरदेव यद्यपि मुसलमान हाँ चुका था, तथापि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उससे कहा था कि वह अपने मुसलमान होने का समाचार अभी गुप्त रखे।^५

१. चेहलरोजः, पृ० २३६-२४०।

२. उपरिवत्, पृ० २४१-२४२।

३. उपरिवत्, पृ० २४२-२४३।

४. उपरिवत्, पृ० २४६-२४६।

५. उपरिवत्, पृ० २४६।

अगले दिन यह समाचार नगर में फैल गया कि खुसरो खाँ नामक नवमुस्लिम नवयुवक कुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके सम्राट् दीन मुहम्मद नासिर के नाम से तख्त पर बैठा गया है और सब अमीरों और सरदारों ने उसे बादशाह मान लिया है।^१

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कुतुबुद्दीन खिलजी ने भी अमीर खुसरो को अपने दरबार में सम्मानपूर्वक रखा। उनके एक कसीदे पर प्रसन्न होकर हाथी के भार के बराबर स्वर्ण और रत्न अमीर खुसरो को दिये। कुतुबुद्दीन खिलजी के शासनकाल का वृत्तान्त अमीर खुसरो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में लिखा।

कुतुबुद्दीन खिलजी संगीत और नृत्य में प्रवीण था। गुजरात से आई हुई परवार नामक एक संगीतजीवी हिन्दू-जाति का एक परम सुन्दर नवयुवक कुतुबुद्दीन खिलजी का प्रेमपात्र था। ऐसी परिस्थिति में लिखे हुए ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में खुसरो ने स्वयं को ब्राह्मणों का शिष्य और ब्राह्मणों को अरस्तू के समान कहा है। ब्राह्मणों से लाभ न उठानेवालों पर व्यंग्य किया है, भारत को ससार-भर के देशों में श्रेष्ठ कहा है, भारतीय संगीत को अनुपम और अरब के संगीत की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है।

खुसरो का कार्य अत्यन्त कठिन था। अपने पीर के घोर विरोधी बादशाह को भी सन्तुष्ट रखना और पीर के प्रति अनन्य भक्ति भी बनाये रखना तलवार की धार पर चलना था।

अँगरेज-इतिहासकारों ने मत प्रकट किया है कि कुतुबुद्दीन खिलजी का वध शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सकेत पर हुआ था।^२

'चेहलरोजः' से यह सिद्ध है कि राजकुमार हरदेव के साथ हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना की बातें 'खुसरो खाँ' (नवमुस्लिम गुजराती युवक) करता रहता था। निजामुद्दीन चिश्ती से यह वृत्तान्त हरदेव ने उस रात को कहा, जिस रात को कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या हुई। हरदेव ने खुसरो खाँ के लक्ष्य से मतभेद नहीं प्रकट किया, अपितु उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने को अयोग्य और अशक्त बताया।^३

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हरदेव के मुसलमान हो जाने पर भी उसकी घोषणा शेख निजामुद्दीन चिश्ती के आदेश पर ही नहीं की गई। हरदेव को कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या के तत्काल बाद अपने माँ-बाप के साथ निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति से दिल्ली छोड़कर भागना पड़ा।

हरदेव के मुसलमान होने की घोषणा गयासुद्दीन तुगलक के बादशाह होने पर हुई और उसका मुसलमान नाम 'अहमद अयाज' शेख निजामुद्दीन चिश्ती के द्वारा रखा गया।

१. चेहलरोजः, पृ० २५१-२५४।

२. हसन निजामी : निजामी बंसरी, पृ० २५७।

३. चेहलरोजः, पृ० २४६-२५०।

अंगरेज-इतिहासकारों के मत पर हमारे द्वारा कोई मत प्रकट किया जाना उचित नहीं, परन्तु उपर्युक्त परिस्थितियाँ किसी के मन में सन्देह अवश्य उत्पन्न कर सकती हैं।

खुसरो खाँ के बादशाह होने पर पाँच लाख तंके (टक) शेख निजामुद्दीन चिश्ती को भी भेजे गये थे, जो उन्होंने मुहताजों और गरीबों को बाँटवा दिये।^१ खुसरो खाँ (गुजराती नवयुवक) का समर्थक तो शेख निजामुद्दीन चिश्ती को कदापि नहीं कहा जा सकता, परन्तु राजनीति में लोग एक काँटे को दूसरे काँटे से तो निकालते ही हैं।

दिल्ली के मुसलमान खुसरो खाँ के 'हिन्दू-साम्राज्य' की स्थापना को कदापि अच्छा नहीं समझ सकते थे। सम्भव है, उन लोगों ने हरदेव पर भी खुसरो खाँ (गुजराती युवक) का सहयोगी होने का सन्देह किया हो और तभी वह अपने माँ-बाप के साथ देवगिरि भागा हो।

गयासुद्दीन तुगलक ने खुसरो खाँ का वध करके गद्दी सँभाली। वह खिलजियों की ओर से मुलतान का शासक था, अपनी वीरता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था, इसका नाम था गाजी मलिक। इसका पिता तातारी और माँ हिन्दू थी और इसके पुत्र मलिक जूना (मुहम्मद तुगलक) की माँ भी हिन्दू थी। यह सुहरवर्दी परम्परा के सूफियों के प्रति श्रद्धावान् था और इसने अपना मकबरा भी शेख बहाउद्दीन जकरिया की समाधि के पास बनवाया था।^२

गयासुद्दीन तुगलक भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का विरोधी रहा। खुसरो खाँ के द्वारा भेजे हुए पाँच लाख तंके उसने शेख निजामुद्दीन चिश्ती से वापस मँगाये थे, तो उसे जवाब मिला, वह लंगर में जमा न किये गये, गरीबों को बाँट दिये गये। सम्भव है, उसके मन में गाँठ पड़ी रह गई हो।^३

शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिस में कुछ यात्री एक दिन आये और इस बात पर आपत्ति करने लगे कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सामने उनके भक्त 'सज्द' (जमीन तक झुककर प्रणाम) करते हैं। निजामुद्दीन चिश्ती ने उन्हें समझाया कि उपासना के भाव से 'सज्द' केवल नमाज में ईश्वर के सम्मुख किया जाता है, परन्तु सम्मान-प्रदर्शन का 'सज्द' तो पैगम्बर यूसुफ के सामने उनके माँ-बाप ने भी किया था और ईश्वर की आज्ञा से ऐसा 'सज्द' फरिश्तों ने हजरत आदम के सामने किया था, परन्तु वे यात्री फिर भी कोलाहल करते रहे और अन्त में बक-झक करके चले गये।^४

कुछ दिनों बाद एक खेमे में शेख निजामुद्दीन चिश्ती कव्वाली करा रहे थे, वहाँ कुछ 'मुहतसिब' (इस्लाम-विरुद्ध कार्यों से लोगों को विरत करनेवाले कर्मचारी), काजी

१. चेहलरोजः, पृ० २८४।

२. उपरिवत्, पृ० २७५।

३. हसन निजामी, पृ० २७३।

४. चेहलनामः, पृ० २८४-२८६।

नियाउद्दीन सनामी और उनके बेटे कुछ हथियारबन्द सिपाहियों के साथ वहाँ आये और उन्होंने चिल्लाकर कहा कि कव्वाली बन्द करो, बादशाह का आदेश है कि इस इस्लाम-विरुद्ध कार्य को तलवार के बल पर रोका जाय। लोगों ने ध्यान न दिया और कव्वाली जारी रही।

कहा जाता है कि सिपाहियों ने खेमे के रस्से काट दिये, परन्तु वह न गिरा, तब काजी साहब ने कहा कि मैं 'बादशाह के आदेश का पालन कर रहा हूँ, तुम मुझे चमत्कार क्यों दिखा रहे हो?' यह सुनकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कव्वालों को गाने से रोका और कहा कि हमलोग ईश्वरोपासना में सलग्न हैं, मैंने कोई चमत्कार नहीं किया है।^१

काजी साहब लौट गये और उनके दोनों बेटे किसी घातक रोग से ग्रस्त होकर तत्काल मर गये, कुछ समय के पश्चात् उसी दिन काजी साहब भी मर गये।^२

दो-तीन दिन बाद बादशाह गयामुद्दीन तुगलक का एक आदेश आया, जिसमें कहा गया था कि आप गाना सुनते हैं, गाना 'शरीअत' (मुस्लिम विधि-विधान) के विरुद्ध है, आप इस सम्बन्ध में मेरी और नगर के अन्य विद्वानों की उपस्थिति में सुफती आजम में शास्त्रार्थ कीजिए। यदि आपने गाने का औचित्य सिद्ध कर दिया, तो हम भी गाना सुनना आरम्भ कर देंगे, अन्यथा आपको यह पाप-कर्म छोड़ना होगा।

निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिया कि अपनी परम्परा के अनुसार मैं किसी बादशाह के दरबार में न तो जाता हूँ, न अपने पास आने देता हूँ, मैं 'शरीअत' के इस दरबार में उपस्थित होने के लिए प्रस्तुत हूँ; परन्तु बादशाह को इस दरबार में सब आनिमो के साथ ही बैठना होगा, उनसे ऊँचे स्थान पर नहीं। बादशाह यह शर्त मान गया।

मौलाना शमसुद्दीन याह्या, मौलाना अलाउद्दीन नीली, मौलाना फखरुद्दीन जरादी, काजी मुहीउद्दीन काशानी जैसे अखिलभारतीय ख्याति के शास्त्रार्थ-महारथी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। इन्होंने साथ चलने की अनुमति शेख निजामुद्दीन चिश्ती से माँगी, अनुमति न मिली, तो वे लोग चुपचाप पीछे-पीछे वहाँ गये। ख्वाजः मुहम्मद इमाम, ख्वाजः सय्यद मूसा और हरदेव भी गये।

संयोगवश वहाँ शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी के पोने शेख इल्मुद्दीन भी पधारे और उन्होंने भी निजामुद्दीन चिश्ती के पक्ष का समर्थन किया, बादशाह उनके साथ अपने महल की ओर चला गया।

शेखजादः फरजाम, हाकिम शरअ और उनके साथियों ने कोलाहल करना आरम्भ किया, वे शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विषय में अपशब्द कहने लगे। उनके पास बैठे हुए मुल्लाओं ने छुरियाँ और खंजर निकाल लिये और शेख निजामुद्दीन पर आक्रमण करने का संकल्प किया।

१. चेहलरोजः, पृ० २८७-२८८।

२. उपरिबत्, पृ० २८८-२८९।

हरदेव, ख्वाजः सैयद इमाम, ख्वाजः रफीउद्दीन हारून इत्यादि ने भी विरोधियों का यह सकल्प देखकर खजर निकाल लिये । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इनलोगों को रोका । ये सब शेख निजामुद्दीन चिश्ती के साथ अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर लौट आये ।^१

लौटने के पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने मौलाना फखरुद्दीन से कहा कि वे कव्वाली के औचित्य के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखें । शेख निजामुद्दीन को विश्वास हो गया था कि नगर में विरोधियों की सख्या पर्याप्त है और लोग उनके बाद उनके अनुयायियों को तंग करेंगे ।^२ शेख निजामुद्दीन की आशंका पर अमीर खुसरो बहुत रोये, और सब लोग भी रोने लगे । निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा कि पुस्तक जनता के लिए होगी । हम लोगों के लिए तो अपने बुजुर्गों का अनुकरण पर्याप्त है, जो सार्वजनिक रूप में बाजों के साथ गाना सुनते थे । कुरान शरीफ में गाना सुनने का निषेध कही नहीं है ।^३

गयासुद्दीन तुगलक अपने बड़े बेटे जूना उलुग खाँ से कुछ अप्रसन्न था और अपने छोटे बेटे महमूद को युवराज बनाना चाहता था । अकस्मात् गयासुद्दीन तुगलक बंगाल में विद्रोह दबाने के लिए जाने को विराम हुआ । अमीर खुसरो और गयासुद्दीन तुगलक का पुत्र महमूद भी गयासुद्दीन तुगलक के साथ गये । इसके पश्चात् जूना उलुग खाँ ने फकीरों के वेश में निजामुद्दीन चिश्ती के समक्ष आने की अनुमति शेख निजामुद्दीन की खानकाह के प्रबन्धक ख्वाजः इकबाल से ले ली । ख्वाजः मुहम्मद इमाम और हरदेव भी इस तथ्य से परिचित थे । उसी दिन ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिस में फटे-पुराने कपड़े पहने हुए कुछ दरवेश (फकीर) आये, जिनमें जूना उलुग खाँ भी था । ख्वाजः मुहम्मद इमाम और हरदेव ने उनमें उलुग को पहचान लिया । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाज मुहम्मद इमाम से कहा कि इन दरवेशों को लंगर में खाना खिलाओ । दरवेशों के लंगर में खाना खानेवालों का मनोरथ पूर्ण होता है । खाना खाने के बाद वे दरवेश पुनः शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने सज्दः करने के पश्चात् जाने की अनुमति चाही । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम से कहा कि दरवेशों को जाने की अनुमति दो, एक बादशाह आता है और दूसरा बादशाह जाता है । यह सुन उलुग खाँ ने पुनः सम्मान-प्रदर्शन किया और शिष्टाचारपूर्वक विदा हो गया ।^४

इसके कुछ ही दिनों पश्चात् अहमद अयाज (हरदेव) को उलुग खाँ ने बुलाया, उसे 'ख्वाजा जहाँ' की पदवी दी, उसके हाथों में सोने के कंगन पहनाये और उसे प्रासाद-निर्माण-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया । उस विभाग के कर्मचारियों से विभाग का कार्य

१. चेहलरोजः, पृ० २८६-२९५ ।

२. उपरिवत्, पृ० २९७ ।

३. उपरिवत्, पृ० २९७ ।

४. उपरिवत्, पृ० ३०२-३०३ ।

समझकर हरदेव दिन में अपनी नौकरी का कार्य करने लगा और सन्ध्या के समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित रहता था ।^१

कुछ दिनों के पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने काजी सैयद मुहीउद्दीन काशानी और सैयद हुसेन किरमानी को 'यारों के चबूतरे' के पास एक बावली बनवाने के लिए प्रबन्ध करने का आदेश दिया । नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली), रफीउद्दीन हारून और ख्वाजा मुहम्मद इमाम भी बावली बनाने के कार्य में नियुक्त हुए ।^२

एक दिन ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम ने हरदेव से कहा कि एक पत्र के द्वारा गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश दिया है कि मेरे दिल्ली पहुँचने से पूर्व दिल्ली छोड़कर चले जाओ । मैं नहीं चाहता कि दिल्ली पहुँचने पर मैं एक ऐसे व्यक्ति को वहाँ देखूँ, जो स्वयं मनुष्य होने पर भी अपने सामने मनुष्यों से सज्द करेगा है, अबूहनीफः का अनुयायी होने पर भी अबूहनीफः की व्यवस्था के विरुद्ध गाना सुनता है और खुल्लमखुल्ला गाने-बजाने की मजलिस करता है । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उसी आदेशपत्र पर लिख दिया 'हनोज दिल्ली दूर अस्त', अर्थात् 'अभी दिल्ली दूर है ।' यही उत्तर लेकर गयासुद्दीन तुगलक का दूत लौट गया ।^३

शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उलुग खाँ की उपस्थिति, शेख निजामुद्दीन चिश्ती के वाक्य 'एक बादशाह जाता है, दूसरा बादशाह आता है' तथा 'मीर इमारत' के पद पर हरदेव की नियुक्ति का समाचार गुप्तचरों द्वारा बगाल में गयासुद्दीन तुगलक तक पहुँच चुका था और वह एक पत्र के द्वारा उलुग खाँ को डाँट चुका था । इस पत्र की सूचना हरदेव को हसन ईरानी (इसे शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने दकन का बादशाह कहा था और भविष्य में भी बहमनी-राज्य का संस्थापक हुआ, यह भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था) ने दी थी ।^४

गयासुद्दीन तुगलक ने एक अन्य पत्र में उलुग खाँ को लिखा कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती की बावली बनाने वही मजदूर जाते हैं, जो दिन में शहर और किला बनाने का काम करते हैं, अतः राज-मजदूरों को बावली बनाने के काम से रोक दिया जाय । वे 'अमीर इमारत' हरदेव के कारण बावली बनाने जाते हैं । यह पूरा समाचार असत्य था, अतः, जाँच करने के बाद उलुग खाँ ने वास्तविकता-सूचक पत्र गयासुद्दीन तुगलक को लिख दिया ।^५

गयासुद्दीन तुगलक ने उलुग खाँ को पुनः एक आदेश भेजा कि जो राज-मजदूर भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती की बावली बना रहे हैं, उन्हें इस कार्य से रोका जाय, नगर के

१. चेहलरोजः, पृ० ३१४-३१५ ।

२. उपरिवत्, पृ० ३१५-३१६ ।

३. उपरिवत्, पृ० ३१६-३१७ ।

४. उपरिवत्, पृ० ३१७ ।

५. उपरिवत्, पृ० ३१८ ।

समस्त व्यापारियों को आदेश दिया जाय कि वे निजामुद्दीन चिश्ती के अनुयायियों को तेल न दे, जिससे कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अनुयायी रात में प्रकाश करके बावली न बना सकें। शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश दिया जाय कि वे बादशाह के पहुँचने से पूर्व दिल्ली छोड़ दे, बादशाह बगाल से प्रस्थान कर चुका है।^१

बादशाह की इस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपना पुराना उत्तर दुहरा दिया. 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' और अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे लोग स्वयं राज-मजदूरो का काम करे, बावली से निकले हुए जल को कूँडों में भरकर दीपक की भाँति जलाये।^२

ऐसी स्थिति में हरदेव ने अपनी नौकरी पर जाना बन्द कर दिया और शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद राज-मजदूरो को साथ लेकर बावली बनाने के काम में जुट गये, जहाँ मौलाना नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली), सैयद मुहीउद्दीन काशानी जैसे 'खलीफा' लोग भी अपने गुरु-बन्धुओं के साथ कमर बाँधकर बावली बनाने का कार्य कर रहे थे। रात आने पर बावली का पानी तेल की भाँति कूँडों में जलने लगा। सात दिन में बावली तैयार हो गई।^३

सात दिन बाद हरदेव अपनी नौकरी पर गया और उसने उलुग खाँ के सामने अपनी अनुपस्थिति का कारण स्पष्ट किया, उलुग खाँ मुस्करा पड़ा, वह शेख निजामुद्दीन चिश्ती का पक्ष न्यायसम्मत समझता था।

उलुग खाँ ने हरदेव को आदेश दिया कि नगर से तीन कोस दूर अफगानपुर गाँव में बादशाह के स्वागत के लिए एक महल बनाया जाय, जिसमें दिल्ली पहुँचने से पूर्व बादशाह का स्वागत हो और उनकी सेवा में मेरी ओर से उपहार प्रस्तुत किये जायें।

हरदेव ने तीन दिन में लकड़ी का एक सुन्दर महल तैयार कर दिया, उसकी सजावट अत्यन्त आकर्षक ढंग से की गई। दिल्ली के निकट पहुँचने पर गयासुद्दीन तुगलक ने यह महल देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। बादशाह के लिए तत्काल भोजन भी मँगवाया गया। बादशाह के सब सरदार और अमीर भी वहाँ थे, जो बादशाह को उलुग खाँ के विरुद्ध भड़काते रहते थे। उलुग खाँ का छोटा भाई महमूद भी था, शेख रुक्नुद्दीन अबुलफतह मुलतानी भी थे।

खाने के बाद उलुग खाँ ने हरदेव को बादशाह की सेवा में प्रस्तुत किया, उसका परिचय कराया और यह भी बताया कि यह मुसलमान हो चुका है और इसी ने यह महल केवल तीन दिन में तैयार कराया है। उलुग खाँ ने शेख रुक्नुद्दीन को याद दिलाई कि नमाज का वक्त हो गया है, और वे नमाज के लिए बाहर चले गये।^४

१. चेहलरोजः, पृ० ३१८-३१९।

२. उपरिवत्, पृ० ३१९।

३. उपरिवत्, पृ० ३१९-३२०।

४. उपरिवत्, पृ० ३२०-३२२।

उलुग खाँ और हरदेव महल से बाहर आये और उन्होंने उपहार के हाथी महल के अन्दर भेजे। मकान नया था, फर्श लकड़ी का था। हाथियों के अन्दर घुसते ही लकड़ी का फर्श दबा और वह महल अकस्मात् ढह गया, जिसमे बादशाह, उसका चहेता लड़का महमूद और उलुग खाँ के विरोधी सभी दबकर मर गये। मलवे को हटाने के लिए मजदूरों का पता दूर-दूर तक न था। मकान गिरने की आवाज से शेख रुक्नुद्दीन मुलतानी भी नमाज पढ़े बगैर लौट आये, जहाँ उलुग खाँ मजदूरों को बुलाने के लिए चिल्ला रहा था।

रातो-रात गयासुद्दीन तुगलक को मलवे से निकालकर उस मकबरे में दफन कर दिया गया, जो उसने अपने किले के करीब अपने लिए बनवाया था।^१

‘इब्नेबतूत’ के अनुसार, शेख रुक्नुद्दीन मुलतानी ने नमाज के लिए उठते समय गयासुद्दीन तुगलक को उठने का संकेत किया, परन्तु उसने संकेत को नहीं समझा। शेख रुक्नुद्दीन ने यह भी ‘इब्नेबतूत’ के आधार पर कहा है कि उलुग खाँ ने लोगों को संकेत कर दिया था कि मजदूर विलम्ब से आये। मलवा हटाये जाने पर गयासुद्दीन के अतिरिक्त अन्य ग़व व्यक्ति मर चुके थे। उलुग खाँ के संकेत पर लोगों ने बादशाह को समाप्त कर दिया।^२

अँगरेज-इतिहासकारों ने लिखा है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने गयासुद्दीन तुगलक के विरुद्ध उलुग खाँ से मिलकर षड्यन्त्र किया और शेख के संकेत पर ही हरदेव ने ऐसा मकान बनाया, जो फर्श पर हाथियों का बोझ पड़ने से ढह जाय।^३

‘शवाहिद निजामी’ नामक एक पुस्तक में लिखा है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने किलोखड़ी-निवासी सैयद महमूद से अभिचार (टोना टोटका) कराकर गयासुद्दीन तुगलक को मरवा दिया।^४

ख्वाजा हुसन निजामी अँगरेजों की आशका को निराधार और अभिचार-कर्म को कपोल-कल्पना मानते हैं।

अपनी बादशाहत के लिए बाप, बेटे, भाई, भतीजे, पीर इत्यादि की हत्या कर डालना उस युग में सामान्य बात थी। यदि उलुग खाँ अपने पिता को मरवाकर मुहम्मद तुगलक के नाम से तख्त पर बैठा, तो न तो यह दिल्ली के तख्त के लिए नई बात थी और न दिल्ली की जनता के लिए।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती भले ही इस षड्यन्त्र में लिप्त न हों, परन्तु उनके अनुयायियों ने अपने पीर के घोर विरोधी और शत्रु गयासुद्दीन तुगलक को दुनिया से उठा देने में उलुग खाँ को सहयोग दिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

१. चेहलरोजः, पृ० ३२२।

२. हुसन निजामी, पृ० ३२३-३२४।

३. ख्वा० हु० नि०, पृ० ३२३।

४. ख्वा० हु० नि०, पृ० ३२४।

मनोरंजक बात यह है कि अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के साथ दिल्ली न लौटे, अपनी जागीर पटियाली में रुक गये ।

गयासुद्दीन तुगलक की अनुपस्थिति में हरदेव को 'ख्वाजा जहाँ' की उपाधि देना, गयासुद्दीन का आदेश होने पर भी हरदेव को उसके पद 'मीर इमारत' से न हटाना, हरदेव की अनुपस्थिति को हँसकर टाल देना और गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् हरदेव को अपना दामाद बनाना इत्यादि ऐसे कृत्य हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कुछ अनुयायी गयासुद्दीन तुगलक के वध की योजना के मूल कारण थे ।

शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी ने उलुग खाँ के अपराध को जानते हुए भी भविष्य में उलुग खाँ (मुहम्मद तुगलक) से अच्छे सम्बन्ध रखे और हरदेव के सामने मुहम्मद तुगलक का यह प्रस्ताव रखा कि वह मुहम्मद तुगलक की इच्छा के अनुसार उसकी कन्या का पाणि-ग्रहण कर ले और इस कार्य के लिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति ले । शेख निजामुद्दीन चिश्ती इस प्रस्ताव से अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने हरदेव को बधाई दी ।^१ मुहम्मद तुगलक ने गुप्त रूप से अपनी लड़की का विवाह हरदेव के साथ कर दिया ।^२

मुहम्मद तुगलक ने हरदेव को पंजाब की ओर अभियान में सेनापति बनाकर भेजा था । गुजरात के अभियान में भी हरदेव को सेनापति बनाया । कुछ समय के पश्चात् हरदेव को क्रमशः 'नायब वजीर' और अन्त में 'वजीरे आजम' बना दिया गया ।^३

गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के प्रायः डेढ़ महीने बाद शेख निजामुद्दीन का भी स्वर्गवास हो गया । स्वर्गवास से पूर्व उन्होंने अपने खलीफा मौलाना सैयद नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली) को अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी नियुक्त किया और खानकाह में संचित सभी सम्पत्ति गरीबों के लिए लुटा दी, एक दाना तक न रखा । भाण्डार का भावी अधिकारी अपनी बहन के पोते, अर्थात् ख्वाजः सैयद मुहम्मद के पुत्र रफीउद्दीन को बनाया ।^४ शेख निजामुद्दीन चिश्ती की वसीयत के अनुसार उनके जनाजे के आगे-आगे कव्वाल शेख सादी की यह गजल गाते हुए चल रहे थे :

ऐ तमाशागाहे आलम रूप तू, तू कुजा बहरे तमाशा भी रवी ।

मुहम्मद तुगलक ने जनाजे में बड़ी देर तक कन्धा लगाया, जनाजे की नमाज शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी ने पढाई । दिल्ली के हजारों सूफी, फकीर और अमीर जनाजे के साथ रोते हुए चल रहे थे । जो लोग संगीत सुनना इस्लाम के विरुद्ध समझते थे, वे भी कव्वाली सुनते हुए जनाजे के साथ चल रहे थे ।^५

१. चेहलरोजः, पृ० ३२६-३३० ।

२. उपरिवत्, पृ० ३३३ ।

३. ख्वा० ह० नि०, पृ० ३२६ ।

४. चेहलरोजः, पृ० ३३३ ।

५. उपरिवत्, पृ० ३३७ ।

निजामुद्दीन के तीजे के दिन भी मुहम्मद तुगलक आया। उसने सब प्रबन्ध के विषय में पूछताछ की। प्रसंगवश ख्वाज. सैयद मुहम्मद इमाम ने मुहम्मद तुगलक से कहा कि स्वर्गीय शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कई बार इतने अच्छे शब्दों में मुहम्मद तुगलक की प्रशंसा की, जितने अच्छे शब्दों में अन्य किसी बादशाह की भी प्रशंसा नहीं की। मुहम्मद तुगलक ने कहा कि हजरत की दुआ ने सदा साथ दिया है।^१

इस दृष्टि से हम देखते हैं कि कैकुबाद से गयासुद्दीन तुगलक तक के काल में शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव या तो दिल्ली के बादशाह पर रहा या उनके दरबारियों पर। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के भक्त बादशाहों में कैकुबाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक कहे जा सकते हैं और विरोधियों में कुतुबुद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक। कुतुबुद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक दोनों की ही मृत्यु के पड़्यन्तों में अंगरेज-इतिहासकार शेख निजामुद्दीन चिश्ती की योजना देखते हैं।

निजामुद्दीन चिश्ती और खुसरो :

शेख निजामुद्दीन चिश्ती अपने युग की समस्त विद्याओं के पण्डित थे। वे गणित में भी निष्णात थे, संगीत जिसका अंग समझा जाता था। जफर (भविष्य बतानेवाला एक अरब-शास्त्र) की शिक्षा उन्होंने ख्वाज. सैयद मुहम्मद इमाम, अमीर खुसरो और हरदेव को गयासुद्दीन के राज्यकाल में दी थी। अमीर खुसरो और हमन अला सजरी बचपन से ही निजामुद्दीन के मुरीद और शिष्य थे, क्योंकि खिलाफत मिलने से पूर्व और पश्चात् पर्याप्त समय तक शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आय का साधन अध्यापन था।

अमीर खुसरो बहुत छोटी आयु में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद हो गये थे। शेख निजामुद्दीन जब (सन् १२६१ ई० में) अजोधन से बाबा फरीद के प्रतिनिधि (तेईस वर्ष की अवस्था में) होकर आये, तब शेख नजीबुद्दीन मुतवक़ल के मकान के पास रहते थे। अमीर खुसरो के पिता अमीर सैफुद्दीन महमूद के मन में यह इच्छा हुई कि मैं अमीर खुसरो और उनके बड़े भाई को शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद कराऊँ। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मकान के पास पहुँचकर अमीर खुसरो ने अपने पिता से कहा कि आप मेरे भाई को लेकर अन्दर जाइए और मुझे बाहर रहने की अनुमति दीजिए। उनके पिता ने ऐसा ही किया। खुसरो ने बाहर बैठे-बैठे शेख निजामुद्दीन चिश्ती को मन-ही-मन सम्बोधित करके एक 'शेर' की रचना की, जिसका अर्थ है :

“तू ऐसा बादशाह है कि अगर तेरे महल के कंगूरे पर कबूतर आकर बैठे, तो वह तेरे अनुग्रह से बाज हो जाये। एक प्रार्थी तेरे द्वार पर आया है, वह अन्दर आये या लौट जाये?”

अमीर खुसरो ने सोचा कि यदि शेख निजामुद्दीन चिश्ती सिद्ध हैं, तो मेरे मन का भाव जानकर स्वयं मुझे अन्दर बुला लेंगे।

थोड़ी देर के बाद निजामुद्दीन चिश्ती के एक सेवक ने बाहर आकर खुसरो से पूछा, क्या तुम तुर्क हो ? खुसरो के 'हाँ' कहने पर सेवक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की ओर से खुसरो को एक शेर सुनाया, जिसका भावार्थ है :

‘सत्य के क्षेत्र के वीर, अन्दर चला आ, जिससे कि कुछ समय हमारा विश्वसनीय और सहचर बन जा । यदि आनेवाला नासमझ है, तो जिस मार्ग से आया है, उसी से लौट जाये ।’

खुसरो तत्काल अन्दर गये और उन्होंने दौड़कर शेख निजामुद्दीन चिश्ती के चरणों में सिर रख दिया । शेख साहब ने खुसरो से कहा :

“आ जा, आ जा, ऐ मर्दे हकीकत आ जा, एक दम के लिए हमारा हमराज बन जा ।”

यह सुनते ही अमीर खुसरो ने मुरीद होने की प्रार्थना की, शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उन्हें तत्काल मुरीद कर लिया ।

कुछ ही दिनों के पश्चात् हजरत अमीर खुसरो के पिता का स्वर्गवास हो गया, उसके पश्चात् भी अमीर खुसरो शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में निरन्तर उपस्थित होते रहे ।^१

एक बार हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने अमीर खुसरो से कहा था :

“मैं सबसे तंग हो जाता हूँ, यहाँतक कि अपने-आप से भी तंग हो जाता हूँ, परन्तु तुझसे कभी कोई तंग नहीं होता ।”

एक अन्य अवसर पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती खुसरो से बोले :

“मेरी सलामती की दुआ माँग, क्योंकि तेरी सलामती मेरी सलामती पर मुनहसर है । तू मेरे बाद जल्द ही दुनिया से रुखसत हो जायगा । यह भी दुआ कर कि लोग तुझे मेरे करीब ही दफन करे ।”

निजामुद्दीन हजरत अमीर खुसरो को ‘तुर्क अल्लाह’ कहकर पुकारते थे । पत्रों में भी ‘तुर्क अल्लाह’ लिखते थे ।

अपनी एक रुबाई में शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अमीर खुसरो के विषय में कहा है :

“गद्य और पद्य लिखने में अनुपम खुसरो काव्योक्तियों का सम्राट् है ।”^२

✓ शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने एक बार अमीर खुसरो को सम्मति दी थी कि अपने काव्य में इस्फहान के कवियों का रंग रखे, अर्थात् उसमें प्रेम और भक्ति प्रधान हो । अमीर खुसरो ने इस सम्मति के अनुसार आचरण किया और वे लोकप्रिय हुए ।

एक दिन खुसरो के काव्य से प्रसन्न होकर शेख निजामुद्दीन ने कहा कि माँग, क्या माँगता है ? अमीर खुसरो ने कहा, अपने काव्य में माधुर्य चाहता हूँ । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपनी चारपाई के नीचे रखा हुआ शक्कर-भरा थाल खुसरो से मँगवाया और उस

१. चेहलरोजः, पृ० २६६-३०१ ।

२. उपरिवत्, पृ० ४०२-४०३ ।

थाल में से थोड़ी-सी शक्कर अमीर खुसरो को खिलाई और वह थाल अमीर खुसरो के सिर पर रख दिया। उस समय से खुसरो के काव्य में माधुर्य और सरसता आ गई।

अमीर खुसरो ने अपना दीवान 'तुहफतुस्सग्र' और दूसरा दीवान 'निहायतुल् कमाल' मौलाना काजी भाजुद्दीन पायचा की मारफत शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में प्रस्तुत किया था। उसके बाद वे निरन्तर शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में, जो भी नया ग्रन्थ लिखते, प्रस्तुत करते। शेख निजामुद्दीन चिश्ती आशीर्वाद देते और कही-कही सुधार भी करते थे।^१

एक बार शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा : "यदि मेरे तुर्क (खुसरो) को मुझसे अलग करने के लिए मेरे माथे पर आरा रख दिया जाय, तो भी मैं अपने तुर्क को अलग न करूँगा।"

वे खुशी से बोले : "मैं 'तू' हो गया, तू 'मैं' हो गया, मैं शरीर हो गया, तू प्राण हो गया।"

यह सुनते ही खुसरो ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के चरण पकड़कर कहा : "जिमसे कि बाद में कोई यह न कह सके कि 'तू' और है और 'मैं' और हूँ।"^३

एक बार निजामुद्दीन चिश्ती ने हरदेव, ख्वाज. हसन संजरी, अमीर खुसरो, ख्वाज सैयद मुहम्मद, ख्वाज. सैयद मूसा, ख्वाज. सैयद रफीउद्दीन हारून, सम्भलदेव, सीतलदेव एवं जीतलदेव को बुलाया और कहा कि तुम सब मिलकर एक भाषा बनाओ, जिममें भारतीय हिन्दू और विदेश से आये हुए मुसलमान परस्पर विचार-विनिमय और लेन-देन करें। निजामुद्दीन औलिया ख्वाज. मुहम्मद और अमीर खुसरो से यह बात पहले भी कह चुके थे। उन्होंने कहा कि हम आपके आदेश के अनुसार आचरण कर रहे हैं। अमीर खुसरो ने यह भी कहा कि मैं बच्चों की शिक्षा के लिए एक पुस्तक लिख रहा हूँ, जिमका प्रस्तावित नाम 'खालक बारी' है। अमीर खुसरो ने उस पुस्तक की कुछ पक्तियाँ भी सुनाई। सुनकर हजरत निजामुद्दीन प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि यह बहुत उपयोगी पुस्तक है, परन्तु ऐसी चीजें भी हिन्दी में लिखो, जिन्हे लोग गाया करें। तत्पश्चात् सैयद मुहम्मद से कहा कि तुम और अमीर खुसरो संगीत के मर्मज्ञ हो, अतः ऐसे गीत भली भाँति तैयार कर सकते हो। सैयद रफीउद्दीन हारून, ख्वाज. सैयद मूसा और ख्वाज. हसन संजरी को भी यही आदेश दिया। उपर्युक्त चारों हिन्दुओं को भी यही आदेश हुआ। इसके बाद हजरत औलिया ने कहा कि आजकल हमारी फारसी और खुसरो की तुर्की भाषा में हिन्दुओं की बोलचाल के अनेक शब्द आ गये हैं, घरों और गोष्ठियों में भी लोग हिन्दी के शब्द बोलने लगे हैं, परन्तु कुछ लोग फारसी, अरबी और तुर्की में हिन्दी-शब्दों का मिश्रण ठीक

१. संस्कृत औलिया, पृ० २६६।

२. "मन तू शुद्धम् तू मन शुद्धी, मन तन शुद्धम् तू जाँ शुद्धी,

ताकस न गोयद बाद अर्जों मय दीगरम् तू दीगरी।"—चेहलरोजः, पृ० २१३।

नहीं समझते । ऐसे लोगों को समझाया जाना चाहिए कि उनके राज्य का लाभ इसी में है कि वे भारतीयों को अपनी बात समझा सकें और उनकी बात समझ सकें । यह तभी सम्भव होगा, जब हठ छोड़कर वे हिन्दी बोलचाल को बढ़ावा दें ।^१

अमीर खुसरो को शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने आदेश दिया था कि वे हिन्दी-भाषा में काव्य-रचना किया करें, खुसरो ने एक बार निजामुद्दीन चिश्ती को पूर्वी हिन्दी का भी अपना काव्य सुनाया था ।^२

निजामुद्दीन और संगीत :

निजामुद्दीन चिश्ती के संगीत-गुरु कौन थे ? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है, परन्तु भावमग्न होकर ये नृत्य करते थे, कव्वाली की परम्परा को देखते हुए निश्चित है कि यह नृत्य असंगत या लयविहीन गान-विक्षेप कदापि नहीं हो सकता था ।

निजामुद्दीन चिश्ती सन् १२५७ ई० में पाकपट्टन (अजोधन) पहुँचे और अपने पीर की सेवा में चार वर्ष रहे । वहाँ ये ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम के पिता और बाबा फरीद के दामाद मौलाना ख्वाजाः बदरुद्दीन इसहाक से शिक्षा भी ग्रहण करते थे । शेख बदरुद्दीन ने समस्त विद्याओं और कलाओं की शिक्षा दिल्ली में ली थी और वे बाबा फरीद की कृपा से सभी विषयों में पारदर्शी हुए थे । बाबा फरीद के आदेश से ही ख्वाजः बदरुद्दीन इसहाक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को शिक्षा देना आरम्भ किया था ।

इस स्थिति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती को गणित के एक अंग संगीत की शिक्षा ख्वाजः बदरुद्दीन इसहाक से पारम्परिक रूप में मिली होगी ।

ख्वाजः बदरुद्दीन इसहाक के पुत्र ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम और ख्वाजः सैयद मूसा दोनों ही संगीत के महान् मर्मज्ञ और गायक थे । अपने पिता की मृत्यु के समय ये दोनों भाई छोटे थे । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन दोनों को और इनकी माँ को दिल्ली बुला लिया था । इन दोनों भाइयों की शिक्षा-दीक्षा निजामुद्दीन चिश्ती के संरक्षण में हुई । यह स्थिति भी सिद्ध करती है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती को संगीत की शिक्षा अपनी गुरु-परम्परा से ही मिली थी ।

निजामुद्दीन चिश्ती के पीर बाबा फरीद की शिक्षा-दीक्षा मुलतान में हुई थी, जो उस युग में सभी विद्याओं का केन्द्र था । स्पष्ट है कि बाबा फरीद को गणित और उसके अंग संगीत की भी शिक्षा मिली होगी । यही शिक्षा पारम्परिक रूप में शेख निजामुद्दीन चिश्ती तक आई होगी ।

अमीर खुसरो, ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम और सैयद मूसा के संगीत-गुरुओं की चर्चा पृथक् रूप में कहीं न मिलना और इनका महान् संगीतमर्मज्ञ होना यह सिद्ध करता है कि संगीत इन लोगों की परम्परा में था ।

१. चेहलरोजः, पृ० १८४ ।

२. उपरिचत्, पृ० २७ ।

निजामुद्दीन चिश्ती के जीवन की संगीत-विषयक कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ इस प्रकार हैं :

हरदेव ने ख्वाजः मुहम्मद को श्रीकृष्ण-चरित्र सुनाया था। यह भी कहा था कि ब्रह्म एक है। इसके अतिरिक्त सगुण और निर्गुण रूप के विषय में भी कुछ बताया था। बहुदेववाद की भी सुनी-सुनाई चर्चा की थी। उसे हिन्दू-धर्म के विषय में तात्त्विक ज्ञान न था, अतः वह ख्वाजः मुहम्मद की कुछ शंकाओं का समाधान न कर सका।^१

अगले दिन प्रातः काल हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने इन दोनों को बुलाया। जब ये दोनों पहुँचे, तब वे अपने खास मुरीद और खलीफा हजरत नसीरुद्दीन महमूद (हजरत चिराग देहली) से कुछ कह रहे थे। वे इन दोनों के देखकर मुस्कराये और हाथ के सकेत से इन दोनों को बुलाकर समीप बिठा लिया और बोले, हम मुसलमान लोग ईश्वर के गुणों का उससे पृथक् नहीं समझते। हमलोगों को यह विचार करने का अवकाश नहीं कि हिन्दुओं का विश्वास क्या है और मुसलमानों का क्या। हम तो इसी से आश्चर्यचकित हैं कि नदी 'हुवाब' (बुलबुले) में कैसे समा गई। हम ईश्वर में हैं और वह हममें है, सुगन्ध गुलाब में भी है और उमके बाहर भी। सुगन्ध गुलाब से पृथक् नहीं है, परन्तु पृथक् भी है। गणित में जो 'मद' की रेखा खींची जाती है, वह व्यर्थ भी है और सार्थक भी। लिपि बोलती भी है और मूक भी है। हमलोग दुःख में रोते हैं, सुख से हँसते हैं, परन्तु हमारा यह हँसना और रोना नींद में मग्न बच्चे के रोने और हँसने के समान है, जो वस्तुतः न तो रोता है और न हँसता है। वास्तविक सत्य आत्मबोध है। हमलोग बहिर्मुख रहते हैं और आत्मबोध की उपेक्षा भी करते हैं। हम विद्यमान हैं भी और नहीं भी। हम व्यर्थ भी हैं, सार्थक भी। यह दृश्यमान जगत् एक ही शक्ति के नाना रूपों की अभिव्यक्ति है।

यह सुनकर सभी के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलकने लगे। हजरत निजामुद्दीन औलिया ने चुपचाप रहकर हरदेव को देखा। उनकी आँखों में भी प्रेमाश्रु थे। उन आँसुओं में हरदेव को समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई दिया। हरदेव उनकी ओर बढ़ना चाहा, परन्तु वह किसी आन्तरिक प्रवृत्ति से नाचने लगा, उसे पृथ्वी और आकाश नाचते प्रतीत हुए। यद्यपि हरदेव को पूरा होश था, तथापि वह अपने नाचने का कारण न जानता था। सभी उपस्थित सज्जन खड़े हो गये। ख्वाजः मुहम्मद ने बड़े अच्छे स्वर में शेख नसीरुद्दीन का 'मक्तअ' गाना आरम्भ कर दिया।

दर सीनः नसीरुद्दीं जुज्ज इश्क नमी गुज्जद,

ईं तर्फः तमाशाबीं दरिया ब हुवाब अन्दर।

ख्वाजः मुहम्मद 'जुज्ज इश्क नमी गुज्जद' को पुनः-पुनः दुहराते थे। वे बहुत सुन्दर गा रहे थे। निजामुद्दीन औलिया की आँखों से आँसू बह रहे थे। हरदेव की टकटकी

उनकी ओर लगी थी और उसे हजरत औलिया के आँसुओं में अवर्णनीय दृश्य दिखाई दे रहे थे। उसने अपने देश, माता-पिता इत्यादि को देखा। वंशीवादन करते हुए श्रीकृष्ण को देखा, जिनकी वशी के स्वर ख्वाज मुहम्मद के गाने के स्वरों में मिल रहे थे। हरदेव को ऐसा लगता था कि भगवान् श्रीकृष्ण मुरली भी बजा रहे हैं और उसके साथ नाच भी रहे हैं। उन सबका प्रतिबिम्ब भी निजामुद्दीन औलिया के आँसुओं में हरदेव को दिखाई दे रहा था। उसे भगवान् कृष्ण भी 'जुज इश्क नमी गुजद' दुहराते हुए दिखाई दिये।^१

थोड़ी देर बाद नाचते-नाचते हरदेव बेहोश हो गया। होश में आने पर शेख नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली) और ख्वाज. महमूद सहारा देकर उसे ले गये। ख्वाज. महमूद के घर पहुँचने पर भी हरदेव को 'जुज इश्क नमी गुजद' सभी ओर से सुनाई देता रहा। कुछ देर बाद शेख नसीरुद्दीन महमूद चले गये और ख्वाज. मुहम्मद के छोटे भाई मुहम्मद मूसा ने कुरान शरीफ की उन आयतों का सुन्दर पाठ करना आरम्भ किया, जिनमें पैगम्बर यूसुफ और जुलेखा के प्रेम का वर्णन है। प्रेमविषयक वर्णन से हरदेव भावावेश में आया था, अतः उसी विषय का गान उसके समक्ष किया था। यदि कोई कव्वाल विषयान्तर करके भावमग्न व्यक्ति के सम्मुख गाये, तो भावमग्न व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है।^२

एक बार निजामुद्दीन चिश्ती गयासपुर से हजरत ख्वाज. कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की समाधि के दर्शन के लिए जा रहे थे। ख्वाज. मुहम्मद, उनके भाई सैयद मूसा, अमीर खुसरो, ख्वाज. हसन सजरी और मौलाना नसीरुद्दीन महमूद भी साथ थे। रास्ते में एक कुआँ पड़ा। चरस से खेत में पानी दिया जा रहा था। पानी उलीचनेवाला कुएँ की चरखी के पास खड़ा था। जब डोल कुएँ से बाहर आता, तब चरखी के पास खड़ा हुआ हिन्दू उच्च स्वर में गाता : 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो।' यह सुनकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाज. मुहम्मद और अमीर खुसरो से इस वाक्य का अर्थ पूछा। उन दोनों ने कहा कि इस वाक्य का अर्थ है कि 'पानी निकलो और राम को मनाओ'। यह सुनते ही शेख निजामुद्दीन औलिया ने उच्च स्वर से 'अल्लाह' कहा और वे भावमग्न होकर नृत्य करने लगे। यह देखते ही ख्वाज. मुहम्मद, अमीर खुसरो और हसन अला संजरी ने मिलकर 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' गाना आरम्भ कर दिया और इस वाक्य के विषय से सम्बद्ध अरबी और फारसी के शेर भी मिलते-रहे। शेख निजामुद्दीन चिश्ती और मौलाना शेख नसीरुद्दीन महमूद भी देर तक भावमग्न रहे और भी अनेक व्यक्ति भावमग्न रहे। हजरत औलिया उसी कुएँ के पास ठहर गये, गाना होता रहा। ख्वाज. इकबाल खानकाह से फर्श और खाने का सामान ले आये। खानकाह के बहुत-से कव्वाल भी आ गये। खाने और नमाज के लिए सभा स्थगित हो जाती थी और पुनः आरम्भ हो जाती थी। हसन सजरी और अमीर खुसरो शाही नौकरी के कारण चले गये। अवशिष्ट व्यक्ति हजरत औलिया के साथ तीन रात और तीन दिन वही

१. चेहलरोजः, पृ० ७८।

२. उपरिचत्, पृ० ७६।

रहे। 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' के साथ नाचना और गाना होता रहा। तीन दिन के बाद ख्वाजः कुतुब साहब की समाधि के दर्शन के लिए प्रस्थान हुआ।^१

जब हजरत निजामुद्दीन ख्वाजः कुतुब की समाधि पर उपस्थित हुए और उनकी 'जानमाज़' (वह बिछौना, जिसपर बैठकर नमाज पढ़ी जाती है) समाधि की पायेंत के नीचे बिछाई गई। उन्होंने नमाज पढ़ी और ख्वाजः मुहम्मद और सैयद मूसा को बुलाकर उनके सामने एक 'आयत' पढ़कर कहा कि इस 'आयत' के साथ 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' भी मिलाकर गाओ। ऐसा किये जाने पर निजामुद्दीन औलिया पुनः भावमग्न हो गये और वे खड़े होकर नाचने लगे। शान्त होने पर उन्होंने ख्वाजः मुहम्मद और सैयद मूसा को पास बिठाकर कहा कि कुएँवाला कुएँ की गहराई से पानी ऊपर लाता था और बाहर के सूखे वृक्षों को जल से सींचकर उन्हें जीवन-दान देता था। ऐसे ही हमें भी अपनी साँस के अन्दर ईश्वर की चर्चा करनी चाहिए। जब हम अन्दर से साँस बाहर लाये और बाहर से अन्दर ले जाये, तो इसमें ईश्वर का स्मरण करें और यह समझें कि अन्दर से ईश्वर-स्मरण के साथ जो साँस बाहर आती है, वह सूखे खेतों को हरा करती है।^२

वसन्तपंचमी के दिन हरदेव ने देखा कि हिन्दू लोग अपने-अपने हाथ में सरसों के फूल लिये कालिकाजी के मन्दिर की ओर जा रहे हैं। उसके मन में भी मेले में जाने की इच्छा हुई, परन्तु वह सकोच और भय के कारण वहाँ न गया। इतने में ही उसे हजरत निजामुद्दीन औलिया की खानकाह की ओर से अमीर खुसरो आते दिखाई दिये। उनके हाथ में भी सरसों के फूल थे। वे हजरत औलिया को समर्पित करने के लिए ये फूल लाये थे, परन्तु वे 'चार यारों के चबूतरे' पर गये हुए थे, जहाँ उनकी बहन के पोते ख्वाजा संयद तकीउद्दीन नूह की समाधि थी। अमीर खुसरो ख्वाजः मुहम्मद, ख्वाजा सैयद मूसा और हरदेव निजामुद्दीन औलिया की सेवा में पहुँचे। वे एक पत्थर पर बैठे थे, उनका सिर झुका हुआ था और वे भूमि की ओर देख रहे थे। अमीर खुसरो ने अपनी टोपी टेढ़ी की और नृत्य की मुद्रा में झूमने लगे। हजरत औलिया ने देखा और वे मुस्कराये। अमीर खुसरो ने सरसों के फूल उनके चरणों में रख दिये और कहा : 'अरब यार, तोरी बसन्त मनाई।' आज हिन्दू अपने देवता पर फूल चढ़ाने जा रहे हैं, मैं भी अपने उपास्य पर सरसों के फूल चढ़ाने आया हूँ। यह कहकर अमीर खुसरो ने एक फारसी शेर गाना आरम्भ किया। ख्वाजः सैयद मुहम्मद और सैयद मूसा भी उनके साथ गाने लगे। हजरत निजामुद्दीन औलिया के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये और वे खड़े होकर नृत्य करने लगे। वे तीनों उस शेर के साथ हिन्दी और फारसी के शेर मिलाते जाते थे। थोड़ी देर के बाद शान्ति होने पर हजरत औलिया ने अमीर खुसरो के लाये हुए फूल पृथ्वी से उठा लिये, वे सबको साथ लेकर नूर की समाधि पर गये और उन्होंने वे फूल समाधि पर चढ़ा दिये।^३

१. चेहलरोजः, पृ० ८१-८२।

२. उपरिबत्, पृ० ८३।

३. उपरिबत्, पृ० २०६-२१२।

हैदरिया-परम्परा के सूफियों को खानकाह से निमन्त्रण आया। वहाँ कव्वाली की गोष्ठी थी। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाजः सैयद मुहम्मद, उनके भाई तथा उस्ताद हरदेव को वहाँ चलने का आदेश भेजा।

भोजन इत्यादि से निवृत्त होने के पश्चात् पचास-साठ साथियों के साथ हजरत निजामुद्दीन चिश्ती खानकाह में पहुँचे। वहाँ अनेक व्यक्ति एकत्र थे। कव्वाली आरम्भ हुई, परन्तु किसी को कुछ आनन्द न आया। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा, कव्वाली सुनने की तीन शर्तें हैं : अखवान, मकान और ज़मान। सुननेवालों के विचार एक जैसे हों और वे सुनने के लिए उत्सुक हों, यह 'अखवान' है। कव्वाली सुनने का स्थान आम सड़क या मस्जिद के समीप न हो, जिससे कि श्रोताओं को एकाग्रता में विघ्न पड़े, यह 'मकान' है। खाने, सोने अथवा नमाज का समय न हो, यह 'ज़मान' है। इस समय तीनों ही विरोधी स्थितियाँ विद्यमान हैं, फिर भी गोष्ठी में आनन्द नहीं आया। ऐसी स्थिति में सन्तों की चर्चा की जाय और सुननेवाले भावमग्न हो जायें, तो आनन्द अवश्य आयगा। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने पहले सन्तों के सस्मरण सुनाने आरम्भ किये और ख्वाज. मुहम्मद को संकेत किया कि वे गोष्ठी में अन्दर आकर बैठे। ख्वाजः मुहम्मद न तो सामान्य गोष्ठीयों में गाते थे और न नमाज पढ़ाते थे, परन्तु हजरत के संकेत पर उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरों में गाना आरम्भ किया और सभी तड़पने लगे। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने भावमग्न होकर नृत्य किया। हैदरिया-परम्परा के हजरत अली जोबेली आदि भी नाचने लगे और हरदेव भी नाचा।

अन्त में, हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा कि यह हजरत शेखुल आलम की आत्मा का प्रभाव था कि उनके दौहित्र के गाने से हम सबको आनन्द आया। मेरे गुरु का देवता संगीत भली भाँति जानता है और उसके हृदय में भक्ति भी है।^१

खुसरो और तत्कालीन परिस्थितियाँ

खुसरो का जन्म जिस युग (सन् १२५४ ई०) में हुआ, उस समय भारत में रक्त की दृष्टि से मुसलमानों के निम्नांकित प्रकार थे :

१. वे मुसलमान, जो मुस्लिम देशों से दिल्ली में आकर बसे थे और जिनके रक्त में भारतीय रक्त का मिश्रण नहीं हुआ था।
२. वे मुसलमान, जिनके पिता विदेशी रक्त के थे और जिनकी माताएँ भारतीय थीं।
३. वे मुसलमान, जिनका रक्त विशुद्ध भारतीय था।
४. वे मुसलमान, जो मिश्रित रक्तवाले भारतीय मुसलमानों की सन्तान थे।

इन प्रकारों में वे मुसलमान स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे, जिनका रक्त अमिश्रित था। हिन्दू माँ और मुस्लिम पिता की सन्तान मुसलमानों का एक विशिष्ट वर्ग बन गया था। दिल्ली-सम्राट् कैकुवाद और अमीर खुसरो इसी वर्ग में थे। अमीर खुसरो

१. चेहलरोजः, पृ० २२३।

कैकुबाद के विशिष्ट कृपापात्र इसलिए थे कि दोनों की माताएँ हिन्दू थीं। मुहम्मद तुगलक की माँ भी हिन्दू थी और पत्नी भी। गयासुद्दीन की माँ भी हिन्दू थी। मुहम्मद तुगलक ने अपनी कन्या का विवाह देवगिरि-राजवंश के एक राजकुमार हरदेव के साथ किया था।

मुस्लिम आतंक के कारण भले ही इस वर्ग के मुसलमानों की जीभ में ताला पड़ा रहता हो, परन्तु मातृपक्ष के भारतीय होने के कारण वे भारतभूमि, भारतीय आचार-विचार, रीति-नीति इत्यादि का सर्वथा बहिष्कार नहीं कर सकते थे और न ऐसा करने की चेष्टा इन्हें अच्छी प्रतीत होती थी।

जिन मुसलमानों का रक्त सर्वथा भारतीय था, वे बलात् धर्मच्युत होने पर भी हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखते रहते थे और इस कार्य के लिए यथामुम्व प्रयत्न भी करते थे। बलात् मुसलमान बनाये हुए खुसरो खा (गुजरात की परिवार नामक एक संगीतजीवी हिन्दू-जाति के सुन्दर युवक) के द्वारा कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या करके दिल्ली का सम्राट् बनना और हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने के विषय में अहमद अयाज (राजकुमार हरदेव) से विचार-विनिमय करना इस वर्ग के मुसलमानों की प्रवृत्ति के परिचायक है।

यद्यपि इस्लाम में ऊँच-नीच की भावना नहीं, तथापि कुतुबुद्दीन खिलजी के द्वारा खुसरो खाँ को सेनापति की पदवी देकर सैनिक अभियानों पर भेजना अमिश्रित रक्त के अमीरों को अच्छा नहीं लगता था।

मिश्रित रक्त के मुसलमान सूफियों की ओर अधिक आकृष्ट होते थे, क्योंकि इनका दृष्टिकोण मौलवियों से भिन्न था। सूफी फकीर भारत की लोकभाषा को प्रोत्साहन देते थे। उनके खलीफा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने विदेशी होने पर भी अपने खलीफा के चरण-चिह्नों पर चलकर कव्वाली को आश्रय दिया और उनका स्वर्गवास भी कव्वाली सुनते-सुनते हुआ। उनके खलीफा बाबा फरीद काकी का कार्यक्षेत्र पंजाब रहा और वे भी संगीतानुरागी रहे।

सूफी लोग ईश्वर को सर्वव्यापी मानते थे, जबकि मौलवी लोग ईश्वर को सर्वज्ञ तो मानते थे, सर्वव्यापी नहीं। सूफी लोग 'अनलहक' (मैं ब्रह्म हूँ) कहते थे, जबकि मौलवी लोग मनुष्य को ईश्वर की सृष्टि मानते थे, अज्ञ नहीं। सूफी लोग प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति का साधन और 'पीर' को ईश्वर तक पहुँचानेवाला मानते थे, परन्तु मौलवी लोगों की दृष्टि में 'दीक्षा' जैसी वस्तु का कोई महत्त्व न था और गुरु के समक्ष नतमस्तक होना वे इस्लाम-विरुद्ध कृत्य समझते थे। प्रेम का कोई महत्त्व मौलवियों के लिए न था।

सूफी फकीरों की खानकाहो (मठों) तक प्रत्येक व्यक्ति पहुँच सकता था। उनके विचार भारतीय भक्तिमार्ग और वेदान्त के विचारों से मिलते थे, इसलिए भारतीय हिन्दू एवं भारतीय नारियों की, मुसलमानों से उत्पन्न सन्तानें सूफियों की ओर आकृष्ट होती थी।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती का रंग गेहुँआ था और वे बदायूँ में उत्पन्न हुए, जो ब्रज-प्रदेश से अधिक दूर नहीं है। निजामुद्दीन चिश्ती सोलह वर्ष की आयु तक बदायूँ में रहे। गंगा-यमुना के दोआब की संस्कृति में पलने-बढ़ने और घुलने-मिलने का अवसर उन्हें मिला, अतः उनका भारत-प्रेम अपनी जन्मभूमि की देन था।

खुसरो पर इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा था। खुसरो ब्रजभूमि के पटियाली स्थान में उत्पन्न हुए। उनके हृदय में ब्राह्मणों की विद्या के प्रति सम्मान था। वे हिन्दू-धर्म की विशिष्टताओं से परिचित थे, हिन्दू-त्योहारों से उन्हें मोह था। वसन्त जैसे त्योहारों का प्रवेश चिश्ती-परम्परा में उन्हीं के कारण हुआ था। भारतीय संगीत के प्रचलित रूप से उनका प्रगाढ़ परिचय था। वे थोड़ी-बहुत संस्कृत जानते थे। मुसलमान लोग उन्हें 'बुतपरस्त' कहते थे।

ऐसी परिस्थितियों में उन्हें अपना काम करना था। हिन्दुओं की दृष्टि में वे म्लेच्छ थे और मुसलमानों की दृष्टि में वे और उनके पीर निजामुद्दीन चिश्ती इस्लाम-विरोधी और हिन्दुओं के पक्षपाती थे।

चौबीस वर्ष की आयु तक खुसरो दिल्ली में रहे। वे वहाँ काव्य-रचना करते और शिक्षा लेते। निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह में कव्वाल अनेक थे। ख्वाज सैयद मुहम्मद इमाम और ख्वाज मुहम्मद जैसे संगीत-मर्मज्ञों का भी यह बाल्यकाल था। खुसरो भी अन्य विद्याओं के साथ संगीत सीखते रहे।

चौबीस वर्ष की आयु में अपने मित्र हसन अला संजरी के साथ वे बलवन के बेटे मुहम्मद सुलतान के दरबार में मुलतान चले गये और पाँच वर्ष वहाँ रहे। उस युग में इनकी ख्याति महाकवि शेख सादी तक पहुँच गई थी और शेख सादी ने इनकी भरपूर प्रशंसा की थी। मुलतान उस समय विद्याओं का केन्द्र था। जहाँ खुसरो के दादा पीर बाबा फरीद की भी शिक्षा-दीक्षा हुई थी, वहाँ के कव्वालों का निकट संसर्ग इन्हें भली भाँति प्राप्त हुआ ही होगा।

उनतीस वर्ष की आयु में मुगलों के द्वारा मुहम्मद का वध किये जाने पर ये और हसन अला संजरी मुगलों के हाथों बन्दी हुए और हिरात एव बलख में दो वर्ष रहे। इकतीस वर्ष की आयु में लौटकर बलवन के पास आये। बलवन की मृत्यु के पश्चात् अमीर अली जामदार के साथ अवध गये, जो वहाँ का सूबेदार नियुक्त हुआ था। अवधी-भाषा और रीति-नीति से सुपरिचित होने का अवसर इन्हें तभी मिला।

सन् १२८८ ई० में कैकुबाद ने इन्हें बुलाया और आश्रय दिया। यही से इनके राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का राजद्वार खुलता है। अपने पीर शेख निजामुद्दीन चिश्ती के संकेत पर इन्होंने कैकुबाद को समझाया और उसके पिता बुगरा खाँ से उसकी सन्धि कराई, जबकि कैकुबाद का मन्त्री कैकुबाद को उसके पिता के विरुद्ध भड़का।

रहा था। कैकुबाद और बुगरा खाँ की सन्धि के सम्बन्ध में खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी 'किरानुस्सादैन' लिखी।

'किरानुस्सादैन' में खुसरो ने लिखा है कि मुझे ईरानी संगीत के चार उसूलों और बारह पदों का ज्ञान है।^१

कैकुबाद की हत्या करके जलालुद्दीन खिलजी सत्तर वर्ष की आयु में बादशाह हुआ। यह निजामुद्दीन चिश्ती का भक्त था, परन्तु इसके सिर पर प्रसिद्ध सूफी सीदी मौला के वध का कलंक था। निजामुद्दीन चिश्ती उससे दूर रहे, परन्तु उसने खुसरो का सम्मान किया और उनका वेतन बढ़ा दिया। इसके युग में खुसरो 'नदीमों' (मुसलमान भाटों) के नेता थे और उनका कर्तव्य नाचनेवालियों और सुन्दर किशोरों के रूप और हाव-भाव का वर्णन करना था। वैसे इस दरबार में वे अपने पीर की 'आख' थे।

सन् १२६६ ई० में जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके अलाउद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा। इस समय अमीर खुसरो की आयु बयालीस वर्ष की थी। अलाउद्दीन ने बीस वर्ष शासन किया। यह युग अमीर खुसरो के लिए बड़ा कठिन और महत्वपूर्ण था।

अलाउद्दीन खिलजी ने एक ओर तो खुसरो का वेतन घटाकर उनके महत्त्व को कम किया। वह खुसरो का न तो विशिष्ट सम्मान ही करता था और न उनकी प्रतिष्ठा का ही ध्यान रखता था। खुसरो तो अपने 'पीर' के दूत, प्रतिनिधि या 'आख' थे। कोतवाल अलाउल्मुल्क, महामन्त्री खतीरुद्दीन, युवराज मिर्ज़ा खा और शादी खाँ तथा अन्य अमीर और सैनिक सरदार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद होने के कारण खुसरो के सहयोगी थे। जब अलाउद्दीन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और विश्व-विजय की इच्छा प्रकट की, तब उसे मार्ग पर लाने का कार्य इसी वर्ग ने किया था।

दूसरी ओर अलाउद्दीन का प्रसिद्ध सेनापति मलिक काफूर था, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी और अलाउद्दीन का प्रेमपात्र और उसे प्राणों के समान प्रिय था। जैसा पहले कहा गया, मलिक काफूर गुजरात के बाजार से एक हजार दीनार में खरीदा हुआ एक हिजड़ा था। यह कर्पूर के समान गौर होने के कारण मलिक काफूर कहलाता था। दक्षिण भारत और गुजरात की भाषाओं का इसे अच्छा ज्ञान था। यह भारतीय था और भारतीय भूगोल, रीति-नीति, आचार-विचार इत्यादि से भली भाँति परिचित था। इसी ज्ञान के बल पर यह दक्षिण भारत को अलाउद्दीन की ओर से रौदने में सफल हुआ।

मलिक काफूर उन सूफियों का मुरीद हो गया था, जो निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे। वास्तव में, वह अलाउद्दीन खिलजी और उसके वंश का विनाश करके दिल्ली का बादशाह बनना चाहता था। अलाउद्दीन खिलजी उसके रूप और सौन्दर्य पर घोर आसक्ति के कारण इस ओर से सर्वथा अन्धा हो गया था।

कूटनीतिज्ञ अमीर खुसरो ने 'तारीखे अलाई' और 'मिपतातुल्-फुतूह' जैसे इतिहास-ग्रन्थ लिखकर अलाउद्दीन खिलजी को प्रसन्न किया। अपने पीर के परम विरोधी मलिक काफूर के सफल अभियानों का वर्णन 'खजाइन्-उल्-फुतूह' में करके उसे सन्तुलित रखा।

अलाउद्दीन खिलजी को प्रसन्न करके उससे 'खुसरू-ए-शाइराँ' की पदवी पाई और दरबारी वातावरण को अपने पीर के अनुकूल रखकर 'पीर' की कृपा निरन्तर प्राप्त की।

संगीत की दृष्टि से अलाउद्दीन खिलजी के शासन में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई। गुजरात से परवार नामक एक अत्यन्त सुन्दर संगीतजीवी जाति के अनेक नर-नारियों को बन्दी करके दिल्ली लाया गया। कालान्तर में इस जाति के चालीस हजार व्यक्ति दिल्ली आ बसे। गुजरात की रानी कर्णवती बन्दिनी होकर अलाउद्दीन के अन्तःपुर में आ गई, जिसके कारण गुजराती संगीतजीवियों का प्रवेश दरबार और अन्तःपुर में हो गया। यहाँ तक कि अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र कुतुबुद्दीन खिलजी पर इस गुजराती जाति के एक सुन्दर नवयुवक का अत्यन्त प्रभाव हो गया। इस लड़के की आसक्ति में कुतुबुद्दीन खिलजी आकण्ठ मग्न हो गया। इस गुजराती नवयुवक का नाम 'खुसरो खाँ' रखा गया। अपने और अपनी जाति के अपमान की आग इसके मन में चुपचाप सुलगती रही।

गुजरातियों के आगमन के फलस्वरूप अमीर खुसरो को गुजरात में प्रचलित भारतीय संगीत और गुजराती कलाकारों से सुपरिचित होने का अवसर मिला।

दूसरी घटना देवगिरि के राजा रामचन्द्र राय का पराजित होकर दिल्ली आना और गुजरात की भूतपूर्व रानी कर्णवती की पुत्री देवलदेवी का विवाह अलाउद्दीन के युवराज खिज़्र खाँ के साथ होना है, जो निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था। इस विवाह के सम्बन्ध में खुसरो ने मसनवी 'खिज़्रनामः' लिखी है, जिससे ज्ञात होता है कि दक्षिण के अनेक संगीतज्ञ भी दिल्ली आये, जिनके साथ सम्भवतः गोपाल नायक भी आये। अलाउद्दीन खिलजी के प्रताप-वर्णन से युक्त गोपाल नायक-रचित एक ध्रुवपद प्राप्त है।

इस प्रकार ईरान, गुजरात और दक्षिण के संगीतज्ञ दिल्ली में एकत्र हो गये और अमीर खुसरो को इन सबके सम्पर्क में आने का अवसर मिला।

मलिक काफूर ने अलाउद्दीन की बेगम, खिज़्र खाँ और शादी खाँ को ग्वालियर के किले में कैद कर लिया और थोड़े ही दिनों बाद विष देकर अलाउद्दीन की हत्या भी कर दी। पैंतीस दिन बाद मलिक काफूर की हत्या करके कुतुबुद्दीन खिलजी सिंहासन पर बैठा। इस समय खुसरो की आयु इकसठ वर्ष की थी।

कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। इसलिए, दरबार में अमीर खुसरो का दायित्व बहुत अधिक बढ़ गया।

कुतुबुद्दीन खिलजी स्वयं कलाकार था और निरन्तर राग-रंग में डूबा रहता था, गुजराती नवयुवक खुसरो खाँ उसका प्राण था। और उसने खुसरो खाँ को दक्षिण-अभियान में सेना का उच्च पदाधिकारी बनाकर भेजा था।

इस स्थिति में खुसरो ने अपना ग्रन्थ 'नूह-सिपहर' लिखा, जिसमें भारत को संसार में सर्वश्रेष्ठ देश, भारतीय सगीत को संसार में सर्वोत्तम और ब्राह्मणों को 'अरस्तू' के समान बताते हुए स्वयं को सगीत की भारतीय शैली का मर्मज्ञ बताया है।^१

कुतुबुद्दीन का वध करके, खुसरो खाँ दिल्ली के तख्त पर बैठा। पाँच महीने बाद ही उसे मारकर गयासुद्दीन तुगलक ने शासन संभाला। गयासुद्दीन तुगलक मौलवियों से घिरा रहता था, यह 'वहाबी'-सम्प्रदाय का था। इसपर मुलतान की सुहरवर्दी-परम्परा का प्रभाव था और यह शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। खुसरो इसके दरबार में भी रहे और उन्होंने इसके युग में 'तुगलकनामः' लिखा।

गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिम में अपने गुप्तचर भेजकर अभद्रता कराई, काजी जियाउद्दीन के साथ सशस्त्र मिपाही भेजकर शेख मुईनुद्दीन के द्वारा एक तम्बू में आयोजित कव्वाली की मजलिम पर आक्रमण कराया, खुले दरवार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती को बुलाकर सगीत की वैधता के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ कराया और सशस्त्र एवं अभद्र मुल्लाओं की दया पर शेख निजामुद्दीन को छोड़कर अपने महल में चला गया। यह सब होने पर भी हम खुसरो को मौन पाने है, परन्तु गयासुद्दीन का पुत्र उलूग खाँ (मुहम्मद तुगलक) शेख निजामुद्दीन चिश्ती की ओर निरन्तर उन्मुख होता रहा। सम्भव है, अमीर खुसरो उसके प्रेरक रहे हों।

गयासुद्दीन तुगलक जब बंगाल के अभियान में खुसरो को साथ ले गया, तब उसके पुत्र उलूग खाँ ने हरदेव को 'मीर इमारत' बना दिया, जो नित्य सन्ध्या समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में जाता था। गयासुद्दीन तुगलक के द्वारा खुसरो को अपने साथ ले जाना इस ओर संकेत करता है कि खुसरो के माध्यम से उलूग खाँ और शेख निजामुद्दीन चिश्ती में जो सम्पर्क बना रहता है, वह टूट जाय और खुसरो की अनुपस्थिति में उलूग खाँ ने वह काम हरदेव से लेना आरम्भ कर दिया, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विश्वासपात्र के रूप में अमीर खुसरो करते थे।

गयासुद्दीन के द्वारा अपने पुत्र को हरदेव की बर्खास्तगी का आदेश दिया जाना और उलूग खाँ द्वारा इस आदेश की उपेक्षा भी इस आशका को जन्म देती है कि उलूग खाँ किसी माध्यम के द्वारा शेख निजामुद्दीन चिश्ती के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना चाहता था।

गयासुद्दीन के वध की योजना उसका पुत्र उलूग खाँ बना चुका था। गयासुद्दीन के साथ खुसरो न लौटे और अपनी जागीर पटियाली चले गये। यहाँ यह सन्देह किया जा

सकता है कि सम्भवतः, गयासुद्दीन के वध की योजना की गन्ध खुसरो को मिल गई हो और वे अपनी नीति के अनुसार तटस्थ रहे हों ।

इन्द्रप्रस्थ-मत के उद्गम और प्रसार का कारण :

अमीर खुसरो ने हरदेव से कहा था कि मेरे पिता अमीर सैफुद्दीन महमूद लाचीन नस्ल के तुर्क थे और मेरे नाना हिन्दू थे, अतः मेरी मातृभाषा हिन्दी है और पितृभाषा फारसी और तुर्की है ।^१

अमीर खुसरो की माँ पटियाली (व्रजप्रदेश) की कन्या थी, अतः उनकी गोद में खेले हुए अमीर खुसरो व्रज की भाषा, आचार-विचार, रीति-नीति इत्यादि से भली भाँति परिचित थे । ब्राह्मणों के सम्पर्क के कारण उन्हें हिन्दू-धर्म की विशेषताओं का भी ज्ञान था । वे व्रज के लोक-संगीत से भी परिचित थे । ईरानी संगीत के सिद्धान्त और व्यवहार से प्रगाढ़ परिचय भी उन्हें प्राप्त था । गुजरात और दक्षिण के संगीतज्ञों से भी वे घुले-मिले थे । भारतीय संगीत की 'मार्ग' (वेदाश्रित और अपरिवर्तनीय)-पद्धति से सम्भवतः वे परिचित न थे; क्योंकि भारतीय आचार्यों ने 'विकार' की आशका से मार्ग-संगीत के 'ग्रामरागो' का, मनोरंजन के लिए, प्रयोग निषिद्ध कर दिया था ।^२ ब्रह्महत्या जैसे पापों तक से भी मुक्ति दिलानेवाली 'जातियाँ' (रागजननी स्वरमालिकाएँ) मूर्तिभंजक और मन्दिरध्वंसी म्लेच्छों को नहीं बताई जा सकती थी । अतः, खुसरो को भारतीय संगीत की देशी पद्धति के परिचय से ही सन्तुष्ट होना पड़ा होगा ।

ग्यारहवीं शती में मुसलमानों के आक्रमण से उत्पन्न अस्थिरता के कारण भारत की संगीत-पद्धति बिखर भी चुकी थी, जिसे एकत्र सँजोने की चेष्टा तेरहवीं शती में कश्मीरी पण्डित शाङ्गदेव ने राजकुमार हरदेव के जन्मस्थान देवगिरि में की थी,^३ परन्तु शाङ्गदेव के ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' से उस समय उत्तर भारत परिचित न था । शाङ्गदेव के आश्रयदाता देवगिरि-नरेश सिंहण (राज्यकाल : सन् १२१०-१२१७ ई०) थे, जिनकी मृत्यु अमीर खुसरो के जन्मकाल (सन् १२५४ ई०) से केवल सैंतीस वर्ष पहले हुई थी ।

इन परिस्थितियों में भारतीय संगीत के देशी रूप से परिचित होने तथा ईरानी और भारतीय संगीत की विशेषताओं को समझने के लिए अमीर खुसरो खुरासान और भारत के कलाकारों में प्रतिस्पर्धा भी कराते थे । इस तथ्य की पुष्टि 'इजाजे खुसरवी' नामक ग्रन्थ से होती है ।^४

१. चेहलरोजः, पृ० २८ ।

२. 'शाङ्गदेवोदयात्पूर्व खिला सङ्गीतपद्धतिः ।

अभूत्सा शाङ्गदेवेन स्फुटमेकपदीकृता ॥'—सिंहभूपाल, सुधानिधि, पृ० ६ ।

३. खुसरो : वहीद, पृ० २३८ ।

खुसरो ईरानी रागों को भी भारत में प्रचलित करना चाहते थे और भारतीय रागों को मुसलमानों में लोकप्रिय बनाना चाहते थे। जहाँ उनका कार्य मुसलमानों के 'अहं' को सन्तुष्ट करना था, वहाँ वे भारतीय रागों को भी खानकाहों के निकट लाना चाहते थे। जिस प्रकार 'खालिक वारी' नामक कोश में उन्होंने फारसी और ब्रजभाषा के पर्यायवाची शब्द एकत्र करके मुसलमानों को ब्रजभाषा और हिन्दुओं को फारसी के निकट लाने का प्रयत्न किया, वही हिन्दू-मुसलमानों को एकत्र करने के लिए उन्होंने संगीत सीखने और सिखाने की एक ऐसी शैली को जन्म देने का प्रयत्न किया, जिसमें ईरानी और भारतीय रागों का वर्गीकरण एक ही ढंग से हो सके। वर्गीकरण की इस समान पद्धति की उद्भावना का श्रेय अमीर खुसरो को है। कालान्तर में यही पद्धति दक्षिण में 'विद्यारण्य-मत' और 'मेलकर्त्ता-पद्धति' और उत्तर में 'ठाठ-पद्धति' कहलाई। मुगल-दरबारों में इसे 'खुसरो का इल्म' कहा गया।

दो-चार या दस-पाँच नवीन रागों की उद्भावना से कोई व्यक्ति 'युगप्रवर्त्तक' नहीं हुआ करता और न उसका कोई पृथक् सम्प्रदाय हुआ करता है। सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। जिस पद्धति को उन्नीसवीं शताब्दी में 'इन्द्रप्रस्थ-मत' कहा गया, वह एक ऐसी उद्भावना है, जो आज समस्त भारत को अपना ग्रास बना चुकी है।

'इण्डो-पर्शियन' संस्कृति को प्ररोहित, पल्लवित एवं पुष्पित करने के लिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने खुसरो का मार्ग-दर्शन किया। खुसरो के मिश्रित रक्त ने अपने इस पीर की प्रेरणा के अनुसार कार्य किया और राजतन्त्र की अनुकूलता और चिश्ती-परम्परा के सन्तों और कव्वालों ने इन्द्रप्रस्थ-मत को भारत के कोने-कोने में पहुँचा दिया।

मुहम्मद तुगलक ने सम्भवतः अपने प्रधानमन्त्री ख्वाजः जहाँ अहमद अयाज (देवगिरि के राजकुमार हरदेव) की सम्मति से देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया। राजधानी के सभी निवासियों को देवगिरि (दौलताबाद) जाने का आदेश हुआ और इस आदेश का पालन कठोरता से कराया गया। हजारों व्यक्ति इस यात्रा में मर गये। कुछ वर्षों के पश्चात् राजधानी के रूप में देवगिरि उपयुक्त न प्रतीत हुआ, तब समस्त प्रजा को पुनः दिल्ली चलने का आदेश हुआ, सब लोग दिल्ली गये और मार्ग में अनेक मर गये।

राजधानी के इस परिवर्त्तन का एक परिणाम यह अवश्य हुआ कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में ही, सन् १३३६ ई० में स्थापित विजयनगर-साम्राज्य में 'इन्द्रप्रस्थ-मत' पहुँच गया। इसी मत के अनुसार, विजयनगर के राजगुरु श्रीविद्यारण्य ने उस समय प्राप्त केवल पचास रागों का वर्गीकरण किया। यह वर्गीकरण कालान्तर में 'विद्यारण्य-मत' कहलाया।

मुहम्मदशाह तुगलक के ही शासन में एक ईरानी शाहजादे हुसन ने बहमनी-साम्राज्य की स्थापना कर ली थी। हुसन शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था और विजयनगर-साम्राज्य का जन्मजात शत्रु। इसके दरबार में खुसरो की गजले गानेवाले

सैकड़ों कव्वाल थे। इस वंश को शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा राजू कत्ताल का समर्थन प्राप्त था।

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली-साम्राज्य बिखर गया, परन्तु इन्द्रप्रस्थ-मत का प्रचार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी ख्वाजा नसीरुद्दीन महमूद 'चिराग देहली' की परम्परा के द्वारा पंजाब, राजपुताना, गुजरात और दक्षिण में हुआ। इनके पीर भाई ख्वाजा मखदूम अली सिराज की सिराजिया-परम्परा ने बिहार, बंगाल और असम में इन्द्रप्रस्थ-मत का प्रचार किया।

दिल्ली-साम्राज्य के बिखरने के पश्चात् जहाँ-जहाँ मुस्लिम-राज्यों की स्थापना हुई, वहाँ-वहाँ चिश्तिया-परम्परा के सूफी गये और कव्वालों को अपने साथ लेते गये।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् दिल्ली के शासन की सीमाएँ सिकुडती ही चली गई। मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५—१३५१ ई०), फीरोजशाह तुगलक (सन् १३५१—१३८८ ई०) के बाद गयासुद्दीन द्वितीय ने केवल पाँच महीने, नासिरुद्दीन मुहम्मद ने चार वर्ष और हुमायूँ ने पच्चीस दिन शासन किया। महमूद तुगलक (सन् १३९४—१४१२ ई०) के शासनकाल में तैमूर का आक्रमण सन् १३९८ ई० में हुआ और दिल्ली में प्रलय आ गया।

छत्तीस वर्ष तक दिल्ली पर सैयद-वंश का शासन रहा। इस वंश का प्रथम शासक सन् १४२१ ई० में मर गया और अन्तिम शासक अलाउद्दीन बहलोल लोदी को सिंहासन सौंपकर बदायूँ चला गया।

छिहत्तर वर्ष तक लोदी सुलतानों ने दिल्ली की गद्दी संभाली। बहलोल लोदी (सन् १४५१—१४८८ ई०), सिकन्दर लोदी (सन् १४८८—१५१७ ई०) और इब्राहीम लोदी (सन् १५१७—१५२६ ई०) इस वंश के बादशाह हुए। सन् १५२६ ई० में बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित किया।

दिल्ली में खूसरो का सम्प्रदाय भली भाँति चलता रहा।

भारतीय रागों के वर्गीकरण का मुस्लिम-आधार

इन्द्रप्रस्थ-मत :

ईरानी पद्धति में मन्द्र, मध्य और तार स्थान में स्वरों की संख्या बारह थी। ये बारहों, स्वतन्त्र स्वर माने जाते थे। इनमें कोई स्वर किसी अन्य स्वर का विकार न था। वाजिद अलीशाह के दरबारी लेखक मुहम्मद करम इमाम ने भी कहा है कि जब पृथक्-पृथक् ध्वनियाँ बारह हैं, तब उनके नाम भी स्वतन्त्र होने चाहिए। मुहम्मद करम इमाम ने बारह ध्वनियों के बारह नाम भी दिये हैं, जो उसके अनुसार कुछ ही लोगों को ज्ञात थे। उसने बारह स्वर-संज्ञाओं का आधार मुकाम-पद्धति को बताया है।^१ उन

१. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० ७५-७६।

बारह ध्वनियों के ईरानी, वाजिद अलीशाह-कालीन, आधुनिक हिन्दुस्तानी और दक्षिणात्य नाम इस प्रकार हैं :

ईरानी	वाजिद०	हिन्दुस्तानी	दक्षिणात्य
१. रास्त	खरज	स	षड्ज
२. शहनवाज	जरज	रे	शुद्ध ऋषभ
३. दोका	रिखब	रे	शुद्ध गान्धार, चतुःश्रुति ऋषभ
४. कुर्द	चन्धार	ग	साधारण गान्धार
५. सीका	गन्धार	ग	अन्तर-गान्धार
६. गिरका	तद्धम	म	शुद्ध मध्यम
७. हिजाज	मद्धम	म	प्रतिमध्यम
८. नवा	पंचम	प	पंचम
९. हिसार	धैवत	ध	शुद्ध धैवत
१०. हुसेनी	धैवत	ध	शुद्ध निषाद, चतुःश्रुति धैवत
११. अगनू	लिखाद	नि	कैशिक-निषाद
१२. नीम माहुर	निखाद	नि	काकली-निषाद

अरबी-फारसी स्वर :

फाराबी (मृत्यु : सन् ९५० ई०) और मुहम्मद शीराजी (मृत्यु : सन् १३१५ ई०) ने सत्रह स्वर बताये हैं। इनका निर्धारण अब्दुल काविर (चौदहवीं शती) ने किया है। इनकी स्थिति इस प्रकार है :

नाम	सेवर्ट्स	भिन्न	पूर्ण संज्ञाएँ
१. स	०		
२. रे	२३	$\frac{२५६}{२४३}$	अतिकोमल ऋषभ
३. रे	४६	$\frac{१०}{९}$	भरतोक्त त्रिश्रुति ऋषभ
४. रे	५१	$\frac{९}{८}$	शुद्ध ऋषभ (भातखण्डे)
५. ग	७४	$\frac{३२}{२७}$	भरतोक्त शुद्ध गान्धार, अतिकोमल ग
६. ग	९७	$\frac{५}{४}$	अन्तर-गान्धार, स्वयम्भू
७. ग	१०२	$\frac{८१}{६४}$	अष्टश्रुति गान्धार
८. म	१२५	$\frac{४}{३}$	मध्यम

नाम	सेवर्त्स	भिन्न	पूर्ण संज्ञाएँ
६. म ^१	१४८	$\frac{४५}{३२}$	तीव्र मध्यम
[१०. प	१७१	$\frac{४०}{२७}$	मध्यमग्रामीय त्रिश्रुति पंचम
११. प	१७६	$\frac{३}{२}$	षड्जग्रामीय पंचम
१२. ध _२	१६६	$\frac{१२८}{१८१}$	अतिकोमल धैवत
[१३. ध	२२२	$\frac{५}{३}$	भरतोक्त त्रिश्रुति धैवत
१४. ध ^१	२२७	$\frac{२७}{१६}$	शुद्ध धैवत, भातखण्डे
१५. नि _२	२५०	$\frac{१६}{६}$	भरतोक्त निषाद, अतिकोमल निषाद
१६. नि	२७३	$\frac{१५}{८}$	काकली-निषाद
[१७. स् ^१	२६६	$\frac{१६०}{८१}$	च्युत षड्ज
सं	३०१	२	तार षड्ज

इन सत्रह स्वरों में, 'रे-रे^१', ग-ग^१, प-प, ध-ध^१, और 'स्-स्^१' में केवल एक 'प्रमाण-श्रुति' का अन्तर है। इतने सूक्ष्म अन्तरों को बतानेवाली दो सारिकाओं का स्थापन सर्वथा असम्भव है, अतः सारिका-वाद्यों के लिए केवल बारह ध्वनियाँ रह गईं। 'रे, ग, प, ध, स्' का परित्याग करने के पश्चात् बारह सारिकाएँ रह गईं। सारिका-हीन अवशिष्ट पाँच ध्वनियों की प्राप्ति मींड के द्वारा ही सम्भव रह गई। स्थूल दृष्टि से बारह ध्वनियाँ ही मानी गईं।

भरत का शुद्ध षड्ज ग्राम तथा अन्तर और काकली तथा भरत का ही मध्यम ग्राम और उसके अन्तर और काकली इन सत्रह स्वरों में जैसे-के-तैसे विद्यमान हैं।

इन सत्रह स्वरों में विशिष्ट स्वर विशिष्ट मुकामों की सृष्टि इस प्रकार करते हैं -

- रास्त मुकाम (मध्यम ग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना, अथवा षड्ज ग्राम की प्रथम सान्तरा मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	६	८	११	१३	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ षड्जग्रामीय	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म
आदिम स्वर से सेवर्त्स में ऊँचाई	०	४६	६७	१२५	१७६	२२२	२५०	३०१

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, इस मुकाम के आविष्कर्ता अमीर खुसरो है। यदि यह सत्य है, तो खुसरो अप्रत्यक्ष रूप में ग्राम और मूर्च्छना के भेद से परिचित थे; परन्तु खुसरो के पूर्ववर्ती फाराबी और शीराजी के द्वारा इन स्वरों का निरूपण यह बताता है कि ईरानी संगीत पर भारतीय स्वरशास्त्र का प्रभाव था।

‘षड्ज’ स्वर के लिए भी ‘रास्त’ शब्द का प्रयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि मुकाम-पद्धति में प्रथम मूर्च्छना वही है, जो भारतीय मध्यम ग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना है। उत्तरभारतीय बीन के ‘प, ध, नि, स, रे, ग, म, प’ में रास्त मुकाम बोल रहा है।

२. इराक मुकाम :

इराक प्रदेश की राजधानी बगदाद है। यह प्रदेश अरब के पूर्वीय भाग में है। इराक मुकाम में रास्त मुकाम के सभी स्वर हैं तथा च्युत षड्ज भी है। मुहम्मद करम इमाम ने इसका सम्बन्ध ‘आदम’ से बताया है, जो मुसलमानों के विश्वास के अनुसार, स्वर्ग से ‘स्वर्णद्वीप’ (लंका) में उतारे गये थे।

३. हिजाज मुकाम (मध्यम ग्राम की षड्जादि शुद्ध मूर्च्छना) :

जहाँ मक्का और मदीना है, अरब का वह प्रदेश ‘हिजाज’ है। इस प्रदेश के नाम पर ही ‘हिजाज मुकाम’ का नामकरण हुआ है :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	५	१२५	१०	१३	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में ऊँचाई	०	४६	७४	१२५	१७१	२२२	२५०	३०१

बीन के ‘रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे’ में हिजाज की स्वरावली गूँजती है।

४. रहावी मुकाम (षड्ज ग्राम की पंचमादि सकाकली मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	६	८	१०	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	म	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में ऊँचाई	०	४६	६७	१२५	१७१	१९६	२५०	३०१

बीन के ‘रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे’ में रहावी मुकाम के ही स्वर हैं।

५. हुसेनी मुकाम (षड्ज ग्राम की पंचमादि शुद्ध मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	५	८	१०	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में दूरी	०	४६	७४	१२५	१७१	१९६	२५०	३०१

बीन के ‘रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे’ में हुसेनी मुकाम के स्वर बोलते हैं।

६. कीचक मुकाम (मध्यम ग्राम की षड्जादि सकाकली मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सप्तह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	५	८	१०	१२	१३	१६	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	ध	नि	स
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में ऊँचाई	०	४६	७४	१२५	१७१	१९६	२२२	२७३	३०१
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	×	ध	नि	सं

७. बुजुर्ग मुकाम (षड्ज ग्राम की निषादादि शुद्ध मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सप्तह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	६	८	११	१४	१६	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में दूरी	०	५१	९७	१२५	१७६	२२७	२७३	३०१

बीन के 'म, प, ध, नि, स, रे, ग, म' में बुजुर्ग मुकाम बोल रहा है। दाक्षिणात्यों का शंकराभरण और भातखण्डे का बिलावल यही है।

८. इस्फहान मुकाम :

इस्फहान ईरान का एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर है। उस नगर के नाम पर इस मुकाम का नामकरण किया गया है :

पूर्वोक्त सप्तह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	६	८	१०	१३	१५	१७	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स	सं
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में दूरी	०	५१	९७	१२५	१७१	२२२	२५०	२९६	३०१

इस मुकाम में च्युत षड्ज और षड्ज दोनों हैं।

९. जंगूल मुकाम :

जंगूल फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ झाँझ तथा घुँघरू है। इस्फहान में से यदि च्युत षड्ज निकाल दिया जाय, तो जंगूल हो जाता है।

१०. उश्शाक मुकाम :

पूर्वोक्त सप्तह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	७	८	११	१४	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में	०	५१	१०२	१२५	१७६	२२७	२५०	३०१

११. नवा मुकाम :

पूर्वोक्त सप्तह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	५	८	११	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में	०	५१	७४	१२५	१७६	१९६	२५०	३०१

१२. बूसलीक मुकाम :

स्वर-संज्ञाएँ

आदिम स्वर से दूरी सेवर्त्स में

स रे ग म प ध नि स
 ० २३ ७४ १२५ १७१ १९६ २५० ३०१

बीन और दाक्षिणात्य वीणा पर मुकाम, मूर्च्छना, ठाठ और मेल के स्वर :

पूर्वोक्त १७ स्वरों में से लिये हुए स्वर	४० ग्राम- स्वर	हिन्दु० स्वर	दाक्षिणात्य स्वर	सेवर्त्स	बुजुर्ग मुकाम
मेरु	१	नि	म	०	स
पहला परदा	२	नि	म	शु० ऋषभ	२३
दूसरा परदा	४	स	प	शुद्ध गान्धार	५१ रे
तीसरा परदा	५×		ध	सा० गान्धार	७६
चौथा परदा	६	रे	ध	अन्तर-गान्धार	९७ ग
पाँचवाँ परदा	८	ग	नि	शु० मध्यम	१२५ म
छठा परदा	९	अन्तर ग	नि	प्रति मध्यम	१४८
सातवाँ परदा	११	म	स	पंचम	१७६ प
आठवाँ परदा	१२		रे	शु० ध्रैवत	१९९
नवाँ परदा	१४	प	रे	शुद्ध निषाद	२२७ ध
दसवाँ परदा	१५×		ग	कैशिक-निषाद	२५५
ग्यारहवाँ परदा	१६	ध	ग	काकली-निषाद	२७३ नि
बारहवाँ परदा	१	नि	म	पङ्कज	३०१ स
तेरहवाँ परदा	२	काकली नि	म	शु० ऋषभ	३२४
चौदहवाँ परदा	४	स	प	शु० गान्धार	३५२

‘×’चिह्नित स्वर ईरानी स्वरों से पाँच सेवर्त्स चढ़े हुए हैं, इनका अन्तराल पूर्ववर्ती स्वर से २८ सेवर्त्स हैं, जो ईरानियों के छठे-आठवें, नवें-ग्यारहवें तथा सोलहवें और पहले स्वरों में प्राप्त है। सारिकाओं के अचल करने के कारण यह स्थिति आई है। स्वर-मण्डल में तन्त्रियों को यथास्थान मिलाया जा सकता है।

भरत के विधान में श्रुतियों के प्रकार तीन हैं। महती श्रुति=२३ सेवर्त्स, उपमहती श्रुति=१८ सेवर्त्स और प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्त्स।

चतुःश्रुतिक स्वर=५१ सेवर्त्स, त्रिश्रुतिक=४६ सेवर्त्स और द्विश्रुतिक स्वर=२८ सेवर्त्स है।

चतुःश्रुतिक स्वरों में श्रुतिक्रम ५+१८+२३+५=५१ सेवर्त्स, त्रिश्रुतिक स्वरों में श्रुतिक्रम १८+२३+५=४६ सेवर्त्स और द्विश्रुतिक स्वरों में श्रुतिक्रम २३+५=२८ सेवर्त्स हैं।

२३ सेवर्त्स उपमहती=१८, और प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्त्स का योग भी है। यह अन्तराल इस दृष्टि से द्विश्रुतिक भी है और महती=२३ सेवर्त्स के रूप में एकश्रुतिक भी।

मतंग ने चतुःश्रुतिक स्वर के स्थान पर त्रिश्रुतिक और त्रिश्रुतिक स्वर के स्थान पर चतुःश्रुतिक स्वरों के प्रयोग को सह्य माना है ।^१ मतंग की किन्नरी में सारिकाएँ जमी हुई थी, अतः उन्हें यह सुविधा लेनी पड़ी । स्वर-मण्डल जैसे वाद्यों में इस सुविधा की आवश्यकता नहीं ।

चतुःश्रुतिक=५१ सेवर्ट्स और त्रिश्रुतिक स्वर=४६ सेवर्ट्स में केवल प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्ट्स का अन्तर है । वैणिक लोग सारिका-स्थापन की सुविधा के लिए इस अन्तर को नगण्य अथवा सह्य मानते हैं । रागविबोधकार सोमनाथ ने इसीलिए कहा है कि एक श्रुति की अधिकता अथवा न्यूनता दोष का कारण नहीं होती ।^२

गायक लोगों को इस सुविधा की आवश्यकता नहीं होती और न स्वर-मण्डल बजानेवालों को ।

बीन पर ऐसे दो परदों की स्थापना असम्भव है, जिनकी ध्वनियों में ५ सेवर्ट्स, अर्थात् एक प्रमाण-श्रुति का अन्तर हो, अतः सारिका-वाद्यों के बजानेवाले ऐसी दो ध्वनियों में एक का ग्रहण कर लेते हैं, जिनमें परस्पर केवल एक प्रमाण-श्रुति, अर्थात् पाँच सेवर्ट्स का अन्तर हो । अतः मन्द्र, मध्य और तार स्थान में स्थिर बारह-बारह ध्वनियाँ रह जाती हैं जो मुकाम-पद्धति का प्रसाद है ।

मतंग, अहोबल रामामात्य, सोमनाथ और ब्रैकटमखी सारिकायुक्त वाद्यों के कारण ही सुविधावादी हुए हैं । भातखण्डे ने वैणिक न होते हुए भी इन लोगों का अनुकरण किया है । स्वर-विषयक सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले गायक इन सुविधावादियों के सदा विरोधी रहे हैं । निष्कर्ष यह है कि मेल-पद्धति अथवा ठाठ-पद्धति के जन्म का कारण मुकाम-सिद्धान्त एवं प्रमाण-श्रुति के अन्तर की अवहेलना करना है ।

षड्ज के पश्चात् मध्यमग्रामीय पंचम की दूरी १७१ सेवर्ट्स और षड्जग्रामीय पंचम की दूरी १७६ सेवर्ट्स है, अर्थात् षड्जग्रामीय और मध्यमग्रामीय पंचम में केवल पाँच सेवर्ट्स का अन्तर है । इस अन्तर को जब नगण्य अथवा सह्य मान लिया, तब ग्राम-भेद का आधार ही नष्ट हो गया । ईरानी सत्रह स्वरों में भी इन दोनों पंचमों का अस्तित्व है ।

आजनेय के अनुसार, देशी रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नहीं होता । इस व्यवस्था ने सुविधावादियों को बहुत बल दिया ।

आजनेय की इस व्यवस्था से भी नैसर्गिक संवाद-सिद्धान्त को निर्मूल नहीं किया जा सका और सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति अपनी बात कहते ही रहे ।

देशी रागों में ऐसे अनेक हैं, जिनका वर्गीकरण मूर्च्छनाओं में सम्भव नहीं । अतः, मुकाम-सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ; परन्तु अकृत्य यह हुआ कि जिन रागों का वैज्ञानिक वर्गीकरण मूर्च्छनाओं में सम्भव था, सुविधावादियों ने उन्हें भी ठाठों में ठूस दिया ।

१. बृहद्देशी, अनुवादिप्रयोग, पृ० १५, अनन्तशयन संस्कृत-ग्रन्थावलि ।

२. रागविबोध, अडयार-संस्कृत-ला०, पृ० ६८ ।

ईरानी बारह मुकाम, उनकी राशियाँ, समय और प्रभाव

मिलता- जुलता ठाठ	नाम	समय	प्रभाव	राशि	राशियों के अरबी नाम	मास
खमाज	१. इस्फहान	नवा के बाद	प्रसन्नता- दायक	वृष	सौर	वैशाख
खमाज	२. इराक	दोपहर तक	„	मिथुन	जौजा	ज्येष्ठ
	३. कोचक	सूर्यास्त से तीन घण्टे पूर्व	करुण	कर्क	सतनि	आषाढ
बिलावल	४. बुजुर्ग	जंगूल: के बाद	„	सिंह	असद	श्रावण
काफी	५. हिजाज	इस्फहानी के बाद	मनोरजक	कन्या	सम्बुल:	भाद्रपद
भैरवी	६. बूसलीक	दोपहर के बाद	उत्साहजनक वीरता	तुला	मीजान	आश्विन
खमाज	७. उश्शाक	सूर्यास्त के समय	„	वृश्चिक	अकरब	कार्तिक
आसावरी	८. हुसेनी	„	मनोरजक	धनुष	कौस	मार्गशीर्ष
खमाज	९. जगूल:	„	करुण	मकर	जदी	पौष
आसावरी	१०. नवा	आधी रात	उत्साहजनक	कुम्भ	दलव	माघ
	११. रहावी	सूर्योदय तक	करुण	मीन	हूत	फाल्गुन
खमाज	१२ रास्त	दोपहर	आकुलतामय	नेप	हमल	चैत्र

यहाँ ठाठों के साथ मुकामों का सादृश्य केवल स्थूल रूप में दिखाया गया है और प्रमाण-श्रुति का सूक्ष्म अन्तर छोड़ दिया गया है।

भारत और ईरान के परस्पर मिलते-जुलते राग

भारतीय राग	ईरानी राग	सम्बन्ध
खट ...	मुकाम गिजाल	दोनों एक
रामकली ...	मुखालिफ	परस्पर अनुकूल
कल्याण ...	नैरेज	समीपतर
बड़हंस ...	अशीरान	परस्पर निकट
शुद्ध तोड़ी ...	मुकाम जूकाह	परस्पर निकट
सारंग ...	नवा	एक
नट ...	रास्त	समान
पूरिया धनाश्री ...	उरियान	परस्पर निकट
बरवा ...	मजावात	निकटतर
श्री ...	शहनाज	सदृश
वसन्त ...	मगलूब	सदृश

यह सादृश्य मुहम्मद करम इमाम (सन् १८५४ ई०) के अनुसार है। करम इमाम के ये शब्द भी ध्यान देने योग्य है :

ग्राहंग, सौत, नगम, रकब और गिजाल का सादृश्य भारतीय खट और धनाश्री से है।

जूकाह, मुकाम हुसेनी एवं नौरोज अजम का सादृश्य सारंग से है।

सिगाह, चहारगाह, मगलूब और मुकाम जगूल टोडियों से सादृश्य रखते हैं।

जाबिल, मुखालिफ और मुकाम उश्शाक गौरी, पूरबी, पूरिया, गौरा, आसा और भटियाल से मिलते हैं।

मुकाम इराक और शोबा ओज गुनकली और मालश्री से मिलते हैं।

इस्फहान और शोब. नीशापूर जीलफ और भैरवी से मिलते हैं।

नैरेज कबीर और नैरेज सगीर का सादृश्य भोपाली, विभास और जैत के साथ है।

कुछ लोगो की दृष्टि में उश्शाक और नट समान हैं।

नौरोज अजम, हुसेनी और जूकाह काफी से मिलते हैं। कुछ लोगों की दृष्टि में हुसेनी और धनाश्री में साम्य है।

नवा और केदारा सदृश हैं। कुछ लोगों की दृष्टि में इस्फहान और सारंग में साम्य है। कुछ लोगो की दृष्टि में इराक और कानडा सदृश हैं, गिजाल और आसावरी समान हैं, जूकाह और जैतश्री सदृश हैं। रहावी मुकाम और गोशा गुलिस्तान कानडा से मिलते हैं। मुकाम बुजुर्ग माली गौरा से मिलता है। कुछ लोगो ने सिगाह और बिलावल में तथा चहारगाह और भैरव में सादृश्य बताया है।

बंगाल और बिहार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा :

सन् १३३६-३७ ई० में पूर्वी बंगाल के राज्यपाल बहरामशाह की हत्या करके उसका कवचवाहक फखरुद्दीन बंगाल का स्वतन्त्र बादशाह हो गया था। इब्नबतूता के अनुसार, फखरुद्दीन दानी व्यक्ति था और उसे धार्मिक व्यक्तियों की सगति में सुख मिलता था। इसके शासन में बंगाल खूब समृद्ध हुआ, वहाँ की आर्थिक दशा सुधर गई और जनता सुखपूर्ण जीवन बिताने लगी। खाद्य पदार्थ एवं अन्य वस्तुएँ इतनी सस्ती हो गई कि फारस से आनेवाले लोग बंगाल को 'अच्छी चीजों से भरपूर नरक' कहने लगे। इसके शासनकाल में बंगाल में फकीरों की १५० गढ़ियाँ थी।

मौलाना अखी सिराज : ये बंगाल के रहनेवाले थे और आरम्भ से ही शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में एक कोने में पड़े रहते थे। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हें 'हिन्दुस्तान का दर्पण' कहा था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सकेत पर इन्होंने मौलाना फखरुद्दीन जरादी से विभिन्न विद्याओं की शिक्षा ली। 'सेरुल् औलिया' के लेखक इनके सहपाठी थे। शिक्षा पूर्ण होने पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हें बंगाल के लिए

अपना खलीफा (आध्यात्मिक उत्तराधिकारी) बनाया, परन्तु ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् भी तीन वर्ष तक उनके मजार पर रहे और तत्पश्चात् बंगाल चले गये, जहाँ इन्होंने 'निजामिया सिराजिया'-परम्परा का प्रवर्तन किया।

बंगाल का बादशाह फखरुद्दीन इनका 'मुरीद' हुआ और बंगाल एवं असम के लोग इनके भक्त हो गये। इन्होंने 'उस्मानी' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था।

समय-समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने जो वस्त्र इन्हें दिये थे, उन सबको भूमि में गाड़कर इन्होंने उसपर एक गुम्बद बनवाया और वसीयत की कि मरने पर उन्हें इस गुम्बद के पास ही दफनाया जाये। इस वसीयत का पालन किया गया। इनका मजार माल्दा (बंगाल) में है।^१

शेख जलालुद्दीन तबरेजी : ये पण्डुग्रा में सबसे पहले दिल्ली से आकर बसे। ये मक्का से हजरत मुहम्मद का चरण-चिह्न लाये थे। इनके सम्मान में अलीशाह ने एक दरगाह बनवाई, जो २२००० बीघे की धर्मादा भूमि होने के कारण बाईसहजारी कहलाती है। मुहम्मद तुगलक का एक अनुदान-पत्र दिनांक ३ अगस्त, १३३७ ई० का इसके पास है।^२

अलाउल् हक : ये निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा थे। पहले इनका नाम शेख अहमद था और बाद में मखदूम शेख नूर-उल्-हक हो गया था। इनका यश दूर-दूर तक फैल गया था और दूर-दूर के लोग इनका आशीर्वाद लेने आते थे।^३

ख्वाजा करीमुद्दीन बयाना : ये खुरासान के महामन्त्री शेख कमालुद्दीन समरकन्दी के पुत्र थे। ये स्वभाव और आकृति दोनों से ही सुन्दर थे। इन्होंने बाबा फरीद गजशकर के धेवते मौलाना सैयद मुहम्मद इमाम की पुत्री का पाणिग्रहण किया था। ये अत्यन्त विद्वान् और गुणग्राहक थे। अपने विवाह के पश्चात् ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में रहने लगे। विभिन्न विद्वान् अपनी रचनाएँ इनके पास ले जाते थे और ये उन्हें अच्छा पारिश्रमिक देकर खरीद लेते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी भी अपनी रचनाएँ इन्हें देते थे और भली भाँति पुरस्कृत होते थे।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने इन्हें सतगावाँ प्रदेश दिया।

एक सतगावाँ सिलहट जिले में है और बिहार के गया जिले में भी। ख्वाजा हुसन निजामी का अनुमान है कि इनसे सम्बद्ध सतगावाँ गया जिले में है।

अमीर हुसन अला संजरी : ये अमीर खुसरो के सहपाठी और परम मित्र थे। गयासुद्दीन तुगलक के पुत्र मुहम्मद के दरबार में अमीर खुसरो के साथ पाँच वर्ष रहे और मुहम्मद के मारे जाने पर मंगोलों के बन्दी होकर अमीर खुसरो के साथ हिरात और बलख

१. निजामी बंसरी, पृ० ३६०-३६१।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३६४।

३. उपरिचत्।

गये। मुहम्मद के मारे जाने पर इन्होंने गद्य में एक करुण रचना की थी। मुहम्मद तुगलक के दरबार में रहकर इन्होंने अपना दीवान लिखा और शेख निजामुद्दीन चिश्ती की उक्तियों को अक्षरशः लिपिबद्ध किया।

सन् १२९६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इन्हें कर वसूल करने के लिए देवगिरि भेजा, जहाँ देवगिरि के यादव-वंश का एक राजकुमार हरदेव इनके मुँह से निजामुद्दीन चिश्ती की प्रशंसा सुनकर दिल्ली आया और धीरे-धीरे निजामुद्दीन चिश्ती का कृपापात्र हो गया। मुहम्मद तुगलक के युग के आरम्भ में ही हरदेव मुसलमान हुआ। उसका नाम अहमद अयाज रखा गया। मुहम्मद तुगलक ने अपनी बेटी उसे देकर महामन्त्री बनाया। 'चेहलरोजः' हरदेव की कृति है। जिस द्वार के नीचे दबकर गयासुद्दीन तुगलक मरा, वह हरदेव की देखरेख में बनवाया गया था।

हरदेव के मार्गप्रदर्शक हसन अला संजरी अपनी आयु के अन्तिम भाग में देवगिरि चले गये और वही इनका देहान्त हुआ।

काजी शरफुद्दीन उर्फ फीरोज घई : ये मौलाना हसामुद्दीन मुलतानी के विशिष्ट मित्रों में थे और अत्यन्त साधारण ढंग से जीवन-यापन करते थे। ये दौलताबाद गये थे। वही इनका देहान्त हुआ। हैदराबाद (दक्षिण) में इनका मजार जिस स्थान पर है, वह 'बाबा शरफुद्दीन की पहाड़ी' कहलाता है।

दक्षिण में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा :

मौलाना फखरुद्दीन जरादी : ये बहुत बड़े विद्वान् थे। 'उसूलुस्सिमात्र' नामक ग्रन्थ इन्हीं की रचना है, जिसमें कव्वाली सुनने के औचित्य और नियमों का वर्णन है। ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख खलीफाओं में थे। गयासुद्दीन तुगलक के सम्मुख संगीत के औचित्य के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ के समय ये भी शेख निजामुद्दीन के पीछे विद्यमान थे।

सुलतान मुहम्मद तुगलक के हुक्म से ये देवगिरि (दौलताबाद) गये और वही से हज के लिए चले गये। लौटते समय जहाज डूब जाने के कारण इनकी मृत्यु हो गई।^१

मौलाना बुरहानुद्दीन गरीब : शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हें चार सौ सूफियों के साथ दक्षिण भेजा था। इनके साथ जानेवालों में प्रसिद्ध सूफी बन्दानवाज गेसूदराज के पिता शाहू राजू कत्ताल (कव्वाल) भी थे।^२ ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख खलीफाओं में थे। इन्होंने जीवन-भर निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह की ओर पीठ नहीं की। देवगिरि में इनका देहान्त हुआ और इनका मजार भी वही है।

ख्वाजा सैयद हुसेन किरमानी : इन्हें शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुँहबोला बेटा समझा जाता था। सब खलीफाओं की ओर से शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में

१. सैरुल् औलिया : निजामी बंसरी, पृ० ३८८ पर उद्धृत।

२. दक्खिनी हिन्दी, पृ० ३३।

आवश्यक निवेदन ये ही करतं थे । खिलाफतनामे भी इनकी ही लेखनी से लिखाये जाते थे । ये सुन्दर वेश-भूषा के निहायत शौकीन थे । कपडों का ढंग सूफियो जैसा ही होता था, परन्तु वे वस्त्र बहुमूल्य होते थे । पान खाने के निहायत शौकीन थे, भले ही एक पान दस रुपये में मिले । शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् भी बहुत दिनों जीवित रहे । प्रधानमन्त्री होने के बाद ख्वाजा जहाँ (हरदेव) ने इन्हें देवगिरि बुलाया, जो उस समय राजधानी था । ये इस शर्त पर वहाँ गये कि न तो ये अपने वस्त्रों में परिवर्तन करेंगे और न नौकरी करेंगे । इनका स्वर्गवास सन् १३५१ ई० में हुआ और इन्हें इनके पिता ख्वाजा सैयद मुहम्मद किरमानी के मजार के पास दफन किया गया ।^१

शेख निजामुद्दीन चिश्ती का भक्त बहमनी-साम्राज्य (सन् १३४७-१५१८ ई०) :

बहमनी-साम्राज्य का संस्थापक हसन फारम के बहमनशाह का वंशज था, यह विपन्न होकर आजीविका की खोज में दिल्ली आया, परन्तु असफल होकर एक दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह के बाहर आकर बैठ गया । शेख निजामुद्दीन ने इसे बुलाया और प्रबन्धकों से इसके लिए भोजन लाने के लिए कहा । रोटी के कुछ टुकड़े भाण्डार में बचे थे । उनमें से एक टुकड़ा लेकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने हसन के हाथ में देकर कहा कि यह दकन की बादशाही का राजमुकुट है । हसन ने वह टुकड़ा खा लिया और चला गया ।

मुहम्मद तुगलक के यौवराज्य-काल में उसके पास एक हिन्दू-ज्योतिषी नौकर था । हसन अपने भविष्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस दैवज्ञ के पास गया । दैवज्ञ ने हसन के भाग्य में राज्य करना बताया और उसे अपने पास हल चलाने पर नौकर रख लिया । खेत जोतते समय अशफियों से भरी एक हाँडी भूमि से निकली, जो हसन ने भूमि के स्वामी दैवज्ञ को सौंप दी । हसन की ईमानदारी की चर्चा मुहम्मद तुगलक (उलूग खाँ) से जब दैवज्ञ ने की, तब मुहम्मद तुगलक ने हसन को बुलाकर सौ सैनिकों का सरदार बना दिया और आदेश दिया कि हसन प्रतिदिन उसकी सेवा में उपस्थित हो । हसन ने इस आज्ञा का पालन किया ।^२

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में ही साम्राज्य बिखरने लगा था । मुहम्मद तुगलक के साम्राज्य के विरुद्ध विदेशी अमीरों (अमीरान-ए-सदा) ने विद्रोह करके देवगिरि में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी । सन् १३४७ ई० के १३ अगस्त को हसन इस बहमनी-साम्राज्य के प्रथम सुलतान के रूप में गद्दी पर बैठा । हसन बहमन-बिन इस्फन्दियार का वंशज था, अतः यह साम्राज्य 'बहमनी-साम्राज्य' कहलाया । हसन की उपाधि अलाउद्दीन हसन बहमनशाह हुई ।

१. निजामी बंसरी, पृ० ४०२ ।

२. उपरिबत्, पृ० ३०३-३०६ ।

शासन-दण्ड ग्रहण करने पर हसन ने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया और शासन-प्रबन्ध में जुट गया। उसके शासन के अन्तिम भाग में बहमनी-साम्राज्य दौलताबाद के पूर्व से भोंगीर तक तथा उत्तर में बैनगगा से दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैल गया।

सन् १३५६ ई० में हसन का देहान्त हुआ।

मुहम्मदशाह प्रथम (सन् १३५८-१३७३ ई०) :

हसन बहमनशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम गद्दी पर बैठा। सन् १३६६ ई० में मुहम्मदशाह प्रथम ने विजयनगर-साम्राज्य पर आक्रमण किया। आक्रमण करने के लिए जो बहाना बनाया गया, उसकी कहानी इस प्रकार है :

मुहम्मदशाह प्रथम की सभा में खुसरो की रचनाएँ गानेवाले तीन सौ कव्वाल थे। एक दिन गायकों का एक वृन्द बादशाहों की प्रशंसा से युक्त दो शेर गा रहा था। ये अमीर खुसरो की रचना थे। सुलतान ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सैफुद्दीन गोरी को आदेश दिया कि इन गायकों के लिए पारितोषिक विजयनगर के राजा से वसूल किया जाय और इस प्रयोजन के लिए विजयनगर के राजा के नाम एक हुण्डी लिखी जाय। सैफुद्दीन गोरी ने समझा कि बादशाह नशे की झोंक में यह आदेश दे रहा है। उसने हुण्डी लिखी तो, परन्तु भेजी नहीं। अगले दिन जब बादशाह ने उस हुण्डी के भेजने के विषय में पूछताछ की, तब सैफुद्दीन सन्न रह गया। बादशाह ने कहा, मैं नशे में चूर होकर कोई आदेश नहीं देता। सैफुद्दीन गोरी ने तत्काल हुण्डी पर शाही मुद्रा अंकित की और एक द्रुतगामी विशेष दूत के द्वारा हुण्डी विजयनगर भेज दी।

विजयनगर-नरेश बुझ यह हुण्डी पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने बहमनी दूत को गधे पर चढ़ाकर विजयनगर में घुमाया और अपमानित करके लौटा दिया।^१

यह घटना एक भयानक युद्ध का कारण हुई। फरिश्ता के अनुसार, इस अवसर पर दो लाख हिन्दू मारे गये, विजयनगर की पराजय हुई। पराजित होकर विजयनगर पूर्वोक्त गायकों को पुरस्कार देने के लिए विवश हुआ।

मुहम्मदशाह प्रथम की मृत्यु सन् १३७३ ई० में हुई।

मुजाहिदशाह (सन् १३७३-१३७८ ई०)

मुहम्मदशाह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिदशाह सिंहासनासीन हुआ। मुजाहिदशाह ने सन् १३७७ ई० में विजयनगर पर आक्रमण किया, परन्तु बुरी तरह हारा। वयोवृद्ध सैफुद्दीन गोरी ने दोनों पक्षों में सन्धि करा दी, परन्तु मुजाहिदशाह को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला। मुजाहिदशाह की बहन रूह परवर आगा ने दाऊद का भी वध करा दिया।

मुहम्मदशाह द्वितीय (सन् १३७८-१३९७ ई०) :

मुहम्मदशाह द्वितीय अत्यन्त शान्तिप्रिय, विद्याव्यसनी एवं दानी था। इसकी दानशीलता से आकृष्ट होकर एशिया-भर के विद्वान् उसकी सभा में आने लगे। उसका निमन्त्रण पाकर फारसी के कवि हाफिज भारत की ओर चल पड़ा, परन्तु समुद्र और असंख्य आपत्तियों के कारण उसने अपना विचार बदल दिया और सुलतान की सेवा में अपनी एक कविता भेज दी। सुलतान ने उसे प्रभूत पुरस्कार भेजे। सन् १३९७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

सुलतान की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गयासुद्दीन और शम्सुद्दीन क्रमशः सिंहासन पर बैठे। शम्सुद्दीन से वस्तु अमीरों ने हुसैनशाह बहमनी के पोते, फीरोज खाँ और अहमद खाँ को सागर से बुला भेजा।

फीरोज खाँ ने अकस्मात् गुलबर्गा पहुँचकर शम्सुद्दीन को बन्दी बना लिया और वह १३९७ ई० की १४ फरवरी को गद्दी पर बठा।

फीरोजशाह (सन् १३९७-१४२२ ई०) :

फीरोजशाह घोर मद्यप और विलासी था, उसके अन्तःपुर में विभिन्न जातियों की स्त्रियाँ बहुत बड़ी संख्या में थीं। 'मुताह'-पद्धति से उसने अपनी अमर्त्य पत्नियाँ जमा कर लीं। कहा जाता है कि उसके अन्तःपुर में प्रतिदिन ८०० स्त्रियाँ भरती होती थीं। फीरोजशाह अत्यन्त निष्छल और विनोदी था। वह सामाजिक उत्सवों में भाग लेता था, परन्तु उस समय राजनीतिक विषयों की चर्चा न आने देता था।^१

सन् १३९८ ई० में विजयनगर के नरेश हरिहर द्वितीय ने मुद्गल-दुर्ग पर अधिकार करने के लिए रायचूर दोआब पर चढ़ाई की, फीरोज भी आगे बढ़ा। हरिहर ने कृष्णा नदी के किनारे व्यूह-रचना की और फीरोज की प्रतीक्षा करने लगा।

उस समय गुलबर्गा में गीत, वाद्य और नृत्य में निपुण व्यक्तियों की कमी न थी। यहाँ तक कि फीरोज का काजी सिराज स्वर-मण्डल द्वारा संगति करने और नाचने आदि में अत्यन्त निपुण था। बहमनी सुलतान चिश्तिया-परम्परा के अनुयायी होने के कारण स्वयं संगीतानुरागी और कलाकारों के आश्रयदाता थे, फलतः यह स्थिति हो गई थी।

शत्रुसेना में गड़बड़ी उत्पन्न करने के लिए काजी सिराज ने एक योजना बनाई और उसकी स्वीकृति फीरोज से ले ली।

इस योजना के साथ काजी सिराज अपने सात साथियों के साथ छद्म वेश में शत्रुसेना की नर्तकियों के शिविर के पास पहुँच गया। प्रधान नर्तकी के साथ स्वर-मण्डल पर सुन्दर संगति करके काजी ने प्रधान नर्तकी को इतना सन्तुष्ट कर लिया कि उसे विश्वास हो गया कि स्वर-मण्डल की ऐसी संगति से राजकुमार के समक्ष उसकी

कला खूब चमकेगी। प्रधान नर्तकी के साथ ये लोग नारी-वेश में हरिहर द्वितीय के पुत्र की संगीत-गोष्ठी में पहुँच गये। इन्होंने अपनी मुस्कराहट, नृत्य और हाव-भावों से राजकुमार को वशीभूत कर लिया।

कुछ देर पश्चात् ये लोग दक्षिण की रीति के अनुसार हाथ में नगी तलवारें लेकर नाचने लगे। इन्होंने परम्परा के अनुसार, नाचते-नाचते आगे बढ़ना, पीछे हटना और चारों ओर घूमना आरम्भ कर दिया और अकस्मात् आगे बढ़कर उन लोगों ने अपनी तलवारें राजकुमार के सीने में घुसेड़ दी।^१

पुत्रवध से दुःखी विजयनगर-नरेश को क्षीण प्रतिरोध के पश्चात् भागना पड़ा और सन्धि करके, युद्ध में बन्दी ब्राह्मणों को मुक्त कराने के लिए दस लाख 'हुन' (चार लाख पाउण्ड) देने पड़े।^२

सन् १४०६ ई० में विजयनगर के साथ फीरोज का एक और युद्ध हुआ। उस समय विजयनगर का शासक देवराय प्रथम था। इस युद्ध में देवराय प्रथम को अत्यन्त अपमानजनक पराजय का मुँह देखना पड़ा।

देवराय की कन्या फीरोज के साथ ब्याही गई। बंकापुर का दुर्ग दहेज में दिया गया। हाथी, घोड़े तथा अन्य अनेक उपहार साथ में दिये गये। यह कथा इस प्रकार है :

“यद्यपि कर्नाटक के लोगों ने इससे पूर्व अपनी कन्या अपनी जाति के अतिरिक्त अन्यत्र कही नहीं ब्याही थी, इसलिए नवीन व्यक्तियों को अपनी पुत्री देना उसके लिए अत्यन्त अपमानजनक था, तथापि अत्यन्त विवश होकर देवराय अपनी कन्या एक मुसलमान को देने के लिए विवश हुआ।

दोनों पक्षों की ओर से विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। चालीस दिन तक विजयनगर और सुलतान के शिविर के बीच यातायात होता रहा।

सड़क के दोनों ओर दूकानें लगाई गईं और आवास बनाये गये। उन आवासों में विजयनगर के मदारी, भाँड़, नर्तक और स्वाँग करनेवाले बहुश्रुति यात्रियों का मनोरंजन कर रहे थे।

खानखाना और मीर फजलुल्लाह प्रथा के अनुसार नववधू के लिए उपहार लेकर विजयनगर गये और वहाँ एक सप्ताह व्यतीत करने के पश्चात् राय की ओर से सुलतान के लिए बहुमूल्य उपहारों के साथ नववधू को ले आये। देवराय ने सुलतान के दर्शन की इच्छा अभिव्यक्त की। फीरोज ने स्वीकृति दे दी।

यात्रा के लिए एक दिन निश्चित हुआ और फीरोज सुलतान के साथ विजयनगर चला और शिविर का अधिकार खानखाना को दे गया। मार्ग में ही वह बड़ी शान के साथ देवराय से मिला।

१. ए फॉरगॉटन एम्पायर, पृ० ५३-५४; मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७८।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७८।

नगर के द्वार से राजप्रासाद छह मील था। मार्ग में अत्यन्त बहुमूल्य कपडों के पाँवड़े बिछे थे। दोनों नरेश साथ-साथ घोड़ों पर चल रहे थे। सुन्दर लडकों और लड़कियों की पक्तियाँ दोनों ओर से उनपर सोने और चाँदी से बने हुए फूल लुटा रही थी, बटोरने-वाले सामान्य जन उन्हें बटोर रहे थे।

इसके पश्चात् नागरिकों ने अपने पद और हैसियत के अनुसार उन्हें भेटे दी। नगर के मध्य का चौराहा पार करने पर, भीड़ में सम्मिलित देवराय के सम्बन्धियों ने अभिवादन किया और आगे-आगे चलनेवाले घुडसवारों में सम्मिलित होकर मार्ग दिखाते हुए पैदल चलने लगे।

प्रासाद के द्वार तक आने पर दोनों नरेश घोड़ों से उतरे और एक रत्नजटित शानदार पालकी पर सवार हो गये, जो उन्हें वर-वधू के स्वागत के लिए प्रस्तुत एक विशिष्ट कक्ष में ले गई। देवराय विदा लेकर अपने महल में चला गया।

तीन दिन शानदार अतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् सुलतान ने विदा ली। देवराय ने सुलतान को अत्यन्त बहुमूल्य उपहार दिये और मीलों तक मार्ग में सुलतान का साथ देकर लौट गया।^१

मनोरंजक बात यह है कि सुलतान फिर भी प्रसन्न न हुआ और इस बात पर रुष्ट हो गया कि देवराय उसे उसके शिविर तक पहुँचाने क्यों नहीं आया। उसने फजलुल्लाह से कहा कि मैं एकदिन इस उपेक्षा का बदला अवश्य लूँगा। सुलतान की यह घोषणा जब देवराय के कानों में पहुँची, तब उसने भी कुछ कटु शब्द कहे और पारस्परिक कटुता कम न हुई।^२

सन् १४२० ई० में फीरोज ने पंगल-दुर्ग पर अकारण आक्रमण किया। विजयनगर के साथ पुनः युद्ध छिड़ गया। घेरा दो वर्ष चला। सुलतान की सेना में महामारी फैल गई। मुसलमान-सेना का नायक मीर फजलुल्लाह युद्ध में मारा गया, सुलतान जान बचाकर भागा।

हिन्दुओं ने निर्दयतापूर्वक मुसलमानों का वध किया, उनके प्रदेश उजाड़े और मस्जिदें नष्ट की।

इस पराजय से फीरोज का मनोबल टूट गया और अपने भाई अहमद को राज्याधिकार सौंपकर वह सन् १४२२ ई० में मर गया।

प्रसिद्ध फकीर जलालुद्दीन हसानी (गेसूदराज) ने भविष्यवाणी की थी कि फीरोज का उत्तराधिकारी अहमद होगा।

अहमदशाह (सन् १४२२-१४३५ ई०) :

अहमदशाह ने फीरोज की पराजय का बदला लेने के लिए विजयनगर पर आक्रमण किया और २०००० पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों का वध करवा दिया और इस नरसंहार

१. ए फारगॉटन एम्पायर, पृ० ६०-६१।

२. उपरिबत्, पृ० ६१।

पर उत्सव किया गया। विजयनगर के सारे मार्ग रोक दिये गये। विवश होकर देवराय द्वितीय (रा० का० सन् १४१६-१४४६ ई०) ने पराजय स्वीकार की, और अपने पुत्र को मूल्यवान् वस्तुओं से लदे हुए ३० हाथियों के साथ शाही शिविर में भेजा।

अहमदशाह ने वारंगल का बहुत-सा भाग अपने राज्य में मिला लिया। मालवा से युद्ध छेड़ दिया, हुरांगशाह को भगाकर उसके दो सहस्र सैनिकों का वध कर दिया और लौटकर बीदरनगर की नींव डाली, जो भविष्य में बहमनी-राज्य की राजधानी बना। अहमदशाह ने कोंकण पर आक्रमण किया, जिससे कि उसे गुजरात के शासक से उलझना पड़ा। उसका अन्तिम अभियान तैलगाना पर हुआ। सन् १४३५ ई० में इसका देहान्त हुआ।

अलाउद्दीन द्वितीय (सन् १४३५-१४५७ ई०) :

अहमदशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय के नाम से सिंहासनासीन हुआ।

सन् १४३६ ई० में सुलतान ने कोंकण के हिन्दू-राजा को पराजित करके उसकी पुत्री से विवाह कर लिया। अलाउद्दीन के ससुर खानदेश के शासक नासिर खाँ ने गुजरात के शासक अहमदशाह की सहायता से अलाउद्दीन पर असफल आक्रमण किया।

सन् १४४२ ई० के लगभग देवराय द्वितीय ने अपने प्रमुख अमात्यों तथा सरदारों की सभा करके मुसलमानों की विजय का रहस्य पूछा। लोगों ने कहा कि मुसलमानों के घोड़े अच्छे हैं और उनके धनुर्धर भी अच्छे हैं।

खुसरो की पद्धति से प्रभावित विजयनगर-साम्राज्य :

अलाउद्दीन के देवगिरि-आक्रमण (सन् १२६६ ई०) से पूर्व दक्षिण भारत में देवगिरि पर यादव-वंश, वारंगल पर काकतीय वंश, द्वारसमुद्र पर होयसल वल्लाल-वंश और मदुरा पर पाण्ड्य-वंश का शासन था। अलाउद्दीन एवं मलिक काफूर के आक्रमणों ने इन चारों वंशों को कान्तिहीन और निर्धन बनाकर मृत्यु एवं विनाश का भयानक ताण्डव किया।

साम्राज्य एवं धन की लिप्सा से उद्दीप्त मुसलमान-सेनाएँ जहाँ भी पहुँची, मृत्यु एवं विनाश फैलाती गईं। उन्होंने सुदूर दक्षिण तक के हिन्दुओं को विपन्न और असहाय बना दिया। दक्षिण के इन विजित प्रान्तों के सुशासन के लिए मुसलमानों ने कोई नवीन शासन-प्रणाली प्रचलित नहीं की। विजित देशों की जनता के प्रति उनमें धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था और दिल्ली-साम्राज्य के प्रान्तीय प्रतिनिधि शासक अपनी-अपनी सीमा में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र शासक के-से अधिकारों का उपभोग करते थे।^१

ब्राह्मणों, विद्वानों, कलाकारों और शिल्पियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का कार्य मुस्लिम आक्रान्ता उत्साहपूर्वक करते थे। अपना धर्म बचाने के लिए अनेक विद्वान्

और कलाकार बौरे बन गये, उन्होंने अपने ग्रन्थ जला दिये। फलतः, कला-सम्बन्धी सम्प्रदाय लुप्त हो गये।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में दिल्ली-साम्राज्य उत्तर में लाहौर और सरहिन्द से प्रारम्भ करके दक्षिण में मदुरा तक और पूरव में लखनौती से पश्चिम में गुजरात और सिन्ध तक विस्तृत था। इस युग में निजामुद्दीन चिश्ती की परम्परा के कव्वाल और सूफी साम्राज्य-भर में फैल गये थे।

सन् १३२६-२७ ई० में मुहम्मद तुगलक ने देवगिरि को राजधानी बनाया, जहाँ मुस्लिम सूफी और कव्वाल निजामुद्दीन चिश्ती के द्वारा पहले ही पहुँच चुके थे।

वारंगल के काकतीय नरेश प्रताप रुद्रदेव को सन् १३१० ई० में भयानक रूप से मलिक काफूर पराजित कर चुका था। मलिक काफूर प्रताप रुद्रदेव को सर्वथा कोपहीन करके कोप के भार से कराहते हुए एक सहस्र ऊँट लेकर दिल्ली पहुँचा था। सन् १३२३ ई० में वारंगल पूर्णतया आक्रान्त हो गया और प्रताप रुद्रदेव के कोपागार में कार्य करनेवाले दो भाई हरिहर और बुक्क भागार अनागोंडी के राजा की सभा में पहुँच गये थे। थोड़े दिनों के पश्चात् अनागोंडी पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया, तब हरिहर और बुक्क बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। अनागोंडी में दिल्ली-साम्राज्य के प्रतिनिधि मलिक नाइब के विरुद्ध जब वहाँ के हिन्दुओं ने विद्रोह किया, तब दिल्ली-साम्राज्य हरिहर और बुक्क को मुक्त करने के लिए विवश हुआ। हरिहर और बुक्क अनागोंडी में दिल्ली-साम्राज्य के प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

मुसलमानों के अत्याचारों एवं उत्पीड़नों से त्राण पाने के लिए हरिहर और बुक्क ने शृंगेरी-मठ के अधिपति शंकराचार्य माधव (विद्यारण्य) की सहायता से सन् १३३६ ई० में तुंगभद्रा के तट पर विजयनगर की नींव डाली और हरिहर इस नये वंश का शासक हुआ।^१

विद्यारण्यजी ने अनेक हिन्दू-शास्त्रों का पुनरुद्धार किया, परन्तु उस समय तक दक्षिण में प्राचीन संगीत-सम्प्रदाय का पूर्णतया उच्छेद हो चुका था। चिश्ती सूफियों, कव्वालों और दक्षिण में साम्राज्य के प्रतिनिधि मुस्लिम-शासकों के प्रभाव से, खुसरो की मुकाम-पद्धति प्रचार पा चुकी थी। संगीत के प्राचीन भारतीय ग्रन्थ सम्प्रदाय के उच्छेद के कारण सर्वथा दुर्बोध हो चुके थे, अतः प्राप्त पचास रागों का वर्गीकरण करने के लिए उन्होंने खुसरो की पद्धति का आश्रय लिया और फारसी शब्द 'मुकाम' के लिए 'मेल' शब्द का प्रयोग किया। विद्यारण्य के द्वारा स्वीकृत पन्द्रह मेलों में एक मेल 'हेजुज्जी' भी है, जो अरबी के शब्द 'हिजाज' का अपभ्रंश है। विद्यारण्य के द्वारा स्वीकृत मेल 'हेजुज्जी' रामामात्य का 'नादराम क्रिया' और वेङ्कटमखी का 'धेनुक' हो गया।

खुसरो का भैरव ठाठ विद्यारण्य का 'गुर्जरी मेल' हुआ, रामामात्य का 'हेजुज्जी' बना और वेङ्कटमखी का 'मालव गौड' हो गया।

विजयनगर-साम्राज्य में यह कार्य हो ही रहा था कि सन् १३४७ ई० में निजामुद्दीन चिश्ती के एक कृपापात्र ईरानी युवक हसन ने दक्षिण में बहमनी-साम्राज्य की नींव डाली, जिसकी राजधानी 'गुलबर्गा' थी। बहमनी-साम्राज्य के इस प्रथम सुलतान अलाउद्दीन हसन बहमनशाह की मृत्यु सन् १३५६ ई० में हुई। उसका पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम बहमनी-सम्राट् हुआ।

विजयनगर के प्रथम शासक हरिहर की मृत्यु सन् १३५३ ई० में हो चुकी थी और उसका उत्तराधिकारी विजयनगर-सम्राट् बुक्क हुआ। बुक्क परम पराक्रमी था, परन्तु सन् १३६६ ई० में उसपर मुहम्मदशाह प्रथम ने आक्रमण किया। इस आक्रमण के परिणाम-स्वरूप भीषण नरसंहार हुआ। बुक्क की भयानक पराजय हुई और बुक्क उन तीन सौ कव्वालों को पुरस्कार देने पर विवश हुआ, जो मुहम्मदशाह प्रथम की सभा में खुसरो की गजले गाते थे। यह घटना विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना के बीस वर्ष पश्चात् हुई।

सन् १३७३ ई० में बहादुरशाह प्रथम की मृत्यु हुई और मुजाहिदशाह गद्दी पर बैठा। सन् १३७७ ई० में इसने विजयनगर पर आक्रमण किया और यह पराजित हुआ। सन् १३७८ ई० में मुजाहिदशाह को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला, उसका भी वध मुजाहिदशाह की बहन ने करा दिया और मुहम्मदशाह द्वितीय बहमनी सुलतान हुआ। यह अत्यन्त विद्याव्यसनी और शान्तिप्रिय था। इसने सन् १३९७ ई० तक राज्य किया और विजयनगर से इसने सघर्ष नहीं किया।

विजयनगर-नरेश बुक्क का देहावसान सन् १३७९ ई० में हुआ और हरिहर द्वितीय उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरिहर द्वितीय और मुहम्मदशाह द्वितीय में कोई सघर्ष नहीं हुआ।

मुहम्मदशाह द्वितीय की मृत्यु सन् १३९७ ई० में हुई और फीरोजशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरिहर द्वितीय और फीरोजशाह में सन् १३९८ ई० में सघर्ष हुआ। फीरोजशाह का काजी सिराज गान, वादन और नृत्य में अत्यन्त निपुण था। यह अपने साथियों-सहित नारी-वेश में हरिहर द्वितीय के पुत्र की नर्तकी के शिविर में पहुँचा और इसने स्वर-मण्डल पर उस नर्तकी की इतनी अच्छी संगति की कि वह नर्तकी छद्मवेशधारी काजी और उसके साथियों को अपने साथ युवराज की सभा में गई। वहाँ काजी और उसके साथियों ने नर्तकी-वेश में परम्परा के अनुसार खड्ग हाथ में लेकर नृत्य किया और अकस्मात् आगे बढ़कर युवराज की हत्या कर दी। इस घटना से हरिहर द्वितीय की सेना अव्यवस्थित हो गई, उसकी पराजय हुई। हिन्दुओं का भयानक सहार हुआ। बन्दी किये हुए ब्राह्मणों को मुक्त कराने के लिए हरिहर द्वितीय ने दस लाख हुन फीरोज को दिये।

सन् १४०४ ई० में हरिहर द्वितीय का देहान्त हुआ और देवराय प्रथम उसका उत्तराधिकारी हुआ।

सन् १४०६ ई० में देवराय प्रथम फीरोजशाह से बुरी तरह पराजित हुआ और उसे अपनी पुत्री का विवाह फीरोजशाह के साथ करना पड़ा।

सन् १४१० ई० में देवराय प्रथम की मृत्यु हुई, उसके पश्चात् नौ वर्ष तक उसके पुत्र विजय ने शासन किया, तत्पश्चात् सन् १४१६ ई० में देवराय द्वितीय विजयनगर के सिंहासन का अधिकारी हुआ।

सन् १४२२ ई० में फीरोजशाह की मृत्यु हुई और उत्तराधिकारी अहमदशाह हुआ। इसके हाथों देवराय द्वितीय को सदा पराजय का मुँह देखना पड़ा। विजयनगर के प्रदेशों की खूब दुर्दशा हुई। स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े तक अहमदशाह के द्वारा किये हुए नरसंहार के शिकार हुए।

सन् १४३५ ई० में अहमदशाह मरा और अलाउद्दीन द्वितीय उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने कोकण के हिन्दू-राजा को पराजित करके उसकी पुत्री से विवाह किया। हरिहर द्वितीय ने भी संगीत और नृत्य में निपुण दो सौ दासियाँ अलाउद्दीन द्वितीय को उपहार में दी।

सन् १४४२ ई० में हरिहर द्वितीय के मन्त्रियों ने कहा कि मुसलमान अपने शक्तिशाली घोड़ों और योग्य धनुर्धरों के कारण युद्ध में जीतते हैं। देवराय द्वितीय ने हिन्दू-धनुर्धरों को शिक्षा देने के लिए दो सहस्र मुसलमान-धनुर्धरों को नौकर रखा। अपनी राजमभा में एक उच्च पीठ पर कुरआन शरीफ को स्थान दिया, मुसलमानों को जागीरे दी, विजयनगर में एक मस्जिद बनवाई और मुसलमानों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता दी। फलतः, माठ हजार हिन्दू और दो सहस्र मुसलमान-धनुर्धर विजयनगर की सेना में हो गये। इसी युग में ईरान का राजदूत अब्दुर्रज्जाक भी विजयनगर में था।

इसी वर्ष देवराय द्वितीय के भाई ने एक षड्यन्त्र करके देवराय द्वितीय के प्रधान मामन्तों और प्रमुख अधिकारियों की हत्या करा दी थी और देवराय पर भी घातक आक्रमण किया। देवराय का दण्डनायक विजयनगर से बाहर होने के कारण बच गया था। इस परिस्थिति में बहमनी मुलतान अलाउद्दीन ने विजयनगर पर आक्रमण किया। देवराय द्वितीय का पुत्र मारा गया। पराजित देवराय द्वितीय अलाउद्दीन को कर देने पर विवश हुआ।

दक्षिण के संगीत पर मुस्लिम-प्रभाव :

मुस्लिम गुणी वर्तमान कल्याण ठाठ को प्रथम ठाठ मानते हैं। विद्यारण्य के भाई माधव ने कल्याण ठाठ की स्वरावलि को अपने युग में लौकिक स्वर कहा है और उनसे सामवेद की स्वरावलि का सादृश्य दिखाते हुए सामविधान-ब्राह्मण के भाष्य में कहा है कि लोक में अवरोह की ओर निपाद आदि जो सप्त स्वर होते हैं, वे ही सामवेद में 'ऋष्ट' इत्यादि सप्त स्वर होते हैं, जैसे निपाद 'ऋष्ट', धैवत 'प्रथम', पंचम 'द्वितीय', मध्यम 'तृतीय', गान्धार 'चतुर्थ', ऋषभ 'मन्द्र' और पङ्क 'अतिस्वार्य' है।

सायण का यह विधान नारद के विधान से भिन्न है; क्योंकि सायण ने अपने युग में प्रचलित लौकिक स्वरों के साथ सामवेद के स्वरों का सादृश्य दिखाया है। सायण के विधान का निष्कर्ष इस प्रकार है :

वैदिक संज्ञाएँ :	अतिस्वार्यं	मन्द्र	चतुर्थ	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	ऋष्ट	अतिस्वार्यं
लौकिक संज्ञाएँ :	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
षड्जग्रामीय संज्ञाएँ :	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग
श्रुति-संख्या :	$\frac{0}{0}$	४	४	३	$\frac{2}{2}$	४	३	$\frac{2}{2}$
अभिनवगुप्त के								

अनुसार : अनुदात्त उदात्त उदात्त स्वरित अनुदात्त उदात्त स्वरित अनुदात्त

यह स्थिति बताती है कि सायण के युग में कल्याण ठाठ की स्वरावलि दक्षिण में भी मूल स्वरावलि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। यह स्वरावलि षड्जग्राम की गान्धारादि शुद्ध मूर्च्छना है।

कल्याण ठाठ के रागों को रामामात्य और वेंकटमल्ली दोनों ने ही तुरष्कप्रिय कहा है, अतः यह निर्विवाद है कि सायण के पूर्वोक्त विधान पर स्पष्ट मुस्लिम-प्रभाव है।

‘संगीतसुधा’ के लेखक गोविन्द दीक्षित ने उन रागों का विवेचन किया है, जो उनके अनुसार विद्यारण्य के युग से प्रचार में आये थे, अर्थात् विद्यारण्य का युग किसी नवीन परम्परा का प्रवर्तक है। वह नई परम्परा और कुछ नहीं, अपितु मुकाम-पद्धति को मेल-पद्धति के नाम से स्वीकृत करना है; क्योंकि विद्यारण्य के युग में दक्षिण, संगीत की अनादि परम्परा को समाज की क्षत-विक्षत और संगीत के लिए सर्वथा प्रतिकूल अवस्था के कारण एकदम भुला चुका था।

विद्यारण्य के युग में प्राप्त पचास रागों को विद्यारण्य के द्वारा पन्द्रह मेलों में वर्गीकृत करने की बात केवल गोविन्द दीक्षित ने कही है और अपने राग-वर्गीकरण को विद्यारण्य के मत के अनुसार कहा है।

विद्यारण्य के युग से प्रायः सौ वर्ष के पश्चात् कल्लिनाथ ने कहा है कि मेरे युग में प्रत्येक राग ‘स’ से आरम्भ किया जाता है, पंचम सदैव षड्ज का सवादी रहता है (अर्थात्, मध्यमग्रामीय पंचम व्यवहार में नहीं रहा है, षड्ज-पंचम अचल हो गये हैं)। श्रीराग में ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद अपने मूल (षड्जग्रामीय) स्थान से एक-एक श्रुति चढ़ गये हैं (अर्थात्, श्रीराग में आधुनिक काफी ठाठ का प्रयोग होने लगा है)। क्रियाग ‘रामक्री’ में मध्यम दो श्रुति चढ़ गया है (अर्थात्, तीव्र मध्यम का जन्म हो गया है)। नट्ट और देवक्री में ऋषभ ने अन्तर-गान्धार की और धैवत ने काकली-निषाद की दो-दो श्रुतियाँ ले ली है (अर्थात्, ‘स ग ग म प नि नि स’ में ‘ग’ को ऋषभ और ‘नि’ को धैवत कहा जाने लगा है और पंचश्रुतिक ऋषभ और पंचश्रुतिक धैवत जैसी अवैदिक स्वर-संज्ञाओं का जन्म हो चुका है)। कर्णाट गौड में षड्ज के स्थान पर निषाद अश हो गया है (अर्थात्, इस राग का ठाठ बदल चुका है), हिन्दोल में ऋषभ-धैवत के लोप के स्थान पर ऋषभ-पंचम का लोप होने लगा है। कही-कहीं षाडव और औडव रागों में लोप्य स्वर का प्रयोग भी किया जाने लगा है, कही-कही जन्य और जनक के मेलन में भेद हो गया है तथा राग के अनुसार रस आदि के विनियोग में अनियम देखा जाता है।

दक्षिण पर अलाउद्दीन के आक्रमण के डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् विजयनगर की सांगीतिक स्थिति का चित्रण इम्मडिदेवराय (कुन्हन राजा के अनुसार, शासनकाल . सन् १४४६-१४६५ ई०) के आश्रित कल्लिनाथ ने पूर्वोक्त विवरण में किया है ।

स्पष्ट है कि भारतीय संगीत में यह परिवर्तन संगीत का नैसर्गिक विकास नहीं, अपितु मुस्लिम-प्रभाव का बलात् आरोपित परिणाम है । राजनीतिक कारणों से ही भारतीय संगीत की अनादि-परम्परा उच्छिन्न हुई और राजनीतिक दबाव ही मुसलमानों के मुकाम-सिद्धान्त को दक्षिण में प्रतिष्ठित करने का साधन बना । प्राचीन सम्प्रदाय के उच्छिन्न होने के कारण, प्रचार में अवशिष्ट पचास रागों को वर्गीकृत करने का एकमात्र उपाय मुकाम-पद्धति का आश्रय लेना था; क्योंकि उपलब्ध गुणी इसी पद्धति का अवलम्बन करते थे । भले ही विद्यारण्यजी ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से परिचित हों, परन्तु लौकिक मनोविनोद के लिए उस युग में प्रचलित लौकिक स्वरावलि का आश्रय लेना ही उन्हें उचित लगा । वेदाश्रित ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति की चर्चा तक विधर्मियों के समक्ष नहीं की जा सकती थी ।

अस्तु, यह सिद्ध है कि कल्लिनाथ के युग तक विजयनगर में ग्राम-विभाग का दर्शन भी न होता था और ग्रवैदिक मेल-सिद्धान्त भली भाँति प्रतिष्ठित हो चुका था ।

मुहम्मद करम इमाम ने 'कल्लिनाथ-मत' के अनुसार राग-रागिनी-वर्गीकरण की एक सारणी दी है और कल्लिनाथ को हनुमन्मत का अनुयायी कहा है । सम्भव है, कल्लिनाथ ने प्रचलित संगीत पर कोई ग्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो ।

तृतीय अध्याय

ध्रुवपदकारों के आश्रयदाता

भक्तिकालीन आश्रयदाता

अलाउद्दीन : अलाउद्दीन की विस्तृत चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। भले ही संगीत की ओर अलाउद्दीन की ऐसी रुचि न हो, जैसी कि रसिक नरेशों की होती है, परन्तु अमीर खुसरो एवं गोपाल नायक जैसे व्यक्तियों का नाम अलाउद्दीन से सम्बद्ध है। अलाउद्दीन ही ऐसा नरेश है, जिससे सम्बद्ध हिन्दी-रचनाएँ हमें मिलती हैं।

गीतों में अलाउद्दीन खिलजी :

प्रताप : अलाउद्दीन अपने प्रबल गर्जन से सहसा दलन करनेवाला, सिंह के समान नाद और बल से युक्त होने के कारण बाँकुरों में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली शत्रुओं को वह उनकी छावनियों से मिला देता है। उसका धनुष गतिशील रहता है और वह स्वयं स्थिर। विद्या में श्रेष्ठ नायक गोपाल उसकी प्रशंसा में गीत गाता है दिल्ली-नरेश शाहंशाह अलाउद्दीन प्रतापयुक्त हो रहा है, पृथ्वी जिसके अधिकार में है, इस तथ्य को तू भली भाँति धारण कर ले।^१

उदारता : शाह अलाउद्दीन 'मौज दरिया' (नद की तरंगों के समान उमड़ते हुए स्वभाववाला) 'रौशन जमीर' (विवेकी), 'रसूल आलम' (ससार के लिए पैगम्बर के समान) है। मैं गरीब और तू 'गरीबनवाज़' (दीनवत्सल) हो, 'नेमत' (निधि) दो।^२

हुसेनशाह शर्की : चौदहवीं शती ई० के अन्तिम दशक में मलिक सरवर ख्वाजा जहाँ ने जौनपुर-राज्य की स्थापना की थी। दिल्ली के सुलतान महमूद तुगलक की ओर से पूर्वोक्त मलिक को 'मलिकुशक' (पूर्व का सरदार) की उपाधि मिली थी, अतः यह राजवंश 'शर्की' (पूर्वी) प्रसिद्ध हुआ।

इस वंश का सर्वाधिक प्रतिभाशाली शासक इब्राहीम शर्की सन् १४०२ ई० में सिंहासन पर बैठा था, यह कलाप्रेमी और विद्याव्यसनी था।

इस वंश का अन्तिम शासक हुसेनशाह हुआ, जो बहलोल लोदी (सन् १४५१-१४८८ ई०) द्वारा युद्ध में पराजित हुआ।

हुसेनशाह शर्की संगीत-कला में ऐसा निष्णात था कि किसी गवैये को कुछ नहीं समझता था। इसे बारह रागिनियों का आविष्कारक कहा जाता है। इसकी मृत्यु सन् १४९९ ई० में हुई।

१. परिशिष्ट अ, १।

२. रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ६१।

मानसिंह तोमर : मानसिंह के विषय में इतिहासकारों का कथन निम्नांकित है :

अबुल फजल का कथन है कि 'राजा मानसिंह के शासनकाल में उसके तीन संगीतज्ञो—नायक बख्शू, मझू और भन्नू ने ऐसे गीतों का एक संकलन किया था, जो जनता के प्रत्येक वर्ग की रुचि के अनुकूल था। जब मानसिंह की मृत्यु हो गई, तब बख्शू और मझू सुलतान बहादुरशाह गुजराती की सेवा में उपस्थित हो गये और उसके द्वारा समादृत होकर इन कलाकारों ने वे गीत उस दरबार में प्रस्तुत किये।^१

'बादशाहनाम.', 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' और 'मिराति आफ़ताबनुमः' के आधार पर मौलाना अर्शी कहते हैं : 'यह (मानसिंह) मूसिकी (संगीत) का बड़ा कद्रदान था, बल्कि खुद भी इस फन के कामिलों (चूडान्त मर्मज्ञों) में शुमार किया जाता था। नायक बैजू, जो अपने जमाने का बेनजीर (अनुपम) और मशहूर मूसीकार (संगीतज्ञ) है, इसका दरबारी गवैया था और नायक बख्शू ने इससे तर्बियत (प्रशिक्षण) प्राप्त की थी। उसने ग्वालियर की मूसिकी का दारुल्-इल्म (विद्या-केन्द्र) बना दिया था, चुनाचे अकबरी दरबार के चौतीस नामी गवैयों में से सोलह ग्वालियर के रहनेवाले थे। यह पहला शख्स है, जिसने ग्वालियरी जुबान (भाषा) में नज्मे (कविताएँ) लिखी और एक जदीद तर्ज (नूतन शैली) का मूजिद (आविष्कारक) हुआ। इसी ने कृष्णजी के मुतअल्लिक (सम्बद्ध) तसनीफात (रचनाओं) की मदह (प्रशंसा) या मरातिब इश्क (प्रेम की दशाओं) के तजिकर (चर्चा) के मुतअल्लिक नज्मों को 'स्तुति' और 'ध्रुवपद' नाम दिया।^२

ध्रुवपदों में मानसिंह तोमर

प्रताप : 'तेरा समाचार सुनते ही उसके पग डगमगा गये, तेरा बखान क्या करूँ, तू महाजानी है। ओ दिल्ली-नरेश, तू गुणियों को गजदान देता है। अरे, तेरा डंका बजा, फौजों के साथ चढ़ाई करके तूने 'अमान' (व्यक्ति-विशेष) को ललकार कर ले डाला (अथवा शान्ति प्राप्त की)। तूने ललकार कर आक्रमण किया। तू सूर्य-भानु की भाँति उदित हुआ। ओ चक्रवर्ती राजा मान, नायक गोपाल धारू गा रहा है।'

टिप्पणी : राजा मानसिंह को 'दिल्ली-नरेश' कहकर 'गोपाल' पर तोमरो का वैध अधिकार घोषित कर रहे हैं। ग्वालियर के पास शताब्दियों से एक कहावत 'फिर दिल्ली तौरों (तोमरो) की, तौर गये तो औरों की' प्रसिद्ध है। यह भी सम्भव है कि जब मानसिंह

१. In the reign of Rajah Mansingh of Gwalior, three of his musicians, named Naik Bukhshoo Mujhoo and Bhannu, formed a collection of songs suited to the taste of every class of people. When Mansingh died, bukhshoo and Mujhoo went into the service of Sultan Bahadur Gujrati and being highly esteemed by that prince, Introduced into his court his kind of songs ! —Ain, Glad, p. 130

२. 'आजकल' (उर्दू), मूसिकी-नम्बर, अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३।

तोमर ने सिकन्दर लोदी को जौरा नामक ग्राम के निकट बुरी तरह ठोक-पीटकर भगा दिया, तब गोपाल नायक ने मानसिंह का विरुद्ध गाते हुए उसे निल्ली-नरेश कहा हो ।

यह रचना गोपाल द्वितीय की प्रतीत होती है, जो मानसिंह तोमर के दरबारी गायक बख्शू के शिष्य थे ।^१

राजा मान को सम्बोधित करते हुए गोपाल नायक का एक अन्य ध्रुवपद भी प्राप्त है ।^२ राजा मान को सम्बोधित करते हुए एक 'धारू' की भी रचना गोपाल ने की है ।^३

सुलतान मुजफ्फर गुजराती : यह सुलतान महमूद बीगड़ा का बेटा और गुजरात का आठवाँ बादशाह था । प्रकृति ने इसे विद्या, दाक्षिण्य, निष्पक्षता एवं न्याय के गुणों से विभूषित किया था, अतः प्रजा को अत्यन्त प्रिय था । संगीत-विद्या में इसने अत्यन्त निपुणता प्राप्त की थी और इसका कण्ठ बहुत अच्छा था । प्रत्येक वाद्य के वादन पर इसका अधिकार था । इसके युग के उस्ताद लोग इसके शिष्य कहलाना गर्व की बात समझते थे और इसे संगीत के समस्त अंगों में निष्णात मानते थे । इसने अपने संरक्षण से गुजरात को संगीत का केन्द्र बना दिया था । सन् १५२६ ई० में जब इसका देहान्त हुआ, तब यह ५६ वर्ष का था ।^४

सुलतान बहादुरशाह : गुजरात का सुलतान बहादुरशाह, मुजफ्फर का पुत्र और संगीत का प्रेमी था । 'मिराति सिकन्दरी' के अनुसार, नायक बैजू और बख्शू इसके दरबारी कलाकार थे ।^५

दरिया खाँ : बहादुरशाह के पुत्र (सन् १५५४ ई०) के मन्त्री दरिया खाँ ने संगीत को अत्यधिक प्राश्रय दिया था । परिणाम यह हुआ कि इसके मन्त्रित्व-काल (सन् १५३८-१५५४ ई०) में अहमदाबाद के दरवाजे से गीत गूँजने लगे और घर-घर गाने-बजाने की चर्चा हो गई । 'मिराति सिकन्दरी' में इसके आश्रित निम्नांकित कलाकारों की चर्चा है :

१. नायक अब्दुल : इसका गान गोपाल नायक की मुर्दा हड्डियों में प्राण फूँकता था ।
२. नायक हुसेनी : यह नायक बख्शू का बेटा था और अपने युग का बहुत बड़ा गायक माना जाता था ।
- ३-४. रँग खाँ और मल्ही : ये दोनों नायक चतुर के बेटे थे ।
५. खेम हरमन : यह भी बला का गवैया था ।^६

१. परिशिष्ट अ, २ ।

२. परिशिष्ट अ, ३ ।

३. परिशिष्ट अ, ४ ।

४. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३ ।

५. उपरिबत् ।

६. उपरिबत्, पृ० १०३-१०४ ।

इस्लामशाह : यह शेरशाह सूरी का पुत्र था, इसे ही सलीमशाह भी कहा जाता था । मंझन ने अपना ग्रन्थ 'मधुमालती' इसी के राज्यकाल में लिखा था । सूरियो में यह अन्तिम प्रतापी बादशाह था । इसके उत्तराधिकारी ऐसे न हुए । इस्लामशाह का राज्यकाल सन् १५४५—१५५४ ई० है । इस समय शेरशाही शासन-व्यवस्था चलती रही । सूरी बादशाहों के दरबार में संगीत-चर्चा भली भाँति प्रचलित थी । इस्लामशाह का साला मुबारिज खाँ बहुत बड़ा संगीतमर्मज्ञ था, जो इस्लामशाह के द्वादशवर्षीय पुत्र की हत्या करके गद्दी पर आसीन हुआ और मुहम्मद आदिल शाह या अदली के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इस्लामशाह की मुद्रा से अंकित कुछ ध्रुवपद मिलते हैं । एक ध्रुवपद में किसी नायिका से कहा गया है :

‘अवसर पाकर तूने नागर सलेम (सलीमशाह) सुलतान को रिझा लिया । तू ही विचित्र स्त्री है, तू ही चतुर है, पिया तुमसे ही परम सुख पाता है ।’^१ एक अन्य ध्रुवपद में कोई नायिका प्रियतम का स्वागत इस प्रकार कर रही है : “पिया का मुख देखते ही हे सखि, मुझे आनन्द हुआ और प्राणों को सुख मिला । जो कुछ व्यथा मुझ विरहिणी पर व्याप्त हो रही थी (वह व्यथा और) तन-मन के दुःख भूल गये । मैं तो (हे प्रियतम,) तुम्हारा सुख चाहती हूँ, (मैंने) निछावर किया है, तुम्हारे चरण-स्पर्श से मेरे रोम-रोम में सन्तोष होता है । बादशाह सलीमशाह जब मनोरथ पूर्ण करते हैं, तब परम सुख होता है ।”^२

“(हथेली पर कपोल टिकाकर) तू हाथ में चन्द्रमा लिये हुए है । तेरे ही आनन पर जीवन आश्रित है । यौवन के कारण ही तू ही मत्त गयन्द जैसी चाल चलती है । तेरा रूप दर्शनीय है, वर्णनीय नहीं । असलमशाह (सलीमशाह : इस्लामशाह) आनन्द-पूर्वक तेरे ही चारों ओर चक्कर लगाता रहता है, और तू उसके मन को बाँध रही है ।”^३

इस्लामशाह के दरबार में बाबा रामदास गायकों में थे ।^४ महापात्र भी इस्लामशाह के दरबारी गायक थे । अन्त में, ये दोनों अकबरी दरबार में रहे । महापात्र को एक बार उड़ीसा के मुकुन्ददेव के पास राजदूत बनाकर भेजा गया था ।^५ नरहरि महापात्र ने इस्लामशाह के विषय में कहा है :

१. परिशिष्ट अ, १७ ।

२. परिशिष्ट अ, १८ ।

३. परिशिष्ट अ, १९ ।

४. “Ramdas of Lucknow, who was one of musicians of Aslimshah.”

—Munt., Vol. II, p. 37.

५. “Islamshah also was a patron of music, his two great singers were Ramdas and Mahapatra. Both entered subsequently Akbar's service. Mahapatra was once sent on ambassador to Mukund Rao of Orrisa.”

—Ain. Bloch. Foot note, p. 90.

प्रथम जम्पि जगदीस कर करहु कवित रचनेमु ।
जस निर्मल चिर चिर जिवे, छत्रपति साहि सलेमु ॥

दौलत खाँ : मिश्रबन्धुओं ने इन्हें भ्रमवश शेरशाह का पुत्र लिखा है, परन्तु 'मुन्तख-बुत्तवारीख' के आधार पर मिश्रबन्धुओं का खण्डन करते हुए काजी मेराज धौलपुरी का कथन है : "इसके मुतल्लिक (सम्बद्ध) अरबाबे कलम (लेखकों) को गलतफहमियाँ (भ्रान्तियाँ) हुई हैं । हकीकतन (वस्तुतः) यह शेरशाह सूर का लडका नहीं था, बल्कि उसके सलीमशाह का 'मंजूरे नजर' (प्रेमपात्र) था, जिसको सलीमशाह पल-भर के लिए भी जुदा नहीं कर सकता था । नज़्म (अन्तिम समय) के आलम (दशा) में भी उसका ओझल हो जाना सलीम को गवारा नहीं था । खजानेदार (कोषाध्यक्ष) को हुक्म था कि वह एक लाख तंक (मुद्राविशेष) हर रोज वगैर पुछे दौलत खाँ को दे दिया करे ।"^१

'मन्नासिरुल् उमरा', भाग ४, पृ० १४६ की पादटिप्पणियों से ज्ञात होता है कि बाजबहादुर मालवाधिपति के पिता शुजाअत खाँ (सच्चावत खाँ) का एक दत्तक पुत्र भी दौलत खाँ था । बाजबहादुर ने अपने पिता की मृत्यु होने पर अपने एक सहोदर मूसा (मुस्तफा) तथा दौलत खाँ को मार डाला था । बाजबहादुर का सम्बन्ध इस्लामशाह के साथ भली भाँति था । सम्भव है कि इसके पिता का दत्तक पुत्र दौलत खाँ ही इस्लामशाह का प्रेमपात्र हो ।

दौलत खाँ के सम्बन्ध में दो ध्रुवपद मिले हैं, जिनमें कहा गया है : "भाई, प्रियतम की मूर्ति का मुख-प्रकाश किसी से कहा नहीं जाता, मन-ही-मन उसका ग्रहण किया जा सकता है । उसकी जितनी सराहना करने की इच्छा होती, करनेवाले का मन ही उसे जानता है । उसे किसी की उपमा नहीं दी जाती, यदि वैसा किसी ने (विधाता ने) बनाया हो, तो उसके समझने में वाणी की गति हो । दौलत खाँ प्यारा ऐसा है कि उसके संग को सुख और जीवन का फल मानना चाहिए ।"^२

"प्यारे, तुम मुझसे रूठते ही क्यों हो, यदि मुझसे कुछ भूल हुई हो, तो उसका सुधार करनेवाले तुम ही हो । तुम प्रतिवचनों का परित्याग करके अलग हो गये, अब तो गले से लगाने के लिए मैं मन में उतावली हो गई हूँ । हाय रे ! तुम्हें यह सीख किसने दी है, तुमने मन में क्या ठान ली है, मेरे साथ यह कैसा व्यवहार है ? (नेत्रों) के प्रकाश दौलत खाँ हँसकर पहेलियाँ बुझा रहे हो, उत्तर क्यों नहीं देते ।"^३ काजी मेराज धौलपुरी ने तानसेन को दौलत खाँ का प्रेमी बताया है ।^४

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० ६३ ।

२. परिशिष्ट अ, २० ।

३. परिशिष्ट अ, २१ ।

४. 'आजकल' (उर्दू) अगस्त, १९५६ ई०, पृ० ६३ ।

मोहम्मद आदिलशाह 'अदली' · मोहम्मद आदिलशाह सन् १५४६ ई० में अपने द्वादशवर्षीय भाँजे फीरोज खाँ की हत्या करके गद्दी पर बैठा, जो शेरशाह का पौत्र और इस्लामशाह का पुत्र था। आदिलशाह शेरशाह के छोटे भाई निजाम खाँ का बेटा था। वह 'आदिल' या 'अदली' (न्यायप्रिय) कहलाना चाहता था, किन्तु इसके अन्धाधुन्ध कामों के कारण लोग उसे 'अँधली' कहते थे। वह अपने समय का वाजिद अली शाह था।^१

अदली महान् संगीतमर्मज्ञ था और मियाँ तानसेन और बाजबहादुर जैसे संगीत-महारथी इसके शिष्य थे।

बाजबहादुर : यह शुजाअत खाँ सूर (सजावत खाँ) का पुत्र था और इसका वास्तविक नाम 'बापजीद' था। बाजबहादुर ६६३ हिजरी (सन् १५५५ ई०) में पिता के मरने पर राज्य का अधिकारी हुआ। अगले वर्ष इसने छत्र धारण किया और शत्रुओं को परास्त करके अपने नाम से 'खुतवा' पढवाया। समस्त मालवा पर इसका अधिकार हो गया। गढ पर चढ़ाई की, तो रानी दुर्गावती से हारा और चुप बैठ गया।^२

अकबर के राज्य के छठे वर्ष ६६८ हि० (सन् १५६० ई०) में अरहम खाँ को मालवा-विजय के लिए भेजा गया। बाजबहादुर ने अपने निवासस्थान 'मारगपुर' में दो कोस दूर मोर्चा बाँधा और सिपाहियों की अग्रमन्नता के कारण पराग्त हुआ।

अपनी स्त्रियों और रखेलियों की रक्षा के लिए यह कुछ विश्वमनीय व्यक्तियों को इसलिए छोड़ गया था कि पराजय का समाचार आने पर वे भाग्यीय प्रशानुसार स्त्रियों को शत्रुओं के हाथ में न पडने देने के लिए मार डालें। कुछ मार डाली गई और कुछ के मारे जाने से पूर्व ही शाही सेना नगर में पहुँच गई। अरहम खाँ इनपर अधिकार करके बाजबहादुर की प्रसिद्ध प्रेयसी रूपमती (वेश्या) को खोजने लगा, जो अत्यन्त ही ग्राहत हो चुकी थी। उसने विष खाकर प्राण दे दिये।^३

मालवा का शासन पीर मुहम्मद को मिलने पर बाजबहादुर ने सेना इकट्ठी करके चढ़ाई की और हारकर भाग गया। खानदेश के सुलतान मुबारकशाह की सेना लेकर इसने पीर मुहम्मद खाँ को परास्त किया, जो कि नर्मदा पार करते समय डूब गया। बाजबहादुर का अधिकार मालवा पर दूसरी बार हो गया।

सन् १५६३ ई० में जब मालवा पर अब्दुल्ला खाँ उजबक की नियुक्ति की गई, तब बाजबहादुर भागकर बगलाना के जिमीदार से भेंट की, तत्पश्चात् शेर खाँ और चंगेज खाँ गुजराती की शरण में गया। वहाँ से निजामुल्मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँचा। वहाँ से भी दुःखित होकर भागा और राणा उदयसिंह के संरक्षण में रहने लगा।

१. अकबर, पृ० ३७-३८।

२. मन्नासिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० १४८।

३. उपरिचत्, पृ० १५०।

सन् १५७१ ई० में अकबर ने हुसन खाँ खजांची को भेजकर इसपर कृपा की और इसे बुलवा लिया। आरम्भ में, इसे एकहजारी मनसब मिला और अन्त तक दोहजारी जात एवं सवार के मनसब तक पहुँचा।^१

बाजबहादुर के मृत्युकाल तथा सन्तान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता। 'मुन्तखबुत्तवारीख' से इसकी मृत्यु के काल का सन् १५६४ ई० से पूर्व होना सूचित होता है।^२

बाजबहादुर और रूपमती, मआसिरुल् उमरा के अनुसार, उज्जैन के तालाब के बीच पुश्ते पर आराम कर रहे हैं^३, परन्तु 'तारीखे मालवा' के अनुसार, बाजबहादुर की कब्र सारंगपुर में है।^४

बाजबहादुर स्वयं गान-वादन-कला में निष्णात था और पातुरों को एकत्र करने में लगा रहता था, जो गाने में अपनी निपुणता के लिए प्रसिद्ध थी। रूपमती इनमें सबसे बढ़कर थी। कहते हैं कि यह पद्मिनी थी, जो नायिकाओं के चार भेदों में प्रथम है। इस प्रकार के भेद हिन्दू के विद्वानों ने किये हैं। तात्पर्य यह है कि स्त्रियों के सभी अच्छे गुण इसमें थे। बाजबहादुर को इससे अत्यन्त प्रेम था। इसके प्रेम में हिन्दी-कविता कहकर यह अपने हृदय का उद्गार निकालता था। इन दोनों के सौन्दर्य और प्रेम की कहानियाँ अबतक लोगों की जबान पर हैं।^५

'मुन्तखबुत्तवारीख' के अनुसार, बाजबहादुर ने संगीत-कला अदली से सीखी थी।^६ बाजबहादुर और रूपमती दोनों ही ध्रुवपदकार थे। रूपमती के वियोग में दुःखी बाजबहादुर की एक रचना प्राप्त होती है। उसका भावार्थ है -

'यौवन दगा दिये जाता है। तुझसे और रंगों की क्या कहूँ, कसूमी रंग जैसे हैं। काले काग (केश) चले गये और श्वेत बगुले (सफेद बाल) आ गये। ओ रूपमती के बाजबहादुर, सदा कोई नहीं जीवित रहता।' ^७

१. मआसिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० १५१-१५२।

२. उपरिबत्, पृ० १५२ (पाद-टिप्पणी)।

३. उपरिबत्।

४. उपरिबत्।

५. उपरिबत्, पृ० १४६-१५०।

६. "Bazbahadur who was also one of the most gifted man of his age and had no equal in this life wasting accomplishment acquired the art (of music) from Adli"—Munt. Vol I, p. 55.

७. "जोवन जात दिये दगा। और रंगनि की कहा कहों तोसों जैसे कसूमी रंगा।

... कारे काग गये घर अपने आये सेत बगा।

रूपमती के बाजबहादुर कोउ न जीवै सदा ॥"—परिशिष्ट अ, २४।

राजा रामचन्द्र बघेला (मृत्यु : सन् १५८५ ई०) : ये भट्टाप्रान्त के भू-स्वामी और हिन्दुस्थान के बड़े राजाओं में थे । तानसेन नामक कलावन्त, जो गानविद्या का आचार्य था और जिसके समान आवाज और सूक्ष्म विचार उसके पहले किसी में सुनने में नहीं आया था, इसी के दरबार में था । राजा उसका गुणग्राहक और प्रेमी था । जब उसके गुणों की प्रशंसा अकबर ने सुनी, तब सातवें वर्ष (सन् १५६२ ई० ?) में जलाल खाँ शस्त्राध्यक्ष को उसके पास भेजकर तानसेन को बुलवाया । राजा ने विद्रोह करना अपनी शक्ति से बाहर समझ इन्हें पूरे साज और सामान के साथ बादशाह के लिए भेट आदि देकर विदा किया । जब यह बादशाह के पास पहुँचा, तब पहले दिन दो करोड़ दाम (जो उस समय के दो लाख रुपयों के बराबर होगा) पुरस्कार में दिये । इस प्रकार के पुरस्कारों के प्रलोभन से वह यही फैसला गया । उसकी रचनाएँ (अनुवाद में 'तसानीफ़' का अशुद्ध अनुवाद 'ग्रन्थ' किया गया है), जो बहुधा अकबर के नाम पर हैं, आज तक प्रचलित हैं ।^१

अकबर के आठवें राज्यवर्ष (सन् १५६३ ई०) में जब गाजी खाँ तन्नोज राजा रामचन्द्र की शरण में गया, तब उसकी रक्षा के लिए राजा रामचन्द्र को युद्ध करना पड़ा । युद्ध में गाजी खाँ मारा गया और राजा रामचन्द्र ने प्रान्त के दृढतर दुर्ग 'बान्धव' में आश्रय लिया । जब अकबर के दरबारी राजाओं ने विश्वास दिलाया कि राजा रामचन्द्र आकर बादशाही सेवकों में परिगणित हो जायेंगे, तब उनके प्रान्त पर अधिकार करने का विचार छोड़ दिया ।^२

सन् १५६६ ई० में जब दुर्ग घेरा गया और दुर्गवाले कष्ट पाने लगे, तब राजा रामचन्द्र ने दुर्ग से बाहर निकलकर दुर्ग की कुजी और उपयुक्त भेद अकबर के पास भेजी । राजा रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र दरबार में आये । सन् १५८३ ई० तक राजा रामचन्द्र अकबरी दरबार में उपस्थित नहीं हुए । अकबर ने सेना भेजनी चाही, परन्तु वीरभद्र ने दरबारियों द्वारा अकबर से कहलवाया कि किसी विश्वसनीय सरदार को भेजकर बुलवाने पर राजा रामचन्द्र अवश्य आयेगे । बादशाह ने जैब खाँ कोका और राजा वीरबल को भेजा । राजा रामचन्द्र दरबार में आये और उन्हें १०१ घोड़े पुरस्कार में मिले ।^३

अकबर के ३०वें राज्यवर्ष (सन् १५८५ ई०) में राजा रामचन्द्र का स्वर्गवास हो गया ।^४

ये अत्यन्त उदार थे और मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी का कथन है कि इन्होंने एक बार तानसेन को एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार में दी थी ।

१. मआसिरुल उमरा, प्र० भा०, पृ० ३३०—३३१ ।

२. उपरिबत्, पृ० ३३१ ।

३. उपरिबत् ।

४. उपरिबत्, पृ० ३३२ ।

इनकी प्रशंसा में रचित ध्रुवपद इनकी विद्वत्ता, गुणग्राहिता, वीरता एवं उदारता के प्रमाण हैं ।

ध्रुवपदों में राजा रामचन्द्र बघेला

प्रताप : वीरभानु के पुत्र बघेले वीर राजा रामचन्द्र के प्रस्थान करते समय शेष कलमलाता है । वह शक्तिमान् तपोबल एवं खड्गबल से युक्त है, पराये दुःख को दूर करनेवाला है । तानसेन की प्रार्थना है कि वह सप्तद्वीपों के समान अचल रहे ।^१

दरबार : इन्द्र जैसी लीला, इन्द्र जैसी शोभा और इन्द्र जैसा दरबार देखकर मुनि विस्मित हो गये हैं । खण्डो में भरतखण्ड और द्वीपो में जम्बूद्वीप इस प्रकार शोभित होते हैं, जिस प्रकार समुद्र में हीरा शोभित होता है । जरबफ्त और रेशमी वस्त्र किसी को बुलाकर देते हैं और किसी को बखश देते हैं । राजा 'राम' ने तुम्हारे दर्शन किये, जिनके सम्मुख गुणी क्रीडा करते हैं ।^२

दानशीलता, विद्वत्ता : राजा राम बघेला ऐसा वीर है कि जिसके दान से पृथ्वी थरती है ।^३ राजाधिराज के दिये हुए अमूल्य तुरंग जड़ाऊ जीनों से जगमगा रहे हैं । पानेवालों ने बातों-ही-बातों में हाथी पा लिये, जो ऐरावत के समान हैं और जिनकी गणना नहीं हो सकती । षड्दर्शननिवास परम ज्ञानी (राजा राम) ने करोड़ों दान में दिये । छत्रपति राजा राम 'मौज दरिया' (तरंग आने पर उमड़नेवाला नद) और दारिद्र्य का भंजन करनेवाला है ।^४

राजा राम राजाओं का राजा महाराजाधिराज और चतुर्दशविद्यानिधान है । चिन्तन करते ही मनुष्य अभीष्ट वस्तु उससे प्राप्त करता है । विधाता ने (राजा) कर्ण जैसे कार्य करने के लिए उसकी रचना की है । वह लाज का जहाज (लज्जा की रक्षा करने-वाला) है, दीनबन्धु है, दीनों के मनोरथ उसके घर पर पूर्ण हो जाते हैं । वह अशरण-शरण और दुःखियों के दुःख को दूर करनेवाला है । तानसेन उसका नाम लेकर गाता है ।^५

पराक्रम : यदि राजा रामचन्द्र भी दीनों पर दया न करके यवनों की परवाह करे, तो कोलाहल में मग्न दरिद्र व्यक्तियों के भय का हरण कौन करे । यदि कुछ व्यक्ति छत्रपति नरेश हो भी गये, तो क्या हुआ ? राजा रामचन्द्र का प्रसाद पाये बिना विपत्ति-सागर से कौन पार उतारे और कौन उतरे ? जो बलि, वेन और सत्य हरिश्चन्द्र हो गये हैं, उनकी कीर्ति का उद्धार कौन करे ? वीरभाव का पुत्र दुःख-द्वन्द्व के

१. परिशिष्ट अ, ३१ ।

२. परिशिष्ट अ, ६ ।

३. परिशिष्ट अ, ३१ ।

४. परिशिष्ट अ, ६ ।

५. परिशिष्ट आ, ३२ ।

फन्दों को काटनेवाला है। तानसेन विनती करते हुए डरता है। राजा राम दान में तभी कृपणता कर सकता है, जब सूर्य अपनी दिशा से उतरकर पश्चिम में उगने लगे।^१

संगीतज्ञता : तानसेन कहते हैं कि मैंने धर्म-कर्म से युक्त आलाप का बाजार लगाया है। मैं गुण में पूर्ण हूँ और व्यापार करने बैठा हूँ। आकार (गले से लगने वाले आकारान्त स्वर) की डण्डी बनाकर 'ग्राम' (पङ्ज ग्राम और मध्यम ग्राम) की डोरियों से 'जोत' (डण्डी के साथ पलडों को बाँधनेवाली रस्सी) स्थिर की है, 'ताल' की पट्टी लेकर चटपट पीछे डाल दी है, अक्षर अर्थमूलक है, अच्छे ध्रुवपद तौल रहा हूँ, जिनकी तुके भारी है। इस गुण का ग्राहक रामचन्द्र है और मैं व्यापारी हूँ।^२

नाद-सागर का मार्ग अगम और अथाह है। उसमें शरीर को जहाज, आहत और अनाहत नाद को खम्भे, इक्कीस मूर्च्छनाओं को बादवान (मस्तपट) समझकर बाईस श्रुतियों से चलाना चाहिए। काव्य, रीति, संगीत, गीत, प्रबन्ध, ध्रुवपद, धारू, तत, वितत को समझकर उसमें बैठने के पश्चात् पङ्ज को लगर और सातों स्वरों को मन्दराचल समझे। उनचास कूरतानों को शुद्ध रूप में फिराकर नाद-सागर का मन्थन करे और चौदहो रत्न निकालकर नाम गिनाये। तीनों ग्रामों में औडव, पाडव, सम्पूर्ण, वादी, संवादी, अतीत, अनाघात, सम, विषम करके दिखाये। दस प्रकार के गमक लेकर मन्द, मध्य एवं तार स्थान में आरोह-अवरोह करके स्फुरित और प्रत्याहित में उपज करे। ढरन, मुख, अलापचारी और वर्जित स्वरों को जाने, चारों स्थानों का विचार करके संगीतरत्नाकर से अनेक राग निकाल लेने पर ध्रुव, माठा इत्यादि तालों के समेत गाकर रिझाये, तब गुणी राजा रामचन्द्र को भला प्रतीत होता है।^३

उत्सवप्रियता : अच्छी घड़ी में, अच्छा दिन, अच्छा मुहूर्त्त पाकर, अच्छे गुणियों ने वसन्त की स्थापना की है। मालिन ने गुलाल के रंग का लाल फूल प्रातःकाल ही दिया, सोनजुही दी, फिर पंचम का आलाप हुआ। वैसे ही रंगों के वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं। विद्याधरों का गान श्रवणों में व्याप्त हो गया। प्रतापी राजा रामचन्द्र जब रीजे, तब उन्होंने समस्त याचकों को भौंति-भाँति के दान दिये।^४

बहुपत्नीकत्व : तु विदुषी है और प्रिय का अनुग्रह पाकर तुझे यौवन का गर्व हो गया है। तेरे प्रताप एवं तेज के समक्ष सपत्नियाँ दीप-ज्योति की भाँति मलिन पड़ जाती हैं। अन्य स्त्रियाँ अच्छी नहीं प्रतीत होतीं। चन्दन, कुन्दन और चम्पे के समान तेरे वर्ण और छवि को देखकर समस्त सपत्नियाँ क्षीण हो गईं। राजा राम का अग और छत्रच्छाया प्राप्त करने के कारण सुखसमूह अविचल है।^५.. तू नासमझ है, मान शिथिल

१. परिशिष्ट अ, ३३।

२. परिशिष्ट अ, ६६।

३. परिशिष्ट अ, १२।

४. परिशिष्ट, अ १०।

५. परिशिष्ट अ, १४।

कर, इसी से तेरे मुख पर प्रसन्नता आयगी। मैं तुझे लेने आई हूँ, तू उठ। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? तू मुझसे क्यों रूठ रही है? प्रिय ने मुझे तुझे लेने के लिए भेजा है, मेरे कहने से महलों में सुख कर। मुझ बेचारी को दोष न दे, मैं तो राजा राम की चढ़ाई-बढ़ाई हूँ।^१ गिनते-गिनते अवधि बीत गई, तन-मन से मैं क्षीण हो गई, प्रिय ने मेरे मन की पीर नहीं जानी। पत्र तक नहीं भेजा। प्रियतम, तूने मुझे क्यों भुला दिया और मेरे हृदय की सुधि नहीं ली। घड़ी-घड़ी, पल-छिन युग के समान बीतने लगे। देखो, उनके हृदय में कौन-सी धुन है। प्रिय का यह कौन-सा स्वभाव पड़ गया है, जो राजा राम प्रियतम अन्यत्र विलम्ब कर रहे है।^२

मधुकरशाह (सन् १५५४-१५६२ ई०) : ओरछा-राज्य की नीव डालनेवाले प्रतापरुद्र या रुद्रप्रताप सोलहवीं शताब्दी ई० के प्रथम दशक में गढ़ी पर बैठे। सन् १५३१ ई० में इन्होंने ओरछा की नीव डाली।

प्रतापरुद्र के मरने के पश्चात् भारतीचन्द सन् १५३१ ई० में सिंहासनारूढ हुए। इन्होंने शेरशाह के पुत्र सलीमशाह से सन् १५४५ ई० में कालिजर-दुर्ग छीना था। सन् १५५४ ई० में ये स्वर्गवासी हुए।

भारतीचन्द निस्सन्तान थे, अतः उनके छोटे भाई मधुकरशाह राजा बने। इन्होंने मुगलों के सरदार नियामत खाँ को पराजित किया था। इनके हाथ से ओरछा का राज्य कई बार निकला, परन्तु इन्होंने अपने बाहुबल से उसे पुनः-पुनः प्राप्त किया। अकबर की सेनाओं को भी इनसे पराजित होना पड़ा था।^३

हरिराम व्यास : हरिराम व्यास ओरछा-नरेश मधुकरशाह के राजगुरु थे। ये 'व्यासजी' नाम से प्रसिद्ध है। वृन्दावन में ये गोस्वामी हितहरिवंशजी से शास्त्रार्थ करने गये थे, परन्तु उनके शिष्य हो गये। मधुकरशाह इन्हें ओरछा ले जाने के लिए स्वयं आये, परन्तु ये न गये। इनकी रचना परिमाण में विस्तृत है और विषयभेद के विचार से भी अधिकांश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। अकबर की प्रशंसा में ध्रुवपद की रचना करनेवाले 'व्यास' यही प्रतीत होते हैं।

बैरम खाँ खानखाना : बैरम खाँ का पिता शेख अलीबेग, बाबर बादशाह की सेवा में था। बैरम खाँ सोलह वर्ष की आयु में हुमायूँ की सेवा में आ गया और शीघ्र ही विश्वस्त सरदार बन गया। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् यह अकबर का अभिभावक था। अपने जीवनकाल के अन्तिम भाग में इसके सम्बन्ध अकबर से अच्छे नहीं रहे थे। फलतः, यह हज्र को जाते समय मार्ग में मार डाला गया।

यह संगीत का अत्यन्त रसिक था और बाबा रामदास के संगीत पर मुग्ध था। ये ही बाबा रामदास अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में दूसरे हैं। सुहेल खाँ नामक

१. परिशिष्ट अ, १५।

२. परिशिष्ट अ, १६।

३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० १७६।

एक ध्रुवपदकार ने अपने एक ध्रुवपद में निजामशाह (सिकन्दर सूर) की रत, देवलशाह सवाई और राम राजा (राजा रामचन्द्र बघेला) के साथ-साथ बैरम खाँ खानखाना की भी प्रशंसा है ।^१

रामदास को इसने एक बार एक लाख तंके पुरस्कार में दिये थे ।^२

अकबर :

अकबर का जन्म सन् १५४२ ई० के २३ नवम्बर को अमरकोट में हुआ था । सन् १५५६ ई० की १४ फरवरी को कलानूर नामक स्थान में वह गद्दी पर बैठा । इस समय इसकी आयु प्रायः चौदह वर्ष की थी । अक्टूबर, १५६० ई० में अकबर बैरम खाँ के संरक्षण से मुक्त हो गया था और सन् १५६१ ई० की ३१ जनवरी को बैरम खाँ की हत्या हो गई ।

बैरम खाँ संगीत का बड़ा प्रेमी था और अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक रामदास पर इसकी बड़ी कृपादृष्टि थी । बदार्नी कहते हैं : यद्यपि खानखाना के कोप में कुछ नहीं था, तथापि इसी प्रकार एक बैठक में खानखाना ने लखनऊ के रामदास को एक लाख टंक द्रव्य और सामग्री के रूप में दिये । रामदास पहले अस्लिमशाह सूर के गायको में थे । उन्हें गीत एवं संगीत में आग दूसरा मिया तानसेन कह सकते हैं । रामदास खानखाना के साथी और बेतकलुफ मुसाहब की तरह रहा करते थे और अपने कण्ठस्वर के सौन्दर्य से बैरम खाँ के नेत्रों में आँसू लें आया करते थे ।^३

संगीत-प्रेम के बीज अकबर में आनुवंशिक थे और सम्भवतः बैरम खाँ के संरक्षकत्व में उन्हें अकुरित होने का अवसर मिल चुका था । समय आने पर ये बीज भली भाँति फले-फूले ।

जनवरी, १५६२ ई० में अकबर का विवाह राजा बिहारीमल की लड़की से हुआ और मानसिंह अकबरी दरबार में आ गये । मानसिंह भी संगीतप्रेमी एवं गुणियों के संरक्षक थे ।

इसी वर्ष नवम्बर में प्रसिद्ध गायक तानसेन अकबरी दरबार में बुला लिये गये थे । 'संगीत' में अकबर की गति के विषय में अशुल फजल का कथन है : 'अकबर ने इस विशिष्ट

१. रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० २६८ ।

२. मुन्त०, भाग २, पृ० ३७ ।

३. "And in the same way Khan Khana, although he had nothing in his treasury, gave at one sitting a lak of tankas worth in money and goods to Ramdas of Lucknow, who was one of the musicians of Aslimshah and one that in music and song, you might term a second Mian Tansen ! This man used to be the Khankhana's companion and intimate associate, and by the beauty of his voice continually brought tears to his eyes !" — Munt., II, p. 37.

विषय की ओर पूर्ण अवधान दिया और उसकी समस्त प्रतिभा का उपयोग इस दिशा में हुआ। चाहे पर्शियन नगमे हों अथवा विभिन्न भारतीय राग, दोनों के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में अकबर की योग्यता अनुपम थी।^१

ग्वालियर-निवासी लाल कलावन्त संगीत-विद्या में अकबर का शिष्य था। बाल्य-काल से ही यह अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ और उसी की छत्रच्छाया में शिक्षा प्राप्त करके मर्मज्ञ संगीतविद् बना। अकबर जो भारतीय राग एवं रागिनी सुनता, इसे याद करा दिया करता था। सन् १६०८ ई० में लाल कलावन्त का स्वर्गवास हो गया।^२

स्मिथ का कथन है : 'अकबर गीत एवं संगीत में विशेष रस लेता था और ऐसा प्रतीत होता है कि इन कलाओं की पारिभाषिकताओं का उसे भली भाँति ज्ञान था।'^३

शाहजहाँ एवं औरंगजेब के काल में कश्मीर के गवर्नर फख्रुल्लाह ने अपने फारसी-ग्रन्थ 'रागदर्पण' के नवम परिच्छेद के अन्त में लिखा है कि अकबरकालीन कलाकारों की सहमति से 'रागसागर' नामक एक ग्रन्थ की रचना हुई थी। 'रागसागर' नामक एक ग्रन्थ 'भरतकोष' के विद्वान् सम्पादक प्रो० रामकृष्ण कवि को मिला है। कवि महोदय इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कहते हैं : 'इस ग्रन्थ में तीन अध्याय हैं। यह पता नहीं चलता कि इसका लेखक कौन है। ग्रन्थ में शार्ङ्गदेव का नाम लिया गया है।'^४ 'रागसागर' की एक प्रति मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट, लायब्रेरी में है। इसके स्वर-प्रकरण में रामामात्य की चर्चा आई है, जिनका काल सन् १५५० ई० है।^५ प्रस्तुत ग्रन्थ में रागध्यानाध्याय भी है, जिसमें ग्रन्थकार ने ६६ रागों का ध्यान दिया है। अकबर के युग में रागध्यान की परम्परा केवल उत्तर भारत में अवशिष्ट रह गई थी।

रागध्यानाध्याय में 'उषाणी' नामक राग का ध्यान भी है। प्रो० रामकृष्ण कवि का कथन है कि 'उषाणी' शब्द 'हुसेनी' का दूसरा नाम है।^६ कवि महोदय के इस अनुमान से

१. "The holy personallity has devoted his whole attention to this particular subject, and that all his intellect has been expanded on it, the knowledge which H. M. has of the necessities of music, as of the melodies of Persia, on the various songs of India, both as regards theory and execution unique for all time."

—Akbarnama, Part II, p 219.

२. 'आञ्जकल', उर्दू-संस्करण, म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०६।

३. "He took special delight in music and song, and seems to have had a considerable knowledge of technicalities of those arts"

—The Great Mogul p. 6.

४. परिधित्रयात्मकोऽयं ग्रन्थः केन रचित इति न ज्ञायते। ग्रन्थमध्ये शार्ङ्गदेवनाम स्मृतमस्ति। —भरतकोष, पृ० ५४३।

५. 'संगीत' मासिक, पृ० २८, नवम्बर, १९५६ ई०।

६. हुसेन्या नामान्तरं स्यात्। —भरतकोष, पृ० ८६।

हम सहमत हैं। अनेक फारसी-शब्दों का संस्कृतीकरण उस युग की विशेषता थी। विदेशीय भाषाओं के शब्दों का संस्कृतीकरण आज भी संस्कृतज्ञों में प्रचलित है। 'अलेक्जेंडर' के स्थान पर 'अलक्षेन्द्र' या 'अलीकसुन्दर' एवं 'मैकडॉनल्ड' की जगह 'मुग्धानल' प्रयुक्त करनेवाले सज्जन आज भी पाये जाते हैं। अतः, 'हुसेनी' नामक राग का नाम 'उषाणी' हो जाना असम्भव नहीं है।

'रागसागर' नामक ग्रन्थ में रागध्यानाध्याय का अस्तित्व और मुस्लिम-प्रवृत्त रागों की चर्चा इस ग्रन्थ का रचनास्थल उत्तर भारत सिद्ध करती है और हमारे विचार में यह 'रागसागर' वही ग्रन्थ है, जिसकी चर्चा फखरुल्लाह ने की है। ये तथ्य सिद्ध करते हैं कि अकबर 'संगीतशास्त्र' की रचना का भी प्रेरक था।

अकबरी दरबार के कलाकार :

'आईने अकबरी' में अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों के नाम निम्नांकित रूप में गिनाये हैं। इस संगीतज्ञ-वर्ग का विस्तृत विवरण देना तो बहुत कठिन होगा, परन्तु मैं प्रमुख संगीतज्ञों की चर्चा करूँगा :

- | | |
|---|---|
| १. ग्वालियर के मियाँ तानसेन, जिनके समान गायक भारतवर्ष में पिछले सहस्र वर्षों से नहीं हुआ। | १५. मुल्ला इसहाक ढारी |
| २. ग्वालियर के बाबा रामदास | १६. उस्ता दोस्त, मशहद-निवासी, 'नै' नामक वाद्य के वादक। |
| ३. ग्वालियर के सुबहान खाँ, गायक | १७. नायक चरजू, ग्वालियरवासी, गायक |
| ४. सिरग्यान खाँ (सुरग्यान खाँ), ग्वालियर के गायक | १८. पुरबीन (प्रवीण) खाँ, वीणावादक |
| ५. मियाँ चाँद, ग्वालियर के गायक | १९. सूरदास गायक, रामदास का पुत्र |
| ६. विचित्र खाँ, सुबहान खाँ के भाई | २०. चाँद खाँ, ग्वालियर के गायक, |
| ७. मुहम्मद खाँ ढारी, गायक | २१. रंगसेन, आगरावासी, गायक |
| ८. वीरमण्डल खाँ, ग्वालियर के गायक | २२. शेख दावन ढारी, 'करना' नामक वाद्य के वादक |
| ९. बाजबहादुर, मालवा का शासक एवं अद्वितीय गायक | २३. रहमतुल्लाह गायक, मुल्ला इसहाक का भाई |
| १०. शिहाप (शहाब) खाँ, ग्वालियर के वीणावादक | २४. मीर सैपिद अन्वी, मशहद-निवासी, 'धिचक' नामक वाद्य के वादक |
| ११. दाऊद ढारी, गायक | २५. उस्ता यूसुफ, हिरात-निवासी, तम्बूरा-वादक, |
| १२. सरोद खाँ, ग्वालियर के गायक | २६. कासिम उपनाम कोहबर, एक तन्त्री-वाद्य के आविष्कारक |
| १३. ग्वालियर के मियाँ लाल, गायक | २७. ताशबेग, कियचाक-निवासी, 'कुबुज'-वादक |
| १४. तानतरंग खाँ, मियाँ तानसेन के गायक पुत्र | |

- | | |
|--|---|
| २८. सुलतान हाफिज हुसेन, मशहद-निवासी,
पाठ करनेवाला | ३३. हाफिज ख्वाजा अली, मशहदवासी,
पाठ करनेवाला |
| २९. बहराम कुली, हिरात-निवासी, चिचक-
वादक | ३४. मीर अब्दुल्ला, मीर अब्दुल हई के
भाई, कानून-वादक |
| ३०. सुलतान हाशिम, मशहद-निवासी, पाठ
करनेवाला | ३५. पीरजादा, मीर दावन का भतीजा,
पाठ करनेवाला और गायक |
| ३१. उस्ता शाह मुहम्मद, सुरना-वादक | ३६. उस्ता मुहम्मद हुसेन, तम्बूरावादक । ^१ |
| ३२. उस्ता मुहम्मद अमीन, तम्बूरावादक | |

फखरुल्लाह का कथन है : 'अकबरयुगीन गायक विद्या में मानसिंह के युग के गायकों के समान नहीं थे ।... अकबर के युग में गवैये अक्सर 'अताई' थे । उस्तादों का कायदा यह है कि जो कोई इल्म का अमल (व्यवहारमात्र) जानता हो, उसे 'अताई' कहते हैं । इस दृष्टि से मियाँ तानसेन, सुबहान खाँ नौहार, सुरग्यान खाँ फतहपुरी, चाँद खाँ, सूरज खाँ, तानसेन के शिष्य मियाँ चन्द, मियाँ तानसेन के दो बेटे तानतरंग खाँ एवं विलास खाँ, रायदास मूडिया, बाऊद खाँ ठारी, मुहम्मद खाँ ठारी, मदन खाँ ठारी, मुल्ला इसहाक ठारी, इसके भाई खिज्र नबात खाँ और हसन खाँ अफगान ये सब अताई थे ।

बाजबहादुर, नायक चिरजू, नायक भगवान्, धोंधी (धोंधू), तानसेन का पुत्र सूरतसेन, दो भाई लाला और देवी, ब्रह्मी, आकिल, सूनबाझी (?) ये सब लोग थोड़े-से पढ़े हुए थे ।...

यह वर्ग कम पढ़ा-लिखा था । इसे व्यवहारहीन शास्त्रज्ञान था, जो पुस्तक में लिखा था, उसे इन्होंने पढ़ लिया था ।^२

फखरुल्लाह अकबर-युग के कलाकारों में इनके नाम 'अताई'-वर्ग में गिनाता है, जो अबुल फजल की दृष्टि में उस युग के मूर्धन्य कलाकार थे और इन्हें थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा तक नहीं बताता । यह सम्भव है । आज भी राष्ट्रपति-पुरस्कार द्वारा सम्मानित कतिपय कलाकार हस्ताक्षर तक करने में असमर्थ हैं और आवश्यकता पड़ने पर अँगूठा लगाते हैं ।

फखरुल्लाह ने जिन कलाकारों को 'अताई' कहा है, उन्हें मौखिक परम्परा से संगीत की व्यावहारिक शिक्षा मिली थी । साहित्यकारों एवं पण्डितों के संसर्ग से उन्हें उस भाषा पर अच्छा-खासा अधिकार था, जो उस समय गाये जानेवाले पदों की भाषा थी और वे 'मसि-कागद छुयो नहीं' कहनेवाले कबीर के समान पद-रचना भी करते थे, भले ही पढ़-लिख न सकते हों । दरबारी वातावरण में पले-बढे होने के कारण ये संगीतज्ञ निरक्षर होने पर भी, अशिक्षित नहीं, बहुश्रुत थे ।

१. आइने अकबरी, ब्लाकमैन, पृ० ६८१-८२ ।

२. रागदर्पण हस्तलिखित, रजा लायब्रेरी, रामपुर ।

ध्रुवपदों में अकबर :

सिंहासन, प्रताप : छत्रपति अकबर महाज्ञानी है, समस्त गुणियो, आश्रो, छन्द गाश्रो । हिन्द के भाग्य से हुमायूँ का पुत्र अकबर प्रचण्ड अश्वदल सजाकर तख्त पर बैठा है ।^१

धरणी धन्य है, शाह अकबर जिसको धारण किये हुए है । संसार में उदयाचल तक जिसकी दुहाई चली है । रसना, तू धन्य है । अकबर को करतार ने राज्य और साज एवं सिंहासन तथा अविचल भाग्य दिया है । नर-नरेन्द्र जिसकी सेवा कर रहे हैं, जो सम्पन्न थे, वे (शत्रु) माल छोड़कर भाग गये । तानसेन का प्रभु अकबर मण्डल के मध्य में ऐसा ही शोभायमान होता है, जैसे गोपाचल पर सूर्य ।^२

पराक्रम, अंगलकामना : चक्रवर्ती जलालुद्दीन नरेश, तू धन्य है । तूने सब देशों को अपने अधीन कर लिया । तू अपने खड्ग के बल से प्रबल है । तू सब भाँति से पृथ्वीपाल है और कोई प्रमाण (अधिकारी) नहीं है । जहाँ-तहाँ समस्त राजाश्रों पर उदयाचल तक तेरा ही निश्चय (चलता) है । अपने समान एक तू ही है, तू आत्मबल से युक्त महासुभट है । निश्चयपूर्वक तुझमें 'अली' का निवास है । विधाता ने तेरे समान किसी अन्य की रचना नहीं की, किससे तेरी उपमा दूँ । हे दारिद्र्यहर शाहशाह अकबर, जबतक ध्रुव, धरणी, और सूर्य हैं, जबतक गंगा और यमुना में जल है, तबतक चिरजीवी रहो ।^३

गौरक्षण : जग पर विश्वगशर धर्म कर रहा है.. तू स्वयं जगवन्दन है । शाह अकबर परमपुरुष, पुरुषोत्तम है । गौश्रो की रक्षा तूने कृपालु होकर की है । सृष्टि में पूर्ण ब्रह्म ने अवतार लिया है ।^४

ब्रजमण्डल-प्रागमन : छत्रपति अकबरशाह ब्रजमण्डल में आया है । सातों द्वीपों, नवों खण्डों और दशों दिशाश्रों में नर-नरेन्द्र डर से थर-थर काँपने लगे । अश्वदल, गजदल, नरदल और पदाति-दल में एक-से-एक अच्छे योद्धा हैं, एक-से-एक अच्छे सुभट हैं, जो 'गुर्ज' (गदा), 'नेजा' (शूल), 'तम्बल' (फरसा) और 'शमशीर' (तलवार) पाते हैं । जिधर सुनिए, उधर जलालुद्दीन मुहम्मद का लश्कर है ।^५

प्रयाग में धर्म की नींव रखना :

तानसेन कहते हैं कि समस्त जीवों को धारण करनेवाले, कण-कण भूमि का भरण-पोषण करनेवाले छत्रपति शाह अकबर ने धर्म की नींव रखी और शुभगृहों में, 'इलाहाबाद' में छत्तीस कुली बसाई ।^६

१. परिशिष्ट अ, २८ ।
२. परिशिष्ट अ, ३५ ।
३. परिशिष्ट अ, ४२ ।
४. परिशिष्ट अ, ३४ ।
५. परिशिष्ट अ, ३५ ।
६. परिशिष्ट अ, ७४ ।

संगीत में शोध :

जिनकी बुद्धि के आगे और की बुद्धि नहीं दिखाई देती, मैं उसकी स्तुति कैसे करूँ । मेरे एक ही जिह्वा है, निराले ढंग से 'संगीतरत्नाकर' के भेद पढ़ते हैं । प्यारे शाह अकबर, चिरंजीवी रहो ।^१ शाह जलालुद्दीन संगीत के सात अध्यायों की विद्या का दान गुणियों को देता है ।^२ शाह अकबर सप्त अध्यायों के ब्यौरे पृथक्-पृथक् करके दिखा देता है ।^३ जगद्गुरु जलालुद्दीन (मोहम्मद अकबर) दूध-का-दूध, पानी-का-पानी कर देता है ।^४

गुणमर्मज्ञता : प्रथम अनाहत नाद ओ३म् है, दूसरा आहत नाद है, उससे छियासठ श्रुतियाँ उत्पन्न की गई है । कल्लिनाथ, हनुमान् और भरत के मत में कौन-कौन-सी ध्वनियाँ होती हैं ? यदि तुम प्रवीण गायक हो, तो गाकर सुनाओ और प्रमाणित करो, ये श्रुतियाँ कौन-कौन है ? किस स्वर में कितनी-कितनी है ? बारह विकृत तथा वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर कौन है ? उनमें ग्रह-अंश, न्यास में प्रधान ठौर (स्थान) पर कौन होता है ? उन स्वरों से तीनों ग्रामों के विस्तार सरगम करके और तीनों को गाकर गुण को प्रमाणित करो । तिरसठ अलंकार, उनचास कूटतान तथा औडव-षाडव करके दिखाओ, जिससे गुण प्रमाणित हो । यह विद्या अगम और अथाह है । यदि पूर्ण गुणी हो, तो गाकर सुनाओ, शाह अकबर के सामने विद्या का यथार्थ प्रमाण होता है ।^५

उत्सवप्रियता (वसन्त) : ऋतुओं का राजा वसन्त आया और चारों दिशाओं में प्रकट हुआ, सबने आनन्द माना । अरगजा और अबीर से लाल (अकबर) को ढके देते हैं, प्रसन्न होकर मृग सुगन्ध प्राप्त करते हैं ।... इस प्रकार, शाह अकबर ने धमार खेली ।^६

कामशास्त्रीय मर्मज्ञता : कामिनियों के मद का भंजन करने और रमणियों के यौवन से निस्तार पानेवाला समर्थ अन्तर्यामी कामी अकबर जो-जो मन में आवे, सो-सो कीजिए । तुममें दक्षिण नायक के लक्षण हैं, तुम ही ग्रन्थ समझते हो, जो कानों से सुना है, वह प्रमाणित हो जाय, यही मेरी विनती है ।^७

बहुनायकत्व : अरी, वही (सुन्दरी) भली है, जिसे अकबर बड़ाई दे । एक प्रौढा है, जिसने उसी की उत्तम विद्या और उसी की निकाई ली है । एक 'मृगनयनी' है, एक

१. परिशिष्ट अ, ३२ ।

२. परिशिष्ट अ, ४५ ।

३. परिशिष्ट अ, ४६ ।

४. परिशिष्ट अ, ५० ।

५. परिशिष्ट अ, ४३ ।

६. परिशिष्ट अ, ५३ ।

७. परिशिष्ट अ, ६३ ।

‘पिकबैनी’ है और एक सब सुख देनेवाली ‘आनन्ददैनी’ है । लाल जलाल (अकबर) तुमने जिससे लाड़ लड़ाया है, वही भाग्यवती है, वही सौभाग्यवती है ।^१

जगद्गुरुत्व : दीन और दुनिया में अकबर जगद्गुरु है ।^२

ज्ञानित्व : मेरे यहाँ कौन घर-घर डोले, हृदय से ज्ञान बोल रहा है अथवा अल्लाह ही विचर रहा है । शाह अकबर ने मक्खन छीन लिया, अब मेरे यहाँ छाँछ कौन बिलोये ?^३

दीनइलाही का प्रवर्तक : बुजुर्ग और मुशिद (पीर) लोग जिसमें अल्लाह को पाते (देखते) हैं, वह शाह अकबर भरपूर नेमत देता है ।^४

अब्दुर्रहीम खाँ खानखाना : ये बैरम खाँ के पुत्र थे और अकबर के प्रयत्नों से उनकी शिक्षा-दीक्षा उच्च कोटि की हुई । संस्कृत, फारसी, अरबी और तुर्की के ये अच्छे विद्वानों में से थे । कोई हिन्दीप्रेमी ऐसा नहीं है, जो इनके दोहों से अपरिचित हो । हिन्दी-काव्य में इनका उपनाम ‘रहीम’ था । मन्नासिरुल उमरा के अनुसार, ये संसार की अधिकांश भाषाओं में बात कर सकते थे ।^५ स्वयं विद्वान् और कवि होने के अतिरिक्त ये गुणियों के प्रसिद्ध एवं उदार आश्रयदाता थे । मन्नासिरे रहीमी के अनुसार, इनके आश्रय में तबरेज-निवासी हाजी इस्माइल के पुत्र आगा मोहम्मद नई, तबरेज-निवासी गौलाना अस्वती, उस्ताद मिर्जा अली, नीशापुर-निवासी मौलाना शरीर, मोहम्मद मोमिन तथा हाफिज नाजरा नामक कलाकार थे ।^६

वीरभद्र : ये तानसेन के प्रसिद्ध आश्रयदाता राजा रामचन्द्र बघेला के पुत्र थे । अकबर के १४वें राज्यवर्ष (सन् १५६६ ई०) में राजा रामचन्द्र ने इन्हें अकबरी दरबार में भेजा था । सन् १५८३ ई० में जब अकबर ने राजा रामचन्द्र पर बल-प्रयोग करना चाहा, तब वीरभद्र ने दरबारियों के द्वारा अकबर से कहलवाया कि यदि कोई सम्मानित सरदार राजा रामचन्द्र को लेने के लिए भेजा जाय, तो वे अकबर से साक्षात् करने अवश्य आयेगे । फलतः, जब खाँ कोका और राजा वीरबल को राजा रामचन्द्र को बुलाने के लिए भेजा । सन् १५८५ ई० में राजा रामचन्द्र की मृत्यु होने पर अकबर ने वीरभद्र को ‘राजा’ की पदवी दी और उन्हें देश भेज दिया । मार्ग में ये सुखासन से गिर पड़े और ओषधि करने से इनका रक्त बिगड़ गया । असमय नहाने-धोने से इनका रोग बढ़ता गया और सन् १५९३ ई० में ये स्वर्गवासी हो गये । इनका शोक मनाने के लिए अकबर इनके सम्बन्धी रायसिंह राठौर के

१. परिशिष्ट अ, ७७ ।

२. परिशिष्ट अ, ३६; प० अ, ४७ ।

३. परिशिष्ट अ, २६ ।

४. परिशिष्ट अ, २७ ।

५. म० उ०, भाग २, पृ० १६७ ।

६. आइने अकबरी : ब्लाकमैन, पृ० ६८२ पर पावटिप्पणी ।

घर गया था ।^१ वीरभद्र अपने पूर्वजों के समान ही गुणियों के आश्रयदाता थे । इनकी प्रशंसा में 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १२७ पर एक ध्रुवपद संगृहीत है ।^२

जहाँगीर :

जहाँगीर का राज्यकाल सन् १६०५ से १६२७ ई० तक है । 'जहाँगीरनामः' में इसने संगीत एवं संगीतज्ञों के विषय में जो कुछ लिखा है, उससे संगीत-विषयक इसकी रुचि एवं ज्ञान का प्रमाण मिलता है ।

नौरोज के उत्सव का वर्णन करते हुए जहाँगीर कहता है : "मिष्टभाषिणी नायिकाएँ बाल खोले हुए उमंग के साथ गाने और नाचने में मस्त थी, जिनके देखने और सुनने से चेतनता ठीक हो जाती थी । इसी प्रकार, सात दिनों तक आनन्दोत्सव होता रहा ।"^३

कश्मीर के संगीत के विषय में जहाँगीर का कथन है : "मिर्जा हैदर के समय में कश्मीर में बहुत-से गुणी मनुष्य थे । गान-वादन में वे बड़े कुशल थे और वंशी, चंग, ढप, सारंगी आदि के वादन में प्रसिद्ध थे । पूर्वकाल में इनके यहाँ एक वाद्ययन्त्र 'कमोचः' की चाल का था और उसपर ये कश्मीरी-भाषा के गाने हिन्दी (भारतीय)-स्वर के अनुसार गाते थे, जिनमें कभी-कभी दो-तीन स्वर मिले रहते थे । साथ ही, कभी-कभी कई मनुष्य मिलकर गाते थे । वास्तव में, कश्मीर अपनी कई अच्छाइयों के लिए मिर्जा हैदर का ऋणी है ।"^४

जहाँगीर ने 'शौकी' नामक एक कलाकार को 'आनन्द खाँ' की पदवी दी थी । वह स्वयं कहता है : "एक वाद्ययन्त्र का वादक शौकी अपने समय का एक वैचित्र्य है । हिन्दी तथा पारसी गीतों को वह इस प्रकार गाता है कि हृदयों के मालिन्य दूर हो जाते हैं । हमने उसे 'आनन्द खाँ' की पदवी दी । हिन्दी-भाषा में आनन्द का अर्थ सुख और प्रसन्नता है ।"^५

"मंगलवार की भेंट हमने आनन्द खाँ को बख्श दी ।"^६

"नै नामक सुषिर-वाद्य बजानेवाले एक गुणी उस्ताद मुहम्मद का जो सत्कार जहाँगीर ने किया था, उसका वर्णन 'जहाँगीरनामः' में इस प्रकार है . "हमारे आदेश पर हमारे पुत्र खुर्रम ने उस्ताद मुहम्मद 'नैई' को भेजा था, जो अपनी कला में अद्वितीय था । हमने कई मजलिसों (गोष्ठियों) में उसका वादन कई बार सुना और हमारी 'छाप' से उसकी बनाई हुई गजल को भी सुना । बारहवी (मुसलमानी महीने की बारहवी तारीख) को हमने उसे रुपयों से तौलने की आज्ञा दी, तो तिरसठ सौ रुपये हुए । हमने उसे हौदे-सहित एक

१. मअसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ३३२ ।

२. जहाँगीरनामः, पृ० ५ ।

३. उपरिचत्, पृ० ४७६ ।

४. उपरिचत्, पृ० ३६६ ।

५. उपरिचत्, पृ० ४३३ ।

६. उपरिचत्, पृ० ४३६ ।

हाथी भी दिया और आज्ञा दी कि उसपर बैठकर तथा रुपयों को चारों ओर रखकर वह अपने निवासस्थान को जाय ।”^१

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के संगीतगुरु बख्तर खाँ को जहाँगीर ने अत्यन्त सम्मानित किया था । जहाँगीर का कथन है : “इन्ही दिनो बख्तर खाँ कलावन्त, जो आदिल खाँ (आदिलशाह) का सगा-सम्बन्धी था और जिससे उसने अपने भाई की पुत्री का विवाह कर दिया तथा जिसे गान एवं ध्रुवपद में अपना गुरु बनाया था, दरवेश के रूप में दिखाई पड़ा । उसे बुलवाकर तथा उसकी अवस्था का पता चलाकर हमने उसे सम्मानित करने का प्रयत्न किया । पहले ही दरबार में हमने उसे दस सहस्र रुपये नकद, सभी प्रकार के पचास वस्त्र तथा मोतियों की एक माला देकर आसफ खाँ का अतिथि बनाया ।”^२

लाल कलावन्त की चर्चा ‘जहाँगीरनाम.’ में इस प्रकार है : “इसी महीने की दूसरी को लाल कलावन्त, जो हमारे पिता की सेवा में बचपन से बड़ा हुआ था, और जिसे उन्होंने हिन्दी-भाषा का उच्चारण इत्यादि सब कुछ सिखाया था, पैसठवें वर्ष में मर गया । इसपर, इसकी एक रखेली ने अफीम खाकर जान दे दी । मुसलमानों में स्त्रियाँ ऐसा पातिव्रत्य बहुत कम दिखाती हैं ।”^३

जहाँगीर को कव्वाली सुनने का भी शौक था । कहता है : ‘दिल्ली के कुछ कव्वाल हमारे सामने गा रहे थे और सैयदी शाह विनोद के लिए एक धार्मिक नृत्य कर रहे थे ।’^४

जहाँगीरी-दरबार के प्रसिद्ध गायक बिलास खाँ, छतर खाँ खुर्रम दाद, सक्खू, परवेज दाद और हमजान थे ।^५

ध्रुवपदों में जहाँगीर :

सेहरा : शाह अकबर का पुत्र शेखूजी (जहाँगीर का प्यार का नाम) दुल्हा और दुलहिन तबतक चिरंजीवी रहे, जबतक चन्द्रमा, पृथ्वी और ध्रुवतारा हैं । अनेक रत्नों से जटित मुकुट पर सेहरा बाँधे हैं । मालिन विचित्र सेहरा गूँथ कर लाई है, बेला और चमेली के हार सुशोभित हो रहे हैं । मैं चक्रवर्ती जलालुद्दीन (अकबर) के चरण पड़ता हूँ, जिसने (मेरे लिए) हाथी भेजा है ।... इस छवि पर मैं देवलोक निछावर करता हूँ ।^६

सवारी : दलन और मर्दन कर देनेवाला जहाँगीर (हाथी पर) चढ़ा है । हाथी के घण्टे घनन-घनन बज रहे हैं ।^७

१. जहाँगीरनामः, पृ० ४३६ ।

२. उपरिचत्, पृ० ३३६ ।

३. उपरिचत्, पृ० २२१ ।

४. उपरिचत्, पृ० २३६ ।

५. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २६७ ।

६. परिशिष्ट अ, १२६ ।

७. परिशिष्ट अ, १२८ ।

प्रताप, न्यायनिष्ठता : हे दिल्ली पर अधिकार रखनेवाले जहाँगीर, तेरे कुपित होते ही पर्वत काँप जाते हैं । जिसका इंसान संसार में प्रत्यक्ष है, जो स्पष्टतया वीरों का पीर है ।^१ समस्त सुखों के देनेवाले विधाता ने पृथ्वी पर एक नर की रचना की है, जो स्थिर है और अदण्ड्य (प्रबल) व्यक्तियों को भी दण्ड देता है । महाज्ञानी जहाँगीर तू गुणनिधान और कुलमण्डन है, तेरी उपमा किससे दूँ ? तू आत्मबली, तपोबली एवं प्रताप-बली है, जिसकी प्रचण्ड कीर्ति चारो दिशाओं में है । शाह अकबर के पुत्र, तुम सातों द्वीपों और नवो खण्डों में चिरकाल तक (राज्य करते हुए) चिरजीवी रहो ।^२

संगीतमर्मज्ञता : (संगीत) के अंग-अंग में निपुण भरत और मतंग के मतों में छानबीन करते हैं । स्वर का जिन्हे ज्ञान है, जो गुणनिधान हैं और ज्ञानियों के लिए प्रमाण है ।^३

विलास : प्रियतम के मिलन का आगमन मैं तब जानूँगी, जब मेरी बाई आँख फडकेगी, तभी मैं सुहाग का काजल लगाऊँगी । जब कुच फडकेगे, तब मैं सुगन्ध में बसाकर कचुकी पहनूँगी और गले में मोतियों की माला धारण करूँगी । जब भुजाएँ फडकेँगी, तब बाजूबन्द और गजरा पहनूँगी । शाह जहाँगीर के मिलने से शयन के समय सुख मिला और काम के द्वन्द्व से मेरा शरीर मुक्त हुआ ।^४

जहाँगीर-कालीन अन्य आश्रयदाता

भारतसाह बुन्देला : यह राजा मधुकर के पुत्र रामचन्द्र का पौत्र था ।^५ रामचन्द्र के पिता संग्रामसाह अपने पिता रामचन्द्र के समय ही कालकवलित हो गये थे ।^६ जहाँगीर के साँतवें राज्यवर्ष (सन् १६१२ ई०) में भारतसाह गद्दी पर बैठे और इन्हें योग्य मनसब तथा 'राजा' की पदवी मिली । भारतसाह की बुआ जहाँगीर को ब्याही थी । जहाँगीर की मृत्यु होते ही ये शाहजहाँ की सेवा में पहुँचे और इनका मनसब तीनहजारी, २५०० सवार का हो गया । शाहजहाँ के प्रथम राज्यवर्ष (सन् १६२७ ई०) में इटावा तथा आसपास के प्रदेश के फौजदार हुए और कुछ ही दिनों के अनन्तर डंका पाकर सम्मानित हुए । सन् १६२८ ई० में ख्वाजा अबुलहसन के साथ खानेजहाँ के विरुद्ध और सन् १६३० ई० में राव रत्न होड़ा के साथ तैलगाना-विजय के लिए नियुक्त किये गये । मनसब में पाँच सौ सवार और बड़े और कन्धार-दुर्ग लेने में इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई । इन्हीं की सम्मति से दुर्गवालों ने दुर्ग सौंप दिया । सन् १६३१ ई० में शाहजहाँ ने इनका मनसब साढ़े तीन

१. परिशिष्ट अ, १३० ।

२. परिशिष्ट अ, १३१ ।

३. परिशिष्ट अ, १३५ ।

४. परिशिष्ट अ, १३२ ।

५. मआसिरुल् उमरा, प्र० भा०, पृ० २६१ ।

६. उपरिबत्, पाद-टिप्पणी, पृ० २६१ ।

हजारी, तीन हजार सवार का कर दिया। सन् १६३३ ई० में तैलगांना की सीमा पर नियुक्ति हुई, तब 'विकलूर' को सपरिवार अधिकार में ले लिया, जो दक्षिण के सुलतानों की ओर से सीमाध्यक्ष था। यह समाचार मिलते ही शाहजहाँ ने इनका मनसब चारहजारी, ३५०० सवार का कर दिया। सन् १६३४ ई० में तैलगांना की सीमा पर इनकी मृत्यु हो गई।^१

इनकी चर्चा से युक्त एक ध्रुवपद मिलता है, जिसमें इनकी पत्नी ख्वावती की चर्चा है।^२

शाहजहाँ :

सौन्दर्यप्रेमी सम्राट् शाहजहाँ को संगीत से भी अत्यन्त प्रेम था और यह प्रतिदिन अन्त पुर में साढ़े आठ बजे से दस बजे दिन तक गायिकाओं के संगीत का आनन्द लेता था।^३ औरंगजेब के हाथों बन्दी होने के पश्चात् भी इसका संगीत-प्रेम जैसा-का-तैसा रहा और गायिकाएँ तथा नर्तकियाँ इसके दुख को भुलाने में सहायक हुई।^४ यहाँ तक कि बन्दी शाहजहाँ के साथ सद्व्यवहार का अभिनय जब कूटनीतिज्ञ औरंगजेब ने किया, तब अन्य उपहारों के साथ उसने कुछ गायक भी शाहजहाँ की सेवा में भेजे।^५ इसके कृपापात्र गुणियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१. लाल खाँ कलावंत : यह तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दामाद और शाहजहाँ के दरबारी कलाकारों में मूर्धन्य था। तानसेन की शैली उनके शिष्यों से मीखी और उनके ध्रुवपद उन्हीं की शैली में अनुपम प्रकार से गाये। सन् १६३० ई० में शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' की उपाधि दी। इसके चार पुत्र थे, जो गाने में इसके साथ रहते थे। 'गुनसमन्दर खाँ' का देहान्त सन् १६५२ ई० में, आगरा में हुआ।^६

लाल खाँ के विषय में फ़ख़रुल्लाह का कथन है : "इसकी उपाधि 'गुनसमन्दर खाँ' थी। बचपन में ही मियाँ तानसेन के पास पहुँचा। तानसेन ने विलास खाँ के हवाले कर दिया और उसकी बेटी के साथ सम्बन्ध भी कर दिया। विलास खाँ के पास इसने गाने-बजाने में उच्च पद प्राप्त किया। स्वयं को सदा विलास खाँ का शिष्य कहा। यह बड़ा योग्य गायक था। यह ८०-९० वर्ष की आयु में मरा।"^७

१. मआसिरुल उमरा, प्र० भाग, पृ० २६२-२६३।

२. परिशिष्ट अ, पृ० २८४।

३. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २७८-२७९।

४. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० ९।

५. उपरिबत्, पृ० ७।

६. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०७।

७. रागदर्पण, १०वाँ भाग (रामपुर-प्रति)।

२. खुशहाल खाँ : इसके विषय मे फखरुल्लाह का कथन है . 'लाल खाँ का बेटा है और इसे भी इसकी पैतृक उपाधि गुनसमन्दर खाँ मिली है ।'

३. बिसराम खाँ कलावन्त : 'शाहजहाँ के युग का प्रसिद्ध कलावन्त, खुशहाल खाँ का भाई और रावसमन्दर खाँ, अर्थात् लाल खाँ का बेटा था । इसका देहान्त सन् १६७१ ई० में हुआ ।'^१

४. रंग खाँ कलावन्त : 'ऊँचे दरजे का गवैया था । यह शाहजहाँ का पुराना नौकर था । जैसा नाम था, वैसा ही स्वयं भी था । तनिक-सा गाता, तो समझ बँध जाता । यह ८०-९० वर्ष की आयु में मरा ।... फकीरो की सेवा मे भी प्रस्तुत रहता था । अकबरी युग के गायकों को इसने देखा था ।'^२

५. किशन खाँ कलावन्त : 'सुलतान शुजा ने इसे शाहजहाँ से माँग लिया था ।'^३

६ जगन्नाथ कविराय : "मियाँ तानसेन के पश्चात् ऐसा ध्रुवपदकार कोई नहीं हुआ । धर्म से कोई सम्बन्ध न था । एक ध्रुवपद 'नट' (रागविशेष) में बाँधकर तानसेन को सुनाया था । उन्होंने पसन्द किया और कहने लगे कि आयु ने साथ दिया, तो मेरे पश्चात् ध्रुवपद-रचना में सम्मान प्राप्त करेगा । प्रायः सौ वर्ष की आयु हुई ।"^४

जगन्नाथ कविराय के ऐसे ध्रुवपद भी मिलते हैं, जिनमें शाहजहाँ की प्रशंसा है ।

ध्रुवपदों में शाहजहाँ :

सेहरा : शुभ दिन, शुभ घड़ी, शुभ मुहूर्त में सोने का छत्र धारण किया, अमृत-योग की सिद्धि की, सुख और सन्तोष हुआ, इस प्रकार लग्न हुआ, जो आनन्द का समुद्र है । प्रभात के समय आशाओं के पूर्ण करनेवाले पार्वतीपति महेश, सद्गुरु, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, व्यास इत्यादि के दर्शन किये और कंकण-रूपी प्रेमडोर दोनों ने बाँधी । क्षेम, कुशलता, सफलता और सिद्धि के साथ रग-रस पूर्ण हुआ । वृक्षों की सजावट और आतिशबाजी की फुलझड़ियाँ देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सघन वन में झीगन(?) झमक रहे हों । . अजर-अमर छत्र सिर पर धारण किये हुए है, सेहरा शोभित हो रहा है, जिसकी ज्योति जगमगा रही है । .. दुल्हा शाहजहाँ दुलहिन-सहित चिरंजीवी रहे ।^५..

अभिषेक : विधाता ने भूलोक पर अत्यन्त प्रतापी चक्रवर्ती नरेश शाहजहाँ की रचना की है ।... वह भाग्यशाली, कृपाण के कारण बली, शोभासिन्धु और जगदीश है । उसका बादशाही नाम 'साहिब किरानसानी' है । उस लक्ष्मीविलास भूप के आसपास रिसाले... हैं,

१. मिराति आफताबनुमः, ३६२ अ; तारीखे मुहम्मदी, 'आजकल', म्यूजिक-नं०,

पृ० १०७ ।

२. रागदर्पण, दसवाँ बाब ।

३. उपरिवत् ।

४. उपरिवत् ।

५. परिशिष्ट अ, १३७ ।

जिसके उमराव (सरदार) दिक्पाल हैं। गीत, वाद्य और नृत्य हो रहे हैं, पृथ्वी पर घर-घर आनन्द हुआ। छत्रधारी राजकाज के लिए सिंहासन पर बैठे।^१

प्रताप : इन्द्रपति नरेन्द्र शाहजहाँ, विधाता ने प्रयत्नपूर्वक तेरी रचना की है। दिल्लीश्वर, तू ईश्वर है, देश और संसार में और कौन है, तू नर-नारायण के समान शोभित हो रहा है। जगत् का भरण और पोषण करने के लिए तू छत्रपाल और दिक्पाल है, सातों खण्डों और नवों द्वीपों में तेरी आन मानी जाती है।^२

पराक्रम : शत्रुओं के दलों को तूने कुचलकर अपनी भुजाओं के बल से मार डाला, जहाँ-तहाँ द्रोहियों के दल भगा दिये। जब तू क्रोध करके अमर (अम्बरी, हौदा ?) छोड़ देता और गरजता है, तब शेषनाग कलमलाता है। भला कौन योद्धा है, जो तुझसे युद्ध ठाने। तू शूरवीर और प्रताप में पूर्ण है, सभी अंगों में ऐसा कौन है, जो तेरे समक्ष गर्व या शक्ति का प्रदर्शन करे। पृथ्वीपति शाहजहाँ धन्य है, जो गुणियों को लाख और करोड़ देता है।^३

संगीतज्ञता : जो ताल और स्वर की साधना करता है, वही गुणी शुद्ध मुद्रा और (शुद्ध) वाणी से गान करता है। विभिन्न गतियों में बुद्धिशाली व्यक्ति विलम्बित करके दिखाता है। सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना और बाईस श्रुति, इनके भेद पाता है। जिसपर सरस्वती प्रसन्न होती है, शाहजहाँ के कानों को वही रिझा मकता है।^४

नौरोज : सागरान्त भूमि के अधीश्वर ने नौरोज में झड़ी लगा दी। फूलों के महल पर आकाश-रूपी वितान तना हुआ है, जिससे दसों दिशाएँ आवृत हैं। निशान (धारण करनेवाले उद्घोषकों का शब्द) गर्जन है, तुम शोभित हो रहे हो, दान के घडों से झड़ी लगा दी है। उनमें से सोने की धारें बह रही हैं, मोती उसकी बूँदे हैं और पानी पवन है। स्वर्णदण्डोंवाले चँवर डुल रहे हैं, वही मरुत्पट है और कीर्ति की हवा चल रही है। झालर और घेरे पक्षियों के समान बोल रहे हैं, नर-नारी अपनी-अपनी वाणी में गा रहे हैं।^५

लालमहल के सामने जलकेलि और नौकाविहार : रसीला शाहजहाँ धन्य है, जो लालमहल के सामने जलकेलि कर रहा है। चन्द्रमा ने पाँव डे बिछाकर ज्योति और अमृत-रस की भेंट दी। यह छवि देखकर देवनारियाँ प्रसन्न हुईं, कुमुदिनी फूल रही है... नौका की निकाई अवर्णनीय है। साहिब किरानसानी की छवि का प्रतिबिम्ब तरंगों में परित्तित हो रहा है।^६

१. परिशिष्ट अ, १३६।

२. परिशिष्ट अ, १३८।

३. परिशिष्ट अ, १३९।

४. परिशिष्ट अ, १५३।

५. परिशिष्ट अ, १४०।

६. परिशिष्ट अ, १४३।

महल की शोभा : चाँदनी ने जैसी शोभा की है, वैसी ही शोभा महलों की है । मानों विश्वकर्मा ने प्रयत्नपूर्वक (सिर के बल) निर्माण किया हो । उत्तम बिछौनों में रुचिर नवीन अगणित पुष्पमालाएँ अत्यन्त शोभित हो रही हैं, ... चन्द्रमा शाह पर निछावर हो रहा है अथवा अंक में ले रहा है ।... १

विलास : प्यारी, तुझ जैसी सुघड नारी की समता भला कौन कर सकती है ? रूप और गुण से ऐसी उज्ज्वल और कोई नहीं, अपने समान तू ही है । तेरा रूप और तेरी छवि का वर्णन मुझसे नहीं किया जाता । हाव, भाव, कटाक्ष और गुणों के कारण तू तो चन्दा की चाँदनी है । प्रिय शाहजहाँ, तुझी से हिलता-मिलता है । समस्त सुन्दरियो में तू ही मनभावनी है ।^२

तू करतल पर कपोल रखे दुचित्ती और अनमनी-सी बैठी है । जान पड़ता है, आज प्रियतम से कुछ अनबन हो गई है । तू सूखी-सी, रूठी-सी है । मुख देखने से प्रतीत होता है कि तू रोई-सी है । मन मारे, क्रोध किये बैठी है, किसी का कहना नहीं मानती । समस्त सुन्दरियो में एक, तू ही एक, उनके मन को मानी हुई है । प्रिय शाहजहाँ तेरे प्रेम के वश में हुए है । वे दुल्हा है और तू दुलहिन है ।^३

समकालीन आश्रयदाता

पहाड़सिंह बुन्देला : यह वीरसिंहदेव के पुत्र थे । शाहजहाँ के बादशाह होने पर इनका मनसब तीनहजारी, २००० सवार^४ का हो गया । अब्दुल्ला खाँ के साथ शाहजहाँ की ओर से ये अपने भाई जुझारसिंह के विरुद्ध युद्ध में गये । एरिछ-दुर्ग को जीतने में इन्होंने अच्छा प्रयत्न किया, अतः अब्दुल्ला खाँ की सिफारिश पर इन्हे डंका मिला । जुझारसिंह जब विवश होकर दरबार में पहुँचे, तब उनके प्रदेश का कुछ अंश पहाड़सिंह को दे दिया गया ।

सन् १६३० ई० में शायस्ता खाँ के साथ ये निजामुल्मुल्क के विरुद्ध भेजे गये । उसी वर्ष इन्हें राजा की पदवी मिली । दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के साथ इन्होंने खानेजहाँ लोदी के विरुद्ध युद्ध में अच्छी वीरता दिखाई । दौलताबाद और परेदा के घेरे में भी वीरतापूर्ण कृत्य किये । महावत खाँ की मृत्यु होने पर इनकी नियुक्ति बुरहानपुर के सूबेदार खानदौराँ के अधीन हुई । सन् १६४२ ई० में औरंगजेब के साथ दक्षिण से लौटने पर इनके मनसब में १००० सवार की वृद्धि हुई और ये चम्पतराय के विरुद्ध (जो इनके भतीजे लगते थे) भेजे गये । सन् १६४५ ई० में अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ के साथ बदखशाँ की चढ़ाई पर गये । सन् १६४६ ई० में मनसब में और वृद्धि हुई और सुलतान मुरादबख्श के साथ बलख और बदखशाँ की चढ़ाई पर नियुक्त किये गये । औरंगजेब

१. परिशिष्ट अ, १४६ ।

२. परिशिष्ट अ, १४४ ।

३. परिशिष्ट अ, १५० ।

४. एक स्थल पर २५०० सवार का उल्लेख है ।

के पहुँचने तक वही ठहरे और सन् १६४८ ई० में शाहजादा औरंगजेब के साथ दरबार लौटे । सन् १६४९ ई० में औरंगजेब के साथ कन्धार-दुर्ग को जीतने के लिए भेजे गये । सन् १६५१ ई० में मनसब मे १००० सवार और बड़े और चौरागढ़ के जागीरदार बनाये गये । हृदयराम और उसके आश्रयदाता अनूपसिंह (रीवाँ-नरेश) को भगाकर रीवाँ नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । सन् १६५३ ई० में दरबार से बुलावा आने पर उपस्थित हुए और हृदयराम से लूटी हुई तीन हथिनियाँ और एक हाथी बादशाह की भेट के लिए लाये । सन् १६५३ ई० में औरंगजेब और तत्पश्चात् दाराशिकोह के साथ कन्धार की चढ़ाई पर रहे । शाहजादे के असफल लौटने पर साथ ही ये भी लौटे और छुट्टी लेकर घर चले गये । सन् १६५४ ई० में इनका देहान्त हुआ । इनके बड़े पुत्र सुजानसिंह उत्तराधिकारी हुए और दूसरे पुत्र इन्द्रभान को ४०० सवार का मनसब मिला ।^१

पहाड़सिंह तथा उनकी रानी हीरादेवी दोनों जुझारसिंह से अन्त तक शत्रुता रखते रहे और जब कभी बादशाही सेनाएँ उनपर भेजी गई, तब बराबर योग देते रहे । इसी भ्रातृद्रोह के पुरस्कार में इन्हें ओरछा-राज्य प्राप्त हुआ ।^२ इनकी मुद्रा से अंकित एक पद प्राप्त होता है ।^३

राजा अनिरुद्ध गौड़ (मृ० सन् १६४९ ई०) : ये राजा विठ्ठलदास (शाहजहाँ के युग में अजमेर के फौजदार) के सबसे बड़े पुत्र थे । सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ ने इनका मनसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी, १००० सवार का कर दिया । सन् १६५० ई० में इन्हें झण्डा मिला । सन् १६५१ ई० में पिता की मृत्यु के पश्चात् इनका मनसब तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला हुआ और ये राजा की पदवी, डके, घोड़े और हाथी से सम्मानित किये गये । उसी समय ये रणथम्भौर के दुर्गाध्यक्ष हुए । इसके पश्चात् कन्धार की दूसरी चढ़ाई में शाहजादा औरंगजेब के साथ इनकी नियुक्ति हुई । वहाँ से लौटने के पश्चात् सन् १६५२ ई० में ये अपनी जागीर पर गये । तत्पश्चात् शाहजादा दाराशिकोह के साथ कन्धार की चढ़ाई पर इन्हें पुनः भेजा गया । सन् १६५४ ई० में इन्हें सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ की चढ़ाई पर भेजा गया । सन् १६५७ ई० में इनका मनसब साढ़े तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला हो जाने पर सुलतान सुलेमान शिकोह के साथ गुजाम्र का दमन करने के लिए भेजे गये । औरंगजेब के सम्राट् होने पर सन् १६५८ ई० में ये सेना में

१. मन्नासिरुल् उमरा, प्र० भाग, पृ० २२४-२२६ ।

२. उपरिवत्, पाद-टिप्पणी, पृ० २२४ ।

३. प्रानपियारे संग राधे होरी खेलन जंये ।

पीतम संग नित गलबाहीं याही सुख में रहिये ॥

चोवा-चन्दन और अरगजा नित उड़ावत रहिये ।

या ब्रज में फागुन सो औरत ता सुख को कहा कहिये ॥

पहारसिंह को प्रभु वर पायो अब तोकों कहा कहिये ।

तोसी चतुर और नहिं दुर्जी अब तोसों कहा कहिये ॥—रागमाला, पृ० ११९ आ ।

पहुँचे और मुहम्मद सुलतान के साथ शुजाअ के दमन के लिए इनकी नियुक्ति हुई। संवत् १७१६ (सन् १६४६ ई०) में इनका स्वर्गवास हुआ।^१

‘रागमाला’ में इनकी प्रशंसा से युक्त एक गीत है, जो इनका संगीतप्रेमी तथा संगीतज्ञों का आश्रयदाता होना सिद्ध करता है।^२

मूसवी खाँ : यह मशहद के सैपिदों में था।^३ जहाँगीर के समय में आबदारखानः का दारोगा नियत हुआ। क्रमशः ‘सदरेकुल’ के पद तथा दो हजारी, ५०० सवार के मनसब तक पहुँच गया। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ के शासनकाल के प्रथम वर्ष (सन् १६२७ ई०) में यह ‘सदरेकुल’ के पद पर पुनः प्रतिष्ठित हुआ और इसका मनसब तीन हजारी, ७५० सवार का हो गया। सोलह वर्ष जब बादशाह से प्रार्थना की गई कि यह उपयुक्त सामग्री नहीं रखता, तब यह पद से गिरा दिया गया। सन् १०५४ हिजरी (सन् १६४४ ई०) में इसकी मृत्यु हुई।^४ यह गुणियों का आश्रयदाता था। इसके सम्बन्ध में ‘रागमाला’ में निम्नांकित पक्तियाँ हैं :

मूसेखान सुजान तू जानै मैं दीन दुनी।

कमलनेत्र सुधारिबौ करत बहु भांतिन के गुनी ॥^५

शुजा : यह शाहजहाँ का दूसरा पुत्र था और अत्यन्त बुद्धिमान् था। इसका व्यवहार नम्रता, सहृदयता एवं शील से पूर्ण रहता था। यह बंगाल का सूबेदार था। जिस समय शाहजहाँ की बीमारी के अतिशयोक्तिपूर्ण समाचार इसके पास बंगाल पहुँचे, तभी इसने स्वयं को सम्राट् घोषित कर दिया।

सन् १६५८ ई० की १४ फरवरी को दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह से बहादुरपुर में इसकी पराजय हुई। शुजा को भागना पड़ा, परन्तु अपने पिता दारा की ‘धरमत’ वाली पराजय का समाचार सुनकर सुलेमान शिकोह ने शुजा को बंगाल, पूर्वी बिहार और उड़ीसा का प्रदेश देकर सन्धि कर ली।

औरंगजेब ने राजदण्ड धारण करने पर राजा को एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा, जिसमें बिहार का पूरा प्रान्त शुजा को दे दिया गया था। दि० ५-१-१६५९ ई० को खजवा नामक स्थान पर औरंगजेब ने शुजा को पराजित किया। शुजा भागकर मुँगेर पहुँचा। औरंगजेब की सेना से अनेक बार पराजित होकर शुजा अराकान चला गया। अराकान के राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का प्रयत्न खुल जाने पर शुजा वहाँ के जंगलों में भागा और जंगली लोगों के द्वारा मार डाला गया। शुजा संगीत का अत्यन्त प्रेमी था और

१. मन्नासिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० ६३-६४।

२. उपरिबत्, चतुर्थ भाग, पृ० ६१७।

३. रागमाला, १२०।

४. मन्नासिरुल् उमरा, भाग ४, पृ० ६१७।

५. रागमाला, १२०।

उसने अपने पिता से किशन खाँ कलावन्त, मिसरी खाँ ठारी और सोहिलसेन (तानसेन के पोते) को माँग लिया था ।

दक्षिण में ध्रुवपद का प्रभाव

द्वितीय अध्याय में यह बताया जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक के युग में ही ख्वाजा निजामुद्दीन की आज्ञा से उनके मुरीद और प्रसिद्ध सूफी सन्त शेख बुरहानुद्दीन ४०० सूफी सन्तों के साथ दौलताबाद (देवरगिरि) पहुँच गये थे । सूफियों की परम्परा ने शासन के केन्द्रस्थान दिल्ली की भाषा को दक्षिण में प्रलंबित किया । अकबर के राज्यकाल में मानसिंह तोमर की ध्रुवपद-परम्परा भी दक्षिण पहुँच गई और इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने दक्खिणी हिन्दी में ध्रुवपदों की रचना की । उत्तर भारत के कलावन्त दक्षिण पहुँचे, जिनके कारण इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय को यह प्रेरणा मिली कि अपने प्रदेश की लोकभाषा को ध्रुवपदों का माध्यम बनाया जाय । यद्यपि इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के वंश में उत्पन्न बीजापुर के अन्य सुलतान संगीतकार हुए, तथापि उनकी रचनाएँ ध्रुवपद-शैली की नहीं हैं । अस्तु, व्रजभाषा और ध्रुवपद के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए इब्राहीम और उसके कृतित्व का परिचय आवश्यक है ।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय : यह ६ वर्ष की आयु में बीजापुर की गद्दी पर बैठा । सन् १५८७ ई० में इसने चाँद सुलतान के साथ विवाह किया । सन् १५९० ई० तक तो यह अपने मन्त्रियों के हाथ की कठपुतली बना रहा, तत्पश्चात् यह स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगा । चार वर्ष बाद यह अपने नये बसाये हुए नगर नवरसपुर चला गया और बीजापुर के स्थान पर इसे राजधानी बनाया ।

सन् १६०१ ई० में इसके दरबार में मुगल-राजदूत शरीफ शर्मादी बीजापुर आया और कुछ दिनों बाद अकबर ने मीर जमालुद्दीन अंजु को भेजा और शाहजादा दानियाल के लिए इब्राहीम आदिलशाह की लड़की सुलतान बेगम माँगी । विलम्ब होने पर सन् १६०३ ई० में असदबेग आया, विवाह हो गया और इब्राहीम ने अपनी पसन्द का हाथी 'चंचल' अकबर के लिए उपहार में दिया ।

सन् १६०४ ई० में अकबर की मृत्यु हो गई और जहाँगीर मुगल-सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ । राज्याभिषेक के अवसर पर इब्राहीम ने अपना दूत दिल्ली भेजा । सन् १६१० ई० में हुसेन अंजु मुगल-राजदूत के रूप में इब्राहीम के दरबार में आया । सन् १६१२ ई० में इब्राहीम का दूत बख्तर खाँ कलावन्त अजमेर पहुँचकर जहाँगीर की सेवा में उपस्थित हुआ ।

बख्तर खाँ जहाँगीर के साथ रात्रिकालीन गोष्ठियों में सम्मिलित होता और उसे इब्राहीम के द्वारा रचित ध्रुवपद-संग्रह 'नवरस' के गाने सुनाता था । बख्तर खाँ के आतिथ्य पर चार मास में एक लाख रुपया व्यय किया गया था ।

इसी वर्ष सैयिद कबीर नामक एक अन्य दूत जहाँगीर की सेवा में भेजा गया, जो बीजापुर और मुगल-साम्राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में सफल हुआ ।

अनेक कलाओं में निपुणता के कारण इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने 'जगद्गुरु' की उपाधि धारण की थी। उसके दरबार में रहनेवाले कवि, लेखक, राजनीतिज्ञ, सुलेख-विशेषज्ञ और संगीतज्ञ इसके शिष्य समझे जाते थे। इब्राहीम ने 'इब्राहीम' नाम से फारसी और दक्खिनी हिन्दी, दोनों भाषाओं में, रचनाएँ की। दुर्भाग्यवश, उसकी फारसी-रचना की केवल दो पक्तियाँ मिलती हैं। दक्खिनी हिन्दी की रचनाएँ 'किताबे नवरस' नामक ध्रुवपद-संग्रह में संकलित हैं। तीस वर्ष से कम की आयु में सुलतान पुस्तकालय में संगीत-गोष्ठियाँ किया करता था, जहाँ समस्त विद्वान् साथ-साथ बैठते और साहित्य-चर्चा करते थे।^१

इब्राहीम आदिलशाह ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग संगीत को समर्पित किया था। वह बचपन से संगीतरसिक था। विजयनगर जैसे सांस्कृतिक केन्द्र के नष्ट हो जाने से वहाँ के संगीतज्ञ आश्रयविहीन हो गये थे। इब्राहीम ने अपना अधिकांश समय उनके सग व्यतीत किया था और अपनी प्रजा की संस्कृति एवं परम्परा के प्रति उसे सहानुभूति हो गई थी।^२

जहाँगीर का कथन है कि इब्राहीम आदिलशाह ने अपनी भतीजी का विवाह बख्तर खाँ कलावन्त के साथ कर दिया। बख्तर खाँ इब्राहीम का संगीत-गुरु था।^३ इब्राहीम रात-रात-भर संगीत का अभ्यास किया करता था।^४

इब्राहीम ध्रुवपद का विशेषज्ञ था और उसकी पुस्तक इसी शैली में होने के कारण इतनी लोकप्रिय हुई कि जहाँगीर भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ। जहाँगीर का कथन है कि ध्रुवपद का वह प्रकार इब्राहीम आदिलशाह द्वारा आविष्कृत था। 'किताबे-नवरस' की संगीत-शैली दक्षिणात्य न होकर उत्तरभारतीय है। यह तथ्य बताता है कि दक्षिण भारत पर उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सामाजिक प्रभाव जहाँगीर के युग से पूर्व ही कितना हो चुका था।^५

सुलतान से पूर्व संगीतज्ञ तीन कोटियों में विभक्त थे। 'अताई', जो सर्वश्रेष्ठ थे, 'ढाढी', जो मध्यश्रेणी के थे और 'गुनीजन', जो अन्तिम कोटि के थे। सामान्यतया ये सब 'कचनिया' या 'कलावन्त' कहलाते थे।^६

सुलतान ने अपने बीस वर्ष के शासनकाल के पश्चात् संगीतज्ञों का श्रेणी-विभाजन इस प्रकार किया

१. "Kitab -I- Navras, Introduction, p. 12 : According to Zuhuri, the Sultan, though below Thirty, held the literary sittings in the library, when all the scholars sat together and had deliberation on literary topics."

२. उपरिवत्, पृ० ४६।

३. जहाँगीरनामः, पृ० ३३६।

४. किताबे नवरस, भूमिका, पृ० ४८।

५. किताबे नवरस, पृ० ४८।

६. उपरिवत्, पृ० ४६।

१. हुजूरी : ये लोग केवल सगीत ही नहीं, अन्य अनेक विद्याओं में निष्णात होते थे । अपनी विद्वत्ता के कारण ये निरन्तर सुलतान के साथ रहते और लाभान्वित होते थे । जब सुलतान किसी गीत की रचना करता, तब हुजूरियों के समक्ष उसका पाठ करता, जो उसको दुहरा-दुहराकर याद कर लिया करते थे और अपने से निम्न श्रेणी के सगीतज्ञों को याद कराते थे । सुलतान के समीप निरन्तर उपस्थिति के कारण ही उनकी सजा 'हुजूरी' थी ।

२. दरबारी - 'दरबारी' अपेक्षया अपनी न्यूनतर योग्यता के कारण हुजूरियों से नीचे थे । इन्हें दिन-रात दरबार में बैठने की आज्ञा थी और इन्हे निरन्तर हुजूरियों से शिक्षा मिलती थी । इनका कार्य हुजूरियों से नव-निर्मित गीत सीखना और याद करना था । ये इन गीतों की शिक्षा अपनी अपेक्षा नीची श्रेणी के संगीतज्ञों को दिया करते थे । दरबार से सम्पर्क के कारण ये 'दरबारी' कहलाते थे ।

३. शहरी - 'शहरी' वे थे, जो नवरसपुर में निवास करते और सगीत सीखते थे । वे यह कला 'दरबारियों' से सीखते थे । नवरसपुर (नव-निर्मित नगर) में रहने के कारण ये 'शहरी' कहलाते थे ।^१

थोड़े ही समय में प्रायः ६०० अच्छे संगीतज्ञ इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के दरबार में एकत्र हो गये थे । सन् १६०४ ई० के समीप इनकी संख्या दो-तीन हजार और सन् १६०८ ई० में तीन-चार हजार हो गई थी ।^२

इब्राहीम के गायकों में केवल दो के नाम ज्ञात हैं । बख्तर खाँ की चर्चा पहले आ ही चुकी है, दूसरे गायक चाँद खाँ की चर्चा 'बसातीनुस्सलातीन' में आई है । यह सुलतान का शिष्य था और इसकी गणना हुजूरियों में थी । यह सुलतान पर अत्यन्त प्रभाव रखता एवं उसे प्रिय था ।^३

इब्राहीम आदिलशाह एक कुशल तन्त्रीवादक था । उसके वाद्य का नाम 'मोतीखान' था । इसकी प्रशंसा में सुलतान ने कई ध्रुवपद लिखे हैं । उसने अनेक स्थानों पर यह प्रकट किया है कि उसे तन्त्री-वादन से अधिक प्रियतर और कुछ नहीं है । उसका कहना है कि इस वाद्य के बजाने में उसकी निपुणता उसपर विशिष्ट ईश्वरीय अनुग्रह है । सैनिक अभियानों में इस वाद्य का वियोग सुलतान को खलता था ।^४

जुहूरी और मलिक ने 'मोतीखान' की प्रशंसा में १२८ स्त्राइयाँ लिखी हैं । सुलतान जब इस वाद्य को बजाने बैठता था, तब उसके दरबारी इस वाद्य को सिर झुकाते थे । यह एक सिंहासन पर रखा जाता था और उसके पीछे राजकीय पताका और डंका चलता था । साथ चलनेवाले अमीर इसके समक्ष नतमस्तक होते थे ।^५

१. किताबे नवरस, पृ० ५० ।

२. उपरिवत्, पृ० ५१ ।

३. उपरिवत्, पृ० ५३ ।

४. उपरिवत् ।

५. उपरिवत् ।

रोतिकालीन आश्रयदाता

औरंगजेब :

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब शाहजहाँ और मुमताजमहल की सातवी सन्तान था । इसका जन्म 'दोहद' (बम्बई सूबे के पंचमहाल) में सन् १६१८ ई० के २४ अक्टूबर को हुआ था ।^१

सन् १६३६ ई० में शाहजहाँ ने इसे दक्षिण का सूबेदार बनाया था ।^२ उस समय तक यह कुमार था और उस मुगल-अन्त पुर में पला था, जहाँ रखेलियों को अलग-अलग कमरे मिले होते थे और उनकी देखरेख विशेष रूप से प्रौढा स्त्रियाँ करती थी, .. प्रत्येक रखेली के लिए दस दासियाँ रहती थी ।^३ . संगीतज्ञ एवं गायिका स्त्रियों के शासन के लिए महिला संगीत-निरीक्षिकाएँ नियुक्त रहती थी । इन्हे प्रौढा स्त्रियों की भाँति तनख्वाहे मिलती थी और शाहजादों तथा शाहजादियों से भेटे भी ।^४ ... गुप्तचर के रूप में इन प्रौढाओं को साम्राज्य में निवास करनेवाली सुन्दर कुमारियों का भी पता लगाना पड़ता था । पता लगाने पर प्रौढा स्त्रियाँ उन्हें फुसलाकर धोखे से उस स्थान को भगा ले जाती थी, जहाँ बादशाह या शाहजादे उनको कहते थे ।^५

सूबेदारों से पूर्व औरंगजेब की अठारह वर्ष तक की आयु इस वातावरण में बीती थी । सन् १६३७ ई० में औरंगजेब का विवाह फारस के राजवंश में उत्पन्न एक व्यक्ति शाहनवाज खाँ की पुत्री दिलरसबानू के साथ हुआ था ।^६ औरंगजेब ने अपने अठारह जन्मोत्सव अन्त पुर में देखे थे, जिनमें अन्त पुर की रमणियाँ मदिरा और संगीत के नशे में चूर रहती थी ।

औरंगजेब का जीवन प्रेमलीलाओं से रिक्त नहीं था । उसकी एक प्रेमिकी की कहानी इतिहास में रह गई है । प्रेमिका की चंचलता, निपुणता, संगीत-कला तथा सौन्दर्य ने औरंगजेब को वशीभूत कर लिया था ।

इस सुन्दरी का नाम हीराबाई था, जो 'जैनाबादी' के नाम से प्रसिद्ध हुई । मीर खलील नामक व्यक्ति को औरंगजेब की मौसी ब्याही थी । हीराबाई मीर खलील की उपपत्नी थी । दक्षिण की सूबेदारी के दिनों में औरंगजेब एक दिन बुरहानपुर गया । वहाँ ताप्ती नदी के तट पर बाग में टहलते समय मौसी की अन्य दासियों के साथ उसने हीराबाई को अवगुण्ठनहीन देखा । शाहजादे की उपस्थिति की उपेक्षा करके फलों से लदे हुए आम के वृक्ष से हीराबाई ने अत्यन्त चंचलतापूर्वक रसमय भाव से एक आम तोड़ा । इस चेष्टा से

१. औरंगजेब, पृ० ११ ।

२. उपरिचत्, पृ० १७ ।

३. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० १८ ।

४. उपरिचत् ।

५. उपरिचत्, पृ० २२ ।

६. उपरिचत्, पृ० १८ ।

औरंगजेब पर हीराबाई के अद्वितीय सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा और वह उसपर मोहित हो गया। बड़ी अनुनय-विनय करके उसे वह अपनी मौसी के यहाँ से ले आया और जी-जान से उसपर निछावर हो गया।^१

मौसी की अवैध सपत्नी माता के ही तुल्य हुई, उसपर मोहित होने, अर्थात् अपने मौसा की अंकशायिनी को अपनी प्रेमपात्री बनाने में औरंगजेब को तनिक भी संकोच न हुआ।

औरंगजेब की सारी प्रार्थनाओं को अनसुनी करके हीराबाई ने उसे एक दिन मद्यपान के लिए बाध्य किया। निराश होकर अन्त में ज्यों ही औरंगजेब ने प्याला ओठों से लगाना चाहा, त्यों ही हीराबाई ने उसके हाथ से मदिरा का वह प्याला छीन लिया और बोली, 'मेरा आशय केवल तुम्हारा प्रेम परखना था।' ^२ 'मअसिरुल् उमरा' (तीसरे भाग) में पृ० १२३ पर यह बताया गया है कि औरंगजेब हीराबाई को शराब का प्याला भरकर अपने हाथ से देता था।

इस प्रेमिका की जीवनलीला उसके यौवनकाल में ही समाप्त हो गई थी। इसकी मृत्यु का औरंगजेब को अत्यन्त दुःख रहा। औरंगाबाद में एक सरोवर के पास उसे दफनाया गया।^३

दारा के यहाँ नाचने-गानेवाली स्त्रियों को भी शाहजहाँ से औरंगजेब ने माँगा था।^४ दारा के वध के पश्चात् उसकी एक परम सुन्दरी उपपत्नी को घर में डालकर उसका नाम 'उदयपुरी महल' रखा था। यह जार्जिया देश की एक दासी थी। दारा की मृत्यु के समय उसकी अवस्था किशोर थी। वृद्धावस्था तक औरंगजेब उससे प्रेम करता रहा और मृत्यु के समय तक इस सुन्दरी का प्रभाव औरंगजेब पर रहा। इसकी सुन्दरता के प्रभाव के कारण औरंगजेब ने इस सुन्दरी के मदिरा-पान की ओर ध्यान नहीं दिया और इसके पुत्र के अनेक अपराध क्षमा कर दिये।^५

शासनकाल के दूसरे वर्ष में, सन् १६५६ ई० की १३ मई को औरंगजेब बड़ी ही धूम-धाम से सिंहासन पर बैठा और उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में बहुत बड़ा जलसा किया।... उसके सिंहासनारूढ होने के अवसर पर विदेशी मुसलमानी राज्यों की ओर से बधाई देने के लिए आनेवाले एलचियों का उसने राजधानी में पूरे ठाठ-बाट के साथ स्वागत किया।^६

१. औरंगजेब, पृ० २०।

२. उपरिचत् ।

३. उपरिचत्, पृ० २०-२१।

४. उपरिचत्, पृ० १४१।

५. उपरिचत्, पृ० १६।

६. उपरिचत्, पृ० १२५।

सम्राट् होने के पश्चात् दस वर्ष तक औरगजेब ने गाने-बजाने का खूब आनन्द लिया । तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दौहित्र खुशहाल खाँ को औरगजेब के ही कारण शाहजहाँ के हाथो दण्डित होना पडा था,^१ उसपर औरगजेब की कृपा हुई ।^२ हयात सरसनैन^३ नामक गायक पर भी औरगजेब का अनुग्रह था और 'मृदंगराय' उपाधि से युक्त किरपा नामक मृदंगवादक पर भी ।^४

औरगजेब के वेतनभोगी कर्मचारी मिरजा रोशन जमीर ने अहोबल के प्रसिद्ध संगीत-ग्रन्थ 'संगीतपारिजात' का फारसी-अनुवाद किया था और फकीरुल्लाह ने औरगजेब को ही समर्पित करने के लिए 'मानकुतूहल' को अनूदित किया था । औरगजेब के ही काल, सन् १७८० ई० मे कूकुल्लाश खाँ की प्रार्थना पर मिर्जा मुहम्मद ने 'तुहफतुल् हिन्द' की रचना शाहजादा मुहम्मद मुईजुद्दीन जहाँदारशाह के लिए की, जिसमे एक अध्याय संगीत पर है । इबाद मुहम्मद कामिलखानी ने सन् १६६७ ई० मे 'रिसाल-ए-कामिलखानी', सन् १६६८ ई० मे 'असामी सुर' और सन् १६६९ ई० मे 'रिसाल: दर अमले बैनोठाठ रागिनी' की रचना की ।

मौलाना शिब्ली फरमाते है • 'आलमगीर निहायत रूखा-फीका आदमी था, इसको मेलो, बाजों, नाचरंग और गाने-बजाने से नफरत थी और वह समझता था कि इन चीजों से अखलाक पर बुरा असर पडता है । आलमगीर ने १०७८ हिजरी(सन् १६६७-१६६८ ई०) मे हुक्म दिया कि गवैये दरबार मे आये, लेकिन गाने न पाये ।^५ परन्तु, वास्तविकता यह है कि अपने-आपको आदर्श मुसलमान सिद्ध करने के लिए यह आज्ञा औरगजेब की एक कूटनीतिक चाल के अतिरिक्त और कुछ नही थी ।

यह नही भूलना चाहिए कि इस आज्ञा को जारी करते समय औरंगजेब की आयु पचास वर्ष से अधिक थी । हीराबाई जैसी गायिका की अंगुलियों पर वह नाच चुका था और उसके यौवन की उद्दाम तरंगों मे उतना उछाल भी न रहा था ।

इटालियन इतिहासकार मनुविक लिखता है कि संगीत को बन्द करनेवाली आज्ञा का भी यही हाल हुआ, अर्थात् उसे किसी ने मान्यता न दी ।^६ दरबार में गाना-बजाना भले ही बन्द हो गया हो, अन्त पुर की रंगरेलियाँ जैसी-की-तैसी थी । मनुविक का कथन है कि संगीत पर सब प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने के बाद भी वेगमों और शाहजादियों के मन-

१. 'खुलासतुल् रोश आलमशाही', 'मिराति आफताबनुगः', ३६० ब० ।

२. रागदर्पण, दसवाँ बाब, 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १३८ ।

३. उपरिचत्, पृ० १४२ : गलती से 'पुरुषनयन' छपा है ।

४. उपरिचत्, पृ० १४३ ।

५. औरंगजेब आलमगीर पर एक नजर, पृ० २६ ।

६. औरंगजेब, पृ० १३५ ।

बहलाव के लिए वह महल में संगीत और नृत्य होने देता था और इसके लिए गायिकाओं और नर्तकियों को नियुक्त किया करता था ।^१

एक ओर तो यह हाल था और दूसरी ओर वह परहेजगार मुसलमान होने का स्वाग रच रहा था ।

गद्दी पर बैठने के बाद ग्यारहवें वर्ष में उसने शाही दरबार में गवैयों को अपने सामने नाचने-गाने से मना कर दिया था । कलाप्रेमियों ने आम जनता में औरंगजेब की खिल्ली उड़ाकर बदला निकाला । वह जब मसजिद को जा रहा था, तब एक शुक्रवार के दिन कोई एक हजार गवैये एकत्र हुए । उनके साथ सुरुचिपूर्वक सजे हुए लगभग बीस जनाजे थे । वे सब बहुत जोर-जोर से दुःखित होकर रोते-चिल्लाते जा रहे थे । औरंगजेब ने दूर से ही उन्हें देखा और उनका रोना भी सुना । इन सबका कारण जानने के लिए उसने अपने आदमी भेजे । गवैयों ने जवाब में कहला भेजा कि अपनी आज्ञा द्वारा बादशाह ने संगीत-विद्या को मार डाला है, इसलिए उसे अब कब्र में दफनाने को लिये जा रहे हैं । बादशाह ने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह बहुत ही गहरा दफनाया जाय ।^२

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि संगीत को दरबार में बन्द करने से पूर्व शिवाजी औरंगजेब की हिरासत से भाग चुके थे और 'इस्लाम' के नाम पर परस्पर द्वेष रखनेवाले मुस्लिम-सरदारों में एकता उत्पन्न करने के लिए अपने-आपको आदर्श मुसलमान घोषित करना औरंगजेब का लक्ष्य था ।

ध्रुवपदों में औरंगजेब :

सिंहासन : उत्तम लग्न (है), सब शकुन (है), गुणी और गायक (विद्यमान है) । ब्रह्मा, विष्णु, महेश और व्यास ने औरंगजेब को बादशाह बनाया । उत्सव के समय वे आनन्द-पूर्वक तख्त पर बैठे । रत्नजटित महलों में फर्श पर बैठी हुई सुन्दरियाँ बधावा गा रही हैं । रीझकर शाह उनके दुःख-द्वन्द्व दूर करते हैं । कुछ लास्य और ताण्डव करते हैं, बन्दीजन यशोगान करते हैं, पण्डित प्रतिदिन काव्य करते हैं । संसार के 'पीर' आलमगीर शाह सोने की झडी लगाये हैं । जो दारिद्र्य के फन्द में फँसे ही रहते थे, उनलोगों का निस्तार कर दिया ।^३

प्रताप : चकत्ता (चगताई बादशाह) की चमक चारों दिशाओं में है । दिल्ली-नरेश (शत्रुओं का) दलन-मर्दन करने के लिए आया है । सिंह के समान नरेश, उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में अकड़कर और दृढ़ होकर बैठ गया है । सातों द्वीपों और नवों खण्डों में तेरी गति है । तेरे चढ़ने पर बहुत बड़ी सेना उमड़ आई । शाहजहाँ के पुत्र शाह औरंगजेब, तेरे धौसे की पुकार से पाताल का शेर (शेष) भी काँप उठा ।^४

१. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० २३ ।

२. औरंगजेब, पृ० १३३-१३४ ।

३. मुन्त०, परिशिष्ट अ, १२७ ।

४. परिशिष्ट अ, १५६ ।

महाबली आलमगीर आया, आया, जिसकी धाक देखने पर कोई धैर्य धारण नहीं करता । वह आत्मबली और तपोबली है.. उसने दक्षिण का मर्दन कर दिया, विकट गढ हिला दिये, उसकी तो दुहाई समुद्र-पर्यन्त फिरती है । चगताई-वंश का सुलतान औरगजेब शाहों का शाह है, औलिया और जिन्दापीर है ।^१

तूने 'खन्दार' को सरलतापूर्वक जीत लिया और अपने तप-तेज को प्रकट कर दिया । कौन योद्धा है, जो तुझसे युद्ध करे । अदण्ड्यों (पराक्रमी) को दण्ड देकर वश में किया, प्रेम करनेवालों को प्रेमपूर्वक वश में किया, दुर्ग को पिजरो की भाँति तोड़ दिया । दस देश, नौ खण्ड और चारों दिशाओं में शेर है । शाहजहाँ के पुत्र औरगजेब, तू महाबली है, और करोड़ो हुए, पर तुझ जैसा कोई न हुआ ।^२

वर्षगाँठ : व्यास ने गिनकर दिन शोधा है, जिसमें अच्छे ज्ञान से शुभ लग्न रखा है । शाह औरगजेब की 'बरसगाँठ' दी, कोटि-कोटि वर्षों के आयुर्बल का धारण करनेवाला बनाया । नर-नारियों के मनभाये हुए, आनन्द हुआ, जन्म सफल हुआ, मनोरथ पूर्ण हुए, तुम चिरजीवी रहो, यह घड़ी शुभ है । मीर (प्रधान) पीर आलमगीर का विस्तार जगत् में हो ।^३

ओ सखियो, मिलकर मंगलाचार करो, सुहेला गाओ । बाजे बजे, सबकी इच्छा पूर्ण हुई । वर्षगाँठ में सबको आनन्द प्राप्त हुआ ।^४

वसन्त (वेश्याओं के साथ) : तुम चिरजीवी रहो । सुख सचित्त करो । शाह, सम्पत्ति स्थिर रहे । दिल्ली का एकच्छत्र राज्य करो । दोनों पुरो में तुम्हारे यश और कीर्ति का आधिक्य हो । तुम्हारा आयुर्बल लोमश जैसा हो, असंख्य मनोरथ पूर्ण हों, लाखों-करोड़ों वर्षों तक तुम्हारी आयु बड़े । हमारी वाणी ऐसी सफल हो, कि तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, भगवान् कृपापूर्वक उसे पूर्ण करे । शाहंशाह औरंगजेब, तुमको आनन्द-युक्त असंख्य वसन्त मुबारक हो और असंख्य वर्षों तक हम मंगलामुखियों के साथ तुम धमारी खेलते रहो ।^५

विलास : तूने तो अपने-आप में ही अनुपम चौपड़ बना लिया है । रूप, यौवन, गुण और छवि की बिसात बनाकर वशीकरण को 'घर' (वह स्थान, जो चौपड़ की गोटों के पहुँचने का अन्तिम लक्ष्य होता है) करके त्रिविध कटाक्षो को 'पासा' बना लिया है । 'नौ' का शुभ दाँव तुझी को लेना है, औरो के चौक-चाक (चौपड़ के वे स्थान, जहाँ गोट पिटती नहीं) बाँधकर तूने चतुरतापूर्ण बातें की, इसी से सार पूजी (गोट लाल की,

१. परिशिष्ट अ, १६१ ।

२. परिशिष्ट अ, १६० ।

३. परिशिष्ट अ, १६२ ।

४. परिशिष्ट अ, १६३ ।

५. परिशिष्ट अ, १६४ ।

मनोरथ पूर्ण हुआ)। सौतो से अपने प्रिय को पार्श्व में जीत लिया। शाह औरंगजेब ने रीझकर तुझे भुजाओं में भरा और कण्ठ से लगा लिया।^१

यौवन-मदमाती लाल आँखें लजाई हुई हैं। प्रेमपूर्ण दृष्टि में शाह के दर्शन का लाभ है। अँगड़ाइयाँ और जमुहाइयाँ ले रही है, परन्तु दिखाने के लिए भीहे चढ़ी हुई है। इसके रसीले लाल औरंगजेब अपने मतलब के साथी है।^२

परम ज्ञान और गुण के निधान औरंगजेब मेरा तो कहना ही नहीं मानते अथवा यह मेरे भाग्य का ही दोष है। चुगलखोर दूती ने कान में ऐसी सीख दे दी है कि मुझे तो घर-आँगन ही सहस्र कोस हो गया है।^३

तुम अवधि निश्चित करके आये हो। कह तो आये हो, उस दिन उसे (तुम्हारे न पहुँचने पर) धैर्य नहीं रहेगा। उसके बालम जब (अन्य) रमणियों में आ बैठे, तब यह रीति कैसे निबहेगी। कोई जाकर (यह हाल) कह देगी (और वह सोचेंगी कि) मुझसे अवधि निश्चित करके अन्यत्र विलम्ब कर रहे है। तुम जानते हो और शाह औरंगजेब, फिर जान लो कि जिसे आधी रात कण्ठ दे रही है, वह इसका सहन कैसे करेगी।^४

सखि, आज अवधि का दिन है, लाल इसी घड़ी आते है। प्रफुल्लित होकर, सुगन्ध मलकर, अंजन लगाकर, भूषण-वस्त्र धारण करके, अरगजा लगाये, तो मनभावन कार्य हो। वह देखो, मनमोहन और अन्तर्यामी बालम आ गये। विरहिणी के कारण ही वे आये है, उन्हें गति मिली है। सुखपूर्वक शाह औरंगजेब ने समझाकर गले से लगा लिया और प्रेम में पाग कर निहाल कर दिया, तुझे दृढ़ सुहाग और आनन्दपूर्ण राज दोनों दिये।^५

औरंगजेब के समकालीन आश्रयदाता

कीरतसिंह (कीरतसाह) :

ये मिर्जा राजा जयसिंह के द्वितीय पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्य के तेईसवें वर्ष (सन् १६५० ई०) में कीरतसिंह को आठ सदी, ८०० सवारों का मनसब और जागीर मिली। मिर्जा राजा जयसिंह को आज्ञा हुई कि वह कामा पहाड़ी और खोह मजाहिद के विद्रोही लोगों को निर्मूल करें और अपने व्यक्ति बसाये। इस कार्य के सम्पन्न होने पर राजा जयसिंह के दो घोड़ोंवाले हजार सवारों को तीन घोड़ोंवाला किया गया और वेतन के रूप में अस्सी लाख दाम की आय का परगना 'कस्यान' दिया गया। इस सिंह के

१. परिशिष्ट अ, १६५।

२. परिशिष्ट अ, १६६।

३. परिशिष्ट अ, १६७।

४. परिशिष्ट अ, १६८।

५. परिशिष्ट अ, १६९।

मनसब में भी वृद्धि हुई और मेवात की फौजदारी मिली। थोड़े ही समय में इन्होंने अपनी दूरदर्शिता तथा कार्यक्षमता का विश्वास राजा को करा दिया। सन् १६५३ ई० में कीर्तसिंह का मनसब एकहजारी, ६०० सवार का हुआ और ये दिल्ली के अध्यक्ष हुए।

मिर्जा राजा जयसिंह जब सुलेमान शिकोह का साथ छोड़कर औरंगजेब से मिलने चले, तब कीर्तसिंह भी पिता के साथ दरबार गये और झण्डा पाकर सम्मानित हुए। मेवात के विद्रोहियों के दमन के लिए उनकी नियुक्ति हुई और कुछ दिन दिल्ली के पास फौजदार रहे। तत्पश्चात् अपने पिता के साथ शिवाजी की चढ़ाई पर गये और तीन हजार सैनिकों के साथ पुरन्दर-दुर्ग के सामने इन्होंने मोर्चा बाँधा। शिवाजी के द्वारा अधीनता स्वीकृत किये जाने पर इनका मनसब ढाईहजारी, २००० सवार का हो गया। बीजापुर की चढ़ाई में इनके पिता ने इनकी नियुक्ति मध्य की सेना के प्रबन्ध पर की।

पिता की मृत्यु होने पर इनका मनसब तीनहजारी, २५०० सवार का हुआ और इन्हें डंका भी मिला। दक्षिण में ये बहुत दिन तक रहे। इनका स्वर्गवास १०८४ हि० (सन् १६७३ ई०) में हुआ।^१ इनके सम्बन्ध में एक निम्नांकित ध्रुवपद मिलता है :

बरारी टोड़ी : चौताला

आली री लोचन लोचत है सौ समझौ तेउ तेउ भये एक ठौरे ।
हम फूली जानि हित चितु नवल आये रोम रोम द्रुम मोरे ।
कामत पति गई री आली तन मन सुख भयो रे ।
साहि कीरति मिली नवल बूलह नेत्र कमल सीतल भये मानों चन्द चकोरे ।^२

इनके आश्रय में रहनेवाले कवियों का पता नहीं चलता।

गैरत खाँ :

यह अमीरुल् उमरा हुसैन अली खाँ का भाँजा था और उसके सूबे अजीमाबाद, पटना में उप-सूबेदार के पद पर नियुक्त था। उमादतुलमुल्क अमीरुल् उमरा बहादुर फीरोज जग सैयद हुसैन अली खाँ, सैयद मियाँ अब्दुल्लाह का पुत्र और कुतुबुल्मुल्क सैयद अब्दुल्लाह का छोटा भाई था। औरंगजेब के शासनकाल में यह क्रमशः रणयम्भौर तथा हिण्डोन-बियाना का शासक रहा। बहादुरशाह के मरने पर अपने भाई के साथ हुसैन अली खाँ ने फर्रुखसियर का साथ दिया, परिणामस्वरूप उसके सम्राट् बनने पर यह उसका मीर बखशी बना।^३

यही दोनों भाई अब्दुर्रहमान और हुसैन अली इतिहास-प्रसिद्ध सैयद-बन्धु थे। अब्दुल्ला हिन्दुओं का मित्र था। उनके त्योहारों में भाग लेता था। वसन्त मनाता था।^४

१. मअसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० १०२-१०४।

२. रागमाला, पृ० ७० अ०।

३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० २६४।

४. भारत का इतिहास : ईश्वरीप्रसाद, पृ० २२३।

अपने मामाओं का प्रभाव सम्भवतः, गैरत खाँ पर भी पडा था और वह भी सगीत-प्रेमी था ।

एक ध्रुवपद में गैरत खाँ को 'नवाब गैरत खाँ मुर्तजा अली शेरे खुदा' कहा गया है और उसे ईद की मुबारकबादी दी गई है ।^१

आजम :

मुहम्मद आजम का जन्म सन् १६५३ ई० के २८ जून को बुरहानपुर में हुआ ।^२ इसकी माता फारस के राजवंश में उत्पन्न शाह नवाज खाँ की पुत्री थी, जो सन् १६३७ ई० की ८ मई को औरंगजेब के साथ ब्याही थी । यह अत्यन्त उद्धत स्त्री थी, और उसे अपने पितृवंश का बड़ा गर्व था । औरंगजेब भी इससे डरता था । इसका नाम 'दिलरसबानू' था । यह सन् १६५७ ई० के ८ अक्टूबर को औरंगाबाद में मर गई और मृत्यु के पश्चात् 'रूबिया-उद्-दौरानी' कहलाई ।^३

अप्रैल, १६८२ ई० में एक सेना देकर बीजापुर-राज्य में प्रवेश के लिए यह औरंगजेब के द्वारा भेजा गया । इसने सीमान्त-प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट करके 'धरूर'-किले पर अधिकार किया ।^४ सन् १६८५ ई० में इसने बीजापुर का घेरा डाला^५ और कठिनाइयों की चिन्ता न करके वही डट गया ।^६

सन् १६९९ ई० में सतारा के किलेदार सुभानजी से शर्त निश्चित की और सतारा के किले पर अधिकार हुआ । आजम के ही नाम पर 'सतारा' का नवीन नामकरण 'आजमतारा' हुआ ।^७

सन् १७०१ ई० में यह मारवाड़ और गुजरात का सूबेदार नियुक्त हुआ ।^८ औरंगजेब की मृत्यु से पूर्व ही इसने करमबख्श को मारने का विफल पड़्यन्त किया ।^९ सन् १७०७ ई० की १३ फरवरी को यह मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया, परन्तु पिता की मृत्यु निकट जान कर मालवा की ओर अत्यन्त धीरे-धीरे चला ।^{१०}

१. परिशिष्ट अ, २७४ ।

२. औरंगजेब, प्र० भा०, पृ० २५ ।

३. उपरिवत्, पृ० ५८ ।

४. उपरिवत्, पृ० ३३८ ।

५. उपरिवत्, पृ० ३४२ ।

६. उपरिवत्, पृ० ३४३ ।

७. उपरिवत्, पृ० ४६३ ।

८. उपरिवत्, पृ० ५०३ ।

९. उपरिवत्, पृ० ४८६ ।

१०. उपरिवत्, पृ० ४८७ ।

सन् १७०७ ई० की २० फरवरी, को औरंगजेब का देहान्त अपने शिविर में हुआ और २२ फरवरी को मुहम्मद आजम वहाँ पहुँच गया और इसने औरंगजेब का अन्तिम संस्कार किया ।^१

सन् १७०७ ई० के २० जून को उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ आजम 'जाजऊ' नामक स्थान पर मारा गया ।^२

इसकी प्रशंसा में मुबारक का एक ध्रुवपद मिलता है, जिसमें खण्डिता का चित्रण है ।^३

ध्रुवपदों में आजम :

सेहरा : सेहरा शोभित हो रहा है और सभी के मन मोह रहा है । उनके मुख पर मोतियों की लड़ी भली प्रतीत होती है, मानों चन्द्रमा अमृत बरसा रहा है । अपने छवि के बल पर चन्द्रमा की किरण जीत रखी है, एकटक रूपसागर में मानो गंगा सहस्र धाराओं में बँटकर अनुपम दृश्य प्रस्तुत कर रही है (अथवा) स्वयं उडुगण अपनी भाँति आ विराजते है । शाह औरंगजेब के पुत्र दूल्हा सुलतान आजम, चिरजीवी रहो, जिसकी शोभा देखकर देवताओं और मनुष्यों की स्त्रियाँ अपने को निछावर कर देती है ।^४

सुहागरात : मुझे आज सुहाग की रात अत्यन्त मनभावनी लगती है । दूल्हा सुलतान आजम और दुलहिन में मनभावनी बातें हुई ।^५

विलास : तेरे नयनों की चतुरता प्रकट है, कमलो में खंजनों ने निवास किया है अथवा ये कटाक्षो के माता-पिता है, ये सुखसागर है, कमल इनपर निछावर है, मानों सरोवर में मछलियाँ कल्लोल कर रही है, अथवा कन्दली चन्द्रमा को गोद में लिये है । भाँहें डण्डी है, दोनों पुतलियाँ क्या हैं, पलड़े है, दो पल के लिए भी पलक नहीं लगती । इनमें भली भाँति रूप, यौवन और छवि की तौल है । मुख-रूपी सुख-सरिता में नाव फिर रही है । पलके पवन है, चाह की नदी में फन्दे खोल दिये है । हँसते है, मुँदते है, खुलते है, फिरते है । शाह आजम भाण्डारी है, उसे त्रिविध (कटाक्ष-रूपी) अमोल हीरा और मोती देते हैं ।^६

तेरे नेत्र अपनी पुतलियों के कारण तीखे है, सब सौतों के हृदय में चुभते है, लालन के मन को भाते है । उन्होंने मन, वचन, कर्म में इन्हें धारण कर लिया है । ये नयन अत्यन्त प्रवीण और अनियारे हैं । ये काजल की भी अपेक्षा काले और उजाले की भी

१. औरंगजेब, प्र० भा, पृ० ४८८ ।

२. भारतवर्ष का इतिहास, तृ० भाग, पृ० ३१६ ।

३. रा० द०, भाग १, पृ० २६६ ।

४. परिशिष्ट अ, १७७ ।

५. परिशिष्ट अ, १७६ ।

६. परिशिष्ट अ, १७१ ।

अपेक्षा उज्ज्वल है। बड़े-बड़े हैं, झपक-झपक जाते हैं। शील, सकोच और लाज की चेष्टाओं से पूर्ण हैं, जिन्हें देखकर आजम इनपर मुग्ध है और उन्हें इनके विरह से दुःख होता है। भौरे के समान चमकदार और चटकीले ये नेत्र देखते ही चित्त चुरा लेते हैं.. मेरी ओर निडर हो-होकर देखते हैं, कटाक्षों से पूर्ण यह नेत्र छवि के भार से झुके हैं। तेरे नेत्र धन्य हैं, जिन्होंने ने कुरग (हरिणों) को कुरग (बदरंग, शोभाहीन) कर दिया, मीनो को क्षीण बना दिया। ये निर्मल कमलों का सेवन करनेवाले खंजरीट जैसे हैं.. मतवाले होकर झपक रहे हैं।^१

तुम जो मुझसे छिपाव करते हो, तो मैं नहीं जानती। प्रियतम, तुम्हीं अधिक चतुर और मैं अज्ञान हूँ। करोड़ों यत्न करने के पश्चात् तुम्हारे वे गुण देखे जाते हैं, कामवश होकर जो तुम घर-घर करते फिरते हो। बहुत समझदार हो, युवतियों के साथ रग करते हो, अटपटी पाग में पेच लटपटे हो रहे हैं। मन्द वचन बोलते हो, आँखें स्वयं कहानी कह रही हैं। छत्रपति शाह आजम की बातें विचित्र हैं, जब मैं जान पाई, तब दौड़ी। मन में मुस्करा रहे हो, मन, वचन और कर्म से मैं तुम्हें पहचान गई, अब तुम्हारी घात में नहीं आती।^२

विपत्ति में पीरों की स्तुति : तुम सारे पीर मिलकर छत्रपति शाह आजम को चिरंजीवी करो। शाह, ये तुम्हारे सेवक हैं और मन, वचन, कर्म से तुम्हारी शरण आये हैं, अब इनकी कठिन पीड़ा का हरण तुम ही करो।^३

शंकर की स्तुति : तुम्हारे अग मे भस्म भूषण है, कर में चक्र (?) है, गंगा शिर पर है। विरूप शिव, सामूहिक रूप में डमरू बज रहा है और भारी फणीश फुकार रहा है।.. महादेव, तुम धन्य हो, देवाधिदेव हो, ऋद्धि-सिद्धि के दाता हो, शाहंशाह आजम के लिए सुखकारी होओ।^४

बेदारबख्त :

यह औरंगजेब का पौत्र तथा मुहम्मद आजम का पुत्र था। औरंगजेब को यह अत्यन्त प्रिय था। खेलना-दुर्ग पर इसने किलेदार परशुराम को रिश्वत देकर सन् १७०२ ई० के ७ जून को अधिकार किया था। मराठों ने सन् १७०६ ई० में गुजरात पर आक्रमण करके बेदारबख्त तथा उसके पिता को हराया था।

सन् १६८८ ई० में जयपुर-नरेश विष्णुसिंह की सहायता से बेदारबख्त ने जाटों के 'सिनेसिनी'-दुर्ग पर अधिकार किया था।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब भुअज्जम और आजम में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ, तब बेदारबख्त अपने पिता के साथ ही मारा गया।

१. परिशिष्ट अ, १७५।

२. परिशिष्ट अ, १७४।

३. परिशिष्ट अ, १७०।

४. परिशिष्ट अ, १७३।

संगीत की ओर इसकी रुचि थी, एक रचना में इसके विवाह का वर्णन इस प्रकार है :

सुधर बना बनि आईलो गाओ सब मिलि बिदारबक्स पियारी ।

चिर चिर जीओ साहि आजम को नन्दन जौलौ धरनि ध्रुम तारौ ॥^१

बेदारबख्त का विवाह मुस्तार खाँ कमरुद्दीन की लड़की के साथ १५ मुहर्रम, १०६८ हिजरी (२६ जुलाई, १६८६ ई०, रविवार) को हुआ और वधू को 'मोती बेगम' की उपाधि मिली ।

उपर्युक्त गीत 'बनरा' है, जिसकी रचना सम्भवतः अन्तःपुर-निवासिनी किसी गायिका ने की है ।

बहादुरशाह प्रथम :

इसका वास्तविक नाम 'मुहम्मद मुअज्जम' था और उपनाम 'शाहआलम प्रथम' । इसका जन्म सन् १६४३ ई० के ४ अक्टूबर, को बुरहानपुर में हुआ था ।^२ इसकी माता नवाब-बाई (रहमतुन्निसा) कश्मीर के अन्तर्गत 'राजौरी'-राज्य के राजा 'राजू' की पुत्री थी और इसका जन्म पहाड़ी राजघराने में हुआ था ।^३ बहादुरशाह ने अपने-आपको सैयद सिद्ध करने के लिए अपनी माँ की झूठी वशावली तैयार कराई थी । नवाबबाई की मृत्यु सन् १६६१ ई० में, दिल्ली में हुई ।^४

बहादुरशाह की मृत्यु सन् १७१२ ई० की १८ फरवरी को हुई ।^५

इसकी नियुक्ति औरंगजेब ने महाराज जसदन्तसिंह के साथ दक्षिण में की थी । इसकी सिफारिश पर औरंगजेब ने सन् १६६८ ई० में शिवाजी को 'राजा' कहना स्वीकृत किया था । खेला-सेनापति दिलेर खाँ के साथ इसका नीति-सम्बन्धी मतभेद हो गया था ।^६

सन् १६८५ ई० में यह हैदराबाद पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया । पराक्रम और कूटनीति के प्रयोग से इसने हैदराबाद पर अधिकार किया और कुतुबशाह के साथ मुगल-सम्राट् की सन्धि कराई ।^७

सन् १६८७ ई० में औरंगजेब ने इसे सपरिवार कैद कर लिया, जबकि मुगल-सेना का घेरा गोलकुण्डा पर पड़ा हुआ था ।^८

१. रागमाला, पृ० १४३ अ ।

२. औरंगजेब, भाग १, हिन्दी-संस्करण, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई-४, प्रथम संस्करण, सन् १९५१ ई०, पृ० २३ ।

३. उपरिचत्, पृ० १८ ।

४. उपरिचत्, पृ० १६ ।

५. उपरिचत्, पृ० २३ ।

६. उपरिचत्, पृ० २८२ ।

७. उपरिचत्, पृ० ३५६ ।

८. उपरिचत्, पृ० ३५६ ।

सन् १६६५ ई० में औरंगजेब ने इसे अपने साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग पंजाब, सिन्ध तथा बिलोचिस्तान सौंप दिये थे ।^१

सन् १७०७ ई० के २० जून को जाजऊ नामक स्थान पर युद्ध हुआ । इसकी विजय हुई और यह 'बहादुरशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा ।^२

इसने राजपूतों, सिखों, मराठों और जाटों को युद्ध में परास्त करके भी सबके साथ मित्रता का व्यवहार किया । उदयपुर और जोधपुर को स्वतन्त्रता दी । सम्भाजी के पुत्र साहूजी को बन्दीगृह से मुक्त किया ।^३

बहादुरशाह की मृत्यु शिविर में ही हुई थी ।

ध्रुवपदों में बहादुरशाह :

स्तुति तुम ही 'करीम' (दयालु) 'रब', कर्त्ता, घट-घट में पूर्ण तथा जल-थल में भरतार हो । तुम्हीं कुदरत और तुम्हीं कादिर हो, तुम्हीं शाह बहादुर के रूप में नर हो ।^४

बिलास : नया पवन है, नये बादल हैं, नई वर्षा है, नया साजन है, नया स्नेह है, हाथों में नई मेंहदी रची है । प्यारी नवेली है, उसकी कुसुमी साड़ी नई है, माँग मोतियों से भरी है और अगिया उत्तुंग है । नेह नया है, मेह नया है और नई भूमि पर अत्यन्त सुखपूर्ण संग है । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुम्हारी साँवली सूरत है और तुम्हारा रँगिलापन मधुकर जैसा है ।^५

मेरी ओर लाल ने छिपकर तनिक-सा देखा था, वह सौतो में प्रकट हो गया, वे मेरी ओर देखते थे, .. क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता, संकोच का आनन्द मैंने हृदय में सहा । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने हँसकर चीर पकड़ लिया ।^६

इन मेरी आँखों ने मुझसे बैर किया, स्वयं जाकर दरस-परस किया, मिल आई और मेरा मन बाँध लिया, देखते ही उनके वश में हो रही, ऐसा लाभ उठाया । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने रसपूर्वक रास किया ।^७

१ औरंगजेब, भाग १ (बम्बई-संस्करण), पृ० ४१० ।

२. भारत का इतिहास, तृ० भाग, पृ० २१६ ।

३. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या, लेखक : राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, १९५७ सं०, आत्माराम ऐण्ड सन्स, दिल्ली, ६, पृ० १७ ।

४. परिशिष्ट अ, १७८ ।

५. परिशिष्ट अ, १७९ ।

६. परिशिष्ट अ, १७८ ।

७. परिशिष्ट अ, १८४ ।

तुम सावन में आये, मैं तुम पर बलि-बलि जाती हूँ । मैं तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी और सेविका हूँ । या तो तुम स्वयं आये या मेरा भाग्य तुम्हें ले आया । तुमने मुझे विरहिणी की पीड़ा दूर की । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने मुझे जीवित रखने की भली सुध ली ।^१

कही काजल लगा है, कही पीक की रेखा है, कही शरीर पर नखों की रेखा शोभित हो रही है । एक तो, स्वयं चतुर हो, नेत्र सत्य प्रकट किये दे रहे है । तुम्हारी प्रतिज्ञा अवधि के सम्बन्ध में इतनी सच्ची है कि प्रिय, प्रातः काल अपनी यह शोभा दिखाने आये हो ।^२

जबतक सिर से पैर तक देह न भीग जाय, मेरे आँगन में ही खड़े रहो.. स्नान कर लो, और ये वस्त्र उतार कर मेरे घर की देहली पर पैर रखो । तुम्हारे अधरो पर अंजन और ललाट पर महावर है । ओ चतुर, चतुराई न करो । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, संकोच न करो, दर्पण ले लो ।^३

जहाँदारशाह :

सन् १७१२ ई० में बहादुरशाह को मृत्यु के पश्चात् मुईजुद्दीन जहाँदारशाह गद्दी पर बैठा । आजम के पुत्र फर्रुखसियर ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया । सन् १७१३ ई० में जहाँदारशाह मार डाला गया ।

जहाँदारशाह ने सम्राट् बनते ही दिल्ली-दरबार को कलावन्तों और नर्तकियों का अखाड़ा बना दिया था और उन्हें बड़े-बड़े माही मरातिब आदि प्रदान कर दिये थे । इसे अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर ढोलक इत्यादि वाद्ययन्त्र अधिक प्रिय थे । रासरंग के प्रति इसकी अधिक रुचि थी । यह बक्की एवं झक्की भी बहुत था ।^४

जहाँदारशाह की प्रेयसी नर्तकी लालकुँवरि के सम्बन्धी अमीर बनाकर उच्च पदों पर नियुक्त कर दिये गये थे ।... रात्रि में नीच गायक राजप्रासाद में बादशाह के साथ मदिरापान करते और उन्मत्तावस्था में जहाँदारशाह का अपमान करते, पर वह लालकुँवरि के भय से कुछ न कहता था ।^५ इन दुर्गुणों को होते हुए भी इसमें एक विशेषता यह थी कि यह बड़ा वीर था । यद्यपि यह युद्ध में पराजित हुआ, तथापि इसने रणभूमि में असीम वीरता का परिचय दिया था ।^६

‘मोजद्दीन’ (मुईजुद्दीन) की मुद्रा से अकित ध्रुवपद भी प्राप्त होते हैं ।^७

१. परिशिष्ट अ, १८५ ।
२. परिशिष्ट अ, १८६ ।
३. परिशिष्ट अ, १८७ ।
४. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ६६ ।
५. उपरिचत्, पृ० ३०३-३०४ ।
६. उपरिचत्, पृ० ६६ ।
७. परिशिष्ट अ, १६४ से २०० तक ।

ध्रुवपदों में मुईजुद्दीन जहाँदारशाह :

प्रताप : छत्रपति नरेश आया, आया । देश-देश में खलबली है ।... 'हल-हल' शब्द हो रहा है, सेनाएँ जमकर चलती है और तेरे भय से मर्यादा की रक्षा करती है ।... हाथ में तेरे धनुष धारण करने पर शत्रुओं का धैर्य जाता रहता है, वे भाग-भागकर घर में पत्नियों के पास जा छिपते हैं । अत्यन्त प्रचण्ड, श्रेष्ठ एवं बलवान् भुजाओं से तूने अनेक को खण्ड-खण्ड कर दिया, पराक्रमियों को दण्ड दिया, शत्रुओं को स्वयं निकलकर धराशायी कर दिया । सुभट, शूर, सामन्तों को आनन्द हुआ । यशोगान हो रहा है, शाह मुईजुद्दीन तुम चिरंजीवी रहो ।^१

मुहम्मदशाह :

जहाँदारशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७१३ ई० में दिल्ली के सिंहासन पर फर्रुखसियर का अधिकार हुआ । सन् १७१६ ई० में फर्रुखसियर षड्यन्त्रों के परिणाम-स्वरूप मारा गया और बहादुरशाह का एक पोता मुहम्मदशाह सिंहासनासीन हुआ । नादिरशाह का प्रसिद्ध आक्रमण मुहम्मदशाह के राज्यकाल सन् १७३६ ई० में हुआ । सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई ।

मुहम्मदशाह की प्रसिद्धि संगीतज्ञों में 'रंगीले' के नाम से है । मुहम्मदशाह के प्रिय कलाकारों में निम्नांकित हैं :

१. नेमतखाँ (सदारंग) 'यह परमोल खाँ (निमोल खाँ?) के पुत्र और संगीतज्ञों में मूर्धन्य थे । इनके वीणा-वादन की प्रशंसा शब्दों द्वारा नहीं हो सकती । इन्होंने बड़ी रंगीनी के साथ ध्रुवपदों, ख्यालों, तरानों एवं दूसरे प्रबन्धों की रचना की है । आरम्भ में मुहम्मद मुअज्जमशाह की सभा में तत्तारी कव्वाल, बगाली नटवा, देवदत्त कवीश्वर (महा-कवि देव) और अन्य कलाकारों से संगीत की शिक्षा प्राप्त की । तत्पश्चात् जहाँदारशाह के दरबार में सम्मान एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त किया । दिल्ली-सम्राट् मुहम्मदशाह ने इनपर अत्यन्त अनुग्रह किया । मुहम्मदशाह के राज्यकाल के अन्तिम समय में इनका देहान्त हुआ ।^२

२. फीरोज खाँ (अदारंग) : ये नेमत खाँ के शिष्य एवं जामाता थे । अपने युग के सर्वश्रेष्ठ गायक थे, जो कठोर साधना, प्रौढ़ता और रंगीनी इनके गाने में देखी गई, उसका अस्तित्व दूसरों में मिलना कठिन है । वीणा-वादन में, अन्यतम एवं अनुपम थे । ध्रुवपद, तरानः एवं ख्याल लिखने में पूर्ण अधिकार था ।^३

१. परिशिष्ट अ, १६५ ।

२. मिराति आफताबनुसः, पृ० २६३ अ० ।

३. उपरिचत्, पृ० २६३ ब० ।

मुहम्मदशाह की प्रशंसा में लिखित अथवा उसके नाम से सम्बोधित अनेक ध्रुवपद मिलते हैं, जिनमें अनेक के रचयिता सदारंग और अनेक के रचयिता अदारंग हैं। मुहम्मद-शाह की मुद्रा से अंकित 'पद' भी इन्हीं दोनों कलाकारों की कृति माने जाते हैं।

एक ध्रुवपद में 'अदारंग' अपना गुरु 'सदारंग' को कहते हैं और उनका कथन है कि गुण-प्रदर्शन के लिए 'सदारंग' का नाम लेकर गाना चाहिए।^१ 'मिराति आफताबनुमः' के लेखक ने फीरोज खाँ की जो प्रशंसा की है, उससे यही प्रतीत होता है कि फीरोज खाँ की ही उपाधि 'अदारंग' थी।

मुहम्मद करम इमाम ने 'अदारंग' और 'सदारंग' को परस्पर सहोदर लिखा है।^२ परन्तु, उसके ऐतिहासिक विवरण अनेक स्थानों पर अप्रामाणिक हैं।

३. इच्छाबरस : इनके विषय में विशिष्ट विवरण प्राप्त नहीं होता। इनके ध्रुवपदों में 'इच्छावर' या 'इच्छाबरस' छाप दिखाई देती है। कुछ ध्रुवपदों में ये मुहम्मद शाह को सम्बोधित करते हैं।^३

४. लाला भवानीदीन पखावजी : इन्हें 'दासजी' भी कहा जाता है। इन्हें तीन लाख से भी अधिक 'परन' याद थे। मुहम्मदशाह ने इस तथ्य की परीक्षा ली थी।^४

५. हुसेन खाँ पखावजी : भवानीदीन पखावजी से हारने के कारण इसे अपना दाहिना हाथ काट डालना पड़ा था।^५

६. रसूल खाँ कव्वाल : मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, इसने ख्याल गाकर अदारंग और सदारंग का रंग फीका कर दिया था।^६

७. ख्वाजः मीर 'दर्द' : उस समय के मूर्खन्य सूफी थे। भारतीय संगीत के इतने बड़े उस्ताद थे कि गवैया और कलावन्त अपनी रचनाएँ सुधार के लिए उनकी सेवा में प्रस्तुत किया करते थे।^७

८. मीर मुहम्मदी 'रंज' : ख्वाजः मीर 'दर्द' के दौहित्र थे। बड़े-बड़े उस्ताद उनके सामने कान पकड़ते थे और खाक चाटकर नाम लेते थे।^८

१. परिशिष्ट आ, १२४।

२. मअदन्उल् मूसिकी, पृ० २३६।

३. परिशिष्ट आ, १३६ से १४१ तक।

४. मअदन्उल् मूसिकी, पृ० २३८।

५. उपरिवत्, पृ० २३६।

६. उपरिवत्, पृ० २३६।

७. भूमिका, नादिराँनिशाही, पृ० ३।

८. उपरिवत्, पृ० ३।

ध्रुवपदों में मुहम्मदशाह :

संगीत-कृषि : 'आकार' भूमि है, उसमें 'गमक' पवन है, उसके झकोरो से 'राग' की झड़ी लगी, 'तान' रूपी खरी बूँदे बरस रही है। 'आरोही-अवरोही'-रूपी दोनों बैल हैं, 'स्वर'-रूपी हल से शुद्ध करके 'श्रुति'-रूपी बीज बोया गया, उससे 'रीति'-रूपी हरी बेल बढ़ी। 'सप्तस्वर'-रूपी शाखाएँ उत्पन्न हुई, 'अलंकार'-रूपी पुष्प लगे, 'ताल'-रूपी पत्ते लगे, मूर्च्छना के अनुसार चारों तुकें दी, चारों दिशाओं में 'नाद' की यह खेती भर गई। गायक, गुणी और गन्धर्व तीनों किसान इस खेती को ग्रामों में बटोरकर वाणिज्य करने के लिए लाये। छत्रपति मुहम्मदशाह ने अपनी आँखों से देखकर और कानों से स्वाद लेकर सबके मन की इच्छा पूरी की।^१

विलास : ओ प्यारे मुहम्मदशाह, जैसे-तैसे सुन्दरी की चौक और झिझक मिटी है। ज्यों-ज्यों समझाती रही, त्यों-त्यों उसके हृदय में क्षण-क्षण अधिक धकधकी होती है, जी में धडक रही है। अष्टयाम की दृष्टि शोभित हो रही है।^२

तुम उन्हीं के पास जाओ, जिनके साथ सारी रात जागे हो। रंगरस में पगे हुए तुम सबेरे ही मुझे खिझाने आ गये। चोवा, चन्दन, इत्र, अरगजा लगाया और रंग-रंग के वस्त्र धारण किये। प्रवीण मुहम्मदशाह प्यारे, तब ही भले लगे।^३

होरी : स्वर में सनी हुई तानों से होरी गाओ, गा-गाकर शाह को रिझाओ। बाजे चतुरतापूर्वक खूब तेज बजाओ, नीके फाग रवाओ। इस प्रकार, मुहम्मदशाह को रिझाकर भाँति-भाँति से मान मनाओ।^४

अरी नागर, मैं तुझे कबतक सीख दूँ, तू तो होरी खेलते-खेलते पल-पल में रूठनी है, उन रस और गुण के आगार का मन नहीं रखती। समुद्र के समान इतना गहरा मान न करें। इस बार यदि कोई मुहम्मदशाह को मना लाये, तो मैं कच्ची गागर भरूँगी।^५

यह देखो, गुलाल, अबीर और अबरख की धूम कहाँतक चली गई, जिसमें सभी के नेत्र छिप गये हैं। फूलों की मूठें छूट रही हैं, एक कुमकुमा मार रही और एक रोकती और गुमान में भरकर गाली देती है।^६

चतुर, सुघर, लाल मुहम्मदशाह रंगमहल में होरी खेलने आये। बन-ठनके चले, फेट में अबीर-गुलाल है, रंग भर-भर के पिचकारियाँ छोड़ो।^७

१. परिशिष्ट अ, २०१।

२. परिशिष्ट अ, २०३।

३. परिशिष्ट अ, २०५।

४. परिशिष्ट अ, २०६।

५. परिशिष्ट अ०, २०७।

६. परिशिष्ट अ०, २०८।

७. परिशिष्ट अ०, २०९।

आज अनुरागपूर्वक लालन मेरे सौभाग्य से मेरे महल में होरी खेलने आये हैं। अंगों में सुगन्ध लगा-लगाकर और मुँह से अच्छी तान गा-गाकर मानिनी का जीवन सफल होगा और रंगरस की सेवा करूँगी। रसीले लाल मुहम्मदशाह, दयालु होकर मुझपर कृपा कीजिए, सौते मेरा क्या करेगी? मेरे हितु लोगों ने अत्यन्त सुख पा-पाकर मनचीते कार्य किये, चाचर मची, अत्यन्त चहल-पहल हुई।^१

अमीर खाँ :

यह मीर मीरान का पुत्र था। इसका वास्तविक नाम मीर इस्हाक था। आरम्भ में, इसकी पदवी अजीजुल्लाह खाँ थी। मुहम्मद फरूखसियर के साथ जहाँदारशाह के युद्ध में अच्छी सेवा की, अतः विजय के पश्चात् शस्त्राध्यक्ष और शिकारी चिड़िया-घर का दारोगा नियत हुआ।

मुहम्मदशाह के दूसरे वर्ष जब हुसेन अली खाँ बादशाह के साथ दक्षिण को रवाना हुआ, तब यह कुतुबुल्मुल्क के साथ दिल्ली चला आया। इसके अनन्तर जब कुतुबुल्मुल्क सुलतान इब्राहीम को साथ लेकर बादशाह का सामना करने पहुँचा, तब उक्त खाँ हरावल में नियत था। कुतुबुल्मुल्क के पकड़े जाने पर यह एक बाग में जा छिपा। दुर्दशा में पड़े हुए सुलतान इब्राहीम को यह बाग में ले आया और उक्त सुलतान को बादशाह के पास ले जाकर बादशाह का कृपापात्र हो गया। इस राज्य में बहुत दिनों तक यह तीसरा बखशी रहा।

बादशाह विजय-वासना में मस्त था। अमीर खाँ की बातें उसे बहुत पसन्द आई और इसलिए यह बादशाही मजलिस का एक सभ्य हो गया। क्रमशः इसको अच्छा मनसब और 'उमदतुल्मुल्क' की पदवी मिल गई। बादशाह स्वयं कुछ काम नहीं देखते थे, इसलिए दूसरे सरदारों ने ईर्ष्या करके बादशाह से बहुत चुगली खाई। फलतः, सन् ११५१ हि० (सन् १७३६ ई०) में यह इलाहाबाद का शासक हो गया। सन् १७४३ ई० में इसे बुलाकर इसपर अधिक कृपा की गई। अवध के सूबेदार सफदरजंग को इसकी सिफारिश पर बुलाकर तोपखाने का दारोगा बनाया गया। इन दोनों के कहने से बादशाह ने मुहम्मद खाँ रुहेला पर चढाई की। सन् १७४६ ई० में यह बुलाये जाने पर दरबार पहुँचा, तो इसके एक नौकर ने इसे जमघर^२ से मार डाला।

यह हाजिरजवाबी और विनोद में एक था। बहुत-से गुणों में कुशल था। कवि भी था और इसका उपनाम 'अंजाम' था।^३

इसकी प्रशंसा में 'इंछाबरस' का एक ध्रुवपद प्राप्त है।^४

१. परिशिष्ट अ०, २१०।

२. अस्त्र-विशेष।

३. मअ्रासिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० २४८-२४९।

४. परिशिष्ट अ, २७३।

कमरुद्दीन खाँ बहादुर एतमादुद्दौला :

इसका वास्तविक नाम मीर मुहम्मद फाजिल था । औरंगजेब के राज्यकाल के अन्त में इसे यथोचित मनसब और 'कमरुद्दीन खाँ' की पदवी मिली थी । फर्रुखसियर के समय में यह अहमदियों का बखशी हुआ । शनैः-शनैः यह प्रधानमन्त्री के पद पर पहुँच गया । यह अहमदशाह दुर्रानी से युद्ध करने के लिए ससैन्य सरहिन्द गया । वही सन् १७४८ ई० में इसकी मृत्यु हुई ।^१

इसके नाम से सम्बोधित एक ध्रुवपद प्राप्त है । यथा :

ईमन कल्यान सूरफाकता

अबदुलनबी गुननिधान की गरे गावै बजावै उपजावै लावै
सप्त धाई संगीत की तान ... ।

कहाँ लग बरनों अनगुन गंभीर अटल मीर धीर 'मुहम्मद' सुजान सुलितान ।^२

अहमदशाह :

सन् १७४८ ई० में मोहम्मदशाह रंगीले की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह मुगल-सम्राट् हुआ । इसका सारा समय भोग-विलास में जाता था । शासन-कार्य में इसकी अयोग्यता के कारण जमीन्दारों ने मालगुजारी देना बन्द कर दिया और राजकोष खाली हो गया । वेतन न मिलने के कारण सेना ने काम करना छोड़ दिया । दरबारी अमीरों में दो दल, ईरानी और तूरानी थे, जिनमें परस्पर संघर्ष था । सम्राट् ने ईरानियों के नेता सफदरजंग को पदच्युत करके इन्तजामुद्दौला को वजीर बनाया । थोड़े दिनों के पश्चात् बादशाह के मीर बखशी इमाद ने मराठों की सहायता से बादशाह को सिंहासनच्युत कर दिया और उसकी आँखें फोड़वा दी ।

सुरभावन और आलम नामक ध्रुवपदकारों ने अहमदशाह की प्रशंसा में ध्रुवपद लिखे हैं ।^३

समकालीन आश्रयदाता

माधवसिंह (जयपुरनरेश) : मृ० सन् १७६८ ई० :

ये महाराज जयसिंह सवाई के कनिष्ठ पुत्र थे । अपने बड़े भाई ईश्वरीसिंह के राज्यारूढ (सन् १७४३ ई०) होने पर मेवाड़ के राना और मराठों की सहायता से स्वयं राज्य लेने का प्रयत्न करने लगे । सूरजमल की सहायता ईश्वरीसिंह को प्राप्त थी । युद्ध हुआ और ईश्वरीसिंह ने अपने भाई को पाँच परगने देना स्वीकार किया । सन् १७५० ई०

१. हि० बी० का०, पृ० २६१ ।

२. रा० मा०, १२१ अ ।

३. रा० क०, भाग १, पृ० १६६-२८८ ।

में ईश्वरीसिंह ने आत्महत्या कर ली और राज्य माधवसिंह को मिला ।^१ गुलाब ने अपने ध्रुवपदों में इनको सम्बोधित किया है ।^२ सन् १७६८ ई० में इनकी मृत्यु हो गई ।

आलमगीर सानी :

मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७४८ ई० में अहमदशाह सिंहासनारूढ हुआ । सन् १७५४ ई० में मीर बख्शी इमाद ने उसकी आँखें फोड़वाकर उसे सिंहासनच्युत कर दिया और जहाँदारशाह का पुत्र मुहम्मद अजीमुद्दौला 'आलमगीर सानी' से नाम के गद्दी पर बैठा ।

'अदारंग' के दो-एक ध्रुवपद प्राप्त हैं, जिनमें आलमगीर सानी के सिंहासनारोहण की चर्चा है ।^३

ध्रुवपदों में आलमगीर सानी द्वितीय :

अभिषेक : आलमगीर द्वितीय तख्त पर बैठे, हिन्द में आनन्द हुआ । सब ओर धाक फिर गई, हुक्म माना गया । पालकी में सुन्दर रानी को बिठाकर आगे किये हुए चारों ओर से (राजा) हाथ जोड़कर चले । अदारंग कहते हैं कि अल्लाह की मिहरबानी है, 'अद्ल' (न्याय) और इन्साफ का वर्णन कहाँतक करूँ ।^४

भाग्यवती रानी तथा प्रतिपालन करनेवाला आलमगीर करतार ने बादशाह बनाया है । प्रजा सुखी हुई, दुःख का नाम-निशान तक चला गया, आनन्द बढ़ा ।... 'अदारंग' देखता है, परन्तु बुद्धि को उसके समान और कोई दिखाई नहीं देता, जिह्वा थकित है ।.. जबतक गंगा-यमुना में जल है, तबतक छत्र और राज्य अविचल रहे ।^५

गायकवत्सलता : शाहंशाह, हमारी अर्ज सुन लीजिए, आपके यश को सुनकर जो स्थान-स्थान से दौड़े आये हैं । आपका तेज देखते ही वे निहाल हो गये, सब दुःख दूर हुए । गाते हैं, रिझाते हैं, हाथी-घोड़े इनाम में पाते हैं, 'रब' (ईश्वर) ने चारों ओर तुम्हारा प्रताप फैलाया है । अदारंग तुम्हारा ही कहलाता है, दिन-रात तुम्हारा ही नाम जपता है । कृपा करके कब याद करोगे ।^६

विलास : मेरी भुजा और बाईं आँख फड़क रही है, उन्होंने आने के लिए कहा था । जान पड़ता है, वे आ रहे हैं । अदारंग, ऐसा शकुन विचारो, जो मुझे आलमगीर शीघ्र मिले ।^७

१. हि० बी० का०, पृ० ३१५-३२२ ।

२. रागमाला, १७६ अ, परिशिष्ट आ, १४६ ।

३. परिशिष्ट अ, २१२-२१३ ।

४. परिशिष्ट अ, २१२ ।

५. परिशिष्ट आ, १२१ ।

६. परिशिष्ट आ, १२२ ।

७. परिशिष्ट अ, २१३ ।

समकालीन आश्रयदाता

सूरजमल (सन् १७५५-१७६३ ई०) :

सूरजमल जाट-नरेशों में अत्यन्त प्रतापी हुए हैं। इनके समय में जाटों की शक्ति अत्यन्त बढ़ गई थी और मध्यभारत के 'गोहद' स्थान से मथुरा जिले के 'छाता' नामक स्थान तक की सज़ा 'जाटवाडा' हो गई थी।^१

सूरजमल ने पाँच हजार जाटों को घेरकर मुगल-फौज का विध्वंस कर दिया था। मीर बख्शी ने आश्वासन दिया कि शाही सेना पीपल के पेड़ों को न काटेगी, पीपल की पूजा न रोकेगी और नारनौल के आगे न बढ़ेगी।^२

सन् १७५७ ई० में मरहठों और जाटों में सन्धि हो गई और मरहठों ने सूरजमल की सहायता से रूहेलो को पराजित करके 'दोआब' छीन लिया था।^३

सदाशिवराव भाऊ ने जब अफगानों के साथ सन्धि-चर्चा चलाई, तब उनके साथ सूरजमल का मतभेद हो गया। सदाशिव की सन्धि भी अफगानों के साथ न हुई और सन् १७६० ई० में पानीपत का मैदान मराठों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।^४

जुलाई, १७६१ ई० में सूरजमल ने आगरा-दुर्ग पर अधिकार कर लिया और कुछ ही दिनों के पश्चात् मेवात पर।^५

सन् १७६३ ई० के २५ दिसम्बर को रूहेलों ने सूरजमल पर ऐसी स्थिति में आक्रमण किया, जबकि उनके साथ इने-गिने सैनिक ही थे। इस अवसर पर सूरजमल को वीरगति प्राप्त हुई।^६

सूरजमल का ही दूसरा नाम 'सुजानसिंह' है। सूदन कवि ने 'सुजानचरित्र' में उन युद्धों का वर्णन किया है, जो उन्होंने सन् १७४५ से १७५३ ई० तक किये थे।^७

सूरजमल के पिता बदनसिंह को जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह ने टीका, निशान, ढोल और पचरंगी ध्वजा देकर 'व्रजराज' की उपाधि से विभूषित किया था।^८ सन् १७५२ ई० में मुगल-सम्राट् अहमदशाह ने बदनसिंह को 'महेन्द्र' और 'राजा' की उपाधि से अलंकृत किया था। ये अपने-आपको यादववंशीय कहते थे।^९

१. व्रज का इतिहास, पृ० १८३, १८४।

२. उपरिबत्, पृ० १८४।

३. उपरिबत्, पृ० १६०।

४. उपरिबत्, पृ० १६०-१६१।

५. उपरिबत्, पृ० १६१।

६. उपरिबत्।

७. हि० बी० का०, पृ० ३१।

८. उपरिबत्, पृ० ११३।

९. परिशिष्ट अ, २७१।

जादो-नरेश (यादव-नरेश) की वीरतापूर्ण प्रशस्ति में प्राप्त होनेवाले ध्रुवपद पराक्रमी नरेश 'सूरजमल' से ही सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। उनमें कहा गया है :

‘हे यादव-नरेश, तुझसे कौन लड़े, कौन तेरे सम्मुख अड़े और कौन धैर्य धारण करे ?
सेना तैयार कराकर प्रस्थान के लिए डंका बजवाते ही राव-राजा गढ़देश छोड़कर
भाग जाते हैं।’^१

शाह आलम :

यह आलमगीर सानी का पुत्र था, इसकी माँ लालकुँवरि थी। इसका जन्म सन् १७२८ ई० के १४ जून को हुआ, जब इसके पिता फर्रुखसियर की कैद में थे।

यह दयालु एवं साहसी था, परन्तु साम्राज्य सँभालने के लिए आवश्यक योग्यताएँ इसमें न थीं। यह साधुओं का अत्यन्त सम्मान करता और ख्वाजः मीर 'दर्द' की सेवा में उपस्थित होता था।

शाह आलम फारसी, उर्दू, भाषा (हिन्दी) और पंजाबी के गद्य एवं पद्य दोनों पर अधिकार रखता था तथा अरबी एवं संस्कृत भी जानता था, तुर्की से भी परिचित था।

संगीत में भी शाह आलम की गति थी और सम्भवतः उस्ताद नजर अली का शिष्य था।

फारसी एवं उर्दू की काव्य-रचना में शाह आलम ने 'आफताब' और हिन्दी में 'शाह आलम' उपनाम अपनाये।

शाह आलम की रचनाओं में एक 'फारसी दीवान', एक 'दीवाने उर्दू', 'मनज़ूम अकदस' नामक एक मसनवी, 'किस्तः शाह शुजः अलतमश' एवं 'नादिरॉतिशाही' नामक ग्रन्थ है। अन्तिम ग्रन्थ शाह आलम की उर्दू, फारसी, हिन्दी और पंजाबी-कविताओं का संग्रह है।

'नादिरॉतिशाही' की एक प्रति रामपुर की रजा लाइब्रेरी में है, जो रामपुर के नवाब कल्बेअली खाँ के राज्यकाल में महाकवि दाग की मारफत खरीदी गई थी। अब उसे वर्तमान रामपुर-नरेश की आज्ञा से इसी पुस्तकालय ने प्रकाशित की है।

इस पुस्तक के अन्त में एक फारसी शेर है, जिससे इस पुस्तक का लेखनकाल सन् १७६७ ई० निश्चित होता है।

'नादिरॉतिशाही' में संगृहीत सभी रचनाएँ गाने के लिए लिखी गई हैं। प्रत्येक रचना के ऊपर राग और ताल का नाम है।

हिन्दी-रचनाएँ किसी-न-किसी उत्सव से सम्बद्ध हैं, भले ही वह ईद, बकरीद, शबे बरात, आखिरी बुधवार, छठी, बिस्मिल्लः (विचारम्भ), हृदियः (कुरान समाप्त होने का उत्सव), मँगनी, मेंहदी, शादी प्रभृति जैसे मुसलमानी उत्सव हों अथवा होली, दीवाली या वसन्त जैसे हिन्दु-पर्व।

सुरभावन नामक ध्रुवपदकार ने शाह आलम से सम्बद्ध ध्रुवपदों की रचना की है।^१

चेतसिंह (राजबहादुर)

यह बनारस के राजा थे। इनका राज्यकाल सन् १७७०-१७८१ ई० है।^२ ये महान् संगीतज्ञ, काव्यमर्मज्ञ, विद्यानुरागी और गुणग्राही नरेश थे। लालकवि ने इन्हीं के आश्रित रहकर 'आनन्दरस' नामक नायिका-भेद का एक ग्रन्थ लिखा।^३ हरिप्रसाद नामक एक व्यक्ति ने राजा चेतसिंह के कहने से ही 'बिहारी-सतसई' का संस्कृत में पद्यानुवाद किया था।^४ गोकुलदास बन्दीजन भी इनके आश्रित थे।^५

एक ध्रुवपद में इनकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है : 'राजबहादुर का दरबार ऐसा है, जिसमें रंक, राव, राजा और उमराव (अमीर के बहुवचन 'उमरा' का अपभ्रंश) आते हैं, उनको लाखों देते और राजी करते हैं। विधना ने समस्त जगत् का दारिद्र्य दूर करने के लिए इस भू पर चेतसिंह नरेश को रचा है। उसके भाग्य धन्य है, जिसे तुम अनुगृहीत करते हो।^६

'राजबहादुर' की मुद्रा से अंकित ध्रुवपदों का विषय गुरुमहिमा, श्रीपति विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, हनुमान्, विन्ध्यवासिनी, गंगा, वेदव्यास इत्यादि की स्तुति है। कुछ ध्रुवपदों का विषय संगीत है, जिसमें नाद के विभिन्न भेदों का वर्णन है। नाद-नगर का रूपक बाँधा गया है, सांगीतिक गुणदोषों की चर्चा है, नाद-विचार एवं स्वर-विचार है। आदर्श गायक-लक्षण भी इन्होंने बताया है और वसन्त एवं होली पर गाये जानेवाले पदों की रचना भी की है। विभिन्न नायिकाओं का चित्रण भी बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

ध्रुवपदों में चेतसिंह 'राजबहादुर'

संगीतमर्मज्ञता : सब मिलकर यह विचार कर लो कि जो स्वर, अक्षर और तान में शुद्धता रखकर जब 'ढरन' और 'मुरन' के साथ ढले, उसे गायक कहना चाहिए। काव्य में युक्त उक्तियाँ रखे, अनुप्रास यथास्थान रखे, ध्रुवपद की रचना करके गाये और सुनाये। उसकी रचना ऐसी हो, जो सबको सुख देनेवाली हो। शुद्ध वाणी का आश्रय रखते हुए क्रमपूर्वक आलाप करके दिखाये और अनेक प्रकार से राग गाये। इस गुण का ग्राहक जानियों में श्रेष्ठ और बहुनायक राजा चेतसिंह है।^७

१. रा० क०, भाग १, पृ० १६३।

२. प्रियर्सन : हि० सा० प्र० इ०, पृ० २४४।

३. उपरिचत्, पृ० २४४।

४. उपरिचत्, पृ० २४५।

५. उपरिचत्।

६. परिशिष्ट अ, २३१।

७. परिशिष्ट अ, २५४।

होली : सुथरी और सुखदायक तान गाकर फागुन मास में धूम मचा दी । साथ में मनभाये सखा और सखियाँ हैं, हाथ में डफ लिये भली भाँति बजा रहे हैं । अपने गुमान में भरा हुआ किसी की बात नहीं मानता । ... रंगीला राजबहादुर नायक सकल गुणों में दक्ष है।^१

आज पिचकारियों से रंग बरस रहा है, नायक राजबहादुर होली खेलता है । अबीर और गुलाल उड़ रहा है, लाल को अत्यन्त सुख है, साँवली-गोरी सुन्दर युवतियाँ नाच रही हैं । चाँचर की चहल-पहल मची है । डफ-मृदंग बज रहे हैं । तानपूरा, वीणा, रवाब और मजीरों की जोड़ियाँ बज रही हैं ।^२

विलास : जागे और अनुराग-भरे लाल मेरे घर बहुत दिनों पर आये हैं । झूठी-झूठी सौगन्ध खा रहे हैं, अंग अलसा रहे हैं, नींद घेरे हुए हैं और वह आँखों में भर रही है । कपोलों पर वेणी के चिह्न हैं, जो सच्ची बात कहे दे रहे हैं । राजबहादुर मोहन आये हैं ।^३

प्यारे प्रियतम को पाऊँ, तो हृदय से लगाऊँ, अत्यन्त सुख छा जाये । उनके बिना मुझसे एक घड़ी, पल, छिन रहा नहीं जाता । सखि, मैं क्या करूँ, कहाँ तक जी को तरसाऊँ । मेरी दृष्टि में वे सर्वथा प्रवीण, चतुर, सुन्दर, गुणसागर और काम के रूप हैं । उनकी ओर देखने से नेत्रों को कैसे समझाऊँ । जब महाराज राजबहादुर कृपा करें, तब आनन्द पाऊँ ।^४

राजा छत्रसिंह (अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध) :

रामपुर के राजा माधवसिंह की आज्ञा से उनके आश्रित जसवन्त ने संवत् १८७४ (सन् १८१७ ई०) में 'व्यंजनप्रकाश' नामक एक ग्रन्थ लिखा है ।^५ यह ग्रन्थ अप्रकाशित रूप में उपलब्ध है । इसमें लिखित वंशवृक्ष के अनुसार, छत्रसिंह की वंश-परम्परा इस प्रकार है कि वीरमदेव के पुत्र नरहर, उनके पुत्र हरसिंह, उनके पुत्र वीरसिंहदेव, उनके पुत्र धुरमंगद, उनके पुत्र विक्रमाजीत, उनके पुत्र मुकुटमणि और उनके पुत्र रामसाहि हुए, जिन्होंने रामपुर-दुर्ग बनवाया । रामसाहि के पुत्र परवतेस हुए । परवतेस के दो पुत्र गजसिंह और गोपालदास थे, गजसिंह के पोते छत्रसिंह के तीन पुत्र हुए, जिनमें से फतेहसिंह के दत्तक पुत्र रामपुर-नरेश माधवसिंह हुए । वंश-परम्परा के अनुसार छत्रसिंह माधवसिंह (सन् १८१७ ई०) के पितामह थे, अतः उनका समय १८वीं शती ईसवी का पश्चार्द्ध माना जा सकता है, जो सम्राट् शाह आलम का राज्यकाल है ।

१. परिशिष्ट अ, २६० ।

२. परिशिष्ट अ, २६१ ।

३. परिशिष्ट अ, २६६ ।

४. परिशिष्ट अ, २६७ ।

५. संवत् दस औ आठ से अधिक चुहत्तर जानि ।

अच्छय तीज अनूपतिथि ग्रन्थ जन्म सुख दानि ॥ —व्यंजनप्रकाश, पृ० २ अ ।

ध्रुवपदों में छत्रसिंह :

सिंहासन : यह घड़ी धन्य है, कनक-जटित सिंहासन पर राजा छत्रसिंह विराजमान है, आनन्द सरसा रहे है । राजा, राव, उमराव और कवि शोभित हो रहे है, रिसाले ले-लेकर खड़े हुए है । याचक अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं, अमूल्य वसन और आभूषण पाते है । सृष्टि अनेक प्रकार के सुख से परिचित हुई । छत्रपति महाराज चिरजीवी हों, इसी प्रकार कोटि-कोटि उत्सव करें, जिन्हें देखकर देवता पुष्प बरसायें ।^१

प्रताप : तुमने अजेय व्यक्तियों को तुरन्त जीता, प्रचण्ड अदण्ड्यों (पराक्रमी वीरों) को दण्ड दिया । ओ बलवन्त, खण्ड-खण्ड में तुम्हारी आन फिरती है । अश्वपति, गजपति, सुरपति और नरपति भयभीत होते है और वेगपूर्वक झुककर अपना 'गरीबान' डाल देते है । जब क्रोध करके कृपाण हाथ में लेते हो, तब तुम्हारी समता कौन कर सकता है और कौन धीरज धर सकता है ? महाराज छत्रसिंह, तुम आत्मबली और तपोबली हो, तुम्ही नीति जानते हो ।^२

प्रशंसा, मंगलकामना : महाराज छत्रसिंह बहादुर ऐसे दीनदयालु और कृपालु है । वे समस्त राजाओं के सिरताज है, इन्द्र के समान हैं, यश, कीर्ति और सुख के सागर है । चारों ओर उनका भरपूर अटल राज्य है । वे ध्रुव और प्रह्लाद के समान है । प्रभु, कृपा करो भक्त सब परम पुनीत यश गा रहे है ।^३

दानशीलता : ऐसा कौन है, जो तुम्हारी समता कर सके, तुम तेगबली और दानबली हो, पृथ्वी पर युग-युग जियो । तुम्हारे पास देश-देश के गुणी आते है, तुम उन्हें आदर और मान के साथ, रत्न, वस्त्र और तुरंग देते हो । मेरे एक जिह्वा है, मैं तुम्हारे दान की कथा कहाँतक कहूँ, तुम अपने समान स्वयं ही हो । 'भूपत' कहता है कि जगत् के दारिद्र्य का हरण करने में, छत्रसिंह बहादुर, तुम्ही समर्थ हो ।^४

दशहरा : तुम्हें दशहरा मुबारक हो, समाज-सहित सम्पत्ति संचित रहे । आनन्द-वधावे गा-गाकर गुणी आशीर्वाद दे रहे हैं । करोड़ों बरस तक पृथ्वी पर अटल राज्य करते रहो । तुम राजाओं के राजा और सबके सरताज हो । तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है । 'भूपत' कहता है कि गुणियों की इच्छा के अनुकूल दान अभी मँगवा दीजिए ।^५

संगीतज्ञता : गुणियों और गायकों ने कण्ठ की भूमि में कैसे 'नाद-बाग' की रचना की है, तुम सब जानकार लोग दिखाओ । सातो स्वर 'तरुवर' है, अक्षर 'पुष्प' और 'पत्त' है, शुद्ध वाणी सघन छाया है । सुर, नर, मुनि सिचन करते है, सुघर व्यक्तियों के

१. परिशिष्ट अ, २२३ ।

२. परिशिष्ट अ, २२४ ।

३. परिशिष्ट अ, २२५ ।

४. परिशिष्ट अ, २२६ ।

५. परिशिष्ट अ, २२७ ।

मन से उपज-रूपी 'फल' लगते हैं। 'भूपत' कहता है कि इसकी सैर करने के लिए महाराज छत्रसिंह के कान हैं।^१

विलास : सब नारियों में मैं ही सुखी हूँ, मैंने भाग्य से वर पाया। 'हरि' को निरखने से आँखें सफल हुईं। मैंने आज अपने जन्म और जीवन को सफल माना। दिन-दिन के मनोरथ पूर्ण हुए। बधावा गाकर नवों निधियाँ पा लीं। प्राणपति महाराज छत्रसिंहजी से मिलकर मनभाई रस की बातें की।^२

मोहन प्रियतम का दर्शन करने से नेत्र-कमल प्रफुल्लित हुए। जब उन्होंने अंक में भरकर चिह्नों की वर्षा की, तब दिन-दिन के ताप और विरह के विलाप तिरोहित हो गये। भाग्य, सौभाग्य, नयन, जन्म और जीवन धन्य एवं सफल है। प्राणपति प्राणेश्वर ने घड़ी-घड़ी, पल-पल, छिन-छिन, सरस सुख दिया। महाराज छत्रसिंह अन्तर्यामी थे। वे अन्तर की गति जानते हैं और अंग-अंग की बेकली मिटाते हैं।^३

महाराजा जगतसिंह :

ये सवाई प्रतापसिंह जयपुर-नरेश के पुत्र थे। ये क्षत्रियों के ईश, दयालु तथा धर्मात्मा थे। शत्रु को देखकर और अधिक उग्र रूप धारण कर लिया करते थे। युद्ध में पीठ दिखाना और परस्त्री पर कुदृष्टि डालना इन्हें दुर्जनता और नीचता के लक्षण लगते थे। ये महादानी भी थे।^४ प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट को इन्होंने राजकवि बनाया।^५ पद्माकर ने प्रसिद्ध ग्रन्थ, 'जगतविनोद' की रचना इन्हीं की आज्ञा से की थी, जिसमें जगतसिंह की प्रशंसा के पश्चात् नायिका-भेद एवं रस-निरूपण है।^६

जगतसिंह से सम्बद्ध एक गीत में कहा गया है : "सखि, इसकी छवि मुझे भाती है। निरखकर नयन सुख पाते हैं। महाराज जगतसिंह रंगभीने हैं। कृपा करके मेरे महलो में आते हैं। कूर्म (कछवाहा)-कुल में सूर्य उदित हो गया है, जिसके प्रताप-रूपी तेज से आलोकित ससार उनका यश गा रहा है। हे सवाई प्रताप के पुत्र, ध्रुव की भाँति अटल रहो, जो प्रीति निबाहते हो।"^७

रतनसिंह (सन् १७६८-१७६९ ई०) :

ये सूरजमल के छोटे पुत्र थे और अपने भाई जवाहरसिंह की मृत्यु के पश्चात् शासक हुए। ये पूर्वजों की प्रकृति से विपरीत थे। सन् १७६९ ई० में इन्होंने वृन्दावन

१. परिशिष्ट अ, २२८।

२. परिशिष्ट अ, २२९।

३. परिशिष्ट अ, २३०।

४. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ६३।

५. उपरिचत्, १।

६. उपरिचत्, पृ० ३२।

७. परिशिष्ट अ, पृ० २६८।

की यात्रा की और यमुना के किनारे एक महान् उत्सव का आयोजन किया, जिसमें चार हजार नर्तकियाँ बुलाई गई थी। रूपानन्द नामक एक गुसाई ने इन्हे विश्वासघातपूर्वक सन् १७६६ ई० में मार डाला।^१ रतनपाल यादव-नरेश को सम्बोधित करते हुए एक ध्रुवपद में कहा गया है : “इस पृथ्वी पर जितने गुणी हैं, वे तेरी कीर्ति की कथा कहते हैं। वह कथा सात समुद्र पार सातों द्वीपों में सुनी गई है। जिन कृष्ण का ध्यान सुर-नर-मुनि करते हैं, उनके वंश में यादव-नरेश की उत्पत्ति हुई है। कलियुग में ‘रतनपाल’ की रचना कल्पवृक्ष के समान हुई है, जिसकी सेवा दुनिया हाथ जोड़े करती है।”^२

गज, तुरग, नग और लाल का दान करने से सुयश जगमगा रहा है। देश-देश के गुणी-गन्धर्व आते हैं और मुक्तामाल पाते हैं। तुम अपबली, तपबली, दानबली और धर्म की ध्वजा हो। कवि तुमसे निहाल होते हैं। ‘साहब’ कहता है कि हे गोपालक, यादववंशी नरेश, तुम चिरंजीवी रहो।^३

महाराजा प्रतापसिंह ‘व्रजनिधि’ :

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराज सवाई जयसिंहजी से तीसरी पीढ़ी में महाराज माधवसिंह हुए, जिनके दो पुत्र हुए : पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह का जन्म विक्रम-संवत् १८१६ (सन् १७६२ ई०) और प्रतापसिंह का जन्म संवत् १८२१ (सन् १७६४ ई०) में हुआ। माधवसिंह के पश्चात् पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। संवत् १८३३ (सन् १७७६ ई०) में इनकी मृत्यु हुई। इनके सन्तानहीन होने के कारण प्रतापसिंहजी को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

महाराजा प्रतापसिंहजी क्षत्रियोचित गुणों से विभूषित थे। उनके समय में मरहठों का राजस्थान में बड़ा आतंक और जोर था। अतः, इनका दमन करने के लिए महाराजा को कई युद्ध करने पड़े और दो-एक बार उन्होंने इन्हे पराजित भी किया।

कवियों, विद्वानों और गायकों का इनके दरबार में अत्यन्त सम्मान होता था। उन्होंने ‘आइने अकबरी’, ‘दीवाने हाफिज’ आदि ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद कराया और ज्यौतिष, धर्मशास्त्र आदि विषयों पर भी बहुत-से ग्रन्थ लिखवाये। ‘प्रतापवीर हजारों’ और ‘प्रतापसिंहार हजारों’ उनकी प्रेरणा से किये हुए मुख्य संकलन हैं।^४

पण्डितों और प्रवीण कलाकारों को बुलाकर उनकी सलाह से उन्होंने हिन्दुस्थानी संगीत पर एक आदर्श ग्रन्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।^५ इस ग्रन्थ का नाम ‘संगीत-

१. व्रज का इतिहास, पृ० १६३।

२. परिशिष्ट अ, २७२।

३. परिशिष्ट अ, २७६।

४. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२६।

५. उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६।

सार' है। उत्तरी सगीत के ऐतिहासिक पर्यवलोकन के विचार से इसका अपना महत्त्व है। अपने काल में उपलब्ध श्रेष्ठ कलाकारों के मतों का संकलन कर महाराज ने प्रशंसनीय कार्य किया है।^१

महाराजा प्रतापसिंह स्वयं भी अच्छी कविता करते थे। उन्होंने बहुत-से ग्रन्थ बनाये, जिनका काव्यप्रेमियों में बड़ा आदर है। कविता में वे अपना नाम 'व्रजनिधि' रखते थे।^२ उनके सभी ग्रन्थ 'व्रजनिधि-ग्रन्थावली' के नाम से काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किये हैं।

विक्रमसाह (चरखारी-नरेश) : (राज्यारोहण : सन् १७८२-१८२८ ई०) :

उपनाम विजयबहादुर बुन्देला :

ये ओरछावाले मथुराशाह के वंशज और चरखारी के राजा थे। इनका राज्य-काल (सन् १७८२ से १८२८ ई०) तक है। इनकी प्रशंसा में ध्रुवपद प्राप्त होते हैं।^३

अज्ञातपरिचय आश्रयदाता

करनसाह : प्रेमदास ने अपने एक ध्रुवपद में इनकी चर्चा की है, जो मुगल-सम्राट् शाह आलम के समकालीन थे और जिनकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है। करनसाह के विषय में और कुछ परिचय प्राप्त नहीं है।

चगता नवाब : रागमाला, पृ० २६१ आ पर इसकी प्रशंसा में किसी अज्ञातनामा ध्रुवपदकार का एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिससे चकता नवाब (चगताई नवाब) का नरेश और गुणज्ञ होना सिद्ध होता है। ध्रुवपद निम्नांकित है :

निरभय गुननिधान पहले समान आ (या) भुझमण्ड (भुवमण्डल) जमि रहै
आज कायिम मूरति कायिम तेरौ रहै जौ लौ उदयमान ।

जा कलजुग में का प्रकाल ऐसौ नवाब चकता सु धरनि मुरनि प्रमान ।

चत्रसीचत्री राजाधिराज : इनकी प्रशंसा में रागमाला, पृ० १६३ आ पर एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसमें किसी अज्ञातनामा ध्रुवपदकार ने उनके दाम्पत्य-प्रेम का वर्णन किया है।

चतुरसिंह राना : रागमाला, पृ० २२४ आ पर इनके सम्बन्ध में एक रचना संगृहीत है।

छत्रपति : यह कोई राजा प्रतीत होते हैं और ध्रुवपदकार भी। इनकी एक रचना रागमाला, पृ० २३० आ पर संगृहीत है।

नवलजसषा (नवलजस खाँ ?) : रागमाला, पृ० २७५ आ पर इनकी प्रशंसा में एक ध्रुवपद है, जिससे इनका नरेश एव आश्रयदाता होना सिद्ध होता है।^४

१. उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६ ।

२. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२६ ।

३. रागमाला, १२० आ, २३८ आ ।

४. परिशिष्ट आ, २८५ ।

फकरखानि (फख्र खाँ) : रागमाला, पृ० १६५ अ पर इनकी प्रशंसा में एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय आदर्श गान है ।^१

वीरनसाह : इनसे सम्बद्ध एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० २६२ पर संगृहीत है, जिससे यह संगीतज्ञों के आश्रयदाता प्रतीत होते हैं ।

उदयरज : ध्रुवपदकार शम्भू ने ध्रुवपदों में इनकी प्रशंसा की है । इस प्रकार का एक ध्रुवपद रागमाला, पृ० २८१ आ पर संगृहीत है ।

वली मोहम्मद सुलतान : इनसे सम्बद्ध एक ध्रुवपद रागमाला, पृ० ११० अ पर संगृहीत है, जिसका विषय सभा के संगीतज्ञों की प्रशंसा है ।

नूर : जिस ध्रुवपद में इस अनुमित नूर की चर्चा है, वह कोई वारविलासिनी प्रतीत होती है; क्योंकि किसी शाह के साथ उसकी प्रेमलीला का वर्णन है । वह कुलांगना होकर उस प्रकार ध्रुवपदकारों के लिए वर्णन का विषय नहीं बन सकती ।

मुहम्मदशाह रेंगीले के दरबार में नूरबाई नामक एक अत्यन्त सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ गायिका थी । मुहम्मदशाह रेंगीले ने इसे भेंट-स्वरूप नादिरशाह को दिया था ।^२ मुहम्मदशाह का विचार था कि इस अमूल्य भेंट से नादिरशाह परम सन्तुष्ट हो जायगा । उस युग में वारविलासिनियाँ बेगम बनने के स्वप्न देखा करती और बादशाहों को अँगुलियों पर नचाया करती थी । मुहम्मदशाह रेंगीले की तो राजमुद्रा तक एक वेश्या के हाथ में रहती थी । बादशाहों की मुँहलगी वेश्याएँ भी आश्रयदाताओं के समान ही ध्रुवपदों में वर्णन का विषय बनती थी । रागमाला, पृ० २८१ अ पर एक ध्रुवपद में 'नूर' के रूप का वर्णन है । सम्भव है, वह 'रेंगीले' के दरबार की नूरबाई ही हो ।



१. परिशिष्ट अ, २८२ ।

२. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या, पृ० २३ ।

मानसिंह तोमर और उसकी परम्परा

मानसिंह तोमर के समकालीन संगीतानुरागी नरेश

तैमूर के आक्रमण (सन् १३९८ ई०) के पश्चात् भारत में अराजकता फैल गई, कोई केन्द्रीय शासन न रहा और अनेक स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ। ये राज्य अपनी सीमाओं की सुरक्षा अथवा अपने राज्य के विस्तार के लिए प्रायः लड़ते रहते थे।

तैमूरी आक्रमण के अठ्ठासी वर्ष बाद मानसिंह तोमर ग्वालियर के सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल सन् १४८६-१५१६ ई० है।

मानसिंह तोमर के शासनकाल में दिल्ली पर सिकन्दर लोदी का शासन था। सिकन्दर लोदी एक संगीतानुरागी व्यक्ति था।

‘तारीखे शाही’ के अनुसार, सिकन्दर लोदी के राज्यकाल (सन् १४८८-१५१७ ई०) में अद्वितीय संगीतज्ञ तथा गायक दिल्ली में एकत्र हो गये थे। एक प्रहर रात्रि बीत जाने के पश्चात् वह संगीत की सभा आयोजित कराता था। उसकी सभा में रूपवती गायिकाएँ थीं। सिकन्दर लोदी ने १५०० दीनार में चार दास खरीदे थे। उनमें एक ‘चंग’, दूसरा ‘कानून’, तीसरा तानपूरा और चौथा वीणा बजाता था। आधी रात्रि व्यतीत हो जाने पर चार शहनाई-वादक शहनाई बजाने लगते थे। ये क्रमशः केदारा, अडाना, हुसेनी और रामकली बजाकर अपना वादन समाप्त करते थे।^१

‘वाकयाते मुश्ताक़ी’ के अनुसार, मीरान सैयद रुहुल्लाह और सैयद इब्नुर्रसूल सिकन्दर लोदी की सभा के महान् संगीत-मर्मज्ञ थे। सुलतान की सेवा में उपस्थित होने के इच्छुक गायकों और वादकों की कला से जब ये दोनों मर्मज्ञ सन्तुष्ट हो जाते, तभी नवीन कलाकारों को सुलतान की सेवा में प्रस्तुत किया जाता था।

गौरा, कल्याण, कानडा और हुसेनी सुलतान को अत्यन्त प्रिय थे। शहनाई-वादकों को आदेश था कि वे इन चार मुकामों के अतिरिक्त और कुछ न बजायें।^२ ‘तारीखे दाऊदी’ के अनुसार, सिकन्दर लोदी के प्रिय राग मालकोस, कल्याण, कानडा और हुसेनी थे।^३

सिकन्दर लोदी का एक अमीर मियाँ ताहा सकल-कला-मर्मज्ञ था। इसे अनेक विद्याओं का ज्ञान था। बड़े-बड़े ब्राह्मण और संगीतज्ञ इससे शिक्षा लेते थे।

१. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ० ३३२।

२. उपरिबत्, पृ० १३४।

३. उपरिबत्, पृ० २६२।

मालवा का अधिपति गयासुद्दीन (सन् १४६६-१५०० ई०) महान् संगीत-मर्मज्ञ था। उस समय मुस्लिम-दरबारों में भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त का मजाक उड़ाया जाता था। मुकाम-पद्धति भारत-भर में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करनेवाले विद्वान् दुर्लभ हो गये थे। 'संगीतरत्नाकर' के तेलुगु-टीकाकार विट्ठल के पिता विष्णु भट्टाचार्य ने गयासुद्दीन की सभा में पहुँचकर जब बाईसो श्रुतियों का प्रदर्शन किया, तब गयासुद्दीन ने सन्तुष्ट होकर विष्णुभट्ट को एक सहस्र तोला सोना दिया था।^१

गुजरात में महमूद बीगड़ (रा० का० सन् १४५८-१५११ ई०) प्रतापी शासक था। उसका उत्तराधिकारी पुत्र मुजफ्फरशाह संगीत का महान् मर्मज्ञ था, उसका स्वर अत्यन्त मधुर था और वह प्रत्येक वाद्य के वादन में निपुण था। अनेक संगीत-मर्मज्ञ गुणी मुजफ्फरशाह को अपना गुरु मानते थे। मुजफ्फरशाह ने अपने राज्यकाल में गुजरात को संगीत का केन्द्र बना दिया था।^२

जौनपुर के अन्तिम शर्की-शासक हुसेनशाह की मृत्यु मानसिंह के राज्यारोहण से केवल आठ वर्ष पूर्व सन् १४७८ ई० में हुई थी। हुसेनशाह शर्की से दो पीढ़ी पूर्व इब्राहीम शर्की के राज्यकाल (सन् १४०२-१४४० ई०) में ही जौनपुर मुस्लिम-विद्याओं का महान् केन्द्र बन चुका था। दूर-दूर देशों के विद्वानों और कलाकारों ने जौनपुर में आश्रय लिया था। इब्राहीम शर्की की ओर से कड़ा में नियुक्त सूबेदार सुलतान मलिक के पुत्र बहादुर मलिक ने संगीत के अनेक संस्कृत-ग्रन्थ एकत्र किये और देश-भर के विद्वानों को बुलाकर उनसे 'संगीतशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना कराई थी।^३

इन परम्पराओं का प्रभाव हुसेनशाह शर्की पर पड़ा था। वह संगीत का महान् मर्मज्ञ था और उसने अनेक रागों का आविष्कार किया। जौनपुर का दरबार भी अन्य मुस्लिम-दरबारों की भाँति चिश्ती-परम्परा और खुसरो-पद्धति से प्रभावित था।

दक्षिण में विजयनगर का दरबार शताब्दियों पूर्व खुसरो-परम्परा से प्रभावित हो चुका था। कृष्णदेव राय (रा० का० सन् १५०६-१५३० ई०) की सभा में रहकर लक्ष्मीनारायण 'संगीतसूर्योदय' की रचना कर रहे थे। गयासुद्दीन को प्रसन्न करके इनके ही पितामह एक सहस्र तोला सोना ले चुके थे। 'संगीतसूर्योदय' में कौल, गजल इत्यादि की भी चर्चा है। तुर्की, फारस, खुरासान, मुलतान इत्यादि के प्रयोग भी बताये गये हैं।

बहमनी-साम्राज्य का अन्तिम सुलतान महमूदशाह बारह वर्ष की आयु में सन् १४८२ ई० में गद्दी पर बैठा। वयस्क होने पर यह अत्यन्त विलासी हो गया। इसके युग में सम्मानित सन्त भी मद्यप हो गये और धर्माचार्य पानगोष्ठियों में सम्मिलित होने लगे। बहमनी-सुलतानों को चिश्ती-परम्परा के सूफियों का आशीर्वाद सदैव प्राप्त था और इनका दरबार खुसरो-पद्धति का गढ़ था।

१. भरतकोष, पृ० १२, पाद-टिप्पणी।

२. मिराति सिकन्दरी; उर्दू-'आजकल', अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३ पर उद्धृत।

३. भरतकोष, भूमिका, पृ० १३।

इन परिस्थितियों में ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा के माध्यम से ध्रुवपद का पुनरुद्धार किया ।

तोमरों का उत्थान और पतन

गयासुद्दीन के राज्यकाल सन् १३२०—१३२५ ई० में ही ग्वालियर-किले के सूबेदार की सेना के एक उत्साही तोमर-नवयुवक वीरसिंहदेव ने सन् १३७५ ई० में ग्वालियर पर अधिकार कर लिया था ।

वीरसिंहदेव ने अपने पुत्र लक्ष्मण के नाम पर ग्वालियर-गढ़ में लक्ष्मण-पौर का निर्माण कराया ।

विक्रमदेव : वीरसिंहदेव के पश्चात् उद्धरणदेव ने शासन किया । उनके उत्तराधिकारी वीरमदेव (विक्रमदेव) हुए । दिसम्बर, १४०२ ई० में दिल्ली के सेनापति इकबाल खाँ ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, परन्तु विक्रमदेव के शौर्य और ग्वालियर की अजेयता ने उसे अपना घेरा हटाने पर विवश किया और वह जनता को लूटकर वापस लौट गया ।

इकबाल खाँ ने एक बार और प्रयत्न किया । धौलपुर के किले पर विक्रमदेव ने उससे टक्कर ली, विक्रमदेव को ग्वालियर लौटना पड़ा । सन् १४०४ ई० में इन दोनों की इटावा में पुनः टक्कर हुई और विक्रमदेव को कर देना पड़ा । सन् १४०५ ई० में इकबाल खाँ एक युद्ध में मारा गया ।

सन् १४१४ ई० में खिज़्र खाँ दिल्ली की गद्दी पर बैठा । सन् १४१६ ई० में उसने ताजुल्मुल्क को विक्रमदेव के विरुद्ध भेजा । विक्रमदेव को कर देने के लिए विवश होना पड़ा ।

डूंगरेन्द्रसिंह : सन् १४२४ ई० में डूंगरेन्द्रसिंह तोमर-वंश के सिंहासन पर बैठे । इनका राज्यकाल तीस वर्ष रहा और इन्होंने दिल्ली और माँडौ के सुलतानों से डटकर टक्कर ली और विजयश्री इनपर अनेक बार प्रसन्न हुई । मालवा के सुलतान हुशंगशाह (रा० का० सन् १४०५—१४३४ ई०) ने आसपास के प्रदेश में बहुत लूट-मार मचा रखी थी । महाराज डूंगरेन्द्रसिंह ने राजपूतों की एक सेना संघटित करके हुशंगशाह को पराजित किया और इनके हाथ बहुत-सा कोष लगा । इसी विजय में सम्भवतः इन्हें 'कोहनूर हीरा' प्राप्त हुआ । हुशंगशाह को एक बार पुनः ग्वालियर पर आक्रमण करने के परिणामस्वरूप पराजय का मुँह देखना पड़ा । इस बार डूंगरेन्द्रसिंह को जौनपुर के सुलतान मुबारक शाह की सहायता प्राप्त थी ।

इनके समय में तँवर-राज्य के अन्तर्गत वर्तमान मुरेना, शिवपुरी तथा आसपास के जिलों के अधिकतर भाग भी थे ।

सन् १४३५ ई० में माँडौ के सुलतान सुहम्मद खिलजी प्रथम ने ग्वालियर पर विफल आक्रमण किया । दिल्ली की ओर से भी आक्रमण होते रहे । सन् १४३८ ई० में डूंगरेन्द्रसिंह ने नरवरगढ़ पर अधिकार कर लिया, जो मालवा के सुलतानों के अधीन था । नरवरगढ़ का विजय-स्तम्भ इसका स्मारक है ।

दिल्ली, जौनपुर और मालवा के सुलतानों के साथ यथावसर सन्धि-विग्रह करते हुए महाराज डूंगरेन्द्रसिंह धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यों की ओर भी गये। ग्वालियर-गढ़ को दृढ़ करने के लिए 'गणेश-पौर' नामक द्वार का निर्माण कराया। सन् १४४० ई० के तीन शिलालेख इस बात के सूचक हैं कि इनके आश्रय में ग्वालियर-गढ़ के चारों ओर विशाल जैन प्रतिमाएँ बनीं। इन शिलालेखों में देवसेन यशःकीर्त्ति, जयकीर्त्ति इत्यादि जैन आचार्यों का उल्लेख है।

डूंगरेन्द्रसिंह के स्वर्गवास के पश्चात् सन् १४५५ ई० में उनके पुत्र कीर्त्तिसिंह ग्वालियर के नरेश हुए। ये भी अत्यन्त शूरवीर एवं कलाप्रेमी थे। इन्होंने अपने राज्य की सीमाएँ विस्तृत की और दिल्ली, जौनपुर तथा मालवा के राज्यों से यथावसर सन्धि-विग्रह करते रहे। सन् १४६५ ई० में जौनपुर के हुसेनशाह शर्की ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, परिणामस्वरूप दोनों राज्यों में सन्धि हो गई।

सन् १४७८ ई० में बहलोल लोदी ने हुसेनशाह शर्की पर आक्रमण करके जौनपुर-राज्य को दिल्ली में मिला लिया। महाराज कीर्त्तिसिंह ने पराजित हुसेनशाह को आश्रय देकर उसे कालपी पहुँचा दिया, परिणामस्वरूप लोदी-राज्य से शत्रुता हो गई। बहलोल लोदी ने दो लाख सैनिक लेकर ग्वालियर पर आक्रमण किया। उसके लौटते ही महाराज कीर्त्तिसिंह ने ग्वालियर पुनः ले लिया। हाँ, नरवरगढ़ जैसा दुर्ग हाथ से निकल गया।

सन् १४७९ ई० में महाराज कीर्त्तिसिंह का स्वर्गवास हुआ।

महाराज डूंगरेन्द्रसिंह के समय से जिन जैन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ था, वे महाराज कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में पूरी हुईं। ये प्रतिमाएँ अत्यन्त भावपूर्ण हैं, इनकी विशालता एवं भव्यता इनके उत्कीर्णकों के कौशल, सौन्दर्य-प्रेम, श्रद्धा और भक्ति का परिचय देती हैं। कहा जाता है कि महाराज कीर्त्तिसिंह ने अनेक तालाबों का निर्माण कराया।

कीर्त्तिसिंह के पश्चात् सन् १४८१ ई० में महाराज कल्याणसिंह सिंहासन पर बैठे। इन्होंने प्रायः छह-सात वर्ष राज्य किया। इन्होंने 'बादलमहल' का निर्माण कराया। सन् १४८६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

सन् १४८६ ई० में महाराज मानसिंह सिंहासनासीन हुए। बहलोल लोदी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, पर मानसिंह के सम्मुख उसकी एक न चली। सन् १४८८ ई० में बहलोल मर गया और उसका पुत्र निजाम खाँ 'सिकन्दरशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा। इसने ग्वालियर पर पाँच आक्रमण किये। पाँचों बार इसे मुँह की खानी पड़ी।

ग्वालियर के तोमर-वंश का वैभव, शौर्य, श्री, कलाप्रियता, बुद्धिमत्ता और सहृदयता महाराज मानसिंह में अत्यन्त विस्तृत रूप में परिलक्षित हुई। महाराज मानसिंह आज भी इतिहास, जनश्रुति एवं अनुश्रुतियों के विषय बने हुए हैं। उनके शौर्य, साहित्य, संगीत, स्थापत्य आदि का प्रेम मुगल-काल तक में प्रतिध्वनित हुआ।^१

सन् १५१६ ई० में महाराज मानसिंह स्वर्गवासी हुए और उनका पुत्र विक्रमाजीत राजा हुआ। सन् १५१७ ई० में इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। इसके बाप-दादा ग्वालियर-नरेश से हारे थे। उसके हृदय में यह अपमान खटकता था। आजम हुमायूँ के सेनापतित्व में लोदियों की बहुत बड़ी सेना ग्वालियर को घेरे हुए थी। ग्वालियर की सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़ी, परन्तु संख्या में कोई समानता नहीं थी। बादलगढ़ का द्वार टूट गया। लक्ष्मण-पौर पर भयानक युद्ध हुआ, इब्राहीम लोदी के युग का एक विश्वसनीय एवं प्रसुख सरदार ताज निजाम मारा गया। ग्वालियर पर लोदियों का अधिकार हो गया। विक्रमाजीत को शम्साबाद की जागीर दी गई।

बाबर ने जब इब्राहीम लोदी को हराया, तब विक्रमाजीत इब्राहीम लोदी की ओर से लड़ता हुआ सन् १५२६ ई० में मारा गया।

जिस समय विक्रमाजीत इब्राहीम लोदी की ओर से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे रहा था, उसी समय थोड़े-से सैनिकों की सहायता से रामसिंह नामक एक तोमर-युवक ने ग्वालियर-दुर्ग के अफगान-अधिकारी तातार खाँ को परास्त करके किले पर अधिकार कर लिया।^१

बाबर दिल्ली का सम्राट् बन चुका था। ग्वालियर-दुर्ग में छिपे हुए तातार खाँ ने गुप्त रूप से बाबर को सन्देशा भेजा। बाबर ने उसका निमन्त्रण स्वीकृत किया।

‘बाबरनामः’ कहता है : “तातार खाँ सारंगखानी ग्वालियर में था और हमेशा आदमी भेजकर खैरख्वाही जताया करता था, मगर जब राना (राणासाँगा) खँडार का किला लेकर बयाना के पास पहुँचा और ग्वालियर के राजाओं में से घरमंगव और खानजहाँ ग्वालियर के पास आकर किला लेने के वास्ते फसाद करने लगे, तब तातार खाँ ने तंग होकर ग्वालियर उनको देना चाहा। . बादशाह (इब्राहीम लोदी) ने रहीमदाद को ग्वालियर में बैठा आने के लिए शेख मुहम्मद गौस को भेजा था। जब ये लोग ग्वालियर के पास पहुँचे, तब तातार खाँ की नीयत बदल गई थी और वह इनको किले में नहीं बुलाता था। आखिर शेख मुहम्मद गौस दरवेश ने, जिसके बहुत-से चेले थे, किले में से रहीमदाद को कहलाया कि जिस तरह हो सके, अन्दर आ जाओ; क्योंकि इस आदमी की नीयत बदली हुई है। रहीमदाद ने तातार खाँ से कहलवाया कि बाहर तो राना (साँगा) का डर है। मैं कई आदमियों के साथ किले में आ जाऊँगा, दूसरे लोग बाहर रहेंगे। . रहीमदाद उसी रात उसी दरवाजे से अपने सब आदमियों को ले आया। दिन निकलते ही किले पर मुगलों का अधिकार हो गया।”^२

१. मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० १३।

२. बाबरनामा, अनुवादक : मुंशी देवीप्रसाद, रिजवी प्रेस दिल्ली, प्रकाशन-काल : सं० १९६७ (सन् १९१० ई०) पृ० २६३-२६४।

प्रतीत होता है कि जिस बात को बाबर तातार खाँ की विवशता कहता है, उसका कारण उस रामसिंह के हाथ में अधिकार होना था, जिसके सगोत्र इब्राहीम लोदी के पक्ष में लड़ रहे थे। वास्तव में, मुगलों के अधिकार के मूल में शेख मुहम्मद गौस और उसके मुरीद थे। विश्वासघातपूर्वक मुगल-सैनिकों के लिए किले का दरवाजा खोलना शेख मुहम्मद गौस के ही संकेत पर हुआ था।^१ रामसिंह को विवश होकर मेवाड़ जाना पड़ा।

विक्रमाजीत की सन्तानें : विक्रमाजीत पानीपत के मैदान में वीरगति पा गये थे। उनका परिवार आगरा में था। हुमायूँ ने उसके साथ सद् व्यवहार किया। फलतः, उस परिवार ने हुमायूँ को 'कोहनूर' भेंट किया, जो तोमरों ने माँडौ के सुलतान हुशगशाह को हराकर प्राप्त किया था। तोमरों के उत्थान और पतन का यह संक्षिप्त इतिहास है, परन्तु कला की दृष्टि से मानसिंह ने जो कुछ किया, उसका प्रभाव दूरव्यापी हुआ।

ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर : अत्यन्त विषम परिस्थिति में ग्वालियर के सिंहासन पर मानसिंह तोमर अभिषिक्त हुआ, जो महान् वीर, अप्रतिम कलामर्मज्ञ और गुणियों का प्रिय आश्रयदाता था।

फरिश्ता ने मानसिंह को वीर और योग्य शासक बतलाया है। अँगरेज इतिहास-लेखकों ने मानसिंह के राज्यकाल को तोमर-शासन का स्वर्णयुग कहा है।

मानसिंह को अपने विरोधियों से तलवार लेकर अलग मोर्चा लेंना पड़ा और ललित-कलाओं में हिन्दू-आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करके उनके उद्धार का काम करना पड़ा।

संगीत के क्षेत्र में मानसिंह का कार्य इतना महान् है कि उसे 'महान् संगीत-प्रवर्तक' कहा जाना भी उसके प्रति वास्तविक कृतज्ञता-ज्ञापन नहीं है।

मेवाड़ के परम पराक्रमी नरेश महाराणा कुम्भ (सन् १४३३—१४६८ ई०) के पराक्रम की कहानियाँ तो मानसिंह तोमर के लिए बिलकुल ताजा थी, जिनका पराक्रमी पुत्र रायमल (सन् १४३३—१५०६ ई०) मानसिंह का समकालीन मेवाड़-नरेश था। मानसिंह तोमर के राज्यकाल (सन् १४८६—१५१६ ई०) में ही राणा सागा (राज्याभिषेक : सन् १५०६ ई०) मेवाड़ की गद्दी पर बैठ चुके थे और उन्होंने अपना लोहा शत्रुओं को मनवा दिया था।

मानसिंह के पूर्वज डूँगरेन्द्रसिंह (सन् १४२४—१४५५ ई०) तीस-इकतीस वर्ष ग्वालियर का शासन और शत्रुओं का प्रतिरोध सफलतापूर्वक कर चुके थे। यथावसर सन्धि-विग्रह में

-
१. अबुल फजल ने मुहम्मद गौस और उसके भाई बहलोल को साधुता और विद्वत्ता के गुणों से शून्य षड्यन्त्रकारी और लोभी बताया है। बाबर और हुमायूँ से इन्हें बड़ी जागीरें मिलीं। इन्होंने हुमायूँ के विरुद्ध गुजरात के सुलतानों से मिलकर गुप्त षड्यन्त्र किया था। शेख गदाई से जब बैरम खाँ को इस रहस्य का पता चला, तब उसने मुहम्मद गौस को गिरफ्तार करना चाहा। मुहम्मद गौस दिल्ली से भागकर ग्वालियर चले गये।

कुशल, पराक्रमी योद्धा एवं सफल शासक मानसिंह के हृदय में हिन्दू-परम्पराओं के पुनरुज्जीवन की आकांक्षा का होना ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था ।

मुस्लिम-नरेशों की सभाओं में जिन गुणियों के लिए कोई स्थान न था, वे तो मानसिंह की छत्रच्छाया में सुखपूर्वक साँस ले ही रहे थे, सुदूर दक्षिण से तीर्थयात्रा के लिए आनेवाले हिन्दू-गुणी भी उत्तर भारत में हिन्दू-गौरव के पुनः संस्थापक मानसिंह के दर्शनार्थ ग्वालियर आते और यथोचित सम्मान पाते थे ।

सिकन्दर लोदी (सन् १४८८-१५१७ ई०) और मानसिंह तोमर (सन् १४८६-१५१६ ई०) ने प्रायः उनतीस वर्ष साथ-साथ राज्य किया । सिकन्दर लोदी जैसे बर्बर दिल्ली-सुलतान से सफलतापूर्वक इतने दिनों तक निबटनेवाले मानसिंह तोमर की यशोगाथा यदि हिन्दू-गुणियों को ग्वालियर की ओर आकृष्ट करती थी, तो आश्चर्य का कोई कारण नहीं था ।

इन परिस्थितियों ने मानसिंह तोमर के मस्तिष्क में निम्नांकित विचार उत्पन्न किये :

(अ) 'लोकभाषा को राजसभा में प्राश्रय दिया जाय, उसमें गीत-रचना कराई जाय और दूसरों को इस ओर प्रेरित किया जाय ।' फलतः, मानसिंह ने स्वयं गीत-रचना की और 'बखशू' जैसे गुणियों को प्रेरणा ही नहीं, शिक्षा भी दी ।

(आ) 'मन्दिरों में होनेवाले संगीत की विच्छिन्न परम्परा को पुनरुज्जीवित किया जाय और लोकसभा में स्तुति-प्रधान गीतों की रचना कराई जाय ।' फलतः, स्तुति-प्रधान गीतों को शास्त्रीय संगीत में स्थान मिला । यही नहीं, मांगलिक अवसरों पर भी ऐसे गीतों का सार्वजनिक गान होने लगा ।

विभिन्न मांगलिक अवसरों पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि देवताओं से जिनमें मंगलकामना की जाय, ऐसे गीतों का प्रभाव मुगल-दरबार पर मुगल-साम्राज्य के अन्त तक रहा । अभिषेक, वर्षगांठ, विवाह इत्यादि के अवसरों पर मुगल-बादशाहों के (औरंगजेब के भी) समक्ष गाये जानेवाले गीतों में हिन्दू-देवी-देवताओं से की जानेवाली प्रार्थनाएँ या मंगल-कामनाएँ मानसिंह के प्रयत्नों से ही प्रभावित थी ।

(इ) 'संगीत को लोकजीवन के निकट लाया जाय और उसमें जीवन की मधुर झाँकियों का चित्रण हो ।' दाम्पत्य-जीवन के मधुर चित्रों से युक्त गीतों की रचना इसी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हुई । परिणाम यह हुआ कि भविष्य में होनेवाले ध्रुवपदकारों का मार्गदर्शन हुआ ।

(ई) "साहित्य के सामान्य नियमों से गायकों का परिचय कराने के लिए 'नायिका-भेद' जैसे विषय को लोकभाषा में गायकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय, जिससे उन्हें इस प्रकार के विषयों की सीमाओं का ज्ञान हो ।" मानसिंह के इस प्रयत्न ने भारी व्रजभाषा-कवियों को पूर्णतया प्रभावित किया ।

(उ) 'संगीत-सम्बन्धी नियमों को लोकभाषा में संक्षिप्त रूप से निबद्ध कर दिया जाय, जिससे असंस्कृतज्ञ गायक एवं रसिक लाभान्वित हो सकें ।'

(ऊ) 'अमीर खुसरो एवं हुसेनशाह शर्की की भाँति नवीन रागों की भी उद्भावना की जाय, जिससे हिन्दुओं के मस्तिष्क को केवल रूढ़िवादी अथवा अनुर्वर न समझा जाय ।'

मानसिंह तोमर की सभा में निर्मित राग प्रिय तो हुए ही, उसके शिष्य 'बखशू' द्वारा निर्मित राग गुजरात के बहादुरशाह को भी प्रिय लगे और लोक में प्रसिद्ध हुए ।

अपने इन विचारों को मूर्त रूप देने के लिए जहाँ मानसिंह ने गीतों का निर्माण किया और कराया, वहाँ 'मानकुतूहल' नामक एक ग्रन्थ को भी जन्म दिया,^१ जिसमें विषय-विभाजन इस प्रकार है :

प्रथम अध्याय : प्रयोजन : इस अध्याय का अध्ययन बताता है कि मानसिंह तोमर की सभा में मंजू, बखशू और लोहंग नामक गायक थे । नायक पाण्डवी नामक एक अन्य कलाकार भी था, जो दक्षिण से कुरुक्षेत्र-स्नान के लिए आया था । मानसिंह के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई कि संगीत के विद्यार्थियों की कठिनाता को दूर करने के लिए इन गुणियों की सहायता से एक ऐसी पुस्तक का निर्माण किया जाना चाहिए, जिसमें रागों की संख्या एवं प्रकार विस्तारपूर्वक लिपिबद्ध हों ।

द्वितीय अध्याय : राग : इस अध्याय में छह रागों तथा उनके विभेदों की चर्चा है ।

तृतीय अध्याय : ऋतुएँ, रागों से उनका सम्बन्ध, अशुभ गण : इस अध्याय में ऋतुओं के समय का निर्देश करके विशिष्ट रागों का विनियोग विशिष्ट ऋतुओं में किया गया है । दग्धाक्षरों का वर्णन है तथा अशुभ गण बताये गये हैं ।

चतुर्थ अध्याय : स्वरों की उत्पत्ति तथा गीत-भेद : इस अध्याय में विभिन्न प्राणियों से स्वरों का सम्बन्ध बताकर मानव-शरीर में उसकी उत्पत्ति के स्थान बताये गये हैं । गीतों के दो भेद 'चन्द्रप्रकाश' एवं 'सूर्यप्रकाश' कहे गये हैं, इस वर्गीकरण का आधार ताल है ।

पंचम अध्याय : वाद्ययन्त्र, नायक-नायिका, सखी : इस अध्याय में विभिन्न वाद्ययन्त्रों का वर्णन है । तत्पश्चात् नायकों और नायिकाओं के प्रकार दिये गये हैं ।

नायक : (अ) एक स्त्रीवाला, (आ) बहुपत्नीक और (इ) बहला-फुसलाकर स्त्री को वश में करनेवाला ।

नायिकाएँ : इनके तीन प्रकार 'स्वकीया', 'परकीया' और 'सामान्या' हैं । स्वकीया के तीन भेद 'अज्ञातयौवना', 'ज्ञातयौवना' और 'प्रौढा' हैं । अन्य आचार्य स्वकीया के तीन भेद 'अज्ञातयौवना', 'मध्या' और 'प्रगल्भा' बताते हैं । 'मध्या' के तीन प्रकार 'धीरा', 'अधीरा' और 'धीराधीरा' भी हैं । स्वकीया के दो प्रकार 'ज्येष्ठा' और 'कनिष्ठा' भी हैं । परकीया

१. 'मानकुतूहल' मूल रूप में अप्राप्त है । सन् १६६२ ई० में फकीरुल्लाह ने 'मानकुतूहल' का फारसी-अनुवाद किया, जिसका हिन्दी-अनुवाद 'मानसिंह और मानकुतूहल' नामक पुस्तक में दिया गया है । प्रस्तुत विवरण इसी पुस्तक के आधार पर है ।-ले०

के दो प्रकार 'प्रौढा' और 'गणिका' है। प्रौढा के छह प्रकार 'गुप्ता', 'विदग्धा', 'लक्षणा', 'कुलटा', 'अनसूया' और 'मोदिता' है। सामान्या के तीन प्रकार 'सम्भोगद्वतिका', 'वक्रोक्ति-गर्विता' और 'मानवती' है। वक्रोक्तिगर्विता के दो प्रकार 'प्रेमगर्विता' और 'तद्द्वय-गर्विता' है। 'मानवती' भी एक प्रकार की नायिका है।

स्वकीया, परकीया एवं सामान्या के आठ अन्य भेद वर्णित हैं। जैसे : प्रोषितभर्तृका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, प्रोवत्स्यत्पतिका और अभिसारिका। इसके पश्चात् दूती और उसके कर्तव्यो का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय : इस अध्याय में गायक के दोषों का वर्णन है।

सप्तम अध्याय : कण्ठ तथा स्वर : इस अध्याय में विभिन्न कण्ठ-स्वरों की विशेषताएँ वर्णित हैं।

अष्टम अध्याय : इस अध्याय में वाग्गेयकारो और गायकों के गुणों और भेदों पर विचार किया गया है।

नवम अध्याय : इसमें 'वृन्द' (गायक-वादक-समूह) की परिभाषा तथा उसके भेदों का वर्णन है। 'वृन्द' के लाभ भी बताये गये हैं।

शाहजहाँ और औरंगजेब के राज्यकाल में कश्मीर के गवर्नर फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के नाम से 'मानकुतूहल' का अनुवाद सन् १६६२ ई० में किया। यह अनुवाद-ग्रन्थ रामपुर-स्टेट की रजा लाइब्रेरी में सुरक्षित है। फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के आरम्भ में कहा है कि १०७३ हि० (सन् १६६२ ई०) में मानसिंह की लिखाई हुई एक पुस्तक 'मानकुतूहल' देखने में आई है। इसका अनुवाद औरंगजेब को समर्पित करने के लिए किया गया।^१

'मानकुतूहल' की मूल प्रति आजकल नहीं मिलती, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यह पुस्तक संस्कृत-भाषा में लिखी गई अथवा ग्वालियरी-भाषा में। परन्तु, ग्वालियरी-भाषा में स्वयं लिखे तथा अन्यो से लिखाये हुए पद्यों को शास्त्रीय संगीत का माध्यम बनाकर मानसिंह ने लोकभाषा के प्रति जो प्रेम प्रकट किया है, उसे देखते हुए यह असम्भव नहीं कि 'मानकुतूहल' की रचना ग्वालियरी-भाषा में हुई हो। यदि ऐसा है, तो 'मानकुतूहल' ब्रजभाषा या ग्वालियरी-भाषा का वह प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें संगीत के विभिन्न अंगों के साथ नायिका-भेद पर भी विचार किया गया है।

गीतरचना : 'रागदर्पण' में मानसिंह को ध्रुवपद का आविष्कारक कहा गया है।^२ इसका अर्थ यही सम्भव है कि ग्वालियरी-भाषा में लिखे हुए गीतों को शास्त्रीय संगीत के

१. औरंगजेब अपने शासनकाल के आदिम नौ वर्षों में संगीत एवं काव्य का विरोधी नहीं था। गवैयों द्वारा दरबार में गाने का निषेध इसने सन् १६६७ ई० में किया था।

२. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, भूमिका।

ढाँचे में सर्वप्रथम मानसिंह तोमर ने ढाला। इसने इस प्रयोजन के लिए सर्वप्रथम ग्वालियरी-भाषा में कविताएँ लिखी और यह एक नवीन शैली का आविष्कारक हुआ। भगवान् कृष्ण से सम्बद्ध पदों का नामकरण मानसिंह तोमर ने 'विष्णुपद' किया। अन्य धार्मिक विभूतियों की प्रशंसा से युक्त पदों को 'स्तुति' कहा तथा प्रेम की अवस्थाओं के चित्रण से युक्त रचनाओं का नाम 'ध्रुवपद' रखा।^१

मानसिंह द्वारा प्रवर्तित यह शैली आगे चलकर इतनी फली-फूली कि मुहम्मदशाह रंगीले के समय तक अन्तःपुरी और दरबारों में छाई रही। अबुल फजल ने इसको जनता के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयुक्त एवं रुचिकर कहा है।^२ इस शैली को हिन्दू-शैली कहकर दबाने की अनेक चेष्टाएँ की गईं, परन्तु कुछ विकृत रूप में यह आज भी जीवित है।

मानसिंह के राज्यारोहण-काल, सन् १४८६ ई० में स्वामी हरिदास (जन्म : संवत् १५३७ वि०, अर्थात् सन् १४८० ई०) की आयु केवल छह वर्ष और सूरदास (ज० सं० प्रायः १५४० वि०, अर्थात् सन् १५८३ ई०) की आयु प्रायः तीन वर्ष की थी। इसका अर्थ यह है कि मानसिंह की मृत्यु के समय स्वामी हरिदास छत्तीस और सूरदास प्रायः बत्तीस वर्ष के थे।

ध्रुवपद-शैली की पद्यत्वहीन, परन्तु अत्यन्त सरस रचना भक्तों में स्वामी श्रीहरिदासजी ने की है और 'विष्णुपद' (कृष्णलीला-सम्बन्धी पद) सूरदास इत्यादि अष्टछाप के कवियों ने लिखे हैं। विष्णुपदों के निर्माण के कारण भक्त-परम्परा भी मानसिंह तोमर के प्रयत्नों से प्रभावित हुई।

मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह के दरबारी कलाकार कुछ दिनों तक उसके पुत्र विक्रमाजीत के आश्रय में रहे। विक्रमाजीत के हाथ से ग्वालियर निकल जाने पर ये इतस्ततः चले गये।

अबुल फजल का कथन है कि दो कलाकार बख्शू और मझू गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के दरबार में चले गये और उन्होंने मानसिंह द्वारा आविष्कृत शैली को वहाँ के दरबार में प्रवर्तित किया।^३ यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सन् १५१८ ई० में ग्वालियर पर लोदी बादशाहों का अधिकार हो जाने के पश्चात् ये कलाकार बहादुरशाह के दरबार में गुजरात पहुँचे। बहादुरशाह का राज्यकाल सन् १५२६ ई० से आरम्भ होता है। सन् १५१८ से १५२६ ई० तक आठ वर्ष इनका समय किसके आश्रय में व्यतीत हुआ, यह एक विचारणीय विषय है। अबुल फजल ने इस सम्बन्ध में मौन अवलम्बन किया है।

१. 'बादशाहनामः', २-६; खुलासतुल्-ऐश आलमशाही, १४५ ब; मिराति आफताब-सुमः ३८८ अ; उर्दू-'आजकल', अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३।

२. आईने अकबरी : ग्लेडविन, पृ० १३०।

३. उपरिचत्।

मौलाना अशी ने बख्शू के विषय में लिखा है कि ग्वालियर-पतन के पश्चात् बख्शू कालिजर-नरेश कीरत के यहाँ चला गया। सुलतान बहादुरशाह ने बख्शू के संगीत-नैपुण्य की प्रशंसा सुनकर कालिजर-नरेश से इसे माँग लिया और अपने यहाँ इसकी नियुक्ति करके वह बहुत प्रसन्न हुआ।^१

अस्तु; हम देखते हैं कि राजनीतिक उथल-पुथल के अवसरों पर बख्शू के रूप में मानसिंह की कला भारतीय रूप की विजय-वैजयन्ती लेकर गुजरात के दरबार में ससम्मान प्रविष्ट हुई और सराही गई।

‘बादशाहनामः’ के अनुसार तो मानसिंह के दरबारी गायक बैजू भी बहादुरशाह के दरबार में थे।^२

बख्शू कीवंश-परम्परा ने गुजरात के दरबार को नहीं छोड़ा और बख्शू का पुत्र ‘हुसैनी’ गुजरात के मन्त्री दरिया खाँ के आश्रय में रहा, जिसका मन्त्रित्वकाल सन् १५३८ से १५५४ ई० तक रहा।^३

मानसिंह की परम्परा ने ‘गोपाल’ (द्वितीय) जैसे गायक को उत्पन्न किया, जो मानसिंह के दरबारी गायक बैजू का शिष्य था। बहादुरशाह गुजराती के राज्यकाल में गोपाल अत्यन्त सम्मान के साथ रहा।^४

पानीपत में इब्राहीम लोदी को बाबर ने सन् १५२६ ई० की जनवरी में हराया था। इस युद्ध के पश्चात् ही बाबर ने शाहजादा हुमायूँ को आगरा पर अधिकार करने भेज दिया और स्वयं भी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया। ग्वालियर के राजा ने हुमायूँ को एक प्रसिद्ध हीरा भेंट किया था, जिसे हुमायूँ ने बाबर की सेवा में उपस्थित किया।^५ बाबर ने ग्वालियर के अधिकारी को बड़ी आय का परगना देकर दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया।^६

सन् १५४२ ई० में ग्वालियर पर शेरशाह का अधिकार हुआ और सन् १५४७ ई० में शेरशाह के उत्तराधिकारी ‘इस्लामशाह’ या ‘सलेमशाह’ ने आगरा के स्थान पर ‘ग्वालियर’ को अपनी राजधानी बनाया। इसकी मृत्यु सन् १५५३ ई० में हुई।^७

ग्वालियर में मानसिंह की संगीत-परम्परा जीवित थी। तानसेन इस्लामशाह के प्रेमपात्र दौलत खाँ के सम्पर्क में थे।^८ ऐसे ध्रुवपद भी प्राप्त हैं, जिनमें इस्लामशाह नायक के रूप में वर्णित हैं और ये ध्रुवपद नायिका-भेद-सम्बन्धी हैं।

१. उर्दू-‘आजकल’, अगस्त १९५६ ई०, पृ० १०४।

२. बादशाहनामः, रामपुर-प्रति, पृ० ३-६।

३. मिराति सिकन्दरी, पृ० २६८; उर्दू-‘आजकल’, म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०३।

४. उपरिचत्, पृ० १०५।

५. भा० इ०, भा० ३, पृ० १८।

६. उपरिचत्।

७. ब्रज का इतिहास, पृ० १५०।

८. उर्दू-‘आजकल’, म्यूजिक-नं०, पृ० ६३।

तानसेन की शिक्षा मानसिंह के गायकों की देखरेख में हुई थी। ऐसे ध्रुवपद भी प्राप्त हैं, जिनमें तानसेन 'छत्रपति' मानसिंह की प्रशंसा कर रहे हैं। यह 'छत्रपति' विशेषण मानसिंह तोमर को ही ऐसे ध्रुवपदों का नायक बताता है।^१

इस्लामशाह के पश्चात् उसका साला मोहम्मद आदिलशाह 'अदली' राजा बना। इसने इस्लामशाह के द्वादशवर्षीय पुत्र, अर्थात् अपने भाँजे की हत्या करके सन् १५५४ ई० में तख्त पर अधिकार किया। यह अदली संगीत का महान् मर्मज्ञ एवं संगीतज्ञों का आश्रयदाता था। तानसेन इसके दरबार में थे।^२

इसी समय सन् १५५४ ई० में शेरशाह के एक वंशज एवं अदली के बहनोई इब्राहीम सूर ने आगरा आदि पर अधिकार कर लिया।^३ इस इब्राहीम सूर ने भी तानसेन को निमन्त्रित किया था।^४ इस प्रकार, यह प्रत्यक्ष है कि सन् १५५४ ई० में सुलतान महमूद द्वितीय के मन्त्री दरिया खाँ के आश्रय में रहकर गुजरात में 'बख्शू' का पुत्र 'हुसेनी' ध्रुवपद गा रहा था। वहाँ ग्वालियर-परम्परा के गायक तानसेन रीवाँ-नरेश रामचन्द्र के आश्रय में रहकर उसे मानसिंह-शैली के गान से रिझा रहे थे। वह कालिंजर इन्हीं राजा रामचन्द्र के अधिकार में था, जहाँ के राजा कीरत का आश्रय कभी बख्शू और मझू जैसे नायकों ने ग्वालियर छोड़ने के पश्चात् लिया था।

यहाँ एक यह तथ्य भी स्मरणीय है कि हुमायूँ ने जब माँडौ जीता था, तब 'बैजू' के गाने का उसपर इतना असर हुआ था कि उसने कत्ले-आम बन्द करके बैजू को खिलअत दी थी। अवसर पाते ही बैजू भागकर बहादुरशाह के पास पहुँच गया। उसे देखकर बहादुरशाह ने कहा कि मैंने अपनी खोई हुई सम्पत्ति पा ली। हुमायूँ को जब बैजू के भागने का पता चला, तब उसने कहा कि भाग्यहीन था, जो भाग गया। यदि हमारी सेवा में रह जाता, तो इतना पाता कि बहादुरशाह को भूल जाता।^५

१. 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि', पृ० ११० पर डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने प्रस्तुत पद को अकबरी दरबार में मानसिंह (सलीम के साले) से सम्बद्ध बताया है, यह संगत नहीं है। 'छत्रपति' शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र राजा के लिए होता था, इसीलिए शिवाजी ने 'छत्रपति' उपाधि धारण की थी। अकबर के आनुवंशिक गुलाम मानसिंह 'छत्रपति' नहीं थे। तानसेन की मृत्यु सन् १५८६ ई० के २६ अप्रैल को आगरा में हुई। मानसिंह इस समय तक केवल 'कुँवर' थे, राजा तक नहीं थे। नवम्बर, १५८६ ई० में अपने पिता भगवानदास के मरने पर मानसिंह 'राजा' हुए थे।

२. अकबर, पृ० ३७-३८।

३. अकबर, पृ० ३८।

४. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, खं० १, पृ० ६८१।

५. मिराति सिकन्दरी, पृ० २०६; खुलासतुल् ऐश आलमशाही, पृ० १४६ अ; मिराति आफताबनुमः, ३८६ ब; उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०५।

ग्वालियर के गायक बाबा रामदास इस्लामशाह के दरबार में थे। ये बैरम खाँ के सम्पर्क में आये, जो हुमायूँ का विश्वासपात्र सेनापति और अकबर का अतालीक था। रामदास के गाने से प्रभावित होकर बैरम खाँ प्रायः विगलितहृदय हो जाता था। रामदास उसके घनिष्ठतम साथियों में थे।^१ इन्हीं रामदास की गणना भविष्य में अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों में हुई और इनके पुत्र सूरदास भी गायकों की श्रेणी में आये। रामदास ६६७ हि० (सन् १५५६-६० ई०) में बैरम खाँ के सम्पर्क में आये थे, जबकि अकबर का अधिकार ग्वालियर पर हो चुका था। 'आईने अकबरी' में रामदास और उनके पुत्र सूरदास अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों के रूप में उल्लिखित हैं। (यह सूरदास महाकवि सूरदास से सर्वथा भिन्न है।)

सन् १५६२ ई० में तानसेन की कीर्ति अकबर तक पहुँची, जो राजा रामचन्द्र के दरबार से 'सेवानिवृत्त' होने का विचार कर रहे थे।^२ अकबर ने उन्हें बुलवा भेजा। वे अकबरी दरबार में आना नहीं चाहते थे, परन्तु जलाल खाँ कूची को जब उन्हें लेने भेजा गया, तब बलात् उन्हें आना पड़ा।^३ इस प्रकार, ग्वालियर-नरेश मानसिंह का जीता-जागता कीर्तिस्तम्भ तानसेन के रूप में अकबरी दरबार में प्रतिष्ठित हो गया।

ग्वालियर की गान-कला के साथ ही अकबरी दरबार में व्रजभाषा को प्रतिष्ठित कराने का पूर्ण श्रेय उस मानसिंह तोमर को है, जिसने लोकभाषा के स्तर से उठाकर ग्वालियरी-भाषा (व्रजभाषा) को राजसभा में सर्वप्रथम उच्च सिंहासन दिया था।

व्रजमण्डल के अन्तर्गत स्थित आगरा में जो सांस्कृतिक केन्द्र बना, उसने भविष्य में प्रायः समस्त देश को प्रभावित किया।

जिस वर्ष तानसेन अकबरी दरबार में आये, उसी वर्ष, अर्थात् सन् १५६२ ई० में अकबर ने राजा बिहारीमल की लड़की के साथ साँभर में विवाह किया।^४ यही लड़की जहाँगीर की माता थी, जो भविष्य में 'मरियम ज़मानी' कहलाई। मानसिंह इसी वर्ष दिल्ली-दरबार में आये। इस समय इनकी आयु बीस वर्ष के लगभग थी। नवम्बर, १५८६ ई० में ये कुँवर मानसिंह अपने पिता भगवानदास के मरने पर 'राजा मानसिंह' बने।

आगरा के दीर्घकालीन निवास और तानसेन एवं रामदास जैसे गायकों के दिव्य संगीत ने इन मानसिंह को भी व्रजभाषा-कवियों एवं ध्रुवपद-गायकों का आश्रयदाता बना दिया। भविष्य में जयपुर-दरबार गायकों एवं कवियों का प्रमुख आश्रयस्थल बना।

सन् १५७० ई० में बीकानेर और जैसलमेर की राजकुमारियों से अकबर ने विवाह किया। इन विवाहों के परिणामस्वरूप आगरा से राजस्थान के सम्बन्ध बढ़े।

१. मुन्त०, खं० २, पृ० ६०।

२. अकबरनामः, खं० २, पृ० २७६।

३. मुन्त०, खं० २, पृ० ३४५।

४. अकबर, पृ० १४६।

अकबर ने भारतीय संगीत और उनमें प्रयोज्य गीतों को सीखने-समझने में भली भाँति समय दिया। ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय गीत प्रायः मानसिंह-प्रवर्तित शैली के ध्रुवपद ही थे।

अकबर के अनेक दरबारी व्रजभाषा में काव्य-रचना करने लगे और अकबरी दरबार के सामन्त भी इस क्षेत्र में पीछे न रहे।

सन् १५५४ ई० में मधुकरशाह ने ओरछा-राज्य की नींव डाली थी और इन्होंने सन् १५६२ ई० तक शासन किया। अकबर से सदा मोर्चा लेते रहे। ये व्रजभाषा-कवियों के आश्रयदाता थे। मधुरशाह के छोटे पुत्र वीरसिंहदेव भी सदा अकबर के दाँत खट्टे करते रहे। महाकवि केशवदास ने इन्हीं वीरसिंहदेव की प्रशंसा में 'वीरसिंहदेव-चरित' की रचना की है।

वीरसिंहदेव के बड़े भाई इन्द्रजीतसिंह स्वयं संगीतज्ञ एवं कवि थे, प्रवीणराय इन्हीं की पतिव्रता प्रेयसी थी और केशवदास इन्हीं के आश्रित थे। इन्द्रजीत 'धीरज' उपनाम से रचना करते थे और उनके द्वारा विरचित अनेक ध्रुवपद प्राप्त हैं। ध्रुवपद इस वंश के आश्रय में उसी भाँति पहुँचे, जिस भाँति अकबरी दरबार में।

इसी युग, अर्थात् अकबर के शासनकाल में ही ध्रुवपद दक्षिण में बीजापुर तक जा पहुँचा था। बख्तर खाँ कलावन्त इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय का गुरु था। अबुल फजल के अनुसार, 'ध्रुवपदों' की भाषा आगरा, ग्वालियर, बैरी तथा अन्य निकटस्थ प्रदेशों में बोली जानेवाली होती थी^१ और प्रधानतया ध्रुवपद को गानेवाला वर्ग 'कलावन्त' कहलाता था।^२

यह हम देख चुके हैं कि 'मानकुतूहल' की रचना में एक तैलंग 'नायक पाण्डवी' का भी हाथ था, जो कुरुक्षेत्र में स्नानार्थ आया था और सम्भवतः मानसिंह की कीर्ति को सुनकर ग्वालियर पहुँच गया था। मानसिंह के चौबीसवें वर्ष में विजयनगर का प्रतापी शासक कृष्णदेवराय सिंहासन पर बैठा था,^३ जो अपने शौर्य, विद्याव्यसन और गुणग्राहिता के कारण बाबर के गिनाए हुए पाँच भारतीय नरेशों में एक था^४ और दक्षिण में वे सभी कार्य करने लगा था, जो उत्तर में मानसिंह तोमर कर रहा था। मानसिंह तोमर के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कार्यों से कृष्णदेवराय को प्रेरणा न मिली हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

कृष्णदेवराय के संरक्षण में लक्ष्मीनारायण के द्वारा लिखा हुआ ग्रन्थ 'संगीतसूर्योदय' इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि कृष्णदेवराय के समय 'गजल' और 'कौल' दक्षिण के

१. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० १३०।

२. उपरिचत्, पृ० ७३४।

३. भारत का इतिहास, भाग २, पृ० १४४।

४. उपरिचत्, भाग ३, पृ० १०।

संगीत-ग्रन्थों में स्थान पाने लगे थे।^१ लक्ष्मीनारायण के पिता बिट्ठल ने माँडौ के सुलतान गयासुद्दीन के सम्पर्क में आकर तीन सहस्र तोले स्वर्ण पुरस्कार में पाया था।^२ सम्भव है, बिट्ठल मानसिंह तोमर के भी सम्पर्क में आया हो।

कृष्णदेवराय के पश्चात् जब विजयनगर का साम्राज्य विशृंखल हुआ, तब बीजापुर गुणियो का आश्रयस्थल बना। इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने गुणियों से कलावन्तों की कीर्ति सुनकर बख्तर खाँ को गुरु बनाया हो, तो आश्चर्य नहीं है। 'ध्रुवपद' के माध्यम से अकबरी युग में भी मानसिंह तोमर की गानशैली का प्रभाव बख्तर खाँ के द्वारा बीजापुर में पहुँचा। फलतः, इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने अपने यहाँ की भाषा दक्खिनी हिन्दी में ध्रुवपदों का प्रणयन किया।

रीति-ग्रन्थ : मानसिंह तोमर के कलाकार बैजू और बख्शू तथा उनके अनुयायी तानसेन के द्वारा रचित ध्रुवपदों में प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण था और ये ध्रुवपद जनता के प्रत्येक वर्ग का मन मोहनेवाले थे। दूसरे शब्दों में यही वे कृतियाँ थी, जो ब्रजभाषा के दरबारी काव्य का आदिम नमूना थी। मानसिंह के राज्यकाल के प्रायः पच्चीस वर्ष बाद कृपाराम ने संवत् १५६८ (सन् १५४१ ई०) में 'हिततरंगिणी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका विषय रसरीति है।^३

'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' लिखनेवाले करनैस तो अकबर के सम्पर्क में आते रहते थे और नरहरि के साथी थे।^४

महाकवि केशवदास का तो जन्म ही मानसिंह के स्वर्गवास (सन् १५१६ ई०) से उनतालीस वर्ष पश्चात् संवत् १६१२ (सन् १५५५ ई०) में हुआ था। उनके ग्रन्थ 'रसिकप्रिया' की रचना मानसिंह की मृत्यु से पचहत्तर वर्ष और 'कविप्रिया' की रचना पचासी वर्ष पश्चात् हुई।^५ केशव उस राजा इन्द्रजीत के दरबार में थे, जहाँ ध्रुवपद का साम्राज्य था। दरबारी ब्रजभाषा-कवियों एवं ध्रुवपदकारों को अलंकारशास्त्र का बोध हिन्दी-माध्यम से कराने के लिए ही केशव का यह प्रयत्न था।

मानसिंह की मृत्यु से १३४ वर्ष पश्चात् सन् १६५० ई० में चिन्तामणि त्रिपाठी ने अपना 'कविकल्पतरु' लिखा।^६ चिन्तामणि को हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल एवं अखण्ड परम्परा का प्रवर्तक कहा जाता है।

इस दृष्टि से 'मानकुतूहल' का नायिकाभेद-सम्बन्धी अध्याय एक विशिष्ट महत्त्व रखता है।

१. भरतकोष, भूमिका, पृ० २१।

२. उपरिवत्।

३. हि० सा० इ०, पृ० २८१।

४. हि० सा० इ०, पृ० २८१; अकबरी दर० हि० क०, पृ० ३२।

५. हि० बी० का०, पृ० २१।

६. हि० सा० र०, पृ० २६२।

कलाकार : मुगल-सम्राटों के दरबार में ध्रुवपद का बोलबाला रहा । अकबरी दरबार में तानसेन, बाबा रामदास, सुबहान खाँ, श्रीज्ञान खाँ, मियाँ चाँद, विचित्र खाँ, वीरमण्डल खाँ, शिहाब खाँ, मियाँ लाल, सरोद खाँ, तानतरंग खाँ, नायक चरजू, सूरदास तथा चाँद खाँ ये चौदह कलाकार ग्वालियर के थे ।^१ अकबर ने 'रागसागर' नामक ग्रन्थ की रचना कराई । जहाँगीरी दरबार में तानसेन के पुत्र विलास खाँ तानसेन के स्थान पर थे ।^२ छतर खाँ भी जहाँगीर के दरबार में ध्रुवपद-गायक थे । इब्राहीम आदिलशाह का संगीत-गुरु बख्तर खाँ कलावन्त जहाँगीर के सम्पर्क में भली भाँति आया था ।^३

शाहजहाँनी दरबार में तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दामाद लाल खाँ कलावन्त अपने चार पुत्रों-सहित था ।^४ इनमें खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ प्रमुख थे ।^५ इनके अतिरिक्त, रंग खाँ और किशन खाँ कलावन्त भी शाहजहाँ के प्रिय कलाकार थे ।^६ किशन खाँ को शुजा ने शाहजहाँ से माँग लिया था ।^७ शाहजहाँ ने नायक बख्शू के एक हजार ध्रुवपदों का संग्रह कराया था ।

✎ औरंगजेब अपने शासनकाल के आरम्भिक नौ वर्षों में संगीत का द्रोही नहीं था । खुशहाल खाँ कलावन्त और सुखीसेन कलावन्त इसके प्रिय ध्रुवपद-गायक थे ।^८

✎ औरंगजेब के पुत्र 'आजम' की गुणग्राहिता प्रसिद्ध है । इसके नाम से अंकित ध्रुवपद प्राप्त है ।^९ 'बिहारी-सतसई' का आजमशाही क्रम इसी ने कराया । महाकवि देव ने इसे अपना 'अष्टयाम' सुनाकर प्रसन्न किया था ।^{१०}

✎ औरंगजेब के दूसरे पुत्र मुअज्जम ने 'बहादुरशाह' के नाम से शासन किया । इसके नाम से अंकित ध्रुवपद भी प्राप्त हैं ।^{११} महाकवि देव इससे भी सम्पृक्त रहे ।^{१२}

✎ औरंगजेब का तृतीय पुत्र मुईजुद्दीन 'जहाँदारशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा । इसको संगीत से बड़ा प्रेम था । इसके नाम से अंकित ध्रुवपद भी प्राप्त होते हैं ।^{१३}

१. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ६८१-८२ ।

२. भा० सं० ३०, पृ० २६७ ।

३. जहाँगीरनामः, पृ० २३६ ।

४. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नं०, पृ० १०७ ।

५. उपरिवत् ।

६. मअदन्०, पृ० २८ ।

७. उपरिवत् ।

८. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब ।

९. परिशिष्ट अ, १७०-१७७ ।

१०. देव और उनकी० (उत्तरार्द्ध), पृ० १६ ।

११. परिशिष्ट अ, १७८-१८३ ।

१२. उर्दू-'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८ ।

१३. परिशिष्ट अ, १८४-२०० ।

मुहम्मदशाह 'रंगीले' का तो नाम ही संगीत-प्रेम का प्रतीक है। इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते हैं।^१ प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग इसी दरबार में थे।^२

आलमगीर सानी मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् सिंहासनारूढ हुआ। इसकी प्रशंसा में भी अदारंग के ध्रुवपद प्राप्त हैं।^३

आलमगीर का उत्तराधिकारी सम्राट् शाह आलम स्वयं ब्रजभाषा का भी कवि एवं ध्रुवपदकार था। इसकी रचनाओं का संग्रह 'नादिरांतिशाही' है, जो रामपुर से प्रकाशित हो चुका है। इसीने 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' नामक एक ग्रन्थ की रचना कराई, जो प्रधानतया कामशास्त्र पर है, परन्तु जिसमें पुराने कलाकारों की भी चर्चा है।

मुगल-दरबार के कवि :

बाबर : बाबर का सम्पर्क किसी अज्ञात कवि से हुआ था।^४

हुमायूँ : नरहरि महापात्र हुमायूँ के सम्पर्क में आये थे।^५

अकबर : अकबर के सम्पर्क में दुरसाजी, होलराय, कुम्भनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान, चतुर्भुजदास, राजा आसकरण, पृथ्वीराज, सूरदास, मदनमोहन, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, राजा वीरबल, गंग और रहीम जैसे कवि आये थे।

जहाँगीर : गंग, रहीम और मनोहर का सम्पर्क सम्राट् जहाँगीर के साथ हुआ था। महाकवि केशवदास ने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जहाँगीर के यश का वर्णन किया था।

शाहजहाँ : सरस्वती कवीन्द्र, चिन्तामणि, सुन्दरदास, शिरोमणि और वेदांगराय शाहजहाँ से सम्पृक्त रहे थे।

औरंगजेब : कालिदास त्रिवेदी, किशनकवि, अब्दुलजलील बिलग्रामी, ईश्वर, इन्द्रजीत, कासीराम, सामन्त और वृन्द कवि औरंगजेब से सम्पृक्त रहे थे।

आजम : महाकवि देव और नेवाज आजमशाह से सम्पृक्त थे।

बहादुरशाह : अब्दुर्रहमान, मदनकिशोर, आलम, वृन्द और देव बहादुरशाह के सम्पर्क में आये थे।

मुहम्मदशाह : आजम, घनानन्द, गुमान मिसर, जुगलकिशोर और सूरतिमिश्र मुहम्मदशाह के सम्पर्क में आये थे।

यह स्थिति स्पष्टतया बताती है कि ध्रुवपदों के साथ ही ब्रजभाषा-काव्य का प्रवेश मुगल-राजदरबार में हुआ। ध्रुवपदों तथा ब्रजभाषा-मुक्तको के विषय एक ही थे।

१. परिशिष्ट अ, २०१-२११।

२. उर्दू-'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८।

३. परिशिष्ट अ, २१२-२१३।

४. अकबरी द० हि० क०, पृ० २६।

५. उपरिबत्त।

वृजभाषा के ध्रुवपदकार

गोपाल (प्रथम) नायक :

गोपाल नायक के नाम से उत्तर एवं दक्षिण भारत के संगीत-प्रेमी भली भाँति परिचित हैं। बारहवीं शती ई० के बाद के संगीतज्ञों में इनका नाम अत्यन्त आदरपूर्वक लिया जाता है। अनुश्रुतियों के अनुसार, ये दक्षिण के रहनेवाले थे, परन्तु इसका साधक कोई अखण्डनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। गोपाल नायक के नाम के साथ अनेक किवदन्तियाँ जुड़ गई हैं। महापुरुषों के साथ यह व्यवहार सदा से होता आया है।

गोपाल के साथ 'नायक' शब्द सदा जोड़ा जाता है। हमारी दृष्टि में यह शब्द इनकी विशिष्ट स्थिति का द्योतक है। 'नायक' शब्द का प्रयोग ताल्लुकेदार या छोटे राजा के अर्थ में होता है। उत्तर एवं दक्षिण में राजा लोग संगीत के माने हुए विद्वान् तथा संगीत-शास्त्रकार होते रहे हैं, अतएव यह असम्भव नहीं है कि गोपाल कोई छोटे-मोटे नरेश भी हों। ताली-कोटा-युद्ध में विजयनगर-साम्राज्य के बिखर जाने पर उसकी विभिन्न इकाइयों के प्रतिनिधि स्वतन्त्र राजा बन बैठे थे और उनको नायक राजा कहा जाता था।^१ 'रागदर्पणकार' ने कहा है कि गोपाल नायक के साथ उनके सोलह सौ शिष्य रहते थे, जो उनकी पालकी उठाते थे।^२ यह स्थिति किसी साधारण संगीतजीवी की स्थिति से नितान्त भिन्न है। उत्तर भारत के संगीत-क्षेत्र में 'नायक' शब्द का एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग पश्चात्कालीन है।^३

१. संगीतशास्त्र, पृ० १४६।

२. हजरत अमीर खुसरो, पृ० ३।

३. 'नायक' वे लोग थे, जो इल्म को अमल (व्यवहार) में लाते थे।—रागदर्पण, रामपुर-प्रति, बाब ६ : जो कि लिखा है किताब में (उसपर) अमल करके 'नायक' हो। मअदन् उल् मूसिकी, पृ० २५ : वाजिद अलीशाह के अनुसार, 'नायक' की विशेषताएँ यह हैं : १. कम-से-कम तीन स्वरों पर जिसका अधिकार हो, २. जो प्रत्येक प्रकार के वाद्य, राग, नृत्य और भाव पर अधिकार रखता हो, ३. जो प्रत्येक प्रकार की रचना कर सकता हो, ४. जिसके गाने से सुननेवालों पर प्रभाव हो, ५. रुपये या अन्य वस्तु का लोभी न हो, ६. योगविद्या में कुशल हो, ७. एकान्तसेवी या वनचारी हो, ८. पूर्वोक्त गुणों तथा नवीन उद्भावनाओं में अपने युग का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हो, ९. शेर, गजल, दादरा, छन्द, प्रबन्ध, गीत, संगीत और उसके प्रकारों को प्रत्येक स्थान, स्थिति और विभाग में गाने से न घबराये, १०. लड़ाई-झगड़ों से पूर्णरूपेण बचता हो, जो मूर्खों के कार्य हैं, ११. विनम्रता और शील के कारण अपने-

विजयनगर के यादव-वंशीय नरेश इस्मडिदेव (रा० का० सन् १४४६ से १४६५ ई०) के आश्रित कल्लिनाथ ने 'संगीतरत्नाकर' की टीका में अत्यन्त आदरपूर्वक गोपाल नायक के मत का उल्लेख 'प्रबन्धकार' के रूप में किया है।^१ इसका अर्थ यह है कि पन्द्रहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में गोपाल नायक का नाम देशविश्रुत हो चुका था और कल्लिनाथ जैसे संगीत के चूडान्त मर्मज्ञ की दृष्टि में वे प्रमाणभूत थे। सत्रहवीं शती ई० के दाक्षिणात्य संगीत-ग्रन्थकर वेंकटमखी ने भी गोपाल नायक का स्मरण श्रद्धापूर्वक 'चतुर्दण्डी'-प्रकरण में किया है।^२ यह स्थिति सिद्ध करती है कि गोपाल नायक आसेतुहिमाचल श्रद्धा के पात्र रहे हैं।

गोपाल नायक ने संगीत का कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा था, जो कल्लिनाथ और वेंकटमखी के समक्ष था। परन्तु, अब वह ग्रन्थ तो दूर, उसका नाम तक प्राप्त नहीं होता।

'रागदर्पण' में फकीरुल्लाह ने कहा है कि गोपाल नायक अलाउद्दीन खिलजी के काल में अखिलभारतीय ख्याति के संगीतज्ञ थे। गोपाल नायक के सोलह सौ शिष्य थे, जो अपने कन्धों पर उनकी पालकी उठाते थे। सम्राट् अलाउद्दीन की सभा में निमन्त्रित किये जाने पर गोपाल नायक ने छह विभिन्न गोष्ठियों में अपने विभिन्न रागों को प्रस्तुत किया। इन गोष्ठियों के समय खुसरो तख्त के नीचे छिपे रहते थे। सातवें दिन खुसरो गोपाल के सम्मुख प्रकट हुए और उन्होंने गोपाल से अपने सामर्थ्य (योग्यता) का प्रदर्शन करने के लिए कहा और दावा किया कि गोपाल के समस्त रागों का आविष्कार मैं पहले ही कर चुका हूँ और खुसरो का किया हुआ अनुकरण हिन्दु-कलाकार (गोपाल नायक) को चकित कर देने के लिए पूर्णतया समर्थ था।^३

आपको चक्की पीसनेवाली औरतों से भी घटिया समझता हो, १२. जब चाहे, संकल्पपूर्वक सुननेवालों को रुला दे अथवा बनचारी बना दे।—सौतुल्मुबारक, रामपुर-प्रति, पृ० ४२।

१. (क) तथाहि गोपालनायकेन, गीतद्वान्निशद्रागतालयुक्तगद्यात्मके भ्रमराख्ये स्वस्तिक-भेदे रागकदम्बे प्रथमसिहन्न्दनतालबद्धे मालवभ्रीपदे पदतालान्वेवोद्ग्राहध्रुवयो-नियोजिताविति द्व्यङ्गत्वम्।—सं० २०, प्रबन्धाध्याय, पृ० २८३।

(ख) तथाहि कुडुवकतालस्तु गोपालनायकेन रागकदम्बरेव गुप्तिवदप्रयुक्तः।

—सं० २१, ताला०, पृ० १४०।

२. गीतप्रबन्धयोरेवं भेदो यदि न कल्प्यते।

कुतः सिद्धयेच्चतुर्दण्डी कुतो गोपालनायकः॥—भरतकोष, पृ० १६६ पर उद्धृत।

३. "Naik Gopal was a musician of all India fame in the time of Ala-uddin Khilji. He had sixteen hundred disciples who used to carry about his litter on their shoulders. Invited to the court of the Khilji Emperor, Gopal gave demonstration of his ragas at six different sittings, during which Khusarau was hiding under the throne,

अलाउद्दीन की मृत्यु सन् १३१६ ई० में हुई। 'रागदर्पण' की रचना इससे ३४६ वर्ष पश्चात् औरंगजेब के काल में हुई है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें तथ्य कितना है। हाँ, यह अवश्य है कि औरंगजेब के काल में खुसरो-गोपाल-मिलन की यह किवदन्ती प्रचलित अवश्य रही होगी। इन शब्दों से इतना ही प्रकट होता है कि खुसरो ने गोपाल नायक के साथ चालाकी बरती।

वाजिदअली शाह-कालीन मुहम्मद करम इमाम नमक-मिर्च लगाकर इस बात को इस प्रकार कहता है : "ज़िक्र है कि बजमान. अलाउद्दीन ग़ोरी एक नायक, गोपालदास नामी, मुकाम देहली में दौर. हिन्दुस्तान करता हुआ और तम्बूर बगैरा: हर नग़म: साज़ (गायक) का लेता हुआ वारिद हुआ (आ पहुँचा) और पास अमीर खुसरो आया और ऐसा गाया कि हज़रत (खुसरो) को खूब रुलाया। हत्ता (यहाँतक) कि तीन रूमाल उस आरिफ़े विल्लाह (ब्रह्मज्ञानी खुसरो) के यादे खुदा में रोते-रोते तर हो गये। आखिरकार नायक मजकूर (उपर्युक्त नायक) यह हर्फ़ ज़ुबान पर लाया कि या हज़रत, आजतक कोई मुझ-सा न हुआ है और न होगा। आपने (खुसरो ने) फरमाया कि हाल इस्तक़्बाल (भविष्य की बात) का आलियोदाना (ज्ञाता) सरोद साज़े ज़माँ (ईश्वर) है, इल्ला नायक मुतनव्व: (सावधान) न हुआ, कहा कि आप ऐसा कुछ कीजिए कि मैं उससे माज़ूर होऊँ (वैसा न कर सकूँ), वरत. अपना तम्बूर: भी इनायत कीजिए। आपने फ़रमाया, मुहलत दो साल की दीजिए, बाद इनक़जाए मियाद (अवधि समाप्त होने पर) फिर आके जो चाहे सो लीजिए।... जबकि वह नायक .. फिर आया, तो वही कलम: (वाक्य) ज़ुबान पर लाया।... हंगाम मुकाबल. (प्रतियोगिता में) उहद बरा (सफल) न हुआ और शागिर्द शागिर्दान ममदूह (खुसरो के शिष्यों का शिष्य) होकर दाखिले इस्लाम हुआ।"१

मुहम्मद करम इमाम ने एक स्थान पर गोपाल नायक के लिए 'नाबकार' (पामर, अधम, नीच) शब्द का उपयोग किया है,^२ जिससे गोपाल नायक के प्रति उसकी आन्तरिक घृणा अभिव्यक्त होती है। प्रत्येक हिन्दू-कलाकार को मुसलमानों से पराजित कराने या उसे मुसलमान बनवाने में मुहम्मद करम इमाम को आनन्द आता था।

At the seventh sitting Khusarau confronted Gopal and invited him to show his powers. He claimed that all Gopal's ragas have been previously invented by him, and his imitation was so perfect as to bewilder the Hindu master..."

—हज़रत अमीर खुसरो, पृ० ३।

१. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३२।

२. "मुसम्मी गोपालदास नायक वास्ते मुकाबले के आया और हज़रत अमीर खुसरो ने इल्मे मूसिकी खुद बनाया। आखिरकार वह नाबकार नदामत उठा अपनी हरकात और सकनात से बाज आ मुर्ती उल् इस्लाम... होकर शागिर्दाने शागिर्द हज़रत मजकूर का हुआ।" —मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० १६३।

अस्तु; मुहम्मद करम इमाम के पूर्वोक्त वक्तव्य में गोपाल नायक को झगडालू, अभिमानी और पराजय का मुँह देखनेवाला चित्रित किया गया है। अलाउद्दीन के युग में हिन्दुओं की जो स्थिति थी, और वे जितने पददलित किये गये थे, यह इतिहास के विद्यार्थी से छिपा नहीं है। उस युग में दिल्ली जाकर अमीर खुसरो को ललकारना और जीवित लौटकर पुनः दो वर्ष पश्चात् दिल्ली जाकर वही हरकत सर्वथा असम्भव है और मुहम्मद करम इमाम की अपनी कल्पना है, साथ ही गोपाल नायक को अमीर खुसरो का नहीं, अपितु उनके शिष्यों का शिष्य कराना और बाद में मुसलमान बना डालना भी मुहम्मद करम इमाम का निजी कमाल है। रागदर्पणकार के शब्दों में इन वाहियात बातों का कोई उल्लेख नहीं है और इनमें असंगति का अंश पर्याप्त मात्रा में है।

अलाउद्दीन की प्रशंसा में गोपाल नायक का निम्नांकित पद मिलता है :

धकदलन रे प्रबल्ल नाद सिंघ नाद बल अपबल वक्कवर ।

कुडांन धीर अडांन मिलवत चपल चाप अचपल अक्कअर ।

गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर ।

साहिनिसाहि अल्लावदीं तपै डिलीनरेस जाके वसुधा सुचित तुअ तक्कधर ।^१

अर्थात्, “अपने प्रबल गर्जन से सहसा दलन करनेवाला, सिंह के समान नाद और बल से युक्त अपने बल के कारण बाँकुरों में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली (शत्रुओं) को वह उनकी छावनियों से मिला देता है (भगा देता है), उसका धनुष चपल (गतिशील) रहता है और (वह) महान् (स्वयं) अचपल (स्थिर, निश्चल) रहता है। विद्या में श्रेष्ठ नायक गोपाल (उसकी प्रशंसा में) गीत गाता है। दिल्ली-नरेश शाहंशाह अलाउद्दीन प्रतापयुक्त हो रहा है, पृथ्वी जिसके (अधिकार में है)। इस तथ्य को तू भली भाँति देखकर हृदय में धारण कर ले।”

इस गीत में ‘तपै’, ‘मिलवत’, ‘गावत’, ‘जाके’ जैसे शब्द व्रजभाषा के हैं। ‘प्रबल्ल’ (प्रबल), ‘वक्कवर’ (वक्रवर), ‘अक्कअर’ (अकबर महान् का पर्याय), ‘तक्क’ (ताककर) आदि शब्द चारणों के प्रताप-वर्णन की शैली के हैं। ‘साहिनिसाहि’ (शाहशाह) भी व्रजभाषा में प्रयुक्त रूप है। ‘डिली’ (दिल्ली) भी पुराना रूप है और अलाउद्दीन का अपभ्रंश ‘अल्लावदी’ तो अलाउद्दीन के काल का ही है। अलाउद्दीन के समकालीन विश्वनाथ ने ‘साहित्यदर्पण’ में ‘अलाउद्दीन’ के लिए ‘अलावदीन’ का प्रयोग किया है।^२

यह नहीं कहा जा सकता कि गोपाल नायक अलाउद्दीन के दरबार में कब आये, उसके पास कितने समय तक रहे, दरबार में उनका स्थान क्या रहा और अमीर खुसरो के

१. रागमाला, ८६ आ; परिशिष्ट अ, १।

२. ‘अलावदीननूपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः।’—साहित्यदर्पण, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० २१२।

साथ उनके कैसे सम्बन्ध रहे । उपरिनिर्दिष्ट पद 'रागदर्पणकार' के इस कथन की पुष्टि अवश्य करता है कि गोपाल नायक अलाउद्दीन के सम्पर्क में आये थे ।

गोपाल नायक के विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती ।

बेंकटमखी ने कहा है कि गोपाल नायक का अपने विषय में कथन है कि 'श्रुतियाँ' (संगीत-प्रयोज्य स्वरों के भाग-विशेष) मैं ही जानता हूँ ।^१ बेंकटमखी के कथन से यह भी ज्ञात होता है कि गान को 'आलाप', 'ठाय', 'गीत' और 'प्रबन्ध' में गोपाल नायक ने वर्गीकृत किया था ।^२ ये चारों वस्तुएँ 'चतुर्दण्डी' कहलाई । नारद इत्यादि मुनि स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी इन क्रमों से युक्त प्रबन्ध-विशेष को 'चतुर्दण्डी' कहते थे ।^३

बैजू :

बैजू की गणना मध्ययुग के महान् संगीतज्ञों में की जाती है । ये मानसिंह तोमर (रा० का० सन् १४८६-१५१६ ई०) के दरबारी गायक थे । मानसिंह तोमर ने संगीत में 'काव्य' एवं 'शैली' की दृष्टि से जो कुछ किया, उसमें इनका महान् योग रहा होगा । पश्चात्कालीन इतिहासों के आधार पर मौलाना अर्शी ने इन्हें मानसिंह तोमर का दरबारी गायक बताया है ।^४

आश्चर्य की बात है कि 'मानकुतूहल' की रचना में जिन गुणियों के सहयोग की चर्चा की गई है, उनमें इनका नाम नहीं है । हो सकता है, इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व किसी कारण से बैजू ने मानसिंह का दरबार छोड़ दिया हो ।

१. मअदन्, पृ० २३६-२४० ।

२. 'सौतुल्मुबारक', पृ० ४२, लेखक : वाजिद अलीशाह, सन् १८५३ ई० में लखनऊ में मुद्रित ।

३. (अ) कर्नाटक देश में संगीत-कला में प्रसिद्धि पाकर दिल्ली-बादशाह के द्वारा बुलाये गये ।—संगीतशास्त्र, पृ० १४६ ।

(आ) देवगिरि में रामदेव नामक राजा राज्य करता था । इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक था ।—हमारे संगीतरत्न, पृ० १५१ ।

टि० : अलाउद्दीन की प्रशंसा में प्राप्त एक ध्रुवपद की भाषा बताती है कि गोपाल नायक दिल्ली एवं आसपास की भाषा में भी रचना करते थे । दक्षिण की किसी भाषा में लिखी हुई उनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं है । कल्लिनाथ और बेंकटमखी ने अपने संस्कृत-ग्रन्थों में गोपाल नायक की चर्चा की है । गोपाल नायक ने संस्कृत में किसी लक्षण-ग्रन्थ की रचना अवश्य की थी, जो दाक्षिणात्यों के लिए भी बोधगम्य था । दाक्षिणात्य ग्रन्थकारों के द्वारा गोपाल नायक का उद्धृत किया जाना गोपाल नायक को दाक्षिणात्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।—ले०

४. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०३ ।

मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् ग्वालियर छोड़कर गुजरात पहुँचनेवाले जिन कलाकारों का नाम अबुल फजल ने दिया है, उनमें 'बैजू' नहीं है; परन्तु गुजरात के इतिहास 'मिराति सिकन्दरी' में यह चर्चा है कि बैजू गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के आश्रित थे।

मौलाना अर्शी कहते हैं कि यह अपने अहद (युग) के कलावन्तों का सरदार माना जाता है और 'बैजू बावरा' के नाम से मशहूर है। कहा जाता है कि इसने लोहारों की भट्टी झोंक-झोंककर गुजर की और फन (कला) को सीखता रहा, ताआं (यहाँतक) कि माहिर मूसीकार (निपुण सगीतज्ञ) बन गया।

इसके गाने के असर का अन्दाज इससे कीजिए कि जिस जमाने में हुमायूँ ने गुजरात को तस्खीर (विजित) करने का इरादा किया और शहर माँडौ मफतूह (विजित) हुआ, तो मण्डल के दिन बादशाह ने लाल कपड़े पहनकर कत्ले-आम (सार्वजनिक वध) का हुक्म दिया। इस हंगामे में नायक बैजू, जो सुलतान बहादुर का मुकर्रब (सभासद, पास बैठनेवाला) था, एक मुगल के हाथ पड़ गया। वह चाहता था कि इसे (बैजू को) कत्ल कर दे। नायक ने कहा, मेरे मार डालने से तुझे क्या फायदा पहुँचेगा, मैं बराबर सोना तौल कर तुझे दे दूँगा; क्योंकि मैं सुलतान बहादुर का मुकर्रब हूँ। मुगल अपनी पगड़ी से उसके हाथ बाँधकर बैठ गया।

इत्तफाकन (संयोगवश) एक राजा, जो हुमायूँ के साथ था और बैजू को जानता था, उधर से गुजरा और बैजू को मुगल से छुड़ाकर अपने साथ ले गया। मुगल तलवार खींचकर शोर मचाता पीछे हो लिया। यहाँतक कि दोनों बादशाह के हुजूर (सेवा) में पहुँच गये। बादशाह उस वक्त बहुत गजब (क्रोध) में था। मुगल ने शोर मचाया कि मेरा कैदी, जो सुलतान बहादुर का मुकर्रब है, इस हिन्दू-राजा से मुझे दिलाइए। इस दरमियान खुशहाल बेग कूर्ची ने, जो सुलतान बहादुर के पास जाया करता था और बैजू को पहचानता था, अर्ज किया कि वह कलावन्त गवैयों का बादशाह है। हुमायूँ ने उसकी तरफ गुस्से से देखा। उसने फिर वही लफज दुहराये और कहने लगा, कुर्बान जाऊँ (निछावर होता हूँ)। लोग कहते हैं कि इस जमाने में इसका सानी (सदृश) मौजूद नहीं। बादशाह का गुस्सा ठण्डा पड़ गया। बैजू को हुक्म हुआ कि कुछ गाये। यह बैजू फारसी नगमे में बड़ी महारत रखता था, फौरन गाने लगा। बादशाह पर बड़ा असर हुआ और उसके मिजाज में फौरन तगयुर (परिवर्तन) हो गया। गजब रहम में बदल गया और सुख लिबास उतारकर खिलअत पहन लिया और बैजू को खिलअत खास. (राजकीय वस्त्र) देकर कुछ फरमाया, जो चाहेगा, पायेगा। उसने अर्ज किया, मेरे बहुत से अजीजो-अफरबा (बन्धु-बान्धव) गिरफ्तार हैं, उनकी रिहाई (मुक्ति) का हुक्म हो जाय। बादशाह ने मजूर कर लिया और खासे का (राजकीय) तरकश (तूणीर) बैजू की कमर में बाँधकर और खासे का घोड़ा देकर चन्द मुकर्रब हमराह (साथ) करके फरमाया कि बैजू जिसको छुड़ाना चाहे, वह छोड़ दिया जाय। बैजू ने बहुत-से अपने शनासा (परिचित) छोड़ा लिये। हुमायूँ ने उसे अपना मुकर्रब खास (विशिष्ट सभासद)

बनाया और इनामो इकराम (पुरस्कार एवं कृपाओं) से नवाजने (अनुगृहीत करने) लगा । बैजू जो इनाम पाता, उस मुगल को दे देता और कहता कि इसने मेरी जॉबखशी (प्राणदान) की थी ।

कुछ मुद्दत के बाद बैजू भागकर सुलतान बहादुर के पास चला गया । सुलतान बहादुर ने उसे देखकर कहा, मैंने अपनी खोई हुई दौलत पा ली । हुमायूँ को मालूम हुआ कि बैजू भाग गया है, तो उसने अफसोस की राह से (खेदपूर्वक) कहा कि बदनसीब था, जो भाग गया । अगर हमारे हुजूर में रह जाता, तो इतना पाता कि सुलतान बहादुर को भूल जाता ।^१

हुमायूँ ने मॉडौ सन् १५३५ ई० में जीता था, अर्थात् हुमायूँ के साथ बैजू का साक्षात्कार मानसिंह तोमर की मृत्यु (सन् १५१६ ई०) से उन्नीस वर्ष पश्चात् हुआ था । बहादुर-शाह के दरबार में गोपाल (द्वितीय) भी था, जो बैजू का शिष्य प्रसिद्ध है । गोपाल को सम्बोधित करते हुए बैजू के अनेक ध्रुवपद भी हैं ।^२

मिश्रबन्धुओं ने सोलहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में विद्यमान 'बैजू' और अठारहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में वर्तमान 'सदारग' को एक साँस में स्वामी हरिदासजी का शिष्य कह डाला है ।^३ यह कथन अपनी वास्तविकता स्वयं कह देता है । हरिदासजी (ज० का० सन् १४८० ई०) की आयु मानसिंह की मृत्यु के समय केवल छत्तीस वर्ष थी, जबकि हरिदासजी की इस आयु से न जाने कितने पहले से बैजू मानसिंह की सभा के वरिष्ठ गायक थे, अतः मिश्रबन्धुओं के पूर्वोक्त कथन में प्रामाणिकता नहीं है ।

'मिराति सिकन्दरी' के अनुसार, गोपाल बहादुर शाह गुजराती के युग में सम्मान-पूर्वक रहा । यह बैजू का सेवक और शिष्य था ।^४ ऐसे अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते हैं, जो बताते हैं कि बैजू ने गोपाल नायक की भर्त्सना की थी और उसे अभिमान-रहित होने के लिए कहा था ।

एक किवदन्ती के अनुसार, बैजू का जन्म गुजरात के अन्तर्गत चॉपानेर में हुआ था ।^५ बैजू के सांगीतिक चमत्कारों के विषय में कुछ रोचक किवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं । एक ध्रुवपद में कहा गया है कि हे लाल, विद्या वही भली है, जिसकी साधना की है । दोनों मिलकर, रंगमहल में बैठ गये, मृगों ने रीझकर माला दे दी । नायक गोपाल सात

१. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०४-१०५; मिराति सिकन्दरी, पृ० २४६; खलास्-तुल्-ऐश आलमशाह, पृ० १४६ अ; मिराति आफताबनुमः, ३८६ अ; गुजएराग, पृ० ४०; सौतुल्मुबारक, पृ० १००, सरमायः इशरत, पृ० ३१७ ।

२. परिशिष्ट अ, ७ ।

३. मिश्रबन्धु-विनोद, प्र० भा, पृ० ३१६ ।

४. 'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०५ ।

५. हमारे संगीतरत्न, पृ० २६० ।

गुप्त और सात प्रकट 'डाँडे' (सीमाएँ) बाँध आये । बैजू के गाने से सात सुर भूल गये, पाषाण पिघल गया, 'ताल' (मँजीरे) डूब गये । ध्रुवपद निम्नांकित है :

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल ।

रंगमहल में दोउ जुरि बैठे रीझि अगन बड़ माल ।

सात गुप्त सात प्रगट चौदह डाँडो बाँधि आये नाइक गोपाल ।

बैजू के गाने तें भूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूड़े ताल ।^१

कहा जाता है कि गोपाल ने गाकर हिरनों को बुला लिया और उनके गले में मालाएँ पहना दी । हिरन चले गये । बैजू ने गाकर उन हिरनों को पुनः बुलाया, रीझकर मृगों ने मालाएँ दे दी । तब बैजू ने गाकर पाषाण पिघला दिया और अपने मँजीरे उस द्रवित पाषाण में गाड़ दिये, जो उस पत्थर में जमकर रह गये । यह चमत्कार देखकर गोपाल (नायक) चौकड़ी भूल गये और बैजू को उन्होंने गुरु माना ।

बैजू और गोपाल की प्रतियोगिता की बात भली भाँति प्रसिद्ध है । निम्नांकित ध्रुवपद में उस किंवदन्ती का बीज विद्यमान है :

पार किनिहू न पायौ दूजैहू पंडित कहायो घुरपत गीत गुनी मरजीअउ न गलायौ ।

सात गुपित सात प्रगट नाइक गोपास गायौ ब्रम्हा वेद उचरायौ सारंग बहुरायौ

गर्वधारी गुनी उलटि धार आयौ ।

देस देस के जुरे गुनी सकल सिस्ट महामुनी तेउ पचि गये तिनि पाहन पिघिलायौ ।

कहै बैजू बावरे सुनो हो सुघर नरी जिनिहीं मिलौ तिनिहीं लुकायौ ।

नाद का प्रभाव अमित है । इस किंवदन्ती में ईश्वर ही जाने, कितना सत्य है ।

बख्शू :

पश्चाद्वर्त्ती लोगों ने 'बख्शू' को सदा 'नायक' कहकर इनके प्रति सम्मान प्रदर्शन किया है ।^३ इनके जन्मस्थान, पितृ-परम्परा इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । मुहम्मद करम इमाम ने बख्शू को 'ढारी' लिखा है ।^४ अबुल फजल के अनुसार, 'ढारी' पंजाबी गीत गानेवाले होते थे और साथ में 'ढढ' (एक अवनद्ध वाद्य) और 'किंगारा' बजाते थे । 'ढारी' लोग रणक्षेत्र में कड़खा भी गाते थे और उनका प्रयोजन वीरतापूर्ण कृत्यों को करने के लिए सेनाओं को उत्साहित करना होता था । सम्भव है, बख्शू के पूर्वज ध्रुवपद गायक न हों और यह कला उन्होंने ग्वालियर में ही सीखी हो । बख्शू की जाति के विषय में अबुल फजल ने मौन का आश्रय लिया है ।^५

१. परिशिष्ट आ, ६ ।

२. परिशिष्ट आ, ५ ।

३. 'आजकल', उपरिवत्, पृ० ३-४; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २५, ३२ ।

४. मअदन्, पृ० २२ ।

५. आईने अकबरी, पृ० ७३४ ।

ये मानसिंह तोमर के शिष्य और उसके प्रयोगों का माध्यम थे ।^१ 'मानकुतूहल' की रचना में जिन कलाकारों का योग था, उनमें भी ये प्रमुख थे ।^२ मानसिंह तोमर की मृत्यु के पश्चात् ये उसके पुत्र के पास रहे और जब ग्वालियर पर लोदी पठानों का अधिकार हो गया, तब ये कालिंजर के राजा कीर्त के पास चले गये ।^३ गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने इनका यश सुनकर इन्हें कालिंजर-नरेश से माँग लिया ।^४ ये वहाँ पहुँचे और अपनी प्रतिभा से इन्होंने मानसिंह द्वारा आविष्कृत गानशैली को गुजरात के दरबार में सर्वप्रिय बना दिया ।^५ यह शैली जनता के प्रत्येक वर्ग को भाती थी ।^६

बख्शू ने सहस्रो ध्रुवपदों की रचना की थी, इनके कुछ ध्रुवपद 'राजकल्पद्रुम' में हैं । शाहजहाँ ने इनके ध्रुवपदों का एक संग्रह कराया था, जिनमें एक सहस्र ध्रुवपद थे ।

साधारणतया दो गवैये मिलकर अच्छा गाते हैं, परन्तु ये एकाकी ही अच्छा गाते थे और इनके तारस्वर अत्यन्त शक्तिशाली थे । आलाप में एक अनोखी शैली पर इनका अधिकार था । इन्होंने ध्रुवपद को उत्कृष्टता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था । गाने में यह प्रभाव था कि वन्य मृग सिर झुकाकर इनके सम्मुख खड़े हो जाते थे । ये पहचान के लिए उनके गले में माला डाल आते थे ।^७

'टोड़ी' और 'देशकार' नामक रागों के मिश्रण से इन्होंने एक राग का निर्माण किया और गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के नाम पर उस राग का नामकरण 'बहादुरी तोड़ी' किया । 'कान्हरा' और 'श्याम' के मिश्रण से 'नायकी कानड़ा' का निर्माण किया । 'कल्याण' में कुछ परिवर्तन किया, तो 'नायकी कल्याण' प्रसिद्ध हुआ ।^८

बख्शू के पुत्र का नाम हुसेनी था, जो गुजरात के सुलतान अहमद सानी के वजीर दरिया खाँ (मन्त्रित्व-काल : सन् १५३८-१५५४ ई०) के आश्रय में रहा । हुसेनी अपने युग का बहुत बड़ा गायक माना जाता था ।^९

गोपाल द्वितीय :

बहादुरशाह गुजराती के युग में गोपाल अत्यन्त सम्मानपूर्वक रहे । ये बैजू के शिष्य थे ।^{१०} किंवदन्तियों एवं कुछ उपलब्ध ध्रुवपदों के अनुसार, ये अभिमानपूर्वक बैजू से

१. 'आजकल', उपरिवत्, पृ० १०४ ।

२. रागदर्पण, पहला बाब; मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ५८ ।

३. 'आजकल', उपरिवत् ।

४. 'आजकल', उपरिवत् ।

५. आईने अकबरी, पृ० १३० ।

६. उपरिवत् ।

७. 'आजकल', उपरिवत् ।

८. उपरिवत्, पृ० १११ ।

९. मिराति सिकन्दरी, पृ० २६८ ।

१०. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०५ ।

स्पर्धा कर बैठे थे, परन्तु उनकी विशेषताओं के कारण इन्होंने बैजू की शिष्यता स्वीकार कर ली। ध्रुवपदों से प्रतीत होता है कि यह प्रतियोगिता किसी 'रगभवन' में हुई थी।^१ कहाँ और कब? इसका उत्तर देना सम्भव नहीं है।

भ्रमवश उनके व्यक्तित्व को लोग गोपाल प्रथम से मिला देते हैं। गोपाल नायक का पार्थक्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यथास्थान सिद्ध किया जा चुका है। गोपाल 'द्वितीय' एव बैजू की समकालीनता 'मिराति सिकन्दरी' जैसे इतिहास-ग्रन्थ के आधार पर सिद्ध है और गोपाल नायक (प्रथम) का पन्द्रहवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध से पूर्व होना कल्लिनाथ द्वारा प्रमाणित है।

गोपाल ने दरबार का आश्रय लिया या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। 'मिराति सिकन्दरी' इन्हें इनका गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के काल में सम्मानपूर्वक विद्यमान रहना बताता है।^२ और 'बादशाहनामः' बैजू और बख्शू को उक्त सुलतान का दरबारी बताता है।^३

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार ये अकबर के समय में भी जीवित थे और अपनी निःस्पृहता के कारण दरबार के सम्पर्क में न आये।^४ इनके ध्रुवपद भी प्राप्त हैं।

भगवन्त :

जगन्नाथ कविराय ने अपने एक ध्रुवपद में भगवन्त की चर्चा प्रामाणिक संगीतज्ञों में करते हुए इनका नाम 'बख्शू' और 'महचू' के पश्चात् और 'रामदास' से पूर्व लिया है। 'स्वर' भरने में जगन्नाथ ने इनको विशिष्ट माना है।^५ भगवान् नामक एक गायक को रागदर्पणकार ने 'नायक भगवान्' कहकर उन्हें कुछ पढा-लिखा कहते हुए अकबरी युग के कलाकारों में परिगणित किया है।^६ 'भगवान्' और 'भगवन्त' एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं; क्योंकि व्रजभाषा में 'भगवान्' का अपभ्रंश 'भगवन्त' भी प्रयुक्त होता है।

तानसेन :

तानसेन के नाम से वे भी परिचित हैं, जिनका सम्बन्ध संगीत अथवा काव्य के साथ नहीं। इनका व्यक्तित्व विशिष्ट था और अकबरी दरबार में आश्रित होने के कारण इन्हें इतिहास में एक विशिष्ट स्थान मिला।

१. परिशिष्ट आ, ६।

२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०५।

३. बादशाहनामः, २, ७; 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०३।

४. मअदन्, पृ० २३३

५. परिशिष्ट आ, १०७।

६. रागदर्पण, नवाँ बाब।

जन्म : परम्परा-प्रसिद्धि के अनुसार, इनका जन्म ग्वालियर के निकट बेहट स्थान में हुआ ।^१ इनके पिता का नाम मकरन्द था ।^२ तानसेन के एक ध्रुवपद में 'गोपाचल' की प्रशंसा है और उसमें 'मकरन्द' को गुरु बताया गया है । इस ध्रुवपद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरु मकरन्द ने तानसेन को राग-रागिनियाँ दी ।^३ संगीतजीवी जातियों में पिता ही प्रायः आरम्भिक संगीत-गुरु होता है । अतः, तानसेन का मकरन्दपुत्र होना सम्भव है ।

अबुल फजल ने ध्रुवपद गानेवाले वर्गविशेष को 'कलावन्त' कहा है,^४ 'तारीखे मुहम्मदी' का लेखक भी तानसेन को 'तानसेन कलावन्त' ही कहता है ।^५ संगीतजीवी वर्गों में 'ढारी', 'कव्वाल', 'हुरकिया', 'दफजव' (ढप बजानेवाली और ध्रुवपद गानेवाली पंजाबी स्त्रियाँ), 'नटवा' और 'कीर्त्तनिया' लोगो में केवल अन्तिम वर्ग के व्यवितयो को अबुल फजल ने ब्राह्मण कहा है ।^६ अतः, यह स्पष्ट है कि तानसेन उस संगीतजीवी जाति में उत्पन्न हुए थे, जो 'कलावन्त' थी ।

निम्नांकित ठोस आधारों पर तानसेन के जन्म का काल निश्चित किया जा सकता है :

(अ) मानसिंह तोमर (राज्यकाल : सन् १४८६ से १५१६ ई०) की प्रशंसा में तानसेन एक ध्रुवपद में कहते हैं : 'हे छत्रपति मान राजा, जबतक मेरु और ध्रुव है, तबतक तुम चिरंजीवी रहो । चारों ओर के देशों के गुणी आते हैं, तुम्हारे पास दौड़ते हैं, इच्छानुसार पुरस्कार पाते हैं, सभी के लिए तुम जग के उजाले हो । मैं यदि तुमसे न कहूँ, तो और किससे जाकर कहूँ । गुणी जनों को तुम करोड़ों देते हो, उन्हें अयाचक बना दिया । तानसेन का प्रतिपालन तुमने किया है ।'^७

यह ध्रुवपद सिद्ध करता है कि मानसिंह ने तानसेन का प्रतिपालन किया था और मानसिंह की मृत्यु के समय (सन् १५१६ ई०) से पूर्व तानसेन ध्रुवपदों की रचना ही नहीं करने

१. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, पृ० ६६ ।

२. उपरिवत्, पृ० १०० ।

३. परिशिष्ट आ, ३० ।

४. आईने अकबरी : ग्लैडविन, पृ० ७३४ ।

५. तारीखे मुहम्मदी, हि० ६६७, तानसेन ।

६. आईने अकबरी : ग्लैडविन, पृ० ७३४ ।

७. छत्रपति मानराजा तुम चिरंजीव रहो जौलों ध्रुव मेरु तारो ।

चहूँ देश ते गुनीजन आवत तुमपै धावत पावत मन इच्छा सबहीको जग उजियारो
तुमसै जो नहीं और कासे जाय कहूँ दौर वही आज कीरत करे भी पे रक्षाकरन
हारो ।

देत करोड़न गुणी जनन को अयाचक किये तानसेन प्रतिपारो ।

—अक० दर० हि० क०, पृ० ११० ।

लगे थे, अपितु मानसिंह तोमर के दरबार में अपनी रचनाएँ भी प्रस्तुत करने लगे थे । जिस दरबार में बैजू को आश्रय मिल चुका हो और जहाँ बख्शू जैसे गुणी विद्यमान हों, उस व्यक्ति की आयु सांगीतिक परम्परा की दृष्टि से उस समय कम-से-कम पच्चीस वर्ष अवश्य होनी चाहिए । इस दृष्टि से यदि सन् १५१६ ई० में भी तानसेन की आयु पच्चीस वर्ष मानी जाय, तो उनका जन्म-वर्ष प्रायः सन् १४९१ ई० सिद्ध होता है ।

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने मानसिंह तोमर से सम्बद्ध इस ध्रुवपद को सलीम के साले मानसिंह से सम्पृक्त कर दिया है, परन्तु तानसेन के मृत्युकाल (२६ अप्रैल, १५८६ ई०)^१ तक तो मानसिंह केवल 'कुँवर' थे, 'राजा' तक नहीं थे, अपने पिता भगवान्दास की मृत्यु पर नवम्बर, १५८६ ई० में, कुँवर मानसिंह 'राजा' हुए ।^२ साथ-ही-साथ, यह भी विचारणीय है कि स्वतन्त्र नरेश 'छत्रपति' कहलाते हैं, अकबर जैसे बादशाहों के मनसबदार 'छत्रपति' नहीं कहलाते । शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने के लिए ही 'छत्रपति' उपाधि धारण की थी ।

(आ) अबुल फजल के अनुसार, सन् १५६२ ई० से पूर्व तानसेन रीवाँनरेश राजा रामचन्द्र की सभा में थे और 'सेवानिवृत्त' होने का विचार कर रहे थे ।^३ यह विचार वृद्धावस्था में आ सकता है । इस समय तानसेन की आयु प्रायः सत्तर-इकहत्तर वर्ष की हो सकती है ।

(इ) अकबर ने सन् १५७५ ई० में शेखू, बंझू, तानसेन तथा अन्य सगीतज्ञों को शेख मुबारक के पास इसलिए भेजा था कि शेख मुबारक यह बताये कि उन लोगों में कौन कलाकार किस कोटि का है । तानसेन की आवाज को सुनकर मुबारक ने उनके गाने की तुलना वन्य पशुओं के कोलाहल से की थी ।^४ तानसेन के गाने की यह स्थिति अत्यन्त वृद्धावस्था, प्रायः चौरासी वर्ष (सन् १४९१ + ८४ = १५७५ ई०) की आयु में ही सम्भव है ।

१. अकबरनामः, खण्ड २, पृ० ८८० ।

२. अकबर, पृ० १५६ ।

३. "As the fame of Tansen, who was the foremost of the age among the Kalawants of Gwalior came to the Royal hearing and it was reported that he meditated going into retirement and that he was spending his days in attendance on Ramchand."... —Akbarnama, Part 2, p. 279.

४. "He (Akbar) sent Shaikh Bhanju and Miyan Tansen and all the musicians to the Shaikh (Mubarak) that he might tell him what they were worth of musians. He said to Miyan Tansen, 'I have heard that you can sing a bit' at last he compared his singing to the noise of beasts and allowed it no superiority over it."

—Munt. Vol. 2, p. 273.

शेख मुहम्मद गौस की दुआ से जन्म की कपोल-कल्पना :

पीरों और सूफियों के प्रति अपढ़ जनता की श्रद्धा आकृष्ट करने के लिए भिन्न-भिन्न चमत्कारों से पूर्ण कहानियाँ गढ़ी जाती रही है। इसी प्रकार की असंगत कल्पनाओं का सारांश निम्नलिखित हैं :

(क) मकरन्द पाण्डे कई देवी-देवताओं की 'मानताएँ' करने पर भी पुत्र-प्राप्ति में सफल नहीं हुआ था। गौस के आशीर्वाद से उसे जिस पुत्र का लाभ हुआ, वही भविष्य में तानसेन कहलाया।^१

(ख) हजरत ने अपने मुँह का जूठा पान तानसेन के मुँह में रख दिया।... उनके पान के प्रभाव से गले में रस और मजा पैदा हो गया।^२

इन कपोल-कल्पनाओं की वास्तविकता प्रकट करने के लिए इतना कहना पर्याप्त है कि अबुल फजल के अनुसार, शेख मुहम्मद गौस की मृत्यु १० मई, १५६३ ई० में हुई। उस समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी।^३ अर्थात्, शेख मुहम्मद गौस तानसेन के जन्म-वर्ष, सन् १४९१ ई० से आठ वर्ष पूर्व सन् १४८३ ई० में उत्पन्न हुए। आठ वर्ष की आयु के बालक मुहम्मद गौस के आशीर्वाद से तानसेन का जन्म हो गया, यह बात कम-से-कम इतिहास से सुपरिचित व्यक्तियों के लिए तो विश्वसनीय नहीं। 'मआसिरुल् उमरा' के लेखक ने शेख मुहम्मद गौस के विषय में लिखा है कि उन्होंने ९२९ हिजरी, अर्थात् सन् १५२३ ई० में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जवाहिरे खम्स' की रचना की, तो उस समय उनकी आयु बाईस वर्ष थी। इस दृष्टि से शेख मुहम्मद गौस का जन्म-वर्ष सन् १५०१ ई० सिद्ध होता है। यदि 'मआसिरुल् उमरा' का कथन सत्य है, तब तो हजरत गौस तानसेन की अपेक्षा दस वर्ष छोटे सिद्ध होते हैं।^४

काजी मेराज धौलपुरी का कथन है : "हमारे खानदान में सीन बसीन अकबाल (आनुवंशिक उक्तियों) और बुजुर्गों के मखतूतात (कागज-पत्रों) की बिना (आधार) पर तानसेन की विलादत (जन्म) का साल ९३१ हि० (सन् १५२४ ई०) माना जाता है।"^५ काजी साहब अपने कथन की पुष्टि में किसी पत्र का विषय, लिखनेवाले का नाम तथा काल नहीं लिखते। अत्यन्त मनोरंजक बात यह है कि विक्रमाजीत द्वारा तानसेन को उपाधि देने की बात भी काजी साहब तहरीर फरमाते हैं।^६

१. 'संगीत', कला०-अंक, पृ० ५८-५९; 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ८८ (शेख मेराज धौलपुरी)।

२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ८९, (काजी मेराज धौलपुरी); कवि तानसेन, पृ० १२; संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ, पृ० १५३।

३. अकबरनामः, खं० २, पृ० २७९।

४. मआसिरुल्, भाग २, पृ० १५५।

५. आजकल, म्यू० नं०, पृ० ८९।

६. उपरिक्त, पृ० ८७।

विक्रमाजीत सन् १५२६ ई० में इब्राहीम लोदी की ओर से लड़ता हुआ मारा गया था। काजी साहब के वंश की उक्तियों के अनुसार यदि तानसेन का जन्म-वर्ष सन् १५२४ ई० माना जाय, तो विक्रमाजीत की मृत्यु के समय (सन् १५२६ ई०) में तानसेन की आयु केवल दो वर्ष होनी चाहिए, जो कि एक सर्वथा असंगत बात है। वास्तविकता यह है कि तानसेन को हजरत गौस के एक चमत्कार का परिणाम सिद्ध करने के लिए काजी साहब ने तानसेन का जन्म-वर्ष तैंतीस वर्ष 'पश्चात्' करके कौशल का परिचय दिया है।

ध्यान देने की बात यह है कि सूफियों के किसी प्रामाणिक 'तज्किर' (जीवनवृत्त-संग्रह) में हजरत गौस के साथ तानसेन की चर्चा नहीं है। यहाँ तक कि मुहम्मद करम इमाम जैसे सकीर्णहृदय लेखक ने आज से एक सौ पाँच वर्ष पूर्व, सन् १८५५ ई० में, लिखित ग्रन्थ 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में तानसेन की चर्चा के समय हजरत गौस की कोई चर्चा ही नहीं की है।

शिवसिंहसरोज में तानसेन का जन्म-संवत् १५८८ वि० (सन् १५३१ ई०) दिया है,^१ परन्तु इसकी पुष्टि में किसी आधार का उल्लेख नहीं किया है। डॉ० सुनीति-कुमार चटर्जी तानसेन का जन्मकाल सं० १५७८ वि० (सन् १५२१ ई०) मानते हैं और डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल भी तानसेन के एक तथाकथित चित्र के आधार पर शिवसिंह-सरोज के मत का पोषण करते हैं।^२ न जाने कब और किसके द्वारा बनाये गये काल्पनिक चित्रों के आधार पर तानसेन की आयु का निश्चय करना वैज्ञानिक नहीं है।

एक चित्र में तानसेन के साथ अकबर हरिदासजी के पास बैठा हुआ दिखाया गया है, यह चित्र पर्याप्त रूप में प्रसिद्धि पा चुका है। इसमें अकबर वृद्ध, तानसेन युवा और हरिदासजी नवयुवक दिखाये गये हैं, जबकि अकबर (जन्मवर्ष : सन् १५४२ ई०) हरिदासजी (जन्मवर्ष : सन् १४८० ई०) से बासठ वर्ष छोटा था और तानसेन (जन्मवर्ष : सन् १४९१ ई०) से इक्यावन वर्ष। ऐसे चित्रों का निर्माण भावुक भक्तों के द्वारा किवदन्तियों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए शताब्दियों पश्चात् कराया जाता है और ये ऐतिहासिक निर्णयों के लिए प्रमाण नहीं होंगे।

मानसिंह तोमर के मृत्युवर्ष सन् १५१६ ई० से पूर्व तानसेन का ध्रुवपद-रचयिता होना, सन् १५६२ ई० से पूर्व तानसेन के द्वारा दरबारी जीवन से 'सेवानिवृत्त' होने की इच्छा और सन् १५७५ ई० में अत्यन्त वृद्ध होना तानसेन का जन्मवर्ष प्रायः सन् १४९१ ई० या उससे पूर्व ही सिद्ध करता है, जबकि हजरत गौस सात-आठ वर्ष के बालक थे।

धर्म : अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल ने 'अकबरनामः' या 'आईने अकबरी' में तथा मुल्ला अब्दुल् कादिर बदायूनी जैसे हिन्दू-शत्रु इतिहासकार ने भी अपने इतिहास 'मुन्तखबुत्तवारीख' में तानसेन के द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने के विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है। अपितु, अबुल फजल का कथन है कि तानसेन की शवयात्रा में

१. शिवसिंहसरोज, पृ० ५२४; अक० दर० हि० क०, पृ० १००।

२. अक० दर० हि० क०, पृ० १०१।

दरबारी कलाकार गाते, बजाते, विवाहोत्सव जैसा मनाते सम्मिलित हुए थे ।^१ मुसलमानों के किसी सम्प्रदाय में भी शवयात्रा के साथ बाजे-गाजे नहीं चलते और न विवाह जैसा उत्सव ही मनाया जाता है । जिनके पोते, परपोते मौजूद हों, ऐसे व्यक्तियों का विमान बनाना, बाजे-गाजे के साथ शव को ले जाना और उत्सव मनाना विशुद्ध हिन्दू-प्रथा है ।

यदि यह कहा जाय कि अकबर के आदेश के कारण गायक, वादक तानसेन की शवयात्रा में गाते-बजाते चले, तो इसका अर्थ यही है तानसेन की शवयात्रा में साधारण बाजे-गाजे के स्थान पर राजकीय कलाकारों का गान, वादन तानसेन के निमित्त विशिष्टता-प्रदर्शन के लिए था । अकबर का आदेश यह नहीं हो सकता था कि मुसलमान तानसेन के साथ शाही हुक्म से गाने, बजाने जैसा इस्लाम-विरोधी कृत्य किया जाय । सन् १५८६ ई० में अकबर की आयु सैंतालिस वर्ष की थी और उसके सिर पर 'दीने इलाही' का भूत सवार था, उस अवस्था में अकबर की मनोवृत्ति ऐसी नहीं थी कि वह किसी के धर्म में बलात् हस्तक्षेप करे, और मुसलमान की लाश पर बाजे बजवा दे । तानसेन की शवयात्रा का अबुल फजल-कृत वर्णन तानसेन का आमरण हिन्दू रहना ही सिद्ध करता है ।

तानसेन को मुसलमान सिद्ध करने के लिए ग्वालियर-स्थित हजरत गौस के मकबरे में बनी हुई एक कब्र को तानसेन की कब्र घोषित किया जाता है, परन्तु यह बात बुद्धिसंगत नहीं कि आगरा में मरे हुए तानसेन की लाश के साथ ग्वालियर तक कलाकार गला फाड़ते गये हों । सूफी पीरों के मुरीदों की लाशें बाजे-गाजे के साथ नहीं निकला करती और न मुर्दे की बरात सूफियों के मकबरे में दाखिल हुआ करती है । इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है ।

१. "On the 26. 4. 1589 Miyan Tansen died, and by H. M.'s orders, all the Musicians and singers accompanied his body to grave, making as at a marriage." —Akbarnama, Vol. 2, p. 880.

टि० : किसी ऐसे शब्द का अर्थ नहीं, जो मूल में हो । फारसी मूल में 'सुपुर्वे खाक करदन्' शब्द हैं, जिनका अर्थ '(शव को) खाक के सुपुर्वे किया' होता है । 'खाक के सुपुर्वे करना' एक मुहावरा है, जिसका तात्पर्य 'शव का अन्तिम संस्कार करना' है । तानसेन को मुसलमान समझने के भ्रम से ही अनुवादक ने उक्त प्रयोग करा दिया है । यहाँ एक तर्क किया जा सकता है कि 'सुपुर्वे खाक करने' का अर्थ 'गाड़ना' होता है, जलाना नहीं, परन्तु मुहावरे का शब्दार्थ ही यदि लिया जाय, तो 'खाक' का 'धूलि' भी अर्थ है और 'भस्म' भी । सीधी-सी बात यह है कि 'अकबरनामः' फारसी का ग्रन्थ है, जिसमें तानसेन की अन्त्येष्टि के लिए फारसी-मुहावरे का प्रयोग है । वास्तव में, इस प्रकार यदि बाल की खाल निकाली जाय तो, सीधी दिशा से भटक जाने की सम्भावना रहती है । तानसेन की अन्त्येष्टि का यह प्रकार असन्दिग्ध रूप में उनके हिन्दुत्व का परिचायक है ।—ले०

जो दृष्टिकोण 'ब्लैकहोल' की सृष्टि करा सकता है, वही दृष्टिकोण कब्रें भी उत्पन्न कर सकता है।

हजरत गौस के द्वारा तानसेन को जूठा पान खिलाने की कहानी की असारता प्रमाणित की जा चुकी है। इस कहानी ने ही तानसेन को मुसलमान प्रसिद्ध कर डाला है। स्मिथ ने किसी प्रमाण के अभाव में भी तानसेन के मुसलमान होने की घोषणा कर डाली है।^१

मुहम्मद करम इमाम हर अच्छे हिन्दू-कलाकार के द्वारा इस्लाम अगीकृत करने की घोषणा करता है। उसका कथन है कि अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन अकबरी दरबार में प्रवेश के पश्चात् मुसलमान हुए और उनका नाम 'अताहुसेन खाँ' रखा गया।^२ इस कथन में कुछ सार नहीं है। अकबर की नीति हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की नहीं थी। अतः, उसकी प्रसन्नता के लिए मुसलमान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तानसेन का कल्पित मुस्लिम नाम 'अताहुसेन खाँ' करम इमाम के मस्तिष्क की उपज है। किसी भी इतिहास में तानसेन का यह नाम नहीं मिलता। बादशाहों द्वारा मिली हुई उपाधि या नाम का प्रयोग इतिहासकारों द्वारा सदा होता था, परन्तु अबुल फजल या मुल्ला बदायूँनी ने तानसेन के इस तथाकथित नाम का प्रयोग कहीं नहीं किया है। 'तुजुके जहाँगीरी' और 'इकबालनामः जहाँगीरी' में तानसेन की चर्चा एकाधिक बार आई है, परन्तु तानसेन के मुसलमान होने की बात का कहीं पता नहीं है।

तानसेन के पूर्व विशेषण के रूप में 'मियाँ' शब्द का प्रयोग अबुल फजल और मुल्ला बदायूँनी दोनों ने किया है। इस 'मियाँ' शब्द को कुछ लोग तानसेन द्वारा इस्लाम अगीकृत किये जाने का बोधक मानते हैं, परन्तु यह दृष्टिकोण युक्तियुक्त नहीं है।

मुसलमानों में सैयदों को 'मियाँ' कहा जाता है। यह शब्द श्रेष्ठता एवं पवित्रता का द्योतक है, जाति का नहीं। सूफी सन्तों के अमुस्लिम मुरीद भी 'मियाँ' कहलाते थे, आज भी कहलाते हैं। जहाँगीर लिखता है कि शेख सलीम चिश्ती ने अपनी मृत्यु के दिन भी तानसेन को बुलाकर गाना सुना था।^३ इससे सिद्ध है कि तानसेन शेख सलीम चिश्ती जैसे सूफी सन्तों के सम्पर्क में थे। संगीतजीवी जातियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सूफियों को गाना सुनाते और उनके मुरीद होते चले आते थे। उनका मुरीद बनने के लिए धर्म-परिवर्तन की आवश्यकता न तो पहले थी और न आज है। शेख सलीम चिश्ती की

१. 'Tansen, who became a mohammadan subsequently'.—The Great Mogal, p. 6.

२. बादसे फर्तें मुहब्बत सुलतानी (अकबर के प्रेम की अधिकता के कारण) इस्लाम कुबूल किया। हुजूरेशाह से... तानसेन बखिताव अताहुसेन खाँ ('अताहुसेन खाँ' की उपाधि से)... मुफ़ख़्ख़र (प्रतिष्ठित, विभूषित) हुए।—मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३३।

३. जहाँगीरनामः, पृ० ४०।

हुआ से जहाँगीर का जन्म हुआ था और अकबर उनका अत्यन्त आदर करता था। अकबरी दरबार में प्रवेश के पश्चात् शेख सलीम चिश्ती के साथ तानसेन का सम्पर्क प्रामाणिक है और स्वाभाविक भी है। यह सम्भव है कि श्रद्धा के कारण अथवा अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन शेख सलीम चिश्ती के मुरीद हो गये हों और अपनी वृद्धावस्था एवं सूफी सम्पर्क के कारण 'मियाँ' कहलाने लगे हों।

शेख अबुल फजल और मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी का प्रवेश अकबरी दरबार में सन् १५७५ ई० में हुआ।^१ उस समय तानसेन की आयु प्रायः चौरासी वर्ष थी। शेख सलीम चिश्ती की बुआ से जहाँगीर का जन्म सन् १५६९ ई०^२ में हो चुका था और वह छह वर्ष का था और तानसेन को अकबरी दरबार में आये हुए तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। फलतः, अबुल फजल और मुल्ला बदायूनी के द्वारा तानसेन के लिए 'मियाँ' विशेषण का प्रयोग तानसेन की वृद्धावस्था तथा उनपर सूफी प्रभाव का द्योतक है, तानसेन द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने का नहीं।

स्मिथ का दृष्टिकोण स्थान-स्थान पर हिन्दू-विरोधी है। उसका कथन है कि तानसेन ने 'मिर्जा' उपाधि धारण कर ली थी या उसे दी गई थी।^३ स्मिथ ने इस धारणा का कोई आधार नहीं दिया है।

'मिर्जा' शब्द 'मीरजा' का अपभ्रंश है। मिर्जा शब्द का अर्थ मुगल जाति का व्यक्ति है और यह शाही खानदान के व्यक्तियों की उपाधि है। अकबर के खानदान में लड़कियाँ देने के कारण अमेर-राजवंश के जयसिंह जैसे लोगों को 'मिर्जा' जैसी उपाधि मुगल-दरबार से मिली थी, जो इस बात को सूचित करती थी कि उनका सम्मान शाही खानदान के व्यक्तियों जैसा है। तानसेन को तो 'मिर्जा' उपाधि मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय, तो भी 'मिर्जा' का अर्थ मुसलमान नहीं होता, अन्यथा मिर्जा राजा जयसिंह को मुसलमान मानकर उनकी भी कब्र कही ढूँढ़नी पड़ेगी।

तानसेन को मुसलमान सिद्ध करने के लिए कोई दृढ़ एवं ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है और उनके आमरण हिन्दू रहने का प्रमाण अबुल फजल के द्वारा किया हुआ शवयात्रा-वर्णन है।

गुरु-परम्परा : तानसेन के आरम्भिक संगीत-गुरु मकरन्द थे, इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाला एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिसकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है। मुहम्मद करम इमाम ने तानसेन को हरिदास स्वामी नामक प्रसिद्ध फकीर का शिष्य लिखा है।^४

१. अकबर, पृ० ३२६।

२. उपरिबत्त, पृ० ३२४।

३. 'Tansen became a Mohammadan, assumed or was given the title of Mirza.'

४. मअदन्, पृ० २३।

वृन्दावन के श्रीस्वामी हरिदासजी द्वारा तानसेन को संगीत-शिक्षा दी जानेवाली बात प्रसिद्ध भी है, परन्तु इसका उल्लेख किसी समसामयिक लेखक ने नहीं किया है। भक्तवर नागरीदास (किशनगढ़-नरेश महाराजा सावन्तसिंह) के एक ग्रन्थ 'पदप्रसंगमाला' (रचनाकाल : सन् १७२३-१७६२ ई०) में बताया गया है कि हरिदासजी वृन्दावनवासी तानसेन के संगीत-गुरु थे।^१ निम्बार्क-सम्प्रदाय से सम्बद्ध एक पुस्तक 'निजमतसिद्धान्त' (रचनाकाल : सन् १७६३ ई०) में भी यह चर्चा मिलती है, परन्तु 'निजमतसिद्धान्त' ने तानसेन और हरिदासजी से सम्बद्ध जो कहानियाँ लिखी है, वे ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर भ्रष्टताओं का भाण्डार सिद्ध होती हैं। इसमें सत्य का अंश निकालना सुकर नहीं।

तानसेन और हरिदासजी पारस्परिक सम्बन्ध में किस प्रकार बँधे हुए थे, इस विषय में 'निजमतसिद्धान्तसार' के कथन का सारांश यह है : पहले तानसेन कुलीन तैलंग ब्राह्मण था, पाप के कारण यवन-प्रसंग में पड़ गया। रागगान के लिए राजाराम बघेला के यहाँ नौकर था। तानसेन को संगीत राजाराम बघेला ने सिखाया था। वह दीपक राग शुद्ध रूप में गाता था, जिसके गाने से दीपक जल जाता था। तानसेन के साथ राजा का अनुराग बहुत बढ़ गया। राजा ने एक दिन सभा कराकर तानसेन से दीपक राग सुना। दीपक जल गये, लोग तानसेन के सिर पर जल डालना भूल गये, फलतः तानसेन का शरीर जल गया और कोढ़ियों जैसा हो गया। राजाराम की आज्ञा से तानसेन ऐसे कलाकार की खोज में चले, जो मेघ-मलार गाकर पानी बरसाये और उस जल से तानसेन को नहलाकर उसका शरीर ठीक कर दे। तानसेन ओरछा पहुँचा। वहाँ एक नारी ने मलार गाकर तानसेन को ठीक कर दिया। जब तानसेन ने मलार सीखने की इच्छा प्रकट की, तब उस नारी ने तानसेन से श्रीहरिदासजी के पास वृन्दावन जाने के लिए कहा। तानसेन वृन्दावन गया और उसने समस्त वृत्तान्त स्वामी हरिदासजी से कहा। हरिदासजी की कृपा से तानसेन को सब राग-रागिनियों का ज्ञान हो गया। तानसेन ने स्वामीजी से कहा कि आप मुझे शिष्य (दीक्षा-शिष्य) बना लीजिए। हरिदासजी बोले, तुम्हारे लिए मन्त्र यही है कि तुम 'हरिदास' कहो। तानसेन ने यह स्वीकृत कर लिया और आज्ञा माँगकर आगरा चला आया। अकबर ने तानसेन का यश सुनकर उसे बुलाया। तानसेन ने अकबर से कहा यदि नादब्रह्म का तमाशा देखना है, तो नगर के बाहर तम्बू गडवाओ, वजीरों और अमीरों को बुलाओ, हरम (अन्तःपुर) के साथ दिनरात निवास करके रागरंग का आनन्द लो। बादशाह ने ऐसा ही किया। तानसेन ने मलार राग गाया, जल खूब बरसा, यमुना में जल अधिक बढ़ गया।

१. "एक सम अकबर पातसा तानसेन सौ बूझी जु ते कौन सौं गाइबो सीख्यो। कोऊ तोऊ ते अधिक गावै है, तब वाने कही, जु मैं कोन गनैती में हूँ। श्रीवृन्दावन में हरिदासजी नाम वैष्णव हैं, तिनको गाइबे को हौं शिष्य हूँ।"

— साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३० दिसम्बर, १९५६ ई०, पृ० १८।

अकबर ने तानसेनसे कहा कि पृथ्वी में तुझ जैसा दूसरा नहीं है। तानसेन ने कहा मैं तो कुछ ही हूँ, मेरे गुरु महान् है। तानसेन के मुख से हरिदासजी की प्रशंसा सुनकर अकबर के मन में हरिदासजी के दर्शन की उत्कण्ठा हुई और वह तानसेन के सेवक के वेष में तम्बूरा उठाकर हरिदासजी के दर्शन के लिए पहुँचा। स्वामीजी के मुख से राग सुनना चाहता था, परन्तु यह कह नहीं सकता था। तानसेन ने मेघ-मलार को भ्रष्ट करके गाना आरम्भ किया। हरिदासजी सुन न सके और उन्होंने हाथ में तम्बूरा लेकर राग गाया, पानी बरसा। अकबर के हृदय में अत्यन्त आनन्द छा गया, अब वह स्वयं को छिपा न सका, उसने हरिदासजी के चरणों में प्रणाम किया। हरिदासजी ने तानसेन से कहा कि इसे तू क्यों लाया, ऐसी बातों से विघ्न उत्पन्न होता है। तानसेन ने हाथ जोड़कर कहा कि आप की ओर तो देखने से ही विघ्न टल जाता है। यदि घर पर भी आपका स्मरण किया जाये, तो करोड़ों कष्ट नष्ट हो जाते हैं।^१

तानसेन का राजा रामचन्द्र से संगीत सीखना, दीपक राग गाकर दीपक जलाना, ओरछा में मलार सुनना, हरिदासजी की आज्ञा से आगरा जाकर अकबर से मिलना और यमुना के किनारे अन्तःपुर-सहित अकबर को लाकर मलार सुनाना आदि बातें इतिहास-विरुद्ध हैं।

‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता’ में ‘तानसेन की वार्त्ता’ के अन्तर्गत जो कुछ कहा गया है, उसमें अनेक असंगतियाँ हैं। उसके अनुसार, तानसेन गोविन्दस्वामी के शिष्य होकर वृन्दावन में रहने लगा था। ‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता’ (संग्रहकाल . अट्ठारहवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध, पृ० ४७५-४७६) के कथन का सारांश यह है कि तानसेन ग्वालियर-निवासी ब्राह्मण था। पाँच वर्ष की आयु में म्लेच्छ का संग हुआ। म्लेच्छ संगीत-कला में निपुण था और तानसेन का संगीत-गुरु था। तानसेन सुन्दर गायक था। सरस्वती की उपासना से उसे रागसिद्धि का वर मिला था। हिरन पास आते थे। बादशाह ने उसपर प्रसन्न होकर वेतन नियत कर दिया। तानसेन गुणियों के पास जाता रहा। सन्त-महन्त बादशाह के गवैये का आदर करते थे, वह जगत्प्रसिद्ध था।

ग्रीष्मकाल में गोसाईं बिट्ठलनाथजी गोविन्दघाट पर विराजे थे। गोविन्दस्वामी भी पास थे। तानसेन भी वहाँ उपस्थित हुआ। गोसाईंजी ने तानसेन को गाने की आज्ञा दी, तानसेन ने निम्नांकित ध्रुवपद गाया :

तेरे मन में कितो एक गुन रे जो तो पै आवे तो प्रकास कर रे।

सप्त सुर, तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना, जोड़ सुर आवे तो पै सोइ सुर भर रे ॥

हिरन बुलाये, पगन पराये, मेहा बरसाये तोकों सरस्वती वर रे।

कहैं मियां तानसेन सुन रे गुनीजन, सब गुनियन के पायं पर रे ॥

गोसाईंजी ने तानसेन का गाना सुनकर तानसेन को बादशाही कलाकार होने के कारण दस हजार रुपये और गाने का मूल्य एक कौड़ी दी। गोविन्दस्वामी का गाना

सुनकर तानसेन उनका संगीत-शिष्य होकर वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया और वहीं रहने लगा ।

वार्त्ता-साहित्य में अनेक बातें सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए जहाँ गड़ी गई हैं, वहाँ पश्चात्कालीन सम्प्रदाय-भक्त भी उनमें अनेक प्रक्षेप करते रहे हैं । इस वार्त्ता में जिस ध्रुवपद का गान कराया गया है, वास्तव में वह तानसेन का नहीं है, अपितु 'बैजू' के निम्नांकित ध्रुवपद की तोड़-मरोड़ है :

तेरे मन में केतो गुण रे जेतो होय तेतो प्रकास कर रे ।

हम जाने तुम सुरे पुरे जोई सुर आवे सोई सुर भर रे ॥

पाहन पिघराये, हिरन बुलाये, ज्यों बरसै मेह सरसुती वर रे ।

कहे बैजू बावरे सुन हो गोपाल नादविद्या अथाह काहं सों नअर रे ॥ १

वार्त्ता में जो ध्रुवपद तानसेन के मुँह में रख दिया गया है, वह 'रागकल्पद्रुम' में उपर्युक्त रूप में है । तानसेन के ध्रुवपदों की यह शैली ही नहीं है । यह ध्रुवपद तो किसी प्रतियोगिता की याद दिलाता है । वार्त्ता-प्रसंग में इसकी संगति ही नहीं बैठती ।

सरस्वती के वरदान के पश्चात् भी सिद्ध गायक तानसेन में कसर रह जाना, गोविन्दस्वामी का शिष्यत्व ग्रहण करके वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होना, शेष जीवन उनकी सेवा में व्यतीत करते रहना इत्यादि बातें ऐसी हैं, जो स्पष्टतया यह सिद्ध करती हैं कि सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए ये कल्पनाएँ वार्त्ता-साहित्य में बाद को घुसेड़ी गई हैं ।

स्वामी हरिदासजी की आयु ज्ञानसिंह तोसर की मृत्यु के समय प्रायः छत्तीस वर्ष थी । वे प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक एवं ध्रुवपदकार थे । हरिदासजी ने या तो ग्वालियर में रहकर संगीत-शिक्षा प्राप्त की होगी अथवा ग्वालियर में आविष्कृत ध्रुवपद की शैली में निपुण किसी संगीतज्ञ ने उन्हें घर पर शिक्षा दी होगी । स्वामी हरिदासजी आयु में तानसेन से ग्यारह वर्ष बड़े थे, अतः उनके साथ तानसेन का परिचय सर्वथा सम्भव है और यह भी सम्भव है कि विक्रमाजीत के हाथ से सन् १५१८ ई० में ग्वालियर का राज्य निकल जाने के पश्चात्, जबकि बख्शू और मन्नू जैसे कलाकारों ने ग्वालियर छोड़ दिया, तब तानसेन अपनी शिक्षा पूर्ण करने के लिए स्वामी हरिदासजी के पास वृन्दावन चले गये हों ।

हरिदास डागुर नामक एक संगीतजीवी कलाकार तानसेन की अपेक्षा कनिष्ठ थे । इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाला एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिसके रचयिता शाहजहाँ के दरबारी गायक जगन्नाथ कविराय हैं । कुछ गायक इतिहास से अपरिचित होने के कारण तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य बनाकर अपने वंश की गौरव-वृद्धि का प्रयत्न करते रहे हैं और उन्होंने कुछ ध्रुवपद भी गढ़े हैं, परन्तु उन ध्रुवपदों की भाषा जहाँ तानसेन के ध्रुवपदों की भाषा से मेल नहीं खाती, वहाँ उनमें हजरत गौस को संगीत का शिक्षक भी घोषित कर दिया गया है, इसी प्रकार का एक ध्रुवपद इस प्रकार है :

आज जनम सफल भयो तानसेन बाबा हरिदास हाथ पक्यो श्रीराग सिखायो
पहले पहल ।

में औरन सों सीखो शाह मोहम्मद गौस पीर समान नायक बख्शू की समाधि में
पहले पहल ।

गुनीजन आवर ना कीनी सब मिलि कह्यो रस नाही तानसेन गुरु कर हम ना
सिखायो पहले पहल ।

तानसेन के प्रभु वाकवानी के परसाद गुरु हरिदास और कुलगुरु हृदय राख्यो बाहू के
चरन तरायौ पहले पहल ।

इस रचना की शैली और भाषा जहाँ स्पष्टतया यह कह देती है कि तानसेन की रचना नहीं है, वहाँ इसमें हजरत गौस को 'संगीतज्ञ' भी घोषित किया गया है, जो वास्तविकता के विपरीत है। साथ ही, इसमें बताया गया है कि तानसेन ने नायक बख्शू की समाधि पर पहले-पहल संगीत सीखा। सन् १५१६ ई० में तानसेन समर्थ ध्रुवपद-कार थे। उस समय ग्वालियर के दरबार में जीते-जागते बख्शू विद्यमान थे, जो कि बहादुरशाह के राज्यकाल (सन् १५३७ ई०) में भी जीवित रहे। फलतः, बख्शू की समाधि पर तानसेन की प्रथम शिक्षा की बात सर्वथा असंगत है और तानसेन को हरिदास ढागुर का शिष्य सिद्ध करने के प्रयोजन से गढ़ी गई है, जो कि वास्तव में तानसेन से कनीय (जूनियर) थे।

कुछ ध्रुवपदों में 'ज्ञानगुरु' नामक एक ध्रुवपदकार तानसेन को उपदेश-सा करते हुए प्रतीत होते हैं। सम्भव है, वे भी तानसेन के गुरु हों।^१

तानसेन की योग्यता : फखरुल्लाह ने तानसेन को 'अताई' लिखा है। 'अताई' की परिभाषा करते हुए 'रागदर्पण' में कहा गया है कि जो कोई 'इल्म' का 'अमल' (प्रयोगमात्र) जानता हो, उसे 'अताई' कहते हैं। फखरुल्लाह की दृष्टि में तानसेन अशिक्षित थे।^२

'अशिक्षित' और 'निरक्षर' पर्यायवाची नहीं है। अकबर स्वयं लिखना-पढ़ना नहीं जानता था, परन्तु 'बहुश्रुत' था। इसी भाँति तानसेन की बहुश्रुतता में सन्देह नहीं है।

मिश्रबन्धुओं ने 'रागमाला', 'संगीतसार' एवं 'गणेशस्तोत्र' नामक तीन रचनाओं को तानसेन-कृत बताया है। सन् १६०७ ई० में काशी के लहरी प्रेस से 'रागमाला' का प्रकाशन हुआ था। 'संगीतसार' की पाण्डुलिपि रीवाँ में सुरक्षित है। 'गणेशस्तोत्र' उपलब्ध नहीं है।^३ इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता विवादास्पद है।^४

१. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० १३२ ।

२. रागदर्पण, नवाँ बाब; 'मअदन्-उल्'-मूसिकी, पृ० २५ ।

३. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ, पृ० २० ।

४. उपरिवत्, पृ० २१ ।

तानसेन-कृत ध्रुवपदों की संख्या जहाँगीर के अनुसार सहस्रों है,^१ जो पूर्ण संख्या में प्राप्त नहीं होते। नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ' में तानसेन के दो सौ सैतालीस ध्रुवपद दिये हैं^२ और 'कवि तानसेन और उनका काव्य' में भी वे ही ध्रुवपद प्रकाशित किये हैं।^३

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि' में एक सौ बयासी ध्रुवपद दिये हैं।^४

हमने परिशिष्ट 'अ' में 'अकबर' की मुद्रा से अंकित इकसठ ध्रुवपद दिये हैं^५ और परिशिष्ट 'आ' में तानसेन की मुद्रा से अंकित अठ्ठावन ध्रुवपद।^६ इनमें से अधिकांश ध्रुवपद अप्रकाशित हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि 'आईने अकबरी' और 'इकबालनामः जहाँगीरी' से यह सिद्ध है कि तानसेन 'अकबर' का नाम अपने अधिकांश ध्रुवपदों में डाल दिया करता था।^७

तानसेन-रचित ध्रुवपदों से ज्ञात होता है कि वह संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों में छानबीन किया करता था।^८ 'संगीतरत्नाकर' जैसा प्रामाणिक ग्रन्थ अकबर और उसके कलाकारों के विचार का विषय रहता था। इन गोष्ठियों में तानसेन उपस्थित रहते थे।^९

तानसेन के कुछ रहस्यमय ध्रुवपद बताते हैं कि संगीत के लुप्तप्राय रहस्यों से भी उनका प्रगाढ़ परिचय था।^{१०}

पूर्ववर्ती गुणीजनों, गुरुओं, समसामयिक पण्डितों एवं कलाकारों की कृतियों से उनका भली भाँति परिचय था। बैजू और बख्श की रचनाएँ उनके समक्ष थीं, फलतः उनके ध्रुवपदों में देवस्तुति, प्रताप-वर्णन, कृष्णभक्ति, ऋतुवर्णन, पर्वोत्सव, नायिका-भेद के उदाहरण, निराकार की भक्ति इत्यादि अनेक विषय हैं, जिनका निर्वाह उन्होंने भली भाँति किया है।

उनमें कवि की दृष्टि एवं प्रतिभा भली भाँति उजागर हुई है, जिसका विवेचन यथास्थान किया जायगा।

१. अकबरनामः, खं० २, पाद-टिप्पणी, पृ० २७६।

२. सं० क० हि० २०, पृ० ८५, १३६।

३. उपरिचत्, पृ० ६२, १५०।

४. अ० द० हि० क०, पृ० ३८८, ४१८।

५. परिशिष्ट अ, २५, ८५।

६. परिशिष्ट आ, १७, ७४।

७. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ४४५; अकबरनामः, खं० २, पाद-टिप्पणी, पृ० २७६।

८. परिशिष्ट अ, ३२।

९. उपरिचत्।

१०. परिशिष्ट आ, ७०।

तानसेन के आश्रयदाता . यह सिद्ध किया जा चुका है कि मानसिंह तोमर से तानसेन को संरक्षण मिला था और उनके पुत्र विक्रमाजीत से उपाधि । ग्वालियर पर लोदी-वंश का अधिकार हो जाने के पश्चात् यह सर्वथा सम्भव है कि तानसेन अपनी साधना को परिमार्जित करने के लिए स्वामी हरिदासजी की सेवा में चले गये हों ।

काजी मेराज धौलपुरी का कथन है कि शेख मुहम्मद गौस पर मुगलवश (बाबर और हुमायूँ) की कृपा रही थी और उस वश से शेख को एक करोड़ 'तनकः' (तंके) की जागीर मिली थी । इसीलिए, शेरशाह शेख मुहम्मद गौस को भाति-भाँति के कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया करता था । फलतः, शेख मुहम्मद गौस सन् १५४२ ई० में गुजरात चला गया, जहाँ बहादुरशाह का पुत्र महमूद शासन कर रहा था । काजी साहब का इतना कथन तो ऐतिहासिक तथ्य है, परन्तु हजरत मुहम्मद गौस से तानसेन को सम्पृक्त करने के लिए काजी साहब ने इतना अपनी ओर से जोड़ दिया है कि इस यात्रा में अपने पीर हजरत मुहम्मद गौस के साथ तानसेन भी थे ।^१ यथास्थान बताया जा चुका है कि वाजिद अलीशाह-कालीन लेखक मुहम्मद करम इमाम अपनी पुस्तक 'मअदन्-उल-मूसिकी' में हजरत गौस मुहम्मद और तानसेन के किसी पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा तक नहीं करता, परन्तु काजी मेराज धौलपुरी जो कुछ फरमाते हैं, उसका साराश है :

“वहाँ पहुँचने पर गुजरात के सुलतान ने तानसेन को गाने के लिए बुलाया, हजरत मुहम्मद गौस ने तानसेन को इजाजत दे दी । सुलतान की एक कंचनी मल्हार गाते-गाते अपनी नथ कुएँ में डाल देती थी, तो कुएँ का पानी उबल जाता था । तानसेन ने भी मल्हार गाया, तूफानी वारिश शुरू हो गई । सुलतान ने घबराकर शेख मुहम्मद गौस के पास हरकारा भेजा । तानसेन को रोकने के लिए शेख मुहम्मद गौस के पुत्र हजरत अब्दुल्ला शाह साहब भेजे गये, जिन्होंने राग में डूबे हुए तानसेन के सिर पर हाथ रखकर उनका जोश ठण्डा किया, पानी रुक गया । सुलतान ने तानसेन को इनाम दिया, उन्होंने न लिया । नौकरी करने के लिए कहा, तानसेन ने वह भी न की और ग्वालियर चले आये ।”

काजी साहब अपने उपर्युक्त कथन का कोई आधार नहीं देते । एक और कहानी भी काजी साहब ने लिखी है, जिसका साराश यह है :

“तानसेन का नाम सुनकर बैजू उनसे मिलने के लिए ग्वालियर पहुँचे, तानसेन उस वक्त अपने गाँव बेहट में थे । उनतक पहुँचने के लिए बैजू को नदी पार करनी पड़ी, बैजू के कपड़े मैले हो गये थे । एक धोबिन वहाँ कपड़े धो रही थी, उसने मल्हार राग गाकर पानी बरसाया और उस पानी से बैजू के कपड़े धोये, पूछने पर बैजू को पता चला कि वह तानसेन की धोबिन है । बैजू तानसेन से मिलने गये और एक राग गाकर हिरन बुलाया और अपनी माला उसके गले में डाल दी, हिरन चला गया । तानसेन ने गाकर

बहुत-से हिरन बुला दिये, जिन सबके गले में बैजूवाली माला जैसी मालाएँ पड़ी हुई थी। बैजू शरमाये। तानसेन ने गाना बन्द किया, तो वही हिरन रह गया, जिसके गले में बैजू की माला थी। तानसेन ने एक राग और गाया, जिससे पत्थर पिघल गया, तानसेन ने अपने मँजीरे उसमें गाड़ दिये। गाना बन्द करने पर पत्थर जम गया और उसमें मँजीरे भी जमकर रह गये। बैजू गाना गाकर पत्थर न पिघला सके, जिससे मँजीरे निकल जायँ।”^१

जो किंवदन्ती बैजू और गोपाल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है, उपर्युक्त पंक्तियों में वह तानसेन और बैजू से सम्बद्ध कर दी गई है।

शिर्वांसिंहसरोज के अनुसार, तानसेन सूरवंश के राज्याश्रय में रहे थे। शेरशाह का पुत्र दौलत खाँ उनका प्रशसक था और उसकी सुरक्षा में ये कई वर्ष रहे। काजी मेराज धौलपुरी ने दौलत खाँ को शेरशाह के पुत्र सलीमशाह का प्रेमपात्र बताया है। कोषाध्यक्ष को आज्ञा थी कि वह प्रतिदिन दौलत खाँ को एक लाख ‘तनकः’ (टंक) दे दिया करे।^२ दौलत खाँ के रूप की प्रशंसा में दो ध्रुवपद प्राप्त हैं।^३ सलीमशाह (इस्लामशाह) की प्रशंसा से युक्त ध्रुवपद उपलब्ध है।^४ उस समय के ध्रुवपदकार अपनी रचनाओं में अपने आश्रयदाताओं के नाम डाल दिया करते थे। यह सम्भव है कि इन ध्रुवपदों के रचयिता तानसेन हों। कोई ऐसा तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जो इस्लामशाह एवं दौलत खाँ के साथ तानसेन का सम्बन्ध बताता हो।

ब्लॉकमैन का कथन है कि इब्राहीम सूर तानसेन को आगरा बुलाने में असफल हुआ था।^५ इब्राहीम सूर ने दिल्ली और आगरा का घेरा सन् १५५४ ई० में डाला था।

सलीमशाह के साले मुहम्मद आदिल शाह ‘अदली’ के दरबार में तानसेन रहे थे और उसे गुरुवत् समझते थे।^६ इस्लामशाह (सलीमशाह) के दरबारी गायक बाबा रामदास भी थे।^७ इतिहास-प्रसिद्ध हेमूँ मुहम्मद आदिलशाह के प्रधानमन्त्री रहे थे, इन्होंने मुगलों को हराकर आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया था।

१. शिर्वांसिंहसरोज, पृ० ४२४।

२. ‘आजकल’, म्यू० नं०, पृ० ६३।

३. परिशिष्ट अ, २०-२१।

४. परिशिष्ट अ, १७, १६।

५. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ६८१।

६. “Adli was so highly skilled in singing and dancing that Miyan Tansin (Tansen?) the well-known Kalawant who is a Past master in this art used to own to being his pupil.” —Munt. Vol. 2, p. 557.

७. “Ramdas of Lakhnau who was one of musicians of Aslim Shah”.

—Munt. Vol. 2, p. 37.

अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण प्रायः इस समय तानसेन रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र के दरबार में गये । राजा रामचन्द्र महान् विद्याव्यसनी, संगीत-शास्त्र-मर्मज्ञ एवं गुणियों के आश्रयदाता थे । बदायूँनी का कथन है कि एक अवसर पर राजा रामचन्द्र ने तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कार-स्वरूप दी थी ।^१

जैन खाँ नामक गायक ने अकबर के समक्ष तानसेन की भूरि-भूरि प्रशंसा करके तानसेन के प्रति अकबर की उत्सुकता जागरित की थी ।^२ जैन खाँ स्वयं भी पहले राजा रामचन्द्र के आश्रय में था । परिणाम-स्वरूप, अकबर ने तानसेन को बुलवा भेजा ।^३ बदायूँनी का कथन है कि तानसेन अकबर के दरबार में आना नहीं चाहते थे, अतः जलाल खाँ कूर्ची को उन्हें लेने भेजा गया, जो तानसेन का दिमाग ठिकाने ले आया ।^४ अबुल फजल ने इस बल-प्रयोग की बात को 'अकबरनामा' में छिपाया है,^५ परन्तु 'आईने-अकबरी' में स्वीकृत किया है ।^६

१. "Ramchand in his natural dispositions was of such high spirit, that he has none equal in our days. And among his presents was this : he gave in one day a krur of gold-pieces to Miyan Tansingh, (Tansen?), the musician." —Munt. Vol. 2, p. 345.

२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ६५ ।

३. "Jalalkhan Qurchi, who was a favourite servant was sent with a gracious order to the Rajah for the purpose of bringing Tansen".

—Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. "Miyan Tansen did not wish to leave him. Finally Jalalkhan Qurchi came and brought him back to his sense of duty."

—Munt. Vol. 2, p. 345.

५. "Tansen, who was the foremost of the age among the Kalawants of Gwalior came to the royal hearings and it was reported that he meditated going into retirement and that he was spending his days in attendance on Ramchand the Rajah of Panna, H. M. ordered that he should be enrolled among the court musicians."

—Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

६. "Ramchand was the patron of the renowned musician and singer Tansen, regarding whom vide the list of musicians at the end this book. His fame had reached Akbar, and in the seventh year, the Emperor sent Jalal-uddin Qurchi to Bhatta, to induce Tansen to come to Agra. Ramchand feeling himself powerless to refuse Akbars' request, sent his favourite, with his musical instruments and many presents to Agra."

—Ain. Akbari, blochman, H. S., p. 445.

बदायूँनी के कथन से यह सिद्ध है कि तानसेन अकबरी दरबार में आना नहीं चाहते थे और 'आईने अकबरी' में भी यह स्वीकृत किया गया है कि जलाल खाँ को भेजे जाने का तात्पर्य तानसेन को अकबरी दरबार में आने के लिए सहमत करना था। 'आईने अकबरी' में यह भी स्वीकृत किया गया है कि रामचन्द्र ने अकबर की माँग को अस्वीकृत करने में अपने को असमर्थ पाकर तानसेन को अकबरी दरबार में भेज दिया।

'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार, रामचन्द्र ने सौ हाथी और दो-तीन सौ सवार अफगान वगैरः तानसेन के साथ भेजे थे और हीरे-जवाहरात भी साथ में थे। 'आईने अकबरी' में कहा गया है कि तानसेन के साथ बहुत-सी भेंटें थी।^१ 'अकबरनामः' में यह कहा गया है कि तानसेन के साथ उपयुक्त उपहार राजा रामचन्द्र ने भेजे, जिनमें प्रसिद्ध हाथी एवं महत्वपूर्ण रत्न थे।^२

'अकबरनामः' के अनुसार, शाहंशाह अकबर ने प्रसन्न होकर तानसेन की आशा-रूपी अंजलि को धन के उपहारों से भर दिया, तानसेन को सर्वोच्च पद प्रदान किया गया।^३ 'आईने अकबरी' के अनुसार, जब तानसेन ने अकबरी दरबार में सर्वप्रथम कला-प्रदर्शन किया, तब शाहंशाह अकबर ने तानसेन को दो लाख रुपये दिये।^४ 'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार पहली मजलिस में अकबर ने तानसेन को एक करोड़ दाम (एक लाख रुपये) दिये।

रामचन्द्र जैसे राजा ने एक बार में ही एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ तानसेन को दी थी और अकबर ने प्रथम अनुग्रह एक या दो लाख रुपयों के रूप में किया। यह स्थिति अकबर और रामचन्द्र को उदारता की दृष्टि से यथास्थान रख देती है। प्रत्यक्ष है कि धीरे-धीरे तानसेन अकबरी दरबार में रहने के अभ्यस्त हो गये होंगे, परन्तु यावज्जीवन वे राजा रामचन्द्र के स्नेह, गुणज्ञता तथा उदारता को नहीं भूले होंगे। इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाले ध्रुवपद प्राप्त हैं।^५

अकबरी दरबार में तानसेन का स्थान :

दरबार में आते ही तानसेन को दरबारी गायकों में सर्वोच्च स्थान देने का प्रयोजन उनके हृदय से रामचन्द्र के वियोग का दुःख दूर करने की चेष्टा, उनकी आत्मा को मोल

१. "Ramchand...sent his favourite, with his musical instruments and many presents to Agra." —Ain. Akbari, bloch. p. 445.

२. "And sent back with him suitable presents of elephants of fame and valuable jewels." —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

३. "H. M. The Shahanshah was pleased and poured gifts of money into the lap of his hopes. His cap of honour was exalted above all others." —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. "And the first time that Tansen performed at court, the Emperor made him a present of two lacs of rupees,"

५. परिशिष्ट आ, ३४ ।

लेने का प्रयत्न और उनके द्वारा शाहंशाहे वक्त (अकबर) का विरुद-गान कराना था। भय अथवा लोभ से तानसेन झुके या बिके। समकालीन इतिहासकारों के लेखों से तानसेन पर अकबरी प्रताप का आतक ध्वनित होता है, परन्तु वाजिद अलीशाह की सम्मति के अनुसार, लोभ ने तानसेन को गिराया।^१ हम तो तानसेन की विवशता को इसका प्रधान कारण समझते हैं, धीरे-धीरे उनकी अन्तरात्मा घुटकर रह गई होगी।

साधारणतया तानसेन दिन के समय दरबार में खड़े होकर गाते थे। रात्रि के समय एवं विशिष्ट उत्सवों में तानसेन तथा अन्य संगीतज्ञों को बैठकर गाने-बजाने की अनुमति थी। इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय को गवैयो की इस स्थिति का परिचय मुगल-राजदूत असदबेग ने दिया था।^२

‘अकबरनाम.’ में कहा गया है कि तानसेन के अनुकूल स्वभाव के कारण उन्हें अकबर का सामीप्य मिला।^३ ‘आईने अकबरी’ में कहा गया है कि तानसेन की अधिकांश रचनाएँ ‘अकबर’ की मुद्रा से अंकित हैं।^४ ‘इकबालनाम.’ से भी इस कथन की पुष्टि होती है कि तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की, उनमें से अधिकांश में अकबर का नाम डाल दिया।^५

तानसेन की सन्तानें : अबुल फजल ने तानसेन के पुत्र तानतरंग खाँ की गणना अकबर के प्रधान संगीतज्ञों में की है।^६ तानसेन के एक और पुत्र विलास खाँ की चर्चा ‘बादशाहनामः’ में है।^७

१. “मियाँ तानसेन ने इसे जरिये आमदनी बताकर अकबर के सामने हिंस का हाथ फैलाया। तानसेन की इस हरकत से गाने-बजाने का असर मिट्टी के बराबर हो गया।” —सौतुल्मुबारक, पृ० ४१; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २१।

२. “He (Adil-Shah II) then enquired of the Mughal envoy whether Tansen stood or sat while singing before the Emperor and was told that in the Darbar at day time he had to stand while singing, but at night and on festive occasions Tansen and other musicians were allowed to take their seats while engaged in their performance.” —Kitáb-e-Nauros, Introduction, p. 49.

३. “As he had an upright nature and an exceptable desposition. He was cherished by a long service and association with H. M.” —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. “Most of his compositions are written in Akbar’s name.” —Ain. Akbari, Bloch, p. 445.

५. “He (Jahangir) adds the several thousands of his compositions are still extant and that many of them are named after Akbar” —Akbarnama, vol 2, footnote, p. 279.

६. Ain. Akbari : Bloch. p. 681-682.

७. Ain Akbari : Bloch. p. 680, footnote (reference to Badshahnama.)

रागदर्पणकार फकीरुल्लाह भी तानसेन के पुत्र विलास खाँ की चर्चा करता है ।^१ तानसेन के दो अन्य पुत्रों—सूरतसेन तथा हमीरसेन की चर्चा भी 'रागदर्पण' में है ।^२

प्रतीत होता है कि तानसेन के कोई मुस्लिम-उपपत्नी थी, जिससे तानतरंग खाँ और विलास खाँ उत्पन्न हुए थे और हिन्दू-पत्नी की सन्तान सूरतसेन थे । मियाँ तानसेन के पोते सोहिलसेन तथा उसके पुत्र (अर्थात् तानसेन के परपोते) सुधीनसेन को भी फकीरुल्लाह ने चर्चा का विषय बनाया है ।^३

मुहम्मद करम इमाम ने 'रागदर्पण' के इस अंश का अनुवाद 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में दिया है, परन्तु भूल से 'सूरतसेन पिसरे तानसेन' (तानसेन के पुत्र सूरतसेन) के स्थान पर 'सूरतसेन खलफुस्सद्क तानसेन सानी' (तानसेन द्वितीय का पुत्र सूरतसेन) कर दिया है ।^४ तानसेन को बलात् मुसलमान घोषित करनेवाले मुहम्मद करम इमाम की पोल तानसेन के हिन्दू-पुत्र सूरतसेन का अस्तित्व खोल देता है, अतः करम इमाम ने सूरतसेन को तानसेन द्वितीय का पुत्र घोषित कर डाला है । रामपुर की रजा लाइब्रेरी में सुरक्षित 'रागदर्पण' की प्राचीनतम प्रति में सूरतसेन के पिता तानसेन के साथ 'सानी (द्वितीय)' शब्द नहीं है । मूल 'रागदर्पण' में सोहिलसेन को 'मियाँ' तानसेन का पोता बताया गया है, परन्तु मुहम्मद करम इमाम ने सोहिलसेन को तानसेन का पोता बताकर तानसेन से पूर्व 'मियाँ' शब्द का लोप कर दिया है ।^५ सोहिलसेन के पुत्र, अर्थात् तानसेन के प्रपौत्र सुधीनसेन की चर्चा भी रागदर्पण में है,^६ जो मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, 'सोदससेन' है । यहाँ कुछ मनोरंजक कल्पनाएँ प्रस्तुत हैं :

अ. राजा समोखनसिंह राजपूत रहेलखण्ड-प्रदेश में 'खण्डहर' स्थान के रहने-वाले थे । इन्होंने अकबर को प्रसन्न करने के लिए इस्लाम अंगीकृत किया और इनका नाम नौबात खाँ रखा गया ।^७

इन समोखनसिंह की कोई चर्चा 'आईने अकबरी' में निर्दिष्ट अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में नहीं है । मुहम्मद करम इमाम ने समोखनसिंह को रहेलखण्ड का राजपूत कहा है और रामपुर के स्वर्गीय वजीर खाँ ने इन समोखनसिंह को किशनगढ़ के राजवंश से सम्पृक्त करके इन्हें सूर्यवंशी राठौर घोषित करके स्वयं को इनका वंशज कहा है ।^८

१. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब ।
२. उपरिवत्, दसवाँ बाब ।
३. उपरिवत् ।
४. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २५ ।
५. उपरिवत्, पृ० २६ ।
६. उपरिवत् ।
७. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३३ ।
८. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृ० २१७ ।

अकबर को प्रसन्न करने के लिए किशनगढ़-राजघराने के व्यक्तियों का मुसलमान होना किसी इतिहास या अकबरी नीति से प्रमाणित नहीं है ।

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि वजीर खाँ समोखनसिंह का मुस्लिम नाम नौबात खाँ बताते हैं ।^१ और, समोखनसिंह के पुत्र मिसरीसिंह का नाम भी नौबात खाँ बताते हैं ।^२

यह भी कहा जाता है कि समोखनसिंह प्रसिद्ध बीनकार थे, मुसलमान हो जाने के बाद उनका नाम नौबात खाँ रखा गया, फिर यह तानसेन के जमाई (जामाता) हो गये ।^३ यह कहनेवालों की भी कमी नहीं है कि अकबर के दरबार में प्रसिद्ध बीनकार मिसरीसिंह थे, जो तानसेन की कन्या से विवाह करने के बाद मुसलमान हो गये थे । ये मिसरीसिंह सरस्वती-वीणा के वादन में इतने प्रवीण थे कि तानसेन भी इनसे हार मानते थे ।^४

वास्तविकता यह है कि तानसेन की लड़की या समोखनसिंह की कोई चर्चा इतिहास में नहीं । तानसेन को अकबरी दरबार में सर्वोच्च पद प्राप्त होना अबुल फजल के लेखों से सिद्ध है, किसी समोखनसिंह या मिसरीसिंह से तानसेन के पराजित होने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

तानसेन के पुत्र विलास खाँ की लड़की का विवाह लाल खाँ से हुआ था, जिसे शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' की उपाधि दी थी । लाल खाँ विलास खाँ का शिष्य था । इस तथ्य का वर्णन रागदर्पणकार फकीरुल्लाह ने किया है,^५ परन्तु समोखनसिंह को तानसेन का दामाद सिद्ध करने के लिए करम इमाम ने लाल खाँ के वर्णन से यह तथ्य जान-बूझकर उड़ा दिया है कि लाल खाँ विलास खाँ के दामाद थे ।^६

विलास खाँ के एक शिष्य मिसरी खाँ ढारी की चर्चा फकीरुल्लाह और करम इमाम, दोनों ने की है, जो शुजा के साथ बंगाल में रहता था और सत्तर वर्ष से अधिक की आयु में वही मरा । यदि विलास खाँ की किसी पुत्री का विवाह इसके साथ हुआ होता, तो फकीरुल्लाह इसकी चर्चा अवश्य करता; क्योंकि लाल खाँ के साथ विलास खाँ की पुत्री के विवाह की चर्चा उसने की है ।

रामपुर के स्वर्गीय वजीर खाँ ने अपना जो वंशवृक्ष भातखण्डेजी को दिया था, उसमें आरम्भिक सात पीढ़ियों में इन सात सज्जनों को क्रमशः गिनाया है : १. बड़े नौबाद (त)

१. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृ० २१७ ।

२. उपरिचत्, पृ० २१८ ।

३. उपरिचत्, पृ० २१६ ।

४. ध्वनि और संगीत, पृ० २७३ ।

५. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, दसवाँ बाब; बादशाहनामः, २-६, 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०७ ।

६. मअदन्-उल्-मसिकी, पृ० २६ ।

खाँ (समोखनसिंह बीनकार), २. शेर खाँ, ३. हुसेन खाँ, ४. असत खाँ, ५. लाल खाँ, ६. बेनजीर खाँ, ७. असत खाँ (?) । इसमें खुशहाल खाँ को असत खाँ का पुत्र बताया गया है ।

यह वंशवृक्ष कल्पित है और इसमें अनेक ऐसी असंगतियाँ हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध हो जाती हैं । 'बादशाहनामः' तथा 'रागदर्पण' से सिद्ध है कि खुशहाल खाँ विलास खाँ के दौहित्र तथा लाल खाँ के पुत्र थे । उपर्युक्त वंशवृक्ष में एक लाल खाँ खुशहाल खाँ के परदादा है, तो दूसरे लाल खाँ उनके पुत्र । खुशहाल खाँ के पिता लाल खाँ का इसमें पता तक नहीं है ।

विलास खाँ के दामाद लाल खाँ के अतिरिक्त एक अन्य लाल कलावन्त की चर्चा 'आईने अकबरी', 'तुज्जके जहाँगीरी' तथा 'इकबालनामः जहाँगीरी' में आती है । यह बचपन से अकबर की सेवा में था और जहाँगीर के राज्यकाल (सन् १६०८ ई०) में सत्तर वर्ष की आयु भोगकर मर गया ।^१ इसका जन्म सन् १५४८ ई० में हुआ, जबकि अकबर छह वर्ष का था । अकबर के राज्यारोहण-काल (सन् १५५६ ई०) में इसकी आयु आठ वर्ष की थी । यदि इस लाल कलावन्त को उपर्युक्त वंशवृक्ष का लाल खाँ प्रथम समझा जाय, तो समोखनसिंह इससे चार पीढ़ी पूर्व रखे हुए है, जिनका कोई उल्लेख अकबरी दरबार के अथवा पश्चाद्वर्ती किसी इतिहासकार ने नहीं किया है । तानसेन की किसी लड़की का विवाह इन समोखनसिंह के साथ होना सम्भव नहीं । अकबरी दरबार में आकर सन् १६६२ ई० के पश्चात् तानसेन उस समोखनसिंह को लड़की देगे, जो बारह वर्ष के लाल खाँ का परदादा हो, इस बात का कहना ही बुद्धि के दिवालियेपन का परिचय देना है ।

'मिराति आफताबनुमः' के पृ० ३६२ पर नेमत खाँ (न्यामत खाँ 'सदारंग') का वृत्त दिया हुआ है । इनके पिता का नाम प्रमोल खाँ है । वजीर खाँ द्वारा कल्पित वंशवृक्ष में सदारंग का पितृत्व किसी लाल खाँ सानी को दे दिया गया है ।

मुहम्मद करम इमाम वजीर खाँ के पूर्वजों से परिचित था, वह प्यार खाँ को छज्जू खाँ का पुत्र बताता है और जीवन खाँ को प्यार खाँ का बहनोई कहता है,^२ परन्तु वजीर खाँ द्वारा बनाये हुए वंशवृक्ष में जीवनशाह और प्यार खाँ भाई-भाई हैं और उनके पितृस्थान में महावत खाँ की नियुक्ति कर दी गई है । मुहम्मद करम इमाम ने लिखा है कि छज्जू खाँ के पुत्र प्यार खाँ निःसन्तान थे, अतः इन्होंने अपने भाँजे बहादुर हुसेन खाँ को गोद ले लिया था,^४ बहादुर हुसेन खाँ के पिता जीवन खाँ हुए, जो प्यार खाँ के बहनोई थे ।

१. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ १०६ ।

२. उपरिचत्, पृ० १०८ ।

३. मअदन् उल्-मूसिकी, पृ० ३३ ।

४. उपरिचत् ।

वजीर खाँ द्वारा भातखण्डेजी को लिखाये हुए वंशवृक्ष में जीवनशाह के पुत्र छोटे नौबात खाँ और निर्मलशाह दिखाये गये हैं, बहादुर हुसेन खाँ का कहीं पता नहीं है।

दिवगत महापुरुषों की परम्परा का सम्बन्ध अपने वंश से जोड़कर लोगों की श्रद्धा एवं रजवाडों से रोटी प्राप्त करने का प्रयत्न कलाकार करते रहे हैं। वजीर खाँ द्वारा प्रस्तुत वंशवृक्ष ऐसे प्रयत्नों का अन्यतम उदाहरण है।

वजीर खाँ के पूर्वज नवाब शुजाउद्दौला के जमाने में लखनऊ जाकर बसे।^१ शुजाउद्दौला की मृत्यु-तिथि २६ जनवरी, १७७५ ई० है। सम्भवतः, इसी युग में इन लोगों ने लखनऊ-निवासियों की दृष्टि में श्रद्धा-भाजन बनने के लिए समोखनसिंह के मुसलमान होने, तानसेन की लड़की से उनका विवाह होने और स्वयं को उनका वंशज बताने की कहानी गढ़ी। इस कहानी से इन्हें लाभ अवश्य हुआ और ये दूसरे कलाकारों की अपेक्षा विशिष्ट समझे जाने लगे। मुहम्मद करम इमाम पर भी इस कहानी का प्रभाव पड़ा और उसने भी इन्हें समोखनसिंह का वंशज मान लिया।^२

तानसेन और अकबर :

‘इकबालनामः जहाँगीरी’ के अनुसार ‘अकबर तानसेन को प्रतिदिन किसी-न-किसी बहाने द्रव्य और सामग्री देता रहा।^३ तानसेन ने अकबर को जगद्गुरु एवं नर-नारायण कहा,^४ यह भी कहा कि वह मुझ पर मिहरबान है, मैंने तभी (उसके) चरण छुए हैं। वह जन्म-जन्म के दुःख और दारिद्र्य काट देता है।^५

१. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० ३४।

२. उपरिवत्।

३. इकबालनामः जहाँगीरी, रामपुर-प्रति।

४. (क) “रचि पचि विरंचि कीनो लीनो साहि अकबर तीन लोक नाथ माथे करि धरिय भार मेरे गुन अधार निरधार। नर नाराइन रागप (राजत) सोई विचित्र धन दीदार पायनि परि संसार जुहार। गरीबनिवाज लाजकाज साहिनि सिरताज ताज कौ कियो विचार। तानसेन के प्रभु उनचास कोटि वसत वसन वसन कहिन सकत जलालदीन मोहम्मद को अवतार।”—रागमाला, १२४ अ।

(ख) “साहि अकबर जगतगुरु जलालदीन उक्ति जामै बिना न करत महाबली।”

—परिशिष्ट अ, ४७।

५. “आलमपनाह साहि अकबर चिरंजीवी होइ जाके निस्तारन कों करौ निहाल अपने सुभाइ। अल्ला कियो तखत बखत मो पर मिहरबान सकल नाम (नरन ?) प्रभात (प्रभाव ?) ते हौं तब ही परसे पाय। जनम जनम के दुख दालिद काटत है और देत अधार। साहि अकबर बुजरग मुरसद गावे (जामै) अलहि पाय सोई न्यामति देत अघाइ।

—रागमाला, ५८ अ।

दीन-इलाही के प्रवर्तक अकबर ने इस नवीन धर्म के प्रचार के लिए अनेक शोखों और फकीरों को अपना 'मुरीद' (शिष्य) बनाया था।^१ ऐसे ही बुजुर्गों और फकीरों को अकबर में अल्लाह के दर्शन होते होंगे।

तानसेन के मरने पर अकबर ने कहा : "तानसेन की मृत्यु राग की मृत्यु है। ऐसा प्रतीत होता है कि सहस्रों वर्षों से माधुर्य एवं कला में तानसेन के समान कोई नहीं हुआ।"^२ अकबर के इस भावपूर्ण उद्गार को अबुल फजल ने 'आईने-अकबरी' में अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची देते समय इस भाँति अंकित किया : "तानसेन जैसा गायक पिछले सहस्र वर्षों से भारतवर्ष में नहीं हुआ।^३ अकबर की यह उक्ति तानसेन के लिए प्रमाणपत्र बनकर रह गई।

तानसेन पर मुस्लिम-प्रभाव :

जिस प्रकार मुसलमान गायक आज तक देशी हिन्दू-नरेशों के दरबारों में गणेश, सरस्वती तथा अन्य देवताओं की स्तुतियाँ आजीविका के लिए गाते रहे हैं और ऐसे गीतों की रचना करते रहे हैं, उसी प्रकार तानसेन को भी मुस्लिम-रुचि के धार्मिक गीतों का निर्माण और गान करना पड़ा।^४ ऐसे गीतों की रचना विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से की गई। इनमें मुहम्मद और अली की प्रशंसा है।

जिस समय तानसेन अकबरी दरबार में आये, अकबर कट्टर सुन्नी मुसलमान था। सन् १५७४ ई० तक उसकी यह प्रवृत्ति रही थी।^५ वह विलासी भी कम नहीं था, सन् १५६८ ई० में उसने अवैध विवाह भी किये थे।^६ रखेलियाँ रखने की प्रवृत्ति भी उस समय सामान्य थी। मुल्ला बदायूँनी जैसे कट्टर मुल्ला भी रूपवती दासियों के चक्कर में

१. "A sect of Shaikhs, who had the impudence to call themselves disciples, like the followers of His Majesty, and were generally known as Ilahis..."—Akbar . Smith, p. 221.

२. "H. M. said that his (Tansen's) death was the annihilation of melody. It seems that, in a thousand years, few have equatted him for sweetness and art."—Akbarnama, Vol. 2, p. 880.

३. "Miyan Tansen of Gwalior, A singer like him has not been in India for the last thousand years.—Ain. Akbari, Bloch., p. 445.

४. "चारौ चक चकता लीअें अकबर गहैं समसेर मरदान अली जम सेर ।
महमद अली की सेवा सुमिरन जौ उबरौं अबरे वली गर मेर ।
असपती, गजपती, मूअपति राजा साहि के दरबार रहत भीरा भीर ।
कहैं मीअ्रां तानसेन धूअ अटल जैसै गंग सुमेर ।"—परिशिष्ट आ, ३७।

५. अकबर, पृ० २२७।

६. उपरिबत्, पृ० ३२३।

पड़ जाते थे ।^१ ऐसी स्थिति में यह सर्वथा सम्भव था कि तानसेन अपने यौवनकाल में किसी मुस्लिम-गायिका या नर्तकी के फेर में पड़कर उससे प्रेम कर बैठे हो और उसी से तानतरंग खाँ और विलास खाँ का जन्म हुआ हो । मुस्लिम-उपपत्नी से उत्पन्न सन्तान आज भी मुसलमान ही मानी जाती है । हैदराबाद जैसी रियासतों में ऐसे अनेक प्रसिद्ध उदाहरण विद्यमान हैं । वहाँ की तत्कालीन रियासत के एक हिन्दू-प्रधानमन्त्री की मुस्लिम-पत्नी से उत्पन्न सन्तान आज भी मुसलमान मानी जाती है । अतः, तानतरंग खाँ और विलास खाँ के पिता तानसेन को मुस्लिम सन्तानों के कारण तो मुसलमान नहीं कहा जा सकता ।

तानसेन के पुत्र सूरतसेन की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है ।^२ अबुल फजल ने अकबरी दरबार के कलाकारों में सूरतसेन का उल्लेख नहीं किया है ।^३ इसका अर्थ यह है कि सूरतसेन की आयु तानतरंग खाँ से कम थी और वे अपनी हिन्दू-माँ की सन्तान थे । मुसलमान होने के पश्चात् तानसेन के पास हिन्दू-पत्नी होना और उसके द्वारा सन्तान को जन्म दिया जाना सम्भव नहीं । इससे यही सिद्ध होता है कि तानसेन मुसलमान तो नहीं हुए, परन्तु उनके कोई मुस्लिम-उपपत्नी अवश्य थी ।

सूफी-प्रभाव :

सन् १५७६ ई० तक अकबर पीरों और फकीरों का बहुत बड़ा भक्त था । वह बहुत दिनों तक प्रतिवर्ष अजमेर शरीफ की यात्रा करने जाता रहा था । सलीम के जन्म से कुछ पहले शेख सलीम चिश्ती पर अकबर की भक्ति हो गई थी । इनके स्थान सीकरी में अकबर अपनी राजधानी ले गया था; क्योंकि इन्हीं के आशीर्वाद से सन् १५६६ ई० के ३० अगस्त को सलीम का जन्म हो चुका था । शेख के नाम पर ही सलीम का नामकरण किया गया था । सलीम का जन्म शेख के झोंपड़े में ही हुआ था ।

दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया तथा ख्वाजा अजमेरी के मजार भी अकबर की श्रद्धा के केन्द्र थे । सन् १५७६ ई० तक अकबर प्रतिवर्ष जियारत के लिए अजमेर जाता था ।

सूफियों के मजारों पर गाना-बजाना सदा से होता चला आया है । अकबर की भक्ति उस ओर थी ही । अकबर के वेतनभोगी तानसेन को सूफी-फकीरों की स्तुति में गीतों की रचना भी करनी पड़ी । सम्भव है कि तानसेन की अपनी श्रद्धा भी इस ओर जागी हो; क्योंकि सूफियों के मजारों पर हिन्दू-मुसलमान दोनों ही जाते और मनोरथ-पूर्ति के लिए मनौतियाँ मानते थे ।

१. 'मजहरी नाम की लौण्डी से मुल्ला की नजर लड़ गई । लिखते हैं : "कुदरत के प्रकाश का वह नमूना था । मैं उसपर आशिक हो गया । उसके इशक ने ऐसा भाव मन में भर दिया कि साल भर बिसावर में पड़ा रहा ।"—अकबर, पृ० ११८ ।

२. रागवर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब ।

३. आईने-अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ४४५ ।

शेख सलीम को भी गाना-बजाना सुनने का बड़ा शौक था । तानसेन तथा अन्य शाही कलावन्त उनकी सेवा के लिए जाया करते थे । तानसेन की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व सन् १५८५ ई० तक अकबर की राजधानी सीकरी ही रही और सीकरी को राजधानी सन् १५७१ ई० में बनाया गया था । अपनी मृत्यु से चार वर्ष पूर्व तक तानसेन सूफी-वातावरण में रहे ।

जहाँगीर ने लिखा है कि अपनी मृत्यु के दिन भी शेख सलीम चिश्ती ने तानसेन को बुलवाकर उनका गाना सुना था ।

यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि तानसेन की रचनाओं पर सूफी-प्रभाव देखकर इस प्रभाव का सम्बन्ध ग्वालियर के शेख मुहम्मद गौस से जोड़ना संगत नहीं है ।

शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर के रहनेवाले थे और तानसेन भी । अतः, दोनों में परिचय असम्भव नहीं है । शेख मुहम्मद गौस ने ग्वालियर पर अधिकार करने में बाबर को मदद दी थी । शेरशाह के भय से शेख मुहम्मद गौस गुजरात भाग गये थे । तानसेन सूरवंश के बादशाहों के आश्रय में रहे थे ।

अकबर का राज्य होने पर शेख मुहम्मद गौस अपने पुत्रपौत्रों-सहित आगरा आये थे । शेख गदाई ने इनकी, गुजरात की एक गुप्त सन्धि का हाल बैरम खाँ को बता दिया । शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर भागे और वहाँ जाकर फकीर हो गये ।

सन् १५५९ ई० में मुहम्मद गौस से अकबर की मुलाकात हुई । मुहम्मद गौस ने अपना मुरीद बनने के लिए कहा और अकबर का हाथ पकड़कर बोले कि हमने आपका हाथ अपने हाथ में ले लिया है । अपनी विनम्रता एवं सभ्यता के कारण अकबर ने मुहम्मद गौस के इस अनुचित व्यवहार की उपेक्षा की । उसी रात को अकबर ने खूब शराब पी और गौस मुहम्मद के इस अनुचित व्यवहार की खिल्ली उड़ाई ।^१

अबुल फजल का कथन है कि शेख मुहम्मद गौस और उसके बड़े भाई शेख बहलोल विद्वत्ता और गुणों से शून्य थे, फिर भी पहाड़ों में रहकर अपनी फकीरी की धाक जमाते फिरते थे । अमीरों और राजाओं को धोखा देकर वे दोनों अपने गाँव और जमीन्दारी बनाते रहे । सन् १५६३ ई० की १० मई को शेख मुहम्मद गौस का देहान्त हो गया ।^२

उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए शेख मुहम्मद गौस और तानसेन का कोई पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता ।

तानसेन और दीन-इलाही :

तानसेन की मृत्यु से सात वर्ष पूर्व सन् १५८२ ई० में अकबर ने दीन-इलाही का झण्डा खड़ा किया था । साम्राज्य में इस नये धर्म की स्थापना के लिए जो परिषद् बुलाई

१. अकबरनामः, खं० २, पृ० १३३ ।

२. उपरिचत्, पृ० १३३-१३५ ।

गई थी, उसमें राजा भगवानदास ने कहा कि खुशी से विश्वास कर सकता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के पास खराब धर्म है, लेकिन यह भी बतलाना चाहिए कि नया धर्म कैसा है और उसके बारे में क्या राय है, जिससे कि हम उसपर विश्वास कर सकें। अकबर ने थोड़ी देर इसपर विचार किया, फिर राजा पर जोर देना छोड़ दिया।^१

दीन-इलाही में दीक्षित होने के लिए मानसिंह भी तैयार नहीं थे। उन्होंने अकबर से कहा था : “अगर चेला होने का अर्थ जान न्योछावर करना है, तो उसे आप अपनी आँखों से देख रहे हैं। यदि जरूरत हो, तो परीक्षा देने के लिए भी तैयार हूँ। जहाँतक मजहब का सवाल है मैं हिन्दू हूँ, मुझे इस नये मजहब की जरूरत नहीं।”^२

दीन-इलाही के पैगम्बर स्वयं बादशाह, खलीफा अबुलफजल और चौथे नम्बर के नेता राजा वीरबल थे। लोग बड़े शौक से ऊपर से या भीतरी मन से शाही दीन में शामिल हो रहे थे।^३

दीन-इलाही के विधि-विधान, सन् १५८२ ई० में, परिपद की ओर से नियुक्त कार्यालय ने सन् १५८३-१५८४ ई० में प्रचारित किये। सन् १५८८ से १५९४ ई० तक और भी आदेश निकले।^४

दीन-इलाही के अनुयायियों की संख्या हजारों नहीं, लाखों तक पहुँच गई थी।^५ दीन-इलाही स्वीकृत करनेवाले जिन अट्ठारह विशिष्ट व्यक्तियों के नाम एक सूची में मिलते हैं, उनमें तानसेन का नाम नहीं है, परन्तु तानसेन के कुछ ध्रुवपद उनपर ‘दीन-इलाही’ का प्रभाव सिद्ध करते हैं।^६ एक ध्रुवपद में कहा गया है : “घर-घर कौन डोलता फिरे। घट (हृदय) से ज्ञान बोल रहा है अथवा अल्लाह ही गतिशील है। शाह अकबर ने मक्खन छीन लिया। अब मेरे यहाँ कौन छाछ बिलोता फिरे?”

एक अन्य ध्रुवपद में अकबर के प्रति आत्मनिवेदन है और बताया गया है कि बुजुर्गों और मुर्शिदों को अकबर में अल्लाह दिखाई देता है।^७

सम्भव है, अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन भी उसके चेले हो गये हों। दीन-इलाही में दीक्षित व्यक्ति जलाये भी जा सकते थे और गाड़े भी जा सकते थे।^८

१. अकबर, पृ० २५३।

२. उपरिवत्, पृ० १४७।

३. उपरिवत्।

४. उपरिवत्, पृ० २५५।

५. उपरिवत्, पृ० २५७।

६. मेरे को घर-घर डोलें, घट तै ज्ञान बोलें कंथों अलहै डोलें।

माखन छीनि लियो साहि अकबर को मेरें छाछ बिलौवें ॥—परिशिष्ट अ, २६।

७. परिशिष्ट अ, २७।

८. अकबर, पृ० २५५।

यह तो निश्चित है कि सन् १५८६ ई० में तानसेन की जब मृत्यु हुई, अकबर के सिर पर दीन-इलाही की पैगम्बरी सवार थी। ऐसी स्थिति में शेख मुहम्मद गौस के मकबरे में तानसेन के शाव को गाड़ने के लिए और साथ में शाही कलाकारों को गाने-बजाने के लिए प्रेरित करना दीन-इलाही के पैगम्बर अकबर के लिए असम्भव था।

तानसेन के शिष्य :

तानतरंग खाँ : अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रधान कलाकारों की सूची में इनका स्थान सोलहवाँ रखा है। ये तानसेन के पुत्र थे और शिष्य भी।

मियाँचन्द : अकबरी दरबार के प्रधान गायकों की सूची में इनका स्थान पाँचवाँ है। 'रागदर्पण' के अनुसार, ये तानसेन के शिष्य थे।

सूरतसेन : रागदर्पणकार के अनुसार ये तानसेन के पुत्र और थोड़ा-बहुत पढ़े-लिखे भी थे। ये भी तानसेन के शिष्य थे। अबुल फजल की सूची में इनका नाम नहीं है।

विलास खाँ : रागदर्पणकार के अनुसार, ये तानसेन के पुत्र थे। शिष्य भी थे। तानसेन ने इनकी पुत्री का विवाह इनके शिष्य लाल खाँ से करा दिया था, जो भविष्य में जहाँगीर की सभा का रत्न बना। 'बादशाहनामः' में विलास खाँ की चर्चा है। अबुल फजल की सूची में इनका नाम नहीं है।

बख्त खाँ कलावन्त गुजराती : रागदर्पणकार के अनुसार, तानसेन के शिष्य थे। फकीख़ल्लाह ने इसे देखा नहीं था, परन्तु अपने गायक मित्रों से इसकी प्रशंसा सुनी थी। बख्त खाँ के शिष्य 'बसन्ती' की प्रशंसा फकीख़ल्लाह ने की है।

बाबा रामदास :

अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गुणियो में इनका नाम तानसेन के पश्चात् है। यह इस्लामसाह अदली के आश्रय में रहे और बदायूँनी के अनुसार, उसके शिष्य भी रहे। बैरम खाँ खानखाना इनका गाना सुनकर द्रवित हो जाता था। 'मुन्तखबुत्तवारीख' के अनुसार यह लखनऊ में भी रहे। मुल्ला बदायूँनी का कथन है कि एक बार बैरम खाँ ने इन्हें एक लाख तंके पुरस्कार में दिये थे।^१ अकबर के दरबार में इनका बड़ा मान था। बदायूँनी की दृष्टि में तानसेन के अतिरिक्त ये अकबरी दरबार के अवशिष्ट गुणियों में सर्वश्रेष्ठ थे। इनके पुत्र सूरदास अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में उन्नीसवी संख्या पर है। कुछ लोग भ्रमवश इनके व्यक्तित्व को महाकवि सूरदास के साथ मिला देते हैं।

✓ आश्रयदाताओं के प्रकरण में रामदास की चर्चा सप्रमाण की जा चुकी है। ये रामदासी मलार के आविष्कारक कहे जाते हैं,^२ अतः इनका ध्रुवपदकार होना असन्दिग्ध है। इनकी रचनाएँ अभी प्राप्त नहीं हो सकी हैं।

१. मुन्त०, खण्ड २, पृ० ३७।

२. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चौथा भाग, पृ० ४०२।

व्यास :

अकबर के सम्पर्क में यदा-कदा आनेवाले ध्रुवपदकारों में 'व्यास' जी है । इनका व्यक्तित्व संगीत-क्षेत्र में अत्यन्त अप्रसिद्ध है । डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने इनकी चर्चा की है ।^१

ओरछावासी हरीराम 'व्यास' एक कथावाचक थे,^२ जो ओरछा-नरेश मधुकरशाह (रा० का० सन् १५५४-६२ ई०) के राजगुरु थे ।^३ इन्होंने एक बार वृन्दावन में जाकर गोस्वामी हितहरिवंशजी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था । उनका एक पद सुनकर ये चेत गये और उनके शिष्य हो गये ।^४

मधुकरशाह ओरछा की गद्दी पर सन् १५५४ ई० में बैठे और अकबर का राज्याभिषेक सन् १५५६ ई० में हुआ । अकबर और मधुकरशाह में निरन्तर संघर्ष होते रहे । मधुकरशाह के हाथ से अनेक बार ओरछा निकला और उनके बाद इन्होंने उसे हस्तगत किया ।

राजदरबार से सम्बन्ध होने तथा कथावाचक एवं शास्त्रार्थी रहने के कारण हो सकता है कि अकबर से व्यासजी का सम्पर्क यदा-कदा हुआ हो और ये ही उन ध्रुवपदों के रचयिता हों, जो 'रागकल्पद्रुम' में 'व्यास' की मुद्रा से अंकित मिलते हैं । परिशिष्ट 'आ' में इनके ध्रुवपद हैं ।^५

हितहरिवंशजी से दीक्षा लेकर जब ये वृन्दावन में ही रह गये, तब महाराज मधुकरशाह इन्हे लेने स्वयं आये, परन्तु ये वृन्दावन छोड़कर न गये ।^६

व्यासजी की रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय-भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण-भक्तों की अपेक्षा व्यापक है । ये श्रीकृष्ण की बाल-लीला और शृंगर-लीला में लीन रहने पर भी बीच-बीच में ससार पर दृष्टि डाला करते थे । इन्होंने तुलसीदासजी के समान खलो, पाखण्डियों इत्यादि का भी स्मरण किया है और रसगान के अतिरिक्त तत्त्व-निरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं । प्रेम को इन्होंने शरीर-व्यवहार से अलग 'अतन', अर्थात् शुद्ध मानसिक या आध्यात्मिक वस्तु कहा है । ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों पर इनके बहुत-से पद और साखियाँ प्राप्त हैं । इन्होंने एक 'रासपचाध्यायी' भी लिखी है, जिसे कुछ लोगों ने भूल से 'सूरसागर' में मिला लिया है ।^७

१. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, पृ० ३६ ।

२. सर्वेक्षण, पृ० ६७० ।

३. हि० सा० इ०, पृ० २२८-२२९ ।

४. उपरिवत्, पृ० २२९ ।

५. परिशिष्ट आ, १०४-१०५ ।

६. हि० सा० इ०, पृ० २२९ ।

७. उपरिवत्, पृ० २२९-२३० ।

चंचलसस :

संगीतज्ञों में इनकी प्रसिद्धि है । अकबर के युग में मलार राग पर अपने प्रयोग अनेक कलाकारों ने किये थे, उनमें एक ये भी थे । इनकी मलार 'चंचलसस की मलार' कहलाती है । तानसेन से 'मियाँ की मलार', रामदास से 'रामदासी मलार' तथा अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों में से एक चिरजू (चरजू) से 'चिरजू की मलार' का उद्गम परम्परा-प्रसिद्ध है ।

स्व० भातखण्डे ने अपनी 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के छठे भाग में चंचलसस की मलार का स्वर-विस्तार^१ तथा 'भातखण्डे-संगीतशास्त्र' के चौथे भाग में एक सरगम^२ दी है ।

चंचलसेन नामक एक व्यक्ति को मुहम्मद करम इमाम ने महान् संगीतज्ञों में गिनाया है ।^३ सम्भव है, ये 'चंचलसस' से अभिन्न हों । मुहम्मद करम इमाम ने इनके पश्चात् मालवाधिपति बाजबहादुर का नाम लिखा है, जिससे यह प्रतीत होता है, कि वह भी इन्हें अकबर-युगीन ही मानता था ।

सुरज्ञान खाँ

ये ग्वालियर-निवासी थे । अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में इनका स्थान चतुर्थ रखा है ।^४ फकीरुल्लाह ने इनकी गणना भी 'अताई'-कलाकारों में की है ।^५ सुरज्ञान खाँ या सुरजान खाँ इनकी पदवी थी । 'सुरजान खाँ' बोलते-बोलते 'सुजान खाँ' रह गया ।^६

सुजान खाँ हज करने भी गये थे और मदीना में अपनी स्तुतिपरक उक्तियाँ (नातिय-कलाम) गाकर बड़ी प्रशंसा प्राप्त की थी ।^७ यह भी कहा जाता है कि इसने किसी बादशाह की फरमाइश पर दीपक-राग भी गाया था ।^८

मुहम्मद करम इमाम ने सुजान खाँ से सम्बद्ध एक किंवदन्ती लिखी है, जिसका सारांश यह है कि खुसरो के युग में गवैयाँ ने ईर्ष्या के कारण बादशाह को दीपक-राग सुनने पर उसका दिया । सुजान खाँ ने विनम्रतापूर्वक कहा कि एक हौज बर्फ से भरवाकर मुझे उसमें डाल दिया जाय और मेरी कमर में जंजीर बाँध दी जाय । राग के प्रभाव

१. क्र० पु० मा०, भाग ६, पृ० ५०१ ।

२. भा० सं० शा०, चतुर्थ भाग, पृ० ४२१ ।

३. 'मश्रदन्-उल-मूसिकी' पृ० २३ ।

४. आईने अकबरी, ब्लॉक०, पृ० ६८१ ।

५. रागदर्पण, नवाँ बाब, 'मश्रदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २५ ।

६. आजकल', म्यू० मं०, पृ० १०७ ।

७. उपरिबत्, पृ० १०७, मिराति आफताबनुमः, २६१, ब, सौतुलमुबारक, ६३ ।

८. उपरिबत्, पृ० १०७ ।

से बर्फ घुलते ही जंजीर पकड़कर मुझे हौज से निकाल लिया जाय । राग गाया गया, बर्फ घुली, परन्तु खींचनेवालों ने जान-बूझकर देर कर दी । फलतः, सुजान खाँ के शरीर में छाले पड़ गये, जिन्होंने कुष्ठ का रूप धारण कर लिया । उसे हज करने की प्रेरणा हुई । हज से निबटकर वह मदीना आया और श्रद्धापूर्वक अपने शरीर का स्पर्श उसने मुहम्मद साहब की समाधि से कराया । इतना करते ही कुष्ठ नष्ट हो गया ।^१

मुहम्मद करम इमाम ने 'इंछाबरस' नामक एक गायक का समसामयिक इसी सुजान खाँ को बताया है और लिखा है कि 'इंछाबरस' की एक रचना भी सुजान खाँ ने मदीना में सुनाई थी, जिससे इच्छाबरस का कोढ़ भी नष्ट हो गया था ।^२

इंछाबरस मोहम्मदशाह रँगिले का समसामयिक है ।^३ अतः, सुजान खाँ के साथ चमत्कार की जो घटना चिपकाई गई है, वह कल्पनाप्रसूत है ।

सुरजान खाँ या सुजान खाँ अकबरी दरबार के कलाकार थे । इनकी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं ।

ज्ञानगुरु (गुरुज्ञान) :

एक ध्रुवपद में इन्होंने तानसेन को सम्बोधित किया है तथा एक अन्य ध्रुवपद में ये शिष्यों का शासन कर रहे हैं । हरिदास डागुर के एक ध्रुवपद में 'ज्ञानगुरु ऐसे कहें' कहकर इनकी चर्चा की गई है, अतः इतना तो असन्दिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि ये तानसेन और हरिदास डागुर की दृष्टि में पूज्य थे । सम्भव है कि शिक्षक भी रहे हों । 'रागकल्पद्रुम' के प्रथम भाग में पृ० १३२ और ३५१ पर इनके दो ध्रुवपद प्राप्त होते हैं इनसे सम्बद्ध हरिदास डागुर का पूर्वोक्त ध्रुवपद रागमाला में संगृहीत है ।

मदनराय ढारी :

फकीरुल्लाह ने मदनराय की चर्चा अकबरी दरबार के कलाकारों में की है और उन्हें ढारी बताया है । मदनराय की कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' एवं 'रागमाला' में संगृहीत हैं ।^४

धौधू :

'धौधी' नामक एक कलाकार की चर्चा फकीरुल्लाह ने अकबरी युग के साक्षर कलाकारों में की है ।^५ जगन्नाथ ने अपने एक ध्रुवपद में 'धौधू' की 'बानी' को 'रिसाल'

१. 'मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३४-२३५ ।

२. उपरिवत्, पृ० २४०-२४१ ।

३. परिशिष्ट आ, पृ० १३८ ।

४. परिशिष्ट अ, ६३ से ६६ तक, और रा० क०, प्रथम भाग, पृ० ४५, ५६, १०७ और २७३ ।

५. रागदर्पण, नवाँ बाब; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २५ ।

(रसाल) कहा है और उनका नाम तानसेन के पश्चात् और हरिदास डागुर से पूर्व लिया है।^१ संगीतज्ञों में नायक धौधू का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' में 'धौधी' की भी चर्चा है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्तन-संग्रहों में 'धौधी' के पद मिलते हैं। 'धौधू' और 'धौधी' का एक ही व्यक्ति होना सम्भव है।

चरजू :

सम्भव है कि इनका वास्तविक नाम चिरंजीव हो और फारसी-लिपि में चिरंजीव का 'चिरज्यू' पढ़ा जाकर कालान्तर में उच्चारण-सौकर्य के परिणामस्वरूप चिरजू हो गया हो। 'चिरजू' और 'चरजू' दोनों ही रूप सुनने में आते हैं। अकबरी कलाकारों की सूची में ये सत्रहवें हैं और 'चरजू की मलार' के आविष्कारक। इनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होती, परन्तु रागाविष्कारक होने के कारण इनका ध्रुवपदकार होना असन्दिग्ध है।

रूपमती :

यह मालवा की प्रसिद्ध नगरसुन्दरी थी, जो बाजबहादुर की प्रसिद्ध प्रेयसी बनी। अकबर के सेनापति अदहम खाँ ने जब मालवा पर अधिकार किया, तब उससे बचने के लिए इसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। बाजबहादुर और रूपमती की प्रणय-गाथा लोकगीतों ही नहीं, फिल्मों तक का विषय बनी है। 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १७४ एवं १८३ पर रूपमती से सम्बद्ध ध्रुवपद संगृहीत हैं। इनमें कुछ रूपमती की रचना प्रतीत होते हैं।

लाल :

ये ग्वालियर के रहनेवाले थे और सन् १५४३ ई० में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल में ही ये अकबर की सेवा में उपस्थित हुए और उसी की छत्रच्छाया में शिक्षा प्राप्त करके मर्मज्ञ संगीतविद् बने। अकबर जो भी भारतीय राग-रागिनी सुनता था, इन्हें याद करा दिया करता था।^२

जहाँगीर ने लिखा है : "इसी महीने की दूसरी तारीख (दूसरी रजब, १०१७ हिजरी, अर्थात् ११ जनवरी, १६०८ ई०) को लाल कलावन्त पैसठवें वर्ष में मर गया, जिसने हमारे पिता (अकबर को) हिन्दी-भाषा के उच्चारण आदि सिखाये थे। और जो उनकी सेवा में बचपन से बड़ा हुआ था। इसकी मृत्यु पर इसकी एक रखेली ने अफीम खाकर जान दे दी। मुसलमानों में स्त्रियाँ ऐसा पातिव्रत्य कम दिखाती हैं।"^३

परिशिष्ट-अ' में लाल की दो रचनाएँ संगृहीत हैं।^४

१. परिशिष्ट अ, १०७।

२. इकबालनामः (हस्तलिखित), रामपुर-प्रति, पृ० ८६७।

३. 'जहाँगीरनामः', पृ० २२१ (वज्ररत्नदास); 'जहाँगीरनामः' (देवी०), प्र० भा०, पृ० ११०, प्रकाशक, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता।

४. परिशिष्ट अ, ४५, ७७।

गंग :

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गंग के कवित्त का एक संग्रह, 'रागमाला', पृ० ८५, आ पर ध्रुवपद के रूप में किया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि कवित्तों का गान ध्रुवपद-शैली में होता था और उस दशा में छन्द और ताल परस्पर समन्वित रहते थे ।

हरिदास डागुर :

संगीत-क्षेत्र में इनकी अत्यधिक प्रसिद्धि है । जगन्नाथ कविराय ने इनकी गणना तानसेन और धौधू के पश्चात् करके इनके चरणों में अपनी भक्ति प्रदर्शित की है ।^१ यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि ये तानसेन से कहीं छोटे थे । फकीरुल्लाह ने लिखा है कि जगन्नाथ अपने बाल्यकाल में स्वरचित ध्रुवपदों को दिखाने के लिए तानसेन की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे ।^२ जगन्नाथ को शाहजहाँ के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ था । अकबरी युग के कलाकारों के पश्चात् ये अन्य कलाकारों के शिष्य हुए होंगे, जिनमें हरिदास डागुर के होने की भी सम्भावना है ।

'स्वामी हरिदास' और 'हरिदास डागुर' को एक ही व्यक्ति मानकर कुछ लोगों ने तानसेन को अपनी परम्परा में जोड़ने का प्रयत्न किया था,^३ परन्तु वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी और हरिदास डागुर की भिन्नता सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है ।^४ जगन्नाथ के ध्रुवपद से यह भी सिद्ध होता है कि यह तानसेन की अपेक्षा 'कनीय' थे ।^५

अपनी रचनाओं से ये किसी संगीतजीवी जाति में उत्पन्न प्रतीत होते हैं । इनकी रचनाओं पर कहीं-कहीं तानसेन का प्रभाव प्रतीत होता है ।^६ तानसेन के निम्नांकित ध्रुवपद—

नादगढ़ सुघर गढ़ बाकों कीनों सप्त सुर कोट कंगूरा विकट गढ़ खाई ।
आरोही अवरोही इकईस मूर्च्छना चारों गुरज चारों रज चारों दिसा तोपें लगाई ।
तानमान आछीतीखी नीकी लागति ऐसी विरंच विधना बनाई ।
कहै मियां तानसेन सुनो हो सुघर नगर (नर) अपबल भुजबल लियो हू नजाई ।^७
का स्पष्ट प्रभाव हरिदास डागुर के निम्नांकित ध्रुवपद पर पड़ा है :

कै लियो नादगढ़ महा आतंग आरोही अवरोही अस्ताई संचाई महाविकट निपट अति । छः राग गुरज भये तीस भार जाके कोट इकईस मूर्च्छना बाईस सुरति के कंगूरा

१. परिशिष्ट आ, १०७ ।

२. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मग्नदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २६ ।

३. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० २६ ।

४. उपरिवत्, पृ० ३३ ।

५. उपरिवत्, पृ० ३२ ।

६. उपरिवत्, पृ० ३१ ।

७. परिशिष्ट आ, ६८ ।

जगन्नाथ कविराय का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ध्रुवपद सोलहवीं पंक्ति से आरम्भ होता है ।

तीखे नीके लागत । सप्तसुर सप्तपुर औडव खाडव किवार तीनि ग्राम परकोट ओला गोला बनि । धुरपत की चारों तुकै चतुर दिसां को चिनोती दीयेँ औसौ वांको कीनों नों रंग जल भरि राखौ कंठ गुनिनि करि रिसाल लागत । हरिदास डागुर ज्ञानगुरु ऐसे कहैं लरि लरि पचि पचि अटूट टूटन जात मेरे जान वे रीझे प्राननि ।^१

इस ध्रुवपद में 'ज्ञानगुरु' शब्द के प्रयोग से कुछ लोग यह भी अनुमान लगाते हैं कि हरिदास डागुर ज्ञान खाँ (अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ) के शिष्य थे ।^२ यह धारणा कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती; क्योंकि अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ तो जहाँगीर के शासनकाल में भी मुगल-दरबार से सम्बद्ध रहे । जहाँगीर की प्रशंसा में 'सुरज्ञान', 'सुज्ञान' और 'सुजान' की छाप से ध्रुवपद प्राप्त हैं । यदि सचमुच हरिदास डागुर इन्हीं सुरज्ञान खाँ के शिष्य है, तो तानसेन की अपेक्षा हरिदास डागुर को आयु में बहुत कम होना चाहिए । वैसे हरिदास डागुर की परवर्त्तिता अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध है । 'ज्ञानगुरु' नामक किन्हीं गुणी के कुछ ऐसे ध्रुवपद भी मिलते हैं, जिनमें तानसेन को एक शिष्य अथवा छोटे की भाँति सम्बोधित किया गया है । इन ध्रुवपदों के 'ज्ञानगुरु' सुरज्ञान खाँ से निश्चय ही प्राचीनतर हैं ।

सुप्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक स्वर्गीय अल्लाबन्दे खाँ के पुत्र और स्वर्गीय नसीरुद्दीन खाँ के अनुज रहीमुद्दीन खाँ ने अपने वंश में सर्वप्रथम अपने नाम के साथ 'डागुर' शब्द का उपयोग आरम्भ किया है ।^३ इन्हीं की देखादेखी स्व० नसीरुद्दीन खाँ के पुत्र 'डागुर-बन्धु' भी अपने-आपको डागुर घोषित करने लगे हैं । वस्तुतः, हरिदास डागुर की वंश-परम्परा से इन्हें सम्बद्ध नहीं समझा जाना चाहिए ।^४

रहीमुद्दीन खाँ बलपूर्वक तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य और स्वयं को भी हरिदास डागुर की भी शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध घोषित करते हैं,^५ परन्तु उनके पास अपनी मान्यताओं को प्रमाणित करने के लिए कोई साधन नहीं है ।^६

तानतरंग खाँ :

ये तानसेन के पुत्र थे । अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में इनकी गणना की है । इनके जीवन का विशिष्ट वृत्त ज्ञात नहीं होता । परिशिष्ट अ में इनकी ध्रुवपद-रचनाएँ (सं० ७५-७६) संकलित हैं ।

१. परिशिष्ट आ, १०२ ।

२. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ३२ ।

३. संगीत, अप्रैल-मई, १९६० ई०, पृ० ४४ ।

४. उपरिबत्, पृ० ३६, ३८, ४१ ।

५. उपरिबत्, पृ० ३६-४१ ।

६. उपरिबत्, पृ० ४१, सम्पादकीय टिप्पणी ।

सूरदास :

ये अकबरी दरबार के बाबा रामदास के पुत्र थे और 'सूर मलार' नामक राग के आविष्कारक । इस राग को लोग व्रजभाषा के प्रसिद्ध महाकवि सूरदास से सम्पृक्त करके दोनों सूरदासों को एक समझ बैठते हैं, परन्तु जिस प्रकार 'मीरा की मलार' नामक राग की आविष्कर्त्री 'गिरधर' की दीवानी प्रसिद्ध भक्त-कवयित्री मीरा नहीं है, उसी प्रकार 'सूर मलार' के आविष्कारक महाकवि सूरदास नहीं है । महाकवि सूरदास निस्सन्देह महान् गायक एवं कीर्तनकार थे, परन्तु रागों में प्रयत्नपूर्वक परिवर्तन करके नये राग बनाना दरबारी कलाकारों की प्रवृत्ति थी, भक्त-गायकों की नहीं । सत्य तो यह है कि भक्त-गायकों के साथ ऐसी छेड़छाड़ को राग भ्रष्ट करना कहते थे । 'चरजू की मलार', 'रामदास की मलार' और 'सूर मलार' जैसे राग अकबरी दरबार के कलाकारों द्वारा आविष्कृत हैं, जिनका आविष्कार तानसेन द्वारा आविष्कृत 'मियाँ की मलार' के जवाब में किया गया था । सूरदास के कुछ ध्रुवपद प्राप्त हैं, जिनकी चर्चा यथास्थान की जायगी ।

विलास खाँ :

ये मियाँ तानसेन के पुत्र थे और तानतरंग खाँ से छोटे थे । 'बादशाहनामः' और 'रागदर्पण' में इनकी चर्चा है । लाल खाँ इनके दामाद थे, जिन्हें जहाँगीर ने 'गुनसमुन्दर खाँ' की उपाधि दी थी । 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १०७, १२१; १२७ और १२६ पर इनकी रचनाएँ सङ्गृहीत हैं । अन्तिम रचना में इन्होंने तानसेन का स्मरण अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है । 'रागमाला', के पृ० ४२ अ एवं ६५ अ पर भी इनकी रचनाएँ हैं ।

आनन्दप्रभु :

इनका वास्तविक नाम 'शौकी' था । ये गायक, वादक एवं ध्रुवपद-रचनाकार थे । जहाँगीर ने इन्हें 'आनन्द खाँ' की उपाधि दी थी । फकीरुल्लाह के अनुसार, इनकी मृत्यु कश्मीर में हुई । 'रागमाला' के पृ० ५१ अ और १०१ अ पर इनकी रचनाएँ विद्यमान हैं ।

इन्द्रजीतसिंह 'धीरज' :

ये ओरछा के राजा मधुकरशाह के पुत्र और रत्नसेन के भाई थे । महाकवि केशवदास इन्हीं के आश्रित थे । प्रवीनराय नामक प्रसिद्ध गुणशालिनी एवं कवयित्री गणिका इनकी पतिव्रता उपपत्नी थी । केशवदास ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कविप्रिया' इसी मंगलामुखी के नाम पर लिखा और इसके समर्पण में प्रवीनराय की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । इसकी प्रशंसा सुनकर बादशाह अकबर ने इसे अपने दरबार में बुला भेजा । इन्द्रजीत ने इसे भेजने से इनकार किया, जिसपर विद्रोह के अभियोग में अकबर ने इनपर एक करोड़ रुपया जुर्माना ठोक दिया । केशवदास अकबर के दरबार में गये और वीरबल से मिलकर जुर्माना माफ कराया । परन्तु, प्रवीनराय को दरबार में जाना पड़ा और अपनी काव्यकला, विद्या और प्रतिभा का प्रदर्शन करने पर उसे वापस आने की आज्ञा मिल गई ।^१

इन्द्रजीतसिंह 'धीरज', 'नरिन्द' के नाम से कविता करते थे।^१ ध्रुवपदों में इनकी मुद्रा 'धीरज', 'धीरजप्रभु' एवं 'धीरज के प्रभु' है। गणेश, रामचन्द्र, गंगा, विष्णु, विष्णुनामावली, कृष्णनामावली, कृष्ण का शृंगार और कृष्ण-प्रेम जहाँ इनके ध्रुवपदों का विषय है, वहाँ विपत्ति में इन्होंने 'ख्वाजाहिन्द' को भी पुकारा है।^२ राधा-माधव का वर्षाकालान क्रीडा-वर्णन, वर्षा-वर्णन, शरद्-यामिनी में कृष्ण के नृत्य, मुरलीधर-रूप तथा रास की ओर भी इनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। नायिकाओं के विभिन्न रूप भी इन्होंने चित्रित किये हैं और कृष्ण-जीवन की कतिपय झाँकियों में भी इनका मन रमा है।

इनमें त्याग की भावना थी; क्योंकि अकबर द्वारा प्रस्तावित राज्यप्राप्ति को इन्होंने अस्वीकार कर दिया था। ये बड़े बुद्धिमान्, शक्तिशाली, युद्धप्रिय एवं वीर योद्धा थे। ओरछा के युद्ध में अब्दुल्लाह की असंख्य सेना को पराजित करना इसका प्रमाण है। युद्ध में अपने घोड़े के मारे जाने पर भी वीरता से शत्रु-संहार करते हुए ये अचेतनावस्था को प्राप्त हुए। अन्त में अपने इन कर्मों के लिए वे पुरस्कृत हुए और ओरछा के शासक नियुक्त हुए।^३

जगन्नाथ कविराय :

इनकी उपाधि 'कविराय' थी और नाम जगन्नाथ।^४ शाहजहाँ के दरबार में इनका अत्यन्त सम्मान था और उसने इन्हें एक बार चाँदी से तुलवाया था।^५ फकीरुल्लाह का कथन है कि जगन्नाथ ने राग 'नट' में एक ध्रुवपद की रचना की और तानसेन के समक्ष उसे प्रस्तुत किया। तानसेन ने कहा कि यदि यह दीर्घायु हुआ, तो ध्रुवपद-रचना में मेरे बाद प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।^६ तानसेन की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई और शाहजहाँ के द्वारा जगन्नाथ भली भाँति सम्मानित हुए।

तानसेन की मृत्यु सन् १५८९ ई० में हुई। इस समय जगन्नाथ कविराय की आयु तीस वर्ष के लगभग अवश्य रही होगी। फकीरुल्लाह के अनुसार, इनका स्वर्गवास लगभग १०० वर्ष की आयु में हुआ। अतएव, इनका जन्मवर्ष सन् १५५९ ई० और मृत्युवर्ष सन् १६५९ ई० के लगभग होना चाहिए। फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' की रचना सन् १६६२ ई० में की थी। अतः, वह जगन्नाथ कविराय से भली भाँति परिचित रहा होगा।

१. ग्रियर्सन : हि० सा० प्र० इ०, पृ० १५३।

२. परिशिष्ट अ, ६४।

३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ५८, ५९।

४. रागदर्पण, बसवाँ बाब; 'मअदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २६।

५. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २७२।

६. रागदर्पण, बसवाँ बाब; 'मअदन् उल्-मूसिकी'।

शाहजहाँ का राज्यकाल सन् १६२७—१६५८ ई० है। अतएव, शाहजहाँ के राज्या-रोहण के समय जगन्नाथ कविराय की आयु ६७-६८ वर्ष की होनी चाहिए।

‘रसगंगाधरकार’ पण्डितराज जगन्नाथ ‘दारा’ के सखा थे। लवंगी के साथ उनके प्रेम की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। वे जगन्नाथ ‘कविराय’ से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं।

शेख बहाउद्दीन :

इनका स्वर्गवास शाहजहाँ के दूसरे राज्यवर्ष (सन् १६२८ ई०) में हुआ। ये अपने समय के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। २५ वर्ष की आयु में इन्होंने गृहत्याग किया। विरक्ति का कारण यह था कि एक दिन ये एक हरिण को बन्दूक से मार डालना चाहते थे। हरिण ने कहा कि बहाउद्दीन, तुझे ईश्वर ने इसी कार्य के लिए उत्पन्न किया है या तुझे कोई अन्य कार्य भी है? बहाउद्दीन ने समझा कि कोई मनुष्य कह रहा है। इन्होंने दाहिने-बायें देखा, परन्तु कोई मनुष्य दिखाई नहीं दिया। हरिण ने दो-तीन कदम बढ़कर फिर वही बात कही। शेख ने समझा, कोई और आदमी कह रहा है, फिर इधर-उधर देखा। कोई नहीं दिखाई दिया। हरिण ने दो-तीन कदम बढ़कर कहा—‘मैं हरिण हूँ, जो तुमसे बात कर रहा हूँ’ और पुनः अपने शब्द दुहराये। देखते-ही-शेखते शेख ने बन्दूक फेंक दी और देशाटन के लिए निकल गये। इन्होंने २५ वर्ष देशाटन में व्यतीत किये। अनेक साधुओं का सत्संग किया।

ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे। सदा हरे रंग के वस्त्र पहनते थे और कहते थे कि यह वेष हमें परमात्मा की ओर से मिला है।

कवित्त, ख्याल, ध्रुवपद और तरानों की रचना खूब करते थे। रबाब, वीणा और अमरती खूब बजाते थे। ‘ख्यालो तराना’ नामक एक तन्त्री-वाद्य का आविष्कार भी इन्होंने किया था।

इनके दो वाद्यकला-निपुण शिष्य फकीरुल्लाह के पास थे।

शेख बहाउद्दीन का दर्शन फकीरुल्लाह न कर सके। शेख की मृत्यु ११७ वर्ष की आयु में हुई थी।^१

इनका जन्मवर्ष प्रायः सन् १५११ ई० है। इनकी रचनाएँ अबतक अप्राप्त हैं।

शेख पीर मुहम्मद :

शेख बहाउद्दीन की महत्ता से परिचित होकर ये भी गृहत्यागी हो गये और उनके सत्संग में भी रहे थे।

१. रागदर्पण, वसवी बाब; ‘मानसिंह और मानकुतूहल’, पृ० १३१-१३३, मधवन्-उल्-मूसिकी, पृ० २६।

बाल्यकाल में ही पीर मुहम्मद को पितृस्नेह से वंचित होना पड़ा और ये अपने रिश्तेदार शेख नसीरुद्दीन के पास रहे ।

इन्होंने शेख बहाउद्दीन की भली भाँति सेवा की । उनका अनुग्रह इन्हें प्राप्त हुआ । इनकी युवावस्था में ही शेख बहाउद्दीन का देहान्त हो गया । ये देशाटन के लिए निकल पड़े । इनका सम्पर्क विभिन्न कलाकारों के साथ हुआ । फकीरुल्लाह ने जब इन्हें देखा, इनमें परहेजगारी न थी, दर्द था ।

शेख नसीरुद्दीन के संसर्ग से इन्होंने संगीत में अत्यन्त उन्नति कर ली थी , उस युग में इनसे अच्छा गायक न था । इन्होंने ध्रुवपदों और तरानों की भी रचना की । सरोद बजाने की शैली में नवीन आविष्कार किये थे । पचास-साठ वर्ष की आयु में जलोदर से इनकी मृत्यु हो गई ।^१ इनकी रचनाएँ अप्राप्त है ।

यहाँतक जिन ध्रुवपदकारों की चर्चा हुई है, वे सभी अर्थ की दृष्टि से सगीत-साधना करते थे । यद्यपि उनकी रचनाओं में देवी-देवताओं अथवा पीरों की स्तुतियाँ हैं, तथापि वे हिन्दू-आश्रयदाताओं के दरबारों, मन्दिरों अथवा अन्य पर्वों पर गाने के लिए हैं । उनमें रचयिता का आन्तरिक आत्मनिवेदन नहीं है । इतना अवश्य है कि उनकी कुछ रचनाएँ उस दैनिक पूजा-पाठ का निर्वाह-मात्र करने के लिए हैं, जो दैनिक जीवन का एक अंगमात्र है । हमारा यह कहना नहीं है कि उन्हें देवी-देवताओं से कोई चिठ थी, जो ऐसी स्तुतियों के रचयिता थे; परन्तु रचनाओं के कारण उन्हें भक्तों की कोटि में रखा जाना उचित नहीं है ।

तृतीय अध्याय में यह कहा जा चुका है कि मानसिंह तोमर के प्रयत्नों ने भक्त-गायकों को भी प्रभावित किया । उन गायकों में वृन्दावनवासी रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी प्रमुख है । अष्टछाप के महान् गायकों में सभी अच्छे सगीतसाधक थे, परन्तु शिल्प की दृष्टि से उनकी रचनाएँ विष्णुपद की शैली में आती हैं और उनमें छन्द और ताल का समन्वय है । उनमें काव्य प्रधान है और संगीत आनुषंगिक । इसका कारण यह है कि मन्दिरों में प्रतिदिन गाये जानेवाले कीर्तनों की रचना अष्टयाम के अन्तर्गत विभिन्न प्रहरों में सीमित समय के अन्दर गाने के लिए हुई है, सगीत-कौशल का प्रदर्शन लम्बे काल तक करने के लिए नहीं । हरिदासजी की रचनाएँ ध्रुवपद-शैली की हैं—और उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें प्रयोज्य सगीत और काव्य में कौन प्रधान है और कौन आनुषंगिक । इसका कारण यह है कि हरिदासजी की उपासना-पद्धति उनकी अपनी थी, निराली थी । नित्य निकुंज-विहार में मग्न श्यामा-श्याम उनके उपास्य थे और भावमग्न रहकर वे मानसिक रूप से निरन्तर उनकी केलि का आनन्द लेते

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १३३—१३४; 'मअदन्-उल्-मूसिको' पृ०, २६ ।

रहते थे । जब मौज उठी, बुलाने लगे और प्रिय-प्रिया की लीलाएँ उनकी वाणी में मुखरित होने लगीं । इसीलिए, उनकी रचनाओं में छन्द और ताल का वैसा समन्वय नहीं है, जैसा कि पदों में पाया जाता है ।

श्याम-श्यामा ही हरिदासजी के आश्रयदाता है । नित्य-निकुंज ही उनके लिए दरबार है, श्याम-श्यामा की रहस्यमयी लीलाओं का वर्णन ही उनके द्वारा गाई जाने-वाली विरुदावली है और वे सगीत और काव्य के संगम में निरन्तर निमज्जन करनेवाले एक ऐसे ध्रुवपदकार हैं, जिनका वर्णन किये बिना ध्रुवपद पर विचार अपूर्ण माना जायगा ।

स्वामी हरिदासजी :

स्वामी हरिदासजी की विरक्त-परम्परा में उनका जन्मवर्ष सन् १४८० ई० माना जाता है । उनके वंश के सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है । कुछ विद्वान् उन्हें श्रीआसधीरजी का पुत्र, सारस्वत ब्राह्मण एवं हरिदासपुर में उनका जन्म मानते हैं^१ तथा अन्य उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण, गंगाधर का पुत्र, आसधीरजी का शिष्य एवं राजपुर को उनका जन्मस्थान मानते हैं ।^२ वास्तव में, द्वितीय पक्ष का प्रथम समर्थक ग्रन्थ 'निजमत-सिद्धान्त' है, जिसकी रचना सन् १७७५ ई० के लगभग महन्त किशोरदास द्वारा हुई । इस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमें लिखी अधिकांश बातें इतिहास-विरुद्ध, असंगत एवं कपोल-कल्पित हैं । लेखक का उद्देश्य स्वामी हरिदासजी को निम्बार्क-सम्प्रदाय का अनुयायी तथा उन्हें प्रयत्नपूर्वक गंगाधर का पुत्र सिद्ध करना ज्ञात होता है । उक्त लेखक ने अपनी बात का न तो कोई आधार ही दिया है, न उसके कथनों की कोई पूर्व परम्परा ही प्राप्त होती है । 'निजमतसिद्धान्त' के पूर्ववर्ती तटस्थ लेखकों ने जो कुछ लिखा है, उससे भी 'निजमतसिद्धान्त' की परम्परा का खण्डन होता है, अतः उक्त ग्रन्थ के उल्लेखों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ।

स्वामी हरिदासजी के समकालीन भक्त-कवि व्यासजी,^३ विहारिणिदासजी, नाभाजी, लालस्वामी आदि ने उन्हें 'आसू कौ हरिदास', 'हरिदास आसुधीर कौ'^४ अथवा 'आसुधीर उद्योतकर'^५ या 'आसू के हरिदास की'^६ कहा है । अन्य परवर्ती बाह्य साक्ष्यों में

१. केलिमाल, भूमिका, श्रीचक्र, वृन्दावन, सं० २००६ वि० ।

२. निजमतसिद्धान्त : किशोरदास ।

३. आसू कौ हरिदास रसिक, हरिवंश न मोहिं बिसारौ ।—भक्तकवि व्यासजी, मथुरा, पद-संख्या २१ ।

४. गुरुनि कौ गुर श्रीहरिदास आसुधीर कौ ।—विहारिणिदासजी (ह० वा० से) ।

५. आसुधीर उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की ।—नाभाजी-कृत भक्तमाल, छप्पय ६१ ।

६. आसू के हरिदास की लगै 'लाल' पग पौन ।

—लालस्वामी-कृत हस्त० 'वाणी-संग्रह' से ।

राधावल्लभीय श्रीहृत्तरुपलालजी के शिष्य चाचा वृन्दावनदासजी^१ जयपुर के महाराज ईश्वरसिंहजी^२ आदि ने उन्हें स्पष्ट ही आसधीरजी का पुत्र लिखा है। ये सभी उल्लेख 'निजमतसिद्धान्त' से पूर्ववर्ती है, अतः यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि स्वामी हरिदासजी आसधीरजी के ही पुत्र थे।

आसधीरजी को सभी पक्ष सारस्वत ब्राह्मण एवं 'कोल' के निकट का निवासी मानते हैं। वही स्वामी हरिदासजी का जन्म हुआ था, अतः उस स्थान का नाम हरिदासपुर पड़ गया है। डॉ० दीनदयालजी गुप्त ने भी इसी मत का समर्थन किया है।^३ स्वामी हरिदासजी के भ्राता गोस्वामी जगन्नाथजी के वंशज, जो स्वामी हरिदासजी के सेव्य ठाकुर बाँकेबिहारीजी एवं उनकी साधना-स्थली निधिवन के परम्परागत अधिकारी है, स्वामीजी को अपना पूर्वज मानते हैं। उनके पास के प्राचीन वंशवृक्ष भी इसके प्रमाण है। उनके अनुसार स्वामी हरिदासजी के पूर्वज पंजाब में मुलतान के निकट उच्चग्राम के निवासी थे। उनके पितामह गदाधर थे और पिता आसधीरजी। स्वामी हरिदास की माता का नाम गंगादेवी था। बैन कवि (सन् १८२२ ई०) की पदावली से भी स्वामीजी के पिता आसधीरजी, माता का नाम गंगादेवी तथा जन्मस्थान कोर या कोल (कोयल, अलीगढ़ का प्राचीन नाम) सिद्ध है।^४

स्वामी हरिदासजी के गुरु और सम्प्रदाय :

स्वामी हरिदासजी के दीक्षा-गुरु श्रीआसधीरजी ही माने जाते हैं, इस सम्बन्ध में सभी पक्ष एकमत हैं। परन्तु, इस सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है कि स्वामी हरिदासजी किस सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। 'निजमतसिद्धान्त' प्रथम बार उन्हें निम्बार्क-सम्प्रदाय का अनुयायी घोषित करता है। कुछ उन्हें विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। परन्तु, स्वामी हरिदासजी ने अपने-आपको किसी भी प्रचलित वैष्णव-सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं माना है।

१. सुता आसधीर मूरत अनन्द ।—चाचा वृन्दावनदास-कृत वसन्त का एक पद। द्र०

'हितहरिवंशगोस्वामी-सम्प्रदाय और साहित्य', पृ० २१८।

२. 'अयमाशुधीरतनयो हरिदासः परमरसिकवरः ।'—ईश्वरी सिंह द्वारा सम्पादित भक्तमाल, सं० १७४७ वि०।

३. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डॉ० दीनदयालु गुप्त, प्रयाग, पृ० ६८-६९।

४ (क) नमो नमो जै श्रीहरिदास रसिक कुल मण्डन।

भादों मास उज्यारी आठै, प्रघट भये आसधीर के नन्दन।

सब सुखदाई बजत बधाई, सब ही के मन भाई, करत सकल जन वन्दन।

गंगारानी जायौ, दास बैन, मन भायौ, छिरकत दूध दही केसर घसि चन्दन।

—बैनदास की पदावली, हस्त०, पद-सं० ८।

(ख) आजु बधाई बाजै रे ब्रज-कोर-पै।

भादों मास मनोहर मंगल आठै, सुकलपक्ष, गरजत घनघोर पै।

—पद-सं० २।

उनके शिष्य बीठल त्रिभुलजी और प्रशिष्य विहारिणिदासजी ने भी अपना निम्बार्क आदि कोई सम्प्रदाय नहीं बताया है। उनके सिद्धान्त और उपासना की प्रणाली को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि वे स्वतन्त्र पथ के अनुगामी थे। उनकी सखी-भाव की रसोपासना के ही कारण उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय 'सखी-सम्प्रदाय' कहलाया। वास्तव में, स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय स्वतन्त्र ही मानना चाहिए।

हरिदासजी के संगीतगुरु :

स्वामी हरिदासजी की आयु सन् १४८६ ई० में ६ वर्ष की थी, जबकि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का राज्याभिषेक हुआ। मानसिंह तोमर की मृत्यु सन् १५१६ ई० में जब हुई, तब हरिदासजी प्रायः ३६ वर्ष के थे। मानसिंह के राज्यकाल में सहस्रों ध्रुवपदों की रचना हुई थी और उसके दरबार में बैजू जैसे ध्रुवपदकार थे। एक ध्रुवपद में बैजू ने स्वयं को 'आदिकवि' कहा है,^१ जिससे यह ध्वनित होता है कि मानसिंह द्वारा प्रवर्तित परम्परा के सर्वप्रथम ध्रुवपद-रचनाकार बैजू थे। यह सर्वथा सम्भव है कि हरिदासजी की संगीत-शिक्षा ग्वालियर के किसी कलावन्त द्वारा हुई हो। वह व्यक्ति कौन था, यह बताया जाना तो सम्भव नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि ब्रजभाषा-ध्रुवपद के जन्मस्थल ग्वालियर से स्वामी हरिदासजी के व्यक्तित्व का संगीत-पक्ष पूर्णतया प्रभावित था। भक्त-कवियों में श्रीस्वामी हरिदासजी को ही ध्रुवपदकार कहा जाता है। तानसेन के प्रकरण में यह चर्चा आ चुकी है कि संगीत-विद्या में हरिदासजी तानसेन के गुरु हो सकते हैं, भले ही वह शिक्षा बहुत लम्बे समय तक न चली हो। हरिदासजी के समाधि-स्थल निधिवन में तानसेन की समाधि भी रही, अनेक वृन्दावनवासी इस तथ्य के साक्षी हैं।^२

रोतिकालीन ध्रुवपदकार

शाहजहाँ को बन्दी बनाकर औरंगजेब सन् १६५८ ई० में मुगल-सम्राट् हो गया था। अपने शासनकाल के ११वें वर्ष में इसने कवियों और गायक-वादकों का सम्बन्ध दरबार से विच्छिन्न कर दिया। सन् १५८३ ई० के बाद से यह दक्षिण की ओर युद्धों में उलझा रहा। महाराष्ट्र में शिवाजी, बुन्देलखण्ड में छत्रसाल, मेवाड़ में महाराणा राजसिंह, मारवाड़ में बीर दुर्गादास तथा पंजाब में सिख-गुरु गोबिन्दसिंह इसकी धर्मन्धिता को विनष्ट करने के लिए प्रयत्नशील थे। फलतः, अपने राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में इसे सोंस लेने का अवकाश न मिला। निरन्तर युद्धों के कारण पीढ़ियों से संचित मुगल-राजकोष नष्ट हो गया था और सेनाओं को कभी-कभी यथासमय वेतन मिलने में भी कठिनाई होने लगी थी। साम्राज्य का आर्थिक ढाँचा बिगड़ ही चुका था, फलतः सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति भी उस बिगड़ी हुई परिस्थिति का शिकार बनी। औरंगजेब के साथ जगह-जगह धक्के खाते

१. परिशिष्ट आ, ८।

२. संगीत, फरवरी, १९५९ ई०, पृ० ८६-९१।

हुए सामन्त भी निरन्तर शिविर-जीवन से ऊब गये थे। वर्षों से घर न लौटने के कारण उनके वंश की वृद्धि बन्द हो गई थी और वे नष्टप्राय हो रहे थे। फलतः, कला के विकास और प्रसार पर भी इस समस्त वातावरण का प्रभाव पड़ा। इतना सब कुछ होने पर भी औरंगजेब के विभिन्न शाहजादे और सामन्त किसी-न-किसी रूप में गायको, वादकों और ध्रुवपदकारों को आश्रय देते चले आ रहे थे। हाँ, इतना अवश्य था कि उन कलाकारों की प्रतिभा कुछ कुण्ठित-सी हो गई थी और वह मानों बुझ-सी गई थी। उस अवांछनीय एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में भी ध्रुवपद-परम्परा उच्छिन्न नहीं हुई और उसमें भी सदारंग जैसे कुछ ध्रुवपदकार उत्पन्न हुए, जो अगली पीढ़ियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ बने। रीतिकाल के ध्रुवपदकारों का परिचय तो इस अध्याय में है भी, कुछ ऐसे ध्रुवपदकारों की भी चर्चा है, जिनके आश्रयदाताओं के विषय में कोई परिचय उपलब्ध नहीं है।

खुशहाल खाँ कलावन्त :

यह गुनसमुन्दर खाँ का बेटा और तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दौहित्र था। यह अपने भाइयों में सर्वश्रेष्ठ गायक था। शाहजहाँ को इसका संगीत बहुत भाता था। यह विवेक एवं वास्तविक शिष्टाचार से युक्त था और अपनी रचनाएँ 'शाहजहाँ' के नाम से किया करता था।

एक दिन शाहजहाँ ने अली मर्दानखाँ (महामन्त्री अमीरुल्-उमरा) से पूछा कि तुम्हारी दृष्टि में कौन-सा शाहजादा बादशाह बनेगा। अलीमर्दान खाँ अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था, इस बात को ताड़ गया कि बादशाह का अनुराग दाराशिकोह की ओर है, यद्यपि उसमें बादशाह बनने की विशेषताएँ नहीं हैं। साथ ही, यह विचार हुआ कि यदि स्पष्ट निवेदन करता हूँ, तो शिष्टता के विरुद्ध होगा और गलत बात करना भृत्य-धर्म और ईमानदारी के विरुद्ध है। इन बातों पर विचार करके कहने लगा, जिस शाहजादे का साथी मुर्शिदकुली खाँ होगा, सम्भवतः वही सफल होगा। यह खान ईरान के शाह अब्बास की सभा का एक अमीर था और अली मर्दान खाँ के साथ शाहजहाँ की सेवा में उपस्थित होकर सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। शाहजहाँ को अलीमर्दान खाँ की सम्मति पर पूरा भरोसा था। दाराशिकोह को उपदेश किया कि मुर्शिदकुली खाँ का मन हाथ में ले। इधर मुर्शिदकुली खाँ को शाहजादे के समीप नियुक्त कर दिया। दाराशिकोह ने अपने पूज्य पिता के सबकों की कद्रदानी न की। मुर्शिदकुली खाँ थोड़े ही दिनों में उससे बचने लगा। इसी समय औरंगजेब को दक्षिण के प्रान्त सौंपे गये। वह रुग्ण अलीमर्दान खाँ को देखने का बहाना निकालकर उसके घर पहुँचा और इस बात के लिए आग्रह किया कि मुर्शिदकुली खाँ को साथ में भेज दे और कहने लगा कि इस सम्बन्ध में मैं बादशाह की सेवा में कुछ निवेदन करना उचित नहीं समझता। आप स्वयं इस बात के लिए प्रयत्नशील हो जायँ। अमीरुल्-उमरा ने वचन दे दिया, परन्तु अपनी पिछली सम्मति को देखते हुए साहस नहीं होता था। मन में निरन्तर चिन्ता रहती और प्रायः चिन्तित और मुरझाया हुआ दिखाई देता। एक दिन अपने किसी मुसाहब से चिन्ता का कारण प्रकट कर दिया। वह व्यक्ति खुशहाल खाँ का मित्र था। निस्संकोच बातचीत में उससे कह बैठा। खुशहाल खाँ ने

कहा कि यदि नवाब साहब मुझे एक लाख रुपये देने की कृपा करें, तो उनके प्रार्थना-पत्र पर स्वीकृति मैं दिलाये देता हूँ। शर्त यह है कि जिस समय मैं संकेत करूँ, उस समय बादशाह की सेवा में प्रार्थना करें। मुसाहब ने यह बात अमीरुल्-उमरा तक पहुँचा दी, उन्होंने स्वीकृति दे दी।

कुछ दिनों के पश्चात् नौरोज के उत्सव में खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ अपनी जगह खड़े हुए तोड़ी गा रहे थे और बादशाह का हृदय पूर्णरूपेण प्रभावित हो रहा था। इस समय खुशहाल खाँ ने अमीरुल्-उमरा को संकेत किया कि तत्काल मुर्शिदकुली खाँ का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर दे। क्योंकि, बादशाह उस समय रस में सर्वांगमग्न थे। उन्होंने विना पढ़े प्रार्थनापत्र पर स्वीकृति दे दी। अमीरुल्-उमरा ने यह आज्ञा 'खिलअतखानः' भेजी। खान को दूसरे दीवानखाने में विदाई देने के लिए बुलाया गया। 'खिलअतखानः' के दारोगा ने राजकीय आज्ञापत्र (बादशाह की सेवा में खिलअत देने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए) प्रस्तुत किया। आदेश हुआ कि विदा का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाय। अमीरुल्-उमरा ने प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। बादशाह ने स्वीकृति देते समय पढ़ने की ओर ध्यान नहीं दिया था। इस असावधानता को प्रकट करना उचित न समझते हुए विदा की खिलअत देने की आज्ञा दे दी। शाहजादा औरगजेब ने मुर्शिदकुली खाँ के साथ को गनीमत जाना और उसके साथ सदा अनुग्रहपूर्ण व्यवहार किया, यहाँ तक कि दाराशिकोह के दूसरे युद्ध में उसने वीरों की भाँति प्राणत्याग किया।

कुछ दिनों के पश्चात् पुरी बात शाहजहाँ को ज्ञात हो गई और इस अपराध के दण्ड में दोनों भाई खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ को आनुवंशिक पद से च्युत कर दिया, अर्थात् ये दोनों तानसेन के स्थान पर खड़े होने से वंचित कर दिये गये।^१

सवाद खाँ ठारी :

ये बहुत अच्छे गायक थे। फतेहपुर के रहनेवाले थे। 'मानसिंह और मानकुतूहल' में 'फतेहपुर-हसुवा' और 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में 'फतेहपुर-झुँझनू' लिखा है। रचनाएँ भी अच्छी थीं, जो प्राप्त नहीं होतीं। जन्मस्थान में ही देहान्त हुआ।^२

किशनसेन 'नायक अफजल' :

ये अपने-आपको भत्तू (भन्नू ?) का पोता कहते थे। कुछ पढ़े-लिखे भी थे। इनकी उपाधि 'नायक अफजल' थी। अपने काल में 'मार्ग'-संगीत में सर्वश्रेष्ठ थे। इनकी रचनाएँ अच्छी होती थीं। इनका ५०-६० वर्ष की आयु में कश्मीर में देहान्त हुआ।

आजकल इनकी रचनाएँ अप्राप्त हैं।^३

१. 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' एवं 'मिराति आफताबनुमः', पृ० ३६० बं० का अनुवाद; 'आजकल', म्यूजिक-नम्बर।

२. रागदर्पण १०वाँ बाब; मानसिंह०, पृ० १३८; मअदन्, पृ० २७।

३. रागदर्पण, दसवाँ बाब; मानसिंह०, पृ० १३६; मअदन्, पृ० २७।

गुलाम मुहीउद्दीन :

यह एक अमीरजादे थे । सैनिक-जीवन का परित्याग करके फकीर हो गये । धनी व्यक्ति इनसे उदासीन थे और ये उनकी ओर से । रचनाएँ अच्छी होती थी,^१ जो आजकल प्राप्त नहीं ।

‘मानसिंह और मानकुतूहल’ में भ्रमवश इनका परिचय खुशहाल खाँ के साथ मिल गया है ।^२

किशन खाँ कलावन्त :

सुलतान शुजा ने इन्हें शाहजहाँ से माँग लिया था । इनकी रचनाएँ भी अच्छी होती थी (जो आज प्राप्त नहीं है) । ‘मार्ग-सगीत’ में इनकी कुछ गति थी । इनका देहान्त बंगाल में हुआ ।^३

सालिम खाँ डागुर :

ये अच्छे गायक थे । इनकी रचनाएँ भी अच्छी होती थी, जो आजकल अप्राप्त हैं । ‘मअदन्-उल्-मूसिकी’ एवं ‘मानसिंह और मानकुतूहल’ में इनका नाम सालिमचन्द लिखा गया है ।^४

कसबकुव्वतधारी :

इनका मूल निवास फुल्लौर था । रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब प्राप्त नहीं) । अस्सी-नब्बे वर्ष की आयु में फुल्लौर में इनका देहान्त हुआ ।

‘मानसिंह और मानकुतूहल’ में इनका नाम ‘केशव’ और ‘मअदन्-उल्-मूसिकी’ में ‘कब जोयत’ छपा है । ‘रागदर्पण’ की रामपुर-प्रति के अनुसार, ‘कसबकुव्वत’ नाम ही ठीक है, जो ‘उपाधि’ प्रतीत होता है । ‘कसबकुव्वत’ का अर्थ ‘कला ही जिसका बल हो’ होता है ।^५

पूजा :

ये शेख पीरमुहम्मद के भाई थे । रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब प्राप्त नहीं है) । उनमें बड़ा दर्द होता था । ये फकीरुल्लाह के साथ रहे । साठ-सत्तर वर्ष की आयु में भगन्दर से, आगरा में ही इनका देहान्त हुआ ।^६ ‘मानसिंह और मानकुतूहल’ में इनका नाम भ्रमवश ‘बूचा’ छपा है ।^७

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब; मअदन्०, पृ० २८ ।

२. ‘मानसिंह०’, पृ० १३८ ।

३. ‘रागदर्पण’, दसवाँ बाब; ‘मानसिंह०’, पृ० १३८; ‘मअदन्०’ पृ० २७-२८ ।

४. ‘रागदर्पण’, दसवाँ बाब; ‘मानसिंह०’, पृ० १३९; ‘मअदन्०’, पृ० २८ ।

५. ‘रागदर्पण’, दसवाँ बाब; ‘मानसिंह०’, पृ० १४१; ‘मअदन्०’, पृ० २८ ।

६. उपरिचत् ।

७. ‘मानसिंह०’, पृ० १४१ ।

रहीमदाद ठारी :

सन् १६६२ ई० में वृद्ध थे । रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब नहीं मिलती) । 'मार्ग-संगीत' से भी परिचित थे ।^१

मुहम्मद बाकी :

इनकी आयु सन् १६६२ ई० में ५० वर्ष से अधिक थी । रचनाएँ अच्छी होती थी, जो आज अप्राप्त है । अफीम खाने से गला बिगड़ गया था ।^२ 'मानसिंह और मान-कुतूहल' में भ्रमवश इनका नाम मुहम्मद वारी छपा है ।

सुधीनसेन :

यह सोहिलसेन का पुत्र और मियाँ तानसेन का प्रपौत्र था । सन् १६६२ ई० (१०८३ हि०) में यह जीवित थे और अच्छी रचनाएँ करते थे ।^३ रचनाएँ अप्राप्त है ।

मियाँ डालू ठारी :

ये साधुओं की भाँति जीवन-यापन करते थे । धनियों की उपेक्षा करते थे । फकीरुल्लाह ने इन्हें आगरा में देखा था । इन्होंने अनेक ध्रुवपदों की भी रचना की । फकीरुल्लाह के युग के धनियों की रुचि संगीत की ओर भली भाँति थी, परन्तु मियाँ डालू की ओर से वे उदासीन रहे । इनका देहान्त यौवनकाल में ही आगरा में हो गया ।^४

'डालू' छाप का एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम' भाग प्रथम, पृ० १६२ पर है, जो शैली और वर्ण्य विषय को देखते हुए इनका ही माना जा सकता है ।

मधुनायक :

इनका वास्तविक नाम सैयद निजामुद्दीन था और ये बिलग्राम-निवासी सैयद हमजा के पुत्र थे । अत्यन्त उदार एवं विनोदी स्वभाव था । संस्कृत और हिन्दी-भाषा काशी में पढ़ी । शास्त्रों में निष्णातत्व प्राप्त किया । संगीतशास्त्र से प्रगाढ़ परिचय प्राप्त करके नायक कहलाये । इनके 'नक्श' प्रसिद्ध है और इनका नाम आ जाने पर गायक कान पकड़कर सम्मान प्रकट करते हैं । इनके गाने में विचित्र प्रभाव था । मनुष्य तो मनुष्य, मनुष्येतर प्राणी भी प्रभावित होते थे । नवाब दिलेर खाँ के पुत्र नवाब कमालुद्दीन खाँ के पास शाहाबाद में चिरकाल तक सम्मानपूर्वक रहे थे । एक रमजान (१०९६ हि० : २० जून, १६८७ ई०), बुधवार को बिलग्राम में इनका देहान्त हुआ ।^५ मोहम्मद करम इमाम ने इन्हें भ्रमवश अकबर का समकालीन समझ लिया है ।

१. 'रागदर्पण', दसवाँ बाब, 'मानसिंह', पृ० १४०-१४१; 'मअदन्', पृ० २८ ।

२. उपरिचत्, मानसिंह०, पृ० १३६ ।

३. उपरिचत्, मानसिंह०, पृ० १३६; 'मअदन्', पृ० २७ ।

४. उपरिचत्, पृ० १३४-१३५; 'मअदन्', पृ० २६ ।

५. आजकल, म्यू० नं०, पृ० १०८; सर्वेआजाद, १।३५६, खं० १ ।

बिसराम खाँ :

ये विलास खाँ के दौहित्र थे और लाल खाँ कलावन्त के पुत्र । खुशहाल खाँ के ये छोटे भाई और श्रेष्ठ गायक थे ।^१ शाहजहाँ के काल में इन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई^२ और ये औरंगजेब के भी आश्रित रहे ।^३ सन् १६७१ ई० में इनका देहान्त हुआ ।^४

मिसरी खाँ ढारी :

ये विलास खाँ के शिष्य थे । शाहजहाँ के पुत्र सुलतान शुजा के साथ ये बंगाल में रहते थे । बंगाल में ही इनकी मृत्यु प्रायः अस्सी वर्ष की आयु में हुई । इनकी रचनाएँ अच्छी होती थी ।^५ रचनाएँ आजकल अप्राप्य हैं ।

भूपत :

ये बिसराम खाँ के पुत्र थे । बिसराम खाँ की मृत्यु सन् १६७१ ई० में होने पर औरंगजेब ने इन्हें और खुशहाल खाँ को मातमी खिलअत दी थी ।^६

संगीत के लिए आलमगीरी दरबार में अवकाश न रहने पर इन्हें अन्य आश्रयदाताओं का मुँह देखना पड़ा । रामपुरा-नरेश छत्रसिंह की प्रशंसा में इनके ध्रुवपद प्राप्त होते हैं ।

रसबीन खाँ :

ये भी शाहजहाँ-काल में प्रसिद्ध थे और सम्भवतः खुशहाल खाँ के भाई थे । औरंगजेब के भी आश्रित रहे । सन् १६६७-६८ ई० में जब औरंगजेब ने दरबार में गाना-बजाना बन्द किया, तब ये भी दरबारी गायक थे ।^७

रागदर्पणकार फकीरुल्लाह ने इनका वास्तविक नाम मोहम्मद बताया है और इन्हें अद्वितीय वाद्य-वादक भी कहा है ।^८ इनकी रचनाएँ मौखिक रूप में प्रसिद्ध हैं ।

नायक पूरन :

इन्होंने एक ध्रुवपद (रा० क०, पृ० ५०, १०६) में औरंगजेब की प्रशंसा की है और एक अन्य ध्रुवपद (तत्तैव, पृ० २६०) में सरस्वती की स्तुति की है ।

मुबारक

‘रागकल्पद्रुम’, प्रथम भाग, पृ० २६६ पर इन्होंने शाह आजम की प्रशंसा की है । आजम औरंगजेब का पुत्र था और उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ मारा गया था ।

१. ‘आजकल’, म्यू० नं०, पृ० १०८ ।

२. ‘आजकल’, म्यू० नं०, पृ० १०८; मिराति आफताबनुमः, ३६० ब ।

३. ‘आजकल’, म्यू० नं०, पृ० १०८ ।

४. उपरिवत्, पृ० १०८; औरंगजेबनामः, दूसरा भाग, पृ० ३२ ।

५. रागदर्पण, दसवाँ बाब, मानसिंह०, पृ० १३६; ‘मअदन्’, पृ० २७ ।

६. औरंगजेबनामः, भाग २, पृ० ३२; परिशिष्ट अ, २२३-२३० ।

७. उपरिवत्, पृ० ६ ।

८. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, दसवाँ बाब; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० ३० ।

सदारंग :

संगीत-जगत् में शाह सदारंग का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है, 'सदारंग' इनका उपनाम था और 'नेमत खाँ' नाम । ये ध्रुवपदकार एवं गायक होने के साथ ही प्रसिद्ध वीणावादक भी थे ।^१

औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जमशाह की सभा में तत्तारी कव्वाल, बंगाली नटवा (संगीतजीवी जाति का व्यक्ति-विशेष) और देवदत्त कवीश्वर (महाकवि देव) तथा अन्य कलामर्मज्ञों से इन्होंने संगीत की शिक्षा ली ।^२

मुअज्जमशाह (बहादुरशाह) के राज्यकाल के पश्चात् इन्होंने जहाँदारशाह की सभा में सम्मान एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त किया ।^३

तत्पश्चात् मुहम्मदशाह रँगीले ने इन्हें संरक्षण दिया और इनका अत्यन्त सम्मान किया । मुहम्मदशाह के राज्यकाल के अन्तिम भाग में इनका देहावसान हुआ ।^४ इनके द्वारा रचित अनेक ध्रुवपद प्राप्त हैं ।^५ इन्होंने 'ख्यालों' और 'तरानों' की भी रचना अत्यन्त उत्कृष्टतापूर्वक की । आजकल के खयाल-गायकों में कोई ऐसा न होगा, जिसे 'सदारंग' के कुछ खयाल याद न हों ।

मुहम्मद करम इमाम ने 'सदारंग' के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती लिखी है, जिसका सारांश यह है कि 'सदारंग' और 'अदारंग' नामक दो सहोदर भ्राता आलाप करने और ध्रुवपद गाने के पश्चात् अभिमानपूर्वक कहने लगे कि काले के सामने चिराग नहीं जलता, अब कोई ऐसा गाये, बजाये । उन दोनों के पश्चात् रसूल खाँ नामक कव्वाल की बारी थी । उसने 'कौल' और 'खयाल' गाया, जिसका आविष्कार इस्लामी रीति से हुआ है । इन गीतों में अल्लाह और पैगम्बर की स्तुति थी । रसूल खाँ ने ऐसा गाया कि समस्त श्रोता एवं बादशाह 'वज्द' (आत्मविस्मृति) में आ गये । अन्ततोगत्वा, जब किसी ने सिर न उठाया, तब सभी आनन्दातिरेक से झूमते हुए दृष्टिगोचर हुए । प्रत्येक व्यक्ति अल्लाह की प्रशंसा करने लगा । उन कलावन्तों (अदारंग और सदारंग) की चौकड़ी भूली, आँखों में सरसों फूली । रसूल खाँ को खिलअत और पुरस्कार मिला । सदारंग और अदारंग लज्जा के समुद्र में डूब गये, बगैर मारे मर गये । उस दिन से इन दोनों ने ध्रुवपद गाना छोड़ दिया और सैकड़ों खयाल बनाये और गाये, जो कि इस समय भी लोकप्रिय हैं ।^६

१. मिराति आफताबनुमः, पृ० २६३ अ ।

२. उपरिवत् ।

३. उपरिवत् ।

४. उपरिवत् ।

५. परिशिष्ट आ, १११, ११६ ।

६. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० १३६ ।

प्रत्येक बात को कट्टर और हठी मुसलमान के दृष्टिकोण से देखना मुहम्मद करम इमाम की विशेषता है। आलाप और ध्रुवपद को 'हिन्दू' और खयाल को 'मुसलमान' कहकर उसने अपनी सकीर्ण दृष्टि-विशेष का परिचय दिया है। अल्लाह, पीर और पैगम्बर की स्तुति में तो अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ^१ और तानसेन^२ अनेक ध्रुवपद लिख चुके थे। पश्चाद्वर्ती कलाकारों ने भी ऐसी रचनाएँ की। गंगाधर ने ख्वाजाहिन्द^३ की प्रशंसा में ध्रुवपद-रचना की है। पीर गुलशन^४ की स्तुति का अदारग-कृत एक ध्रुवपद परिशिष्ट में दिया गया है। सदारग और अदारंग दोनों ही मुसलमान थे। 'खयाल' का आविष्कार अरब में नहीं हुआ और इस्लाम की दृष्टि से तो गाना-बजाना सर्वथा त्याज्य है; परन्तु मुहम्मद करम इमाम सदारंग और रसूल खाँ में 'हिन्दू-मुस्लिम-दंगा' कराये बिना नहीं रहता।

मुहम्मद करम इमाम के ऐतिहासिक अज्ञान का परिचय देनेवाली एक बात अदारंग और सदारंग को सहोदर कहना है। अदारग सदारग के शिष्य और दामाद थे, तथा इनका वास्तविक नाम फीरोज खाँ था।^५

अदारंग :

जैसा कहा गया, इनका वास्तविक नाम फीरोज खाँ था^६ और ये 'अदारंग' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये 'सदारग के शिष्य और जामाता थे। अपने युग के ये सर्वश्रेष्ठ गायक थे। इनके गाने में जो प्रौढ़ता, जटिलता एवं रंगीनी देखी गई, दूसरों के गाने में उसका चिह्न तक नहीं। वीणावादन में भी ये अपने युग में एक एव अनुपम थे। ध्रुवपदों, खयालों एवं तरानों की रचना करने पर इनका पूरा अधिकार था।^७

वास्तविकता से परिचय न होने के कारण कुछ लोग इन्हें 'सदारंग' का भाई समझ बैठते हैं। मुहम्मद करम इमाम ने भी इनके सम्बन्ध में यही भूल की है।^८

सदारंग के सम्बन्ध में इनके एक ध्रुवपद में कहा गया है कि जहाँ गाने का अवसर हो, वहाँ सदारंग का नाम लेकर गाना चाहिए।^९ यह वाक्य सदारंग के प्रति पूज्य भाव प्रकट करके इनका सदारंग का शिष्य होना सिद्ध करता है।

१. परिशिष्ट आ, ८६।

२. परिशिष्ट आ, २८-२९।

३. परिशिष्ट अ, ९४।

४. परिशिष्ट आ, १२०।

५. मिराति आफताबनुमः, पृ० २९३ ब।

६. मिराति आफताबनुमः, पृ० ३६२ आ; आजकल, म्यू० नं०, पृ० १०८।

७. उपरिवत्।

८. 'मअदन्'-उल्-मूसिकी, पृ० २३९।

९. परिशिष्ट आ, १२४।

मुहम्मदशाह रँगीले की प्रशंसा में भी इनकी रचनाएँ मिलती हैं^१ और 'आलमगीर सानी' की प्रशंसा में भी।^२ सदारंग का देहान्त तो मुहम्मदशाह के युग के अन्तिम भाग में हो गया था। आलमगीर सानी की प्रशंसा में इनकी रचनाओं का अस्तित्व इनका उसके युग में भी जीवित रहना सिद्ध करता है। मुहम्मदशाह के राज्यकाल का अन्त सन् १७४८ ई० में हुआ और आलमगीर द्वितीय ने सन् १७५६ ई० तक राज्य किया। इसका अर्थ है कि अदारंग सदारंग की अपेक्षा बहुत बाद तब जीवित रहे होंगे।

शाह आलम की सभा में ये रहे या नहीं, यह कहा जाना कठिन है। 'मिराति आफताबनुमः' नामक फारसी-ग्रन्थ में अदारंग का परिचय प्राप्त है।

इंछाबरस :

'रागकल्पद्रुम' में इनकी रचनाएँ यत्र-तत्र बिखरी मिलती हैं। इनकी कुछ रचनाओं में मुहम्मदशाह की प्रशंसा है,^३ अतः इन्हें 'सदारंग' का समकालीन होना चाहिए।

मुहम्मद करम इमाम ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण इन्हें सुजान खाँ का समकालीन बना डाला है और लिखा है कि सुजान खाँ ने इंछाबरस की रचनाएँ मदीना में जाकर गाई थी, जिससे इंछाबरस का कोढ़ ठीक हो गया था।^४ परन्तु, यह दन्तकथा असंगत है।

इस्लाम और मुसलमानों की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए करम इमाम ने ऐसे जोड़-तोड़ बहुत लगाये हैं। सैयद निजामुद्दीन 'मधुनायक' बिलग्रामी सन् १६८८ ई० में दिवंगत हुए थे।^५

तानसेन की मृत्यु के समय 'मधुनायक' केवल एक वर्ष के थे; जबकि औरंगजेब को तख्त पर बैठे तीस वर्ष और तानसेन के स्वर्गवास को ६६ वर्ष बीत चुके थे। परन्तु मुहम्मद करम इमाम ने तानसेन का, 'मधुनायक' की सेवा में उपस्थित होना और उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करना वर्णित किया है।^६ यही दशा 'सुजान खाँ-इंछाबरस' की किवदन्ती की भी है।

इंछाबरस मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में रहे। नहीं कहा जा सकता कि इनकी मृत्यु कब हुई। इंछाबरस का एक ध्रुवपद ऐसा मिलता है, जिसमें अमीर खाँ की भी प्रशंसा है।

१. परिशिष्ट आ, १२७।

२. परिशिष्ट आ, १२१।

३. परिशिष्ट आ, १३८ से १४१।

४. 'मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २४०-२४१।

५. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८; स० आ०, भाग १, पृ० ३६५।

६. 'मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २४३।

प्रेमदास :

प्रेमदास नामक एक सज्जन ने हितहरिवंशजी की रचना 'हितचौरासी' की टीका ब्रजभाषा-गद्य में लिखी है।^१ प्रेमदास की रचनाएँ वैष्णवों के कीर्तन-संग्रहों में भी मिलती हैं। 'रागमाला' में प्रेमदास की जिन रचनाओं का संग्रह है, वे इन लोगों से भिन्न हैं या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

'रागमाला' में प्रेमदास की छाप से युक्त जो रचनाएँ मिलती हैं, उनमें ऐसी भी है, जिनका विषय गणेश और सरस्वती की स्तुति भी है। एक ध्रुवपद में अर्द्धनारीश्वर का भी वर्णन है। इनकी कुछ रचनाएँ इन्हें संगीतजीवी सिद्ध करती हैं। सम्भव है कि ये अपनी आयु के अन्तिम भाग में वैष्णव हो गये हों।

'हितचौरासी' के टीकाकार प्रेमदास श्रीहितरूपलाल गोस्वामी के शिष्य थे। 'हितचौरासी' की टीका संवत् १७६१ वि० (सन् १७३४ ई०) में पूर्ण हुई, इस समय दिल्ली में शाहआलम (रा० का० सन् १७५६-१८०६ ई०) का शासन था। चाचावृन्दावनदासजी-कृत 'हरिकलावेलि' में लिखा है कि संवत् १८१३ (सन् १७५६ ई०) में यवनों का जो उपद्रव हुआ, उसमें घनानन्दजी के साथ प्रेमदासजी भी मारे गये थे।^२

अपने एक ध्रुवपद में इन्होंने करनसाहि नामक किसी आश्रयदाता को सम्बोधित किया है।

मनरंग :

ये प्रसिद्ध ध्रुवपदकार एवं गायक नेमत खाँ (सदारंग) के पुत्र थे। इनकी रचनाओं में 'होरियाँ' भी हैं और 'खयाल' भी। निम्नांकित होरी में इन्होंने अपने पिता सदारंग की चर्चा श्रद्धापूर्वक की है :

आदि महादेव बीन बजाई ।

पाई नियामतखान पीअ सदारंग करि करिमें (करम) दिखाई ॥

सुर सप्त सुरनि की सुरसुर की सप्तक करि 'मनरंग' लै ।

उनन्वास कोटि (कूट) तानिलै सब गुनिअनि कौं समुझाई ॥

'रागमाला', पृ० २४० अ पर यह होरी सगृहीत है, जिसे आजकल के गायक खण्डित एवं भ्रष्ट रूप में 'खयाल' कहकर गाते हैं।

'रागमाला', पृ० १२३ अ पर इनका निम्नांकित ध्रुवपद दिया हुआ है, जिसमें इन्होंने मोहम्मदशाह के गुण की प्रशंसा की है :

ताहि बढौं रीझि रिझाइ पिअ कौं मेरे जान गाइ बजाइ ग्यान करि और सुरतार ।
फुनि नृप धाइ राग धाइ परकीरन जे 'मनरंग' ऐसी कौन विद्या और जानते सब अंग अंग

१. हि० सा० इ०, पृ० २१६ ।

२. श्रीहितहरिवंश गोस्वामी, सम्प्रदाय और साहित्य : ले० ललिताचरण गोस्वामी, वेणु प्रकाशन, वृन्दावन, सं० २०१४ वि० ।

प्रकार । जा भुअलोक की कहा कहौ जे इन्द्रलोक कहिअत सुनिअत नारद तुम्बर कमलासी पातुर एहो नाही तुअ सम हिअ जिअ सोच करौ विचार । सर्व कला सम्पूरन साहि जलाल मोहम्मद एक रचौ मद संसार ।

परिशिष्ट आ में संकलित ध्रुवपद-सं० १२८-१२९ भी इनकी ही रचनाएँ हैं ।

शम्भु :

ये कवि और बन्दीजन थे । ग्रियर्सन ने सन् १७५० ई० में इनका उपस्थित होना लिखा है ।^१ ये दौलतपुरवाले सुखदेवमिश्र के शिष्य और 'रामविलास' नामक रामायण के रचयिता थे । किसी उदयरज की प्रशंसा में इन्होंने ध्रुवपदों की रचना की है ।^२

आलम :

इनका विशिष्ट परिचय उपलब्ध नहीं है । मुगल-सम्राट् अहमदशाह की प्रशंसा में इनका एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम', भाग प्रथम, पृ० २८८ पर मिलता है ।

देवीदत्त :

'रागमाला', पृ० २८४ आ पर इनकी एक रचना संगृहीत है, जिसका विषय आदर्श-गान है । ग्रियर्सन ने भी एक देवीदत्त कवि की चर्चा की है ।^३ सर्वेक्षणकार ने लिखा है कि देवीदत्त ने 'बैतालपचीसी' का भाषानुवाद संवत् १८१२ (सन् १७५५ ई०) में किया था ।^४ 'रागमाला' के देवीदत्त और ग्रियर्सन के देवीदत्त एक ही प्रतीत होते हैं ।

चेतसिंह 'राजबहादुर' :

महाराज चेतसिंह काशी-नरेश महाराज बलवन्तसिंह के पुत्र थे । इतिहास-लेखक टॉरेन्स के अनुसार, बलवन्तसिंह के राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी थी और देश खुशहाल था । किसानों को न बेजा माँग का डर रहता था और न किसी तरह की जबरदस्ती का । वे अपने खेतों को बागों की भाँति जोतते थे और अपने अथक परिश्रम की पैदावार पर फूलते-फलते थे ।^५

बनारस की समृद्ध रियासत उस समय अवध के नवाब आसफुद्दौला के अधीन थी, किन्तु अवध के नवाब बनारस के महाराजा से अपना वार्षिक खिराज लेते थे और बनारस-राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते थे ।^६

१. हि० प्र० इ०, पृ० २०७ ।

२. परिशिष्ट अ, २८६ ।

३. हि० प्र० इ०, पृ० ३१५ ।

४. सर्वेक्षण, पृ० ३६६ (हि० प्र० इ०, पृ० ३१५) ।

५. भारत में अँगरेजी-राज्य, द्वि० सं०, सन् १९३८ ई०, भाग १, पृ० २४७-२४८, ओंकार प्रेस, इलाहाबाद ।

६. उपरिखत्, पृ० २४७ ।

सन् १७७६ ई० में अवध के नवाब ने बनारस का इलाका कम्पनी के नाम कर दिया। कम्पनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी करके बलवन्तसिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिये। एक अँगरेज रेजीडेण्ट बनारस में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह कम्पनी के मित्र समझे जाने लगे।^१

अँगरेजों और फ्रांसीसियों में लड़ाई छिड़ने पर वारेन हेस्टिंग्स ने महाराज चेतसिंह को यह आज्ञा दी कि वे पाँच लाख रुपये के वार्षिक व्यय पर अपने यहाँ तीन पलटनें रखें। इन पलटनों के अफसर अँगरेज थे और उनपर कम्पनी का अधिकार था।^२

दो साल के पश्चात् चेतसिंह को सवारों की भी एक पलटन रखने का आदेश हुआ। महाराज ने इनकार किया। हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँचकर महल को घेर लिया और रेजीडेण्ट को आज्ञा दी कि चेतसिंह बन्दी बना लिये जायँ।^३

यह देखकर बनारस की प्रजा ने अँगरेजों के एक-एक सैनिक को मार डाला। बदला लेने के लिए अँगरेजों की अधिक सेना भेजी गई, भीषण युद्ध हुआ।^४

किले की सुरक्षा असम्भव समझकर महाराज चेतसिंह रानी के साथ रामनगर के किले में चले गये। रामनगर के किले पर भी अँगरेजों का अधिकार हो गया और महाराज चेतसिंह भागकर ग्वालियर चले गये।^५

थोड़े दिनों के पश्चात् वारेन हेस्टिंग्स ने स्व० शुजाउद्दौला की वृद्धा माता और विधवा बेगम को यह निराधार आरोप लगाकर लूटा कि वे चेतसिंह के साथ मिलकर अँगरेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रही हैं।^६

महाराज चेतसिंह का स्वर्गवास ग्वालियर में ही हुआ।^७ ये अच्छे संगीतज्ञ एवं ध्रुवपदकार थे और ध्रुवपदों में अपनी मुद्रा 'राजबहादुर' रखते थे।^८

शेख मीर :

इनका पूरा नाम ख्वाजा मीर दर्द था। ये उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। संगीत-विद्या में मुगल-सम्राट् शाह आलम के गुरु थे। 'रागमाला', पृ० ६६ अ पर इनका एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय सूफी-सन्तों की प्रशंसा है।

१. भारत में अँगरेजी-राजा, ओंकार प्रेस, इलाहाबाद, पृ० २४८।

२. उपरिबत्।

३. उपरिबत्, पृ० २४६।

४. उपरिबत्।

५. उपरिबत्, पृ० २४६-२५०।

६. उपरिबत्, पृ० २५२।

७. उपरिबत्, पृ० २५०।

८. परिशिष्ट अ, २३१ से २६७।

गुलाब :

गुलाब नामक जिस ध्रुवपदकार की रचनाएँ प्राप्त हैं, उसने कुछ ध्रुवपदों में 'माधो महाराज' का वर्णन किया है ।^१

'करहिया कौ रायसो' के रचयिता कवि गुलाब माथुर चतुर्वेदी, आँतरी-निवासी थे । इस ग्रन्थ में वर्णित युद्ध सन् १७६७ ई० के १५ अगस्त को उनके समक्ष हुआ था ।^२

जिस समय यह युद्ध हुआ था, जयपुर पर सवाई माधवसिंह का शासन (सन् १७५० ई० से) था, जो एक गुणग्राही वश के रत्न थे । इन माधवसिंह का स्वर्गवास सन् १७६८ ई० में हुआ था ।

सम्भव है, ध्रुवपदकार 'गुलाब' और 'करहिया कौ रायसो' के रचयिता 'गुलाब' एक ही व्यक्ति हों और इन ध्रुवपदों के प्रशस्य पात्र एवं आश्रयदाता जयपुर-नरेश सवाई माधवसिंह हों । जयपुर के साथ जाट-नरेशों के सम्बन्ध कभी अच्छे और कभी बुरे होते रहते थे । इसलिए, दोनों राज्यों के साथ 'गुलाब' कवि का सम्बन्ध होना असम्भव नहीं है ।

कृष्णानन्द रागसागर :

ये गौड़ ब्राह्मण थे और इनका जन्मस्थान उदयपुर था । इनका जन्मकाल सन् १७६५ ई० है । इन्होंने वृन्दावन और गोकुल में संगीतशास्त्र पढ़ाया । गोकुल के गोस्वामी कल्याणराय, गिरधर और सुप्रसिद्ध संगीताचार्य दामोदर ने इनकी विद्या से प्रभावित होकर इन्हें 'रागसागर' की उपाधि दी थी ।

बत्तीस वर्ष तक इन्होंने उत्तर और दक्षिण भारत में भ्रमण किया और बड़े-बड़े उस्तादों, गायकों और रचनाकारों से मिलकर बिखरे हुए गेय साहित्य को एकत्र किया । सन् १८२२ ई० में 'शब्दकल्पद्रुम' के सम्पादक राजा राधाकान्तदेव से इनका परिचय हुआ । राजा राजेन्द्रलालमिश्र भी इनके परिचितों में से थे और उन्होंने कहा है कि कृष्णानन्दजी अपने द्वारा संकलित गेय साहित्य को 'शब्दकल्पद्रुम' की भाँति सात खण्डों में प्रकाशित करने की बात सोचते थे, परन्तु इसके तीन खण्ड ही प्रकाशित हो सके । सन् १९१४ ई० में प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीनगेन्द्रनाथ बसु ने इस ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन कराया । इसका प्रथम संस्करण सन् १८४३ ई० में निकल चुका था ।

श्रीबसु महोदय ने कई विद्वानों की सहायता से इस ग्रन्थ के मूल पाठ में संशोधन कर दिया । मूल पाठ की दृष्टि से यह सन्तोषजनक नहीं हुआ । संशोधक-मण्डल की असंगीतज्ञता और फारसी एवं अरबी से अपरिचय के कारण सहस्रों स्थानों पर इस ग्रन्थ का पाठ भ्रष्ट हो गया है । अनेक तद्भव शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्द भी कर दिये गये हैं । ग्रियर्सन ने हिन्दी-साहित्य का जो इतिहास लिखा, उसमें कृष्णानन्द के 'रागकल्पद्रुम' की सामग्री अत्यन्त सहायक हुई ।

१. परिशिष्ट आ, १४६-१५१ ।

२. हि० बी० का०, पृ० ३२ ।

कृष्णानन्द ने अपनी पुस्तक में एक भूमिका भी लिखी है, जिसका शीर्षक 'रागसागर की सूचना' है। इसमें कुछ बातें अत्यन्त उपयोगी हैं। ध्रुवपद की चार 'बानियों' की चर्चा करते हुए इन्होंने तानसेन, बैजूबावरे, गोपाल नायक (द्वितीय) और सूरदास (महाकवि सूरदासजी) की बानियाँ क्रमशः गोबरहारी, खण्डारी, डागुरी और नौहारी बताई हैं। साथ ही, मुसलमान गायकों के लिए 'मुसलमान गवैया' शीर्षक जैसा बनाकर उनकी चर्चा की है और तानसेन, बैजूबावरे और गोपाल नायक को इनसे पृथक् गिनाया है। इसका अर्थ यह है कि कृष्णानन्द के समय तक तानसेन को मुसलमान नहीं समझा जाता था।

इन्होंने लिखा है कि इनके द्वारा सकलित गीतों की संख्या १२,२५,००० थी। खेद की बात है कि इस विशाल संग्रह का बहुत ही थोड़ा भाग प्राप्त है।

ये अनेक राजाओं के सम्पर्क में आये थे और इन्होंने अपने समकालीन अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों और नरेशों को अपना ग्रन्थ भेजा था। नरेशों की सूची अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। ये नरेश निम्नांकित हैं :

- | | |
|------------------------------------|---------------------------------------|
| १. उदयपुर-नरेश महाराज स्वरूपसिंह | २३. कर्नाटपति पद्मनाभ |
| २. मुगल-सम्राट् बहादुर शाह द्वितीय | २४. श्रीरामराजसिंह |
| ३. पंजाब के श्रीमहाराज रणजीतसिंह | २५. सवाई राजसिंह |
| ४. अरब के सम्राट् | २६. बूँदी-नरेश रामसिंह |
| ५. फारस के सम्राट् | २७. कोटा-नरेश रामसिंह |
| ६. रूस के सम्राट् | २८. रीवाँ-नरेश विश्वनाथदेवसिंह |
| ७. महारानी विक्टोरिया | २९. बड़ौदा-नरेश सियाजी गायकवाड़ |
| ८. महाराजा खड़गसिंह | ३०. द्वारकादेशाधिपति भोजराजसिंह |
| ९. महाराजा नौनिहालसिंह | ३१. काशी-नरेश उदितनारायणसिंह तथा |
| १०. महाराजा शेरसिंह | ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह |
| ११. महाराजा दिलीपसिंह | ३२. काशी के राजा देवकीनन्दन |
| १२. चीन-नरेश | ३३. भावनगर-नरेश विजयसिंह |
| १३. बर्मा-नरेश | ३४. नवानगर-नरेश राजा जामशाह |
| १४. बलख-बुखारा-नरेश | ३५. भरतपुर-नरेश बलवन्तसिंह |
| १५. बाजीराव पेशवा | ३६. कच्छ के राजा देशरजी |
| १६. विनायकराव पेशवा | ३७. काशी-नरेश बलवन्तसिंह, |
| १७. निजाम हैदराबाद | ३८. बक्सर के उदितप्रकाशसिंह |
| १८. मकसूदाबाद के नवाब जुल्फिकार | ३९. पन्ना के राजा हितनारायणसिंह |
| १९. फर्रुखाबाद के नवाब | ४०. बेतिया के राजा नवलकिशोरसिंह |
| २०. नेपाल-नरेश विक्रमशाह | ४१. छोटानागपुर के जगन्नाथसिंह |
| २१. जोधपुर-नरेश तखतसिंह | ४२. दरभंगा के राजा रुद्रसिंह तथा अन्य |
| २२. जयपुर के सेनापति रघुजी भोंसले | अनेक रईस |

‘रागकल्पद्रुम’ के प्रकाशित भाग को भी अनेक दृष्टियों से एक बृहत्कोश कहा जाना चाहिए। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। अनेक ऐसे कवियों और ग्रन्थों की चर्चा इसमें आती है, जिनकी उपलब्धि अबतक नहीं हो सकी है।

कृष्णानन्द रचनाकार भी थे और अपनी रचनाओं में अपना नाम अथवा अपनी उपाधि ‘रागसागर’ की छाप से रखते थे। ‘रागकल्पद्रुम’ में इनकी अपनी रचनाएँ भी हैं। एक रचना में इन्होंने अवध के नवाब गाजिउद्दीन हैदर^१ तथा एक अन्य ध्रुवपद में किसी राजाराम^२ की प्रशंसा की है।

मियाँ ज्ञानी :

ये अवध के नवाब आसफुद्दौला बहादुर के आश्रित थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा भली भाँति हुई थी और अपने युग में ये अद्वितीय कलाकार गिने जाते थे। यद्यपि वह युग ख्याल और ठुमरी का था, तथापि अपनी गुणज्ञता को सिद्ध करने के लिए ध्रुवपद की रचना भी करते थे।

‘रागमाला’, पृ० १२४ आ पर देवी-स्तुति-विषयक इनका एक ध्रुवपद संगृहीत है।

अचपल :

ये प्रसिद्ध गायक तानरस खाँ (मृ० सन् १८८५ ई०) के गुरु थे। मियाँ अचपल दरवेश सफ़्त (साधु-स्वभाव) व्यक्ति थे, इसीलिए इन्हें ‘मियाँ अचपल’ कहा जाता है। इनके वास्तविक नाम का पता नहीं चलता। इनका निवासस्थान दिल्ली था और ये प्रतिदिन प्रातः घोड़े पर सवार होकर हजरत कुतुब साहब के यहाँ हाजिरी देने (दर्शन करने) जाया करते थे और शाम को वापस आते थे।

इनको ख्यालियों के प्रसिद्ध घराने ‘कव्वाल बच्चों’ का वंशज कहा जाता है^३ यद्यपि वह युग ख्याल का था, तथापि इन्होंने ध्रुवपदों की भी रचना की है।^४

कवि गोपाल :

‘रागमाला’, पृ० २०२ आ पर इनका गणेश-स्तुति-विषयक एक प्रसिद्ध ध्रुवपद विद्यमान है, जो तेवरा ताल में निबद्ध है और छन्द एवं ताल में समन्वय का परिचायक है।

ग्रियर्सन ने एक गोपाल बन्दीजन की चर्चा की है, जो चरखारी-नरेश रतनसिंह के दरबारी कवि थे।^५ बन्दीजनों में एक ही व्यक्ति का कवि, गायक और ध्रुवपदकार होना

१. रा० क०, भाग १, पृ० २१४, १।

२. उपरिवत्।

३. उर्दू-‘आजकल’, पृ० ११७ (म्यूजिक नम्बर)।

४. रागमाला, पृ० ६४ आ।

५. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २३७।

परम्परा-सिद्ध है। अतः, यह अनुमान किया जा सकता है कि ग्रियसन के गोपाल बम्दीजन और 'रागमाला' के कवि गोपाल एक ही व्यक्ति हैं।

अज्ञातपरिचय ध्रुवपदकार

अदारस : इनकी एक रचना परिशिष्ट आ, पृ० १३५ पर है।

आदिनराइन : इनका एक ध्रुवपद 'रागमाला', पृ० ८६ अ पर संगृहीत है, जो द्रुत लय में गेय ध्रुवपदों का उदाहरण है। ऐसे ध्रुवपद गायकों की परम्परा में लङ्ग्त के ध्रुवपद कहे जाते हैं।

इशकरंग : इनकी कुछ रचनाएँ राजस्थानी-भाषा में हैं और कुछ में राजस्थानी और ब्रजभाषा का मिश्रण है। 'रागमाला' पृ० २६६ अ पर इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं, जो राजस्थानी-भाषा पर ध्रुवपद-शैली के प्रभाव का परिचय कराती हैं।

खेमरसिक : 'रागमाला', पृ० १८६ अ पर इनका एक प्रसिद्ध ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय नायिका के अंगों का वर्णन है। इससे अधिक इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

जुगराजदास : 'रागकल्पद्रुम' के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग में इनकी रचनाएँ हैं, जिनकी संख्या लगभग १३ है।

तानवर : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १०८, १३८ पर इनकी दो रचनाएँ संगृहीत हैं। एक ध्रुवपद में इन्होंने तानसेन की प्रशंसा की है।

तानवरस : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १३२ तथा 'रागमाला', पृ० १२५ अ पर इनकी एक-एक रचना मिलती है।

नूररंग : सम्भव है कि ये सदारंग के कोई वंशज हों। इनके विषय में कुछ पता नहीं चलता। परिशिष्ट अ १३० से १३२ तक इनकी रचनाओं का नमूना है।

प्रेमरंग : 'रागदर्पण', प्रथम भाग, पृ० २५, द्वितीय भाग, पृ० १४ एवं तृतीय भाग, पृ० १६ एवं ५५ पर इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। इनका काल सदारंग के बाद का हो सकता है।

महानादसेन : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ५० और ५१ पर इनके दो ध्रुवपद हैं। 'महानादसेन' उपाधि प्रतीत होती है, जिससे इनका तानसेन के पश्चात् होना सम्भव प्रतीत होता है।

मुरसद : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ५६ पर अल्लाह की स्तुति में इनका एक ध्रुवपद है।

रसरंग : ये अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं । परिशिष्ट अ पर संकलित १३४ संख्यक ध्रुवपद इनकी रचना का एक नमूना है । ये सदारंग के पश्चाद्वर्ती प्रतीत होते हैं ।

रामराय : इनका एक ध्रुवपद 'रागमाला', पृ० ५८ अ, पर संगृहीत है, जिसका विषय दूती-वचन है ।

लक्ष्मणदास : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० २११ पर गणेश-स्तुति-विषयक इनका एक ध्रुवपद विद्यमान है ।

वंशीधर : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ६० पर किसी की वर्षगांठ से सम्बद्ध इनका एक ध्रुवपद है ।

सवरंग : ये महानुभाव भी 'रंगान्त' उपाधि से विभूषित गायकों की परम्परा के कोई रत्न हैं । परिशिष्ट अ पर १३३ संख्यक ध्रुवपद इनकी रचना का नमूना है ।



ध्रुवपदों का शिल्प-विधान और साहित्यिक मूल्यांकन

(अ) ब्रजभाषा-ध्रुवपद की परिभाषाएँ, बानियाँ, धातुएँ और अंग
ब्रजभाषा-ध्रुवपद की परिभाषाएँ :

मानसिंह की सभा में विरचित 'मानकुतूहल' की मूल प्रति उपलब्ध नहीं है। 'रागदर्पण' नामक फारसी अनुवाद-ग्रन्थ में अनुवादक ने अपनी ओर से भी बहुत कुछ सम्मिलित कर दिया है।^१ अतः, 'रागदर्पण' में दी हुई 'ध्रुवपद' की परिभाषा को सर्वथा असन्दिग्ध प्रमाण नहीं माना जा सकता, परन्तु यदि 'रागदर्पण' की परिभाषा को मानसिंह के 'मानकुतूहल' में दी हुई ध्रुवपद-परिभाषा माना जाय, तो वह यों है :

रागदर्पण में ध्रुवपद की परिभाषा : इसमें चार पक्तियाँ होती हैं।... इसकी भाषा 'देशी' होती है।... समस्त रसों में इसे बाँधा जाता है।... सुदेश से हमारा तात्पर्य ग्वालियर है, जो आगरा के राज्य का केन्द्र (!) है, जिसके उत्तर में 'मथुरा' तक, पूर्व में 'उन्नाव' तक, दक्षिण में 'ऊँज' तक तथा पश्चिम में बारों तक (का क्षेत्र है)। हिन्दुस्तान में इतने बीच की भाषा सबसे अच्छी भाषा है। यह खण्ड भारत में उसी प्रकार है, जिस प्रकार ईरान में शीराज।

इस परिभाषा के अनुसार, 'ध्रुवपद' में छन्द का बन्धन अनिवार्य नहीं है। 'ध्रुवपद' का विनियोग सभी रसों में किया गया है और भाषा का क्षेत्र निश्चित करके 'ध्रुवपद' में सुदेश की भाषा अनिवार्य बताई गई है।

तानसेन के द्वारा ध्रुवपद की परिभाषा : तानसेन ने ध्रुवपद की कोई स्वतन्त्र परिभाषा नहीं दी है, परन्तु उनके कुछ ध्रुवपदों से उनकी ध्रुवपद-सम्बन्धी धारणा का बहुत कुछ परिचय प्राप्त होता है।

तानसेन की दृष्टि में ध्रुवपद की चार तुके होनी चाहिए।^२ ध्रुवपद को शुद्ध अक्षरों से युक्त, अच्छे गुरुओं के शिष्यों द्वारा विरचित तथा नवरसों में यथावसर किसी भी एक रस से युक्त होना चाहिए। राग और रस में उनकी प्रकृति की दृष्टि से सामंजस्य भी उचित है।^३

१. 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० ५८।

२. उपरिचत्, पृ० ६०।

३. परिशिष्ट आ, ६६।

४. परिशिष्ट अ, ५१।

यहाँ अक्षरों की चर्चा है, परन्तु छन्द की नहीं। निपुण व्यक्ति की रचना ही ध्रुवपद हो सकती है, निगुरे (गुरुहीन) व्यक्तियों की नहीं। राग और रस का सामंजस्य 'ध्रुवपद' का प्राण बताया गया है।

अबुल फजल की परिभाषा : अबुल फजल ने 'आईने अकबरी' में ध्रुवपद के सम्बन्ध में कहा है कि ध्रुवपद तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित 'पद' है। उन पंक्तियों की लम्बाई कुछ भी हो सकती है। इन ध्रुवपदों का विषय प्रधानतया उन व्यक्तियों की प्रशंसा होती है, जो अपने पौरुष अथवा गुणों के कारण प्रसिद्ध होते हैं।^१ ध्रुवपद आगरा, ग्वालियर, बैरी (?) तथा आसपास के प्रदेशों में प्रचलित गीत है।^२

इस परिभाषा में भी छन्द की चर्चा नहीं है, परन्तु गान की दृष्टि से पंक्तियों की लयबद्धता अनिवार्य है।

अबुल फजल उन गीतों को 'ध्रुवपद' न कहकर 'विष्णुपद' कहता है, जिनमें कृष्ण की स्तुति हो। 'ध्रुवपद' गानेवाले अबुल फजल की दृष्टि में 'कलावन्त' हैं^३ और सम्भवतः 'विष्णुपदों' के गानेवाले कीर्तनियाँ।^४ हम जानते हैं कि मन्दिरों में 'पदों' के द्वारा कीर्तन करनेवाले व्यक्ति 'कीर्तनियाँ' या 'कीर्तनकार' कहलाते हैं। 'अष्टछाप' के आठों कवियों की रचना का प्रयोजन भगवन्नामकीर्तन ही था।

'ध्रुवपद' और 'विष्णुपद' में अन्तर जानने के लिए अबुल फजल के अनुसार मथुरा में गाये जानेवाले वे गीत 'विष्णुपद' हैं, जो चार या छह पंक्तियों से निर्मित खण्डों से बने होते हैं। इनका विषय कृष्णस्तुति होता है।^५

वेद-कृत ध्रुवपद-परिभाषा : शिवाजी के पिता शाहजी का दूसरा नाम मकरन्द था। इन्हीं के नाम पर इनके आश्रित पण्डित वेद ने 'संगीतमकरन्द' की रचना की है।^६ 'संगीतमकरन्द' में ध्रुवपद की परिभाषा यह है कि 'ध्रुवपद' में उद्ग्राह, ध्रुवक, आभोग ये

१. "The Dhoorpad, consists of stanza of three or four rhythmical lines of any length. They are chiefly in praise of men, who have been famous for their valour or virtue."—AIN, Glad. p. 140.

२. Dhoorpad in Agra, Gualior, Bary and the neighbourhood.

—Ibid, p. 130.

३. "The Karawund (Kalawant) chiefly sing the Dhroopad." —AIN. Glad. p. 734.

४. "The Keertaniyas are Brahmins, whose instruments are such as were in use among the ancients, viz. the Pakhawaj, Rabab and Tal." —AIN. Glad. p. 734.

५. "Those of Mehtra (Mathura) are called Bishenpad consisting of stanzas of four or six lines and are in praise of Kishen (Krishna)."

—AIN. Glad., p. 130.

६. भरतकोष, पृ० ६६३।

तीन 'धातु' होते हैं, जो प्रायः मध्यदेशीय भाषा में निबद्ध होते हैं। कुछ लोग ध्रुवपद को उद्ग्राह-रहित और कुछ लोग आभोग-रहित भी प्रयुक्त करते हैं और कुछ लोग इसके 'ध्रुव' नामक भाग को ही 'ध्रुवपद' कहते हैं। यह भेद अन्वर्थ (ध्रुव नामक धातु में निबद्ध पद) हो जाता है।^१

वेद के काल तक दो-तुके और तीन-तुके ध्रुवपद भी अस्तित्व में आ चुके थे। अबुल फजल भी तीन-तुके ध्रुवपदों का अस्तित्व मानता है। द्विधातु एवं त्रिधातु प्रबन्धों का अस्तित्व शुद्ध सूड-प्रबन्धों में मिलता ही है। अतः, वेद की दृष्टि ध्रुवपद का लक्षण करते हुए इन तथ्यों पर गई है, परन्तु ध्रुवपद को उद्ग्राह (आरम्भ) से हीन कहना ठीक नहीं है; क्योंकि आरम्भहीन गीत की तो सत्ता ही सम्भव नहीं। ध्रुवपद के चार धातुओं की पश्चात्कालीन संज्ञाओं—'स्थायी', 'अन्तरा', 'संचारी' और 'आभोग' पर प्रबन्ध के चतुर्धातु-वर्गीकरण का सीधा प्रभाव है। 'अन्तरा' और 'आभोग' तो सीधे ही 'सालगसूड'-प्रबन्धों से आये हैं।

भावभट्ट की परिभाषा : 'अनूप-संगीत-रत्नाकर' के रचयिता भावभट्ट ने अष्टारहवीं शती ई० में ध्रुवपद की परिभाषा इस प्रकार की कि 'ध्रुवपद' की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय हो सकती है। इसमें दो या चार वाक्य होते हैं, जिनमें नर-नारी की कथा होती है। शृंगार रस, भाव आदि होते हैं। यह रागालाप और पद से युक्त होता है, इसका प्रत्येक पाद पादान्त-अनुप्रास या पादान्त-यमक से युक्त होता है, इस प्रकार के चार पादों का अस्तित्व जहाँ हो और जिसमें 'उद्ग्राह', 'ध्रुवक' और 'आभोग' नामक तीन धातु हों, वह ध्रुवपद कहलाता है।^२

भावभट्ट की परिभाषा में संस्कृत-रचनाएँ भी 'ध्रुवपद' की परिधि में आ गई हैं, परन्तु विषय-संकोच हो गया है। अबुल फजल जहाँ 'ध्रुवपद' का विषय वीरों और गुणशालियों की प्रार्थना-मात्र बताता है, वहाँ भावभट्ट 'ध्रुवपद' का विषय केवल 'नर-नारी-कथा' निर्दिष्ट करते हैं। 'ध्रुवपद' का त्रिधातुरूप इन्हें मान्य है और चरणों में पादान्त-

१. प्रायशो मध्यदेशीयभाषया यत्र धातवः ।

उद्ग्राहध्रुवकाभोगास्त्रय एते भवन्ति ते ॥

उद्ग्राहरहितं केचित्तपरे त्वाभोगवर्जितम् ।

उद्ग्राहाभोगरहितमन्वर्थमपरे जगुः ॥ —भरतकोष, पृ० २६६ ।

२. गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।

द्विचतुर्वक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥

शृङ्गाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम् ।

पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयमकं च वा ॥

प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।

उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

—उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २३ ।

अनुप्रास अथवा पादान्त-यमक की बात भी ये कहते हैं। एला-प्रबन्ध के प्रथम चरण के दो भागों को 'सानुप्रास' बताया गया है, यही तत्त्व भावभट्ट के पादान्त-अनुप्रास में दिखाई देता है। यमकों का अस्तित्व प्रकरण-गीतों में कही-कही प्रयोज्य 'विविध' नामक भाग में भी होता था।^१

नृत्तसंग्रह की परिभाषा : नृत्य-सम्बन्धी एक पुस्तक-खण्ड को सम्पादित करके डॉ० प्रियबाला शाह ने व्यवहार के लिए 'नृत्तसंग्रह' नाम दे दिया है, जिसे डॉ० शाह दो-तीन सौ वर्ष पुराना समझते हैं,^२ परन्तु इस संग्रह में भावभट्ट की परिभाषा ज्यों-की-त्यों उद्धृत कर ली गई है।^३ अतः, सम्भव है कि यह खण्डित एवं अज्ञातकर्तृक रचना भावभट्ट की परवर्ती हो।

मुहम्मद करम इमाम की परिभाषा : मुहम्मद करम इमाम वाजिद अलीशाह का आश्रित था। उसका कथन है कि ध्रुवपद में चार-पाँच चरण होते हैं और दो चरण भी होते हैं।^४ चरण का अर्थ 'तुक' है, प्रथम तुक को स्थल कहते हैं, जो जनसाधारण में 'आस्ताई' कहलाती है, दूसरी तुक को 'अन्तरा', तीसरी तुक को 'भोग' और चौथी तुक को 'आभोग' कहते हैं। तुक को 'खण्ड' भी कहा जाता है।^५

मुहम्मद करम इमाम की परिभाषा में चरणों या तुकों की चर्चा तो है, परन्तु विषय, रस, भाव इत्यादि के सम्बन्ध में मौन का आश्रय लिया गया है। मुहम्मद करम इमाम में सूक्ष्म दृष्टि का सर्वत्र अभाव है।

भातखण्डे की परिभाषा : भातखण्डे ने ध्रुवपद की आधुनिक परिभाषा इस प्रकार दी है कि उसके चार भाग, स्थायी, अन्तरा, आभोग और संचारी होते हैं और कुछ ध्रुवपदों में केवल स्थायी और अन्तरा ही होते हैं।... वीर, शृंगार और शान्त रस की प्रधानता ध्रुवपदों में होती है और भाषा उच्च श्रेणी की होती है, इनका गान चौताल, सूलफाक (उसूले फ़ाख़्तः), झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र इत्यादि तालों में होता है।^६

भातखण्डे ध्रुवपद-गान को 'मर्दाना' और जोरदार कहते हैं,^७ परन्तु उन्हें जो ध्रुवपद सुनने के लिए मिले, वे वस्तुतः 'ध्रुवपद' के शव थे। स्त्रियों के द्वारा ध्रुवपद-गान

१. विविधो द्विविदारीकः स त्रिधा परिकीर्तितः ।

सामुद्गश्चाद्धसामुद्गो विवृतश्चेति सूरिभिः ॥

—सं० २०, अ० स०, ताला० पृ० ३४ ।

२. नृत्तसंग्रह, इण्ड्रोडक्शन ।

३. उपरिवत्, पृ० १८ ।

४. मअदन्०, पृ० १५६ ।

५. उपरिवत्, पृ० १६१ ।

६. क्रमिक पुस्तक-मालिका, चतुर्थ भाग, पृ० ४६-४७ ।

७. उपरिवत्, पृ० ४७ ।

की चर्चा अबुल फजल ने की है और बताया है कि 'दफ़ज़न' (दफ=ढप या डफ, 'ज़न=स्त्री) नामक स्त्रियाँ 'ध्रुवपद' भी गाती थी।^१ भरत के अनुसार तो गाना स्त्रियों के लिए ही स्वाभाविक है; क्योंकि स्त्रियों का कण्ठ निसर्गतः मधुर होता है। पुरुषों का प्रधान कार्य 'पाठ्य' है। यदि स्त्रियों में 'पाठ्य' की शक्ति और पुरुषों के गान में कही मधुरता दिखाई दे, तो यह उनका 'अलंकार' (अतिरिक्त या अपवादरूप विशेषता) है, स्वभाव नहीं।^२

ध्रुवपदों की चार बानियाँ :

ध्रुवपदों में चार बानियाँ प्रसिद्ध अकबरी युग के कही पश्चात् हुई। भातखण्डे 'बानी' का अर्थ स्वराश्रित गानशैली या 'गीति' समझते हैं। एक ध्रुवपद को तानसेन-कृत कहा जाता है, जो वस्तुतः, तानसेन की कृति प्रतीत नहीं होता, इसमें अचल 'षड्ज-पंचम' की चर्चा है, जो इस ध्रुवपद के अतिरिक्त तानसेन की कृति में कही नहीं मिलती। ध्रुवपद में चारों बानियों के ब्यौहार गिनाये गये हैं, वस्तुतः इस ध्रुवपद की रचना 'डागुर' लोगों को नीचा दिखाने के लिए की गई है, जो तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य कहते हैं। ध्रुवपद निम्नांकित है :

बानी चारों के ब्यौहार सुनि लीजें हो गुनीजन तब पावें यह विद्यासार ।
 राजा गुबरहार, फौजदार खंडार, दीवान डागुर, बकसी नौहार ।
 अचल सुर पंचम, चल सुर रिषभ, मध्यम, धैवत, निषाद, गंधार ।
 सप्त तीन इकईस मूर्च्छना, बाईस सुरति, उनचास कूट तान तानसेन आधार ।
 इसमें 'गुबरहार' को 'राजा', अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, खण्डार को 'फौजदार', अर्थात् गुबरहार की अपेक्षा हीनतर, डागुर को दीवान, अर्थात् पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षा हीन और नौहार को 'बखशी' कहा गया है ।

तानसेन के ध्रुवपदों में 'सुध बानी'^४ (शुद्ध वाणी) की चर्चा मिलती है। 'वाणी' का अर्थ 'रीति' कही नहीं होता। सन्तों की उक्ति को भी 'बानी' कहते हैं। प्रदेश-विशेष अथवा जाति-विशेष की भाषा को तत्तत्प्रदेश अथवा तत्तज्जाति की 'वाणी' कहा जा सकता है, गानशैली अथवा 'गीति' को नहीं।

१. "The Dufzun are chiefly Panjabi women, who play on the Dufs and Dehl (Dhol) and sing the Dhrupad." —Ain. Glad, p. 734.

२. प्रायेण तु स्वभावात् स्त्रीणां गानं, नृणां च पाठ्यविधिः ।

स्त्रीणां स्वभावमधुरः कण्ठो नृणां (च) ललितत्वम् ॥

ये स्त्रीणां पाठ्यगुणा भवन्ति नराणां च गानमधुरत्वम् ।

ज्ञेयोऽलङ्कारोऽसौ नहि स्वभावो ह्ययं तेषाम् ॥

—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ६०४ ।

३. रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ४८, ३५१ ।

४. उपरिचत्, पृ० ६१ ।

मुहम्मद करम इमाम ने चार बानियों की चर्चा करते हुए 'बानियों' को जाति या प्रदेश से ही सम्बद्ध किया है। उसके अनुसार, ब्रजचन्द दिल्ली के निकट 'डांगर'-प्रदेश, समोखनसिंह 'खण्डहर'-प्रदेश और श्रीचन्द 'नौहा' नामक प्रदेश के रहने-वाले थे।^१ एक अन्य स्थल पर वह तानसेन को 'गौरारी' (गोबरहारी नहीं), ब्रजचन्द को 'नौहारी', श्रीचन्द को 'डांगरी' और समोखनसिंह को 'खण्डारी' बानी का प्रवर्तक मानता है।^२ करम इमाम के इन दोनों वक्तव्यों में विरोध है। चौबीसवें पृष्ठ पर वह श्रीचन्द को 'नौहा'-प्रदेश का निवासी बताता है और दो सौ तैंतीसवें पृष्ठ पर उनका निवासस्थान दिल्ली का 'डांगर'-प्रदेश हो जाता है। इसी प्रकार, चौबीसवें पृष्ठ पर ब्रजचन्द डांगर-निवासी है और २३३ वें पृष्ठ पर वे 'नौहार' तथा दिल्लीवासी हो जाते हैं। ब्रजचन्द ब्राह्मण कहे गये हैं और श्रीचन्द राजपूत। मुहम्मद करम इन दोनों को मुसलमान बना मानकर इनका नाम क्रमशः 'चाँद खाँ' और 'सूरज खाँ' रख देता है।^३ परन्तु, 'रागदर्पण' से उद्धृत भाग में चाँद खाँ और सूरज खाँ सहोदर हैं।^४ असंगतियों के कारण हम मुहम्मद करम इमाम को ऐतिहासिक दृष्टि से तो भ्रान्त मानते हैं, परन्तु उसकी इस धारणा से सर्वथा सहमत हैं कि 'बानियों' का सम्बन्ध 'जाति' या 'प्रदेश' से था।

गौरारी बानी : 'गौरारी' शब्द 'ग्वालियरी' का अपभ्रंश (ग्वालियरी > ग्वारेरी > गौरेरी > गौरारी) है और ग्वालियर में बोली जानेवाली भाषा का द्योतक है, फकीरुल्लाह ने इसी भाषा को श्रेष्ठ कहकर इसका क्षेत्र निश्चित किया है, जिसकी चर्चा आ चुकी है। यही भाषा ध्रुवपदकारों की 'सुध बानी' (शुद्ध वाणी) है।

खण्डारी : खण्डार नामक स्थान पर एक दुर्ग भी था। इसपर बाबर के आक्रमण के समय राणा साँगा ने अधिकार किया था।^५ इस स्थान के निवासियों की भाषा का 'खण्डारी बानी' होना सम्भव है।

डांगरी : मुहम्मद करम इमाम ने दिल्ली के निकट स्थित 'डांगर' नामक एक प्रदेश की चर्चा की है। सम्भव है, वह आधुनिक 'दाँग' नामक स्थान हो। यहाँ के निवासियों की भाषा 'डांगरी' हो सकती है। सालिमचन्द 'डागुर' (या डागर) की चर्चा फकीरुल्लाह ने भी की है।^६ डागर एक जाति भी है।

नौहारी : मुहम्मद करम इमाम तो एक प्रदेश को 'नौहा' बताकर वहाँ के व्यक्ति को 'नौहार' कहता है। हसन खाँ नौहार की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है। इन लोगों की भाषा का नौहारी कहलाना सम्भव है।

१. मअदन्, पृ० २४।

२. उपरिबत्, पृ० २३३।

३. उपरिबत्।

४. उपरिबत्, पृ० २७।

५. बाबरनामः, पृ० २५२।

६. 'मानसिंह', पृ० १३६।

ब्रजभाषा-प्रबन्धों के चार धातु :

वस्तुतः, ब्रजभाषा-ध्रुवपद 'ध्रुव' तथा 'मण्ठ' इत्यादि सालगसूड-प्रबन्धों के तत्त्व अपने-आपमें समेटे हुए हैं। चौदहवीं शती ईसवी में गोपाल ने गान का आधार 'स्थाय' (ठाय), 'आलाप', 'गीत' और 'प्रबन्धों' को मानकर इन चारों के समुच्चय का नाम 'चतुर्दण्डी' रखा था। चतुर्दण्डी की उपमा उन चारों दण्डों से दी जाती है, जो किसी वितान 'शामियाना' का आधार बनकर उसे अपने ऊपर साधे रहते हैं। दूसरे शब्दों में इस बात को यों कहा जा सकता है कि गान-रूपी वितान को, आधार बनकर, ताने रहनेवाले चार आधार-दण्ड क्रमशः 'स्थाय' (राग-वाचक स्वर-समुदाय से युक्त वाक्य अथवा पाटाक्षर), 'गीत' (तीनों सप्तको में व्याप्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश), 'आलाप' (वातावरण में राग को व्याप्त करने के लिए प्रयोज्यमान स्वर-प्रयोग) और 'प्रबन्ध' है। ध्रुवपदों में 'चारों डाडी बाध आयै गोपाल' में 'चारों डाडी' 'चतुर्दण्डी' का ही अपभ्रंश है।

ब्रजभाषा-ध्रुवपद में 'स्थायी' नामक धातु 'स्थाय' का स्थानीय है, 'अन्तरा' नामक धातु 'मण्ठ' जैसे सालगसूड-प्रबन्धों से आया है, 'सचारी' का मूल राग-सम्बन्धी विशिष्ट वर्णक्रम 'सचारी' में है और समाप्ति का वाचक 'आभोग' प्रबन्धों से सीधा आया है। अतः, हम यह कह सकते हैं कि ब्रजभाषा-प्रबन्धों के चारों धातुओं की योजना भले ही नई हो, परन्तु वे कोई नवीन उद्भावना नहीं हैं, उनकी मौलिकता योजना में है। मानसिंह तोमर के पण्डितों और गायकों ने ब्रजभाषा-ध्रुवपद के लिए अपनी सामग्री का संकलन संगीत के परम्परागत शास्त्रों से ही किया था।

ब्रजभाषा-ध्रुवपद-प्रबन्धों के छह अंग :

(अ) स्वर : ध्रुवपदों का अंग है। यह 'अंग' स्वर-संज्ञाओं का गान है।

(आ) विरुद : ध्रुवपदों का विकास मन्दिरों, नाट्यशालाओं और राजसभाओं की देन है, इसीलिए आश्रयदाता अथवा वर्ण्य 'नायक' की प्रशंसा विरुद के रूप में ध्रुवपद का अंग है।

(इ) पद : पद का तात्पर्य यहाँ सार्थक वाक्य है। विभिन्न रसों में प्रयोज्य काव्य ही 'पद' है। यही अंग साहित्य और संगीत का सगम है। अधिकांश प्रबन्धों का यह अनिवार्य अंग होता है।

(ई) तेनक : यह एक प्रकार का सस्वर जप है। एला-प्रबन्ध की चर्चा में यह बताया जा चुका है कि 'ऊँ तत्सत्' में जो 'तत्' शब्द ब्रह्म का वाचक है, उसकी तृतीया विभक्ति का रूप 'तेन' (उसने) ब्रह्म के कर्तृत्व का ज्ञान कराता है। 'उसने' चराचर प्रपञ्च की रचना की है। यही 'तेन' शब्द के सस्वर जप का अभिप्राय है। ध्रुवपद-गायकों के आलाप में 'तननन-तननन' के रूप में यही 'तेनक' जीवित है।

(उ) पाट : (विभिन्न वाद्यों से निकलनेवाली ध्वनियाँ) : शिवताण्डव में 'डमड्डमड्डमड्डमड्ड' इत्यादि ध्वनियाँ डमरू के पाटाक्षर हैं और 'धिमिन्-धिमिन्-

धिमिन्-धिमिन् जैसी ध्वनियाँ मृदंग के । देवताओं को प्रसन्न करने के साथ-ही-साथ शब्दों का लयगत अनुरंजन भी इनका प्रयोजन है ।

(ऊ) ताल : प्रतिष्ठार्थक 'तल्' धातु के पश्चात् 'घञ्' प्रत्यय लगने पर 'ताल' शब्द का निर्माण होता है । गीत, वाद्य और नृत्य ताल में प्रतिष्ठित होते हैं । ध्रुवपद में यह एक महत्वपूर्ण अंग है ।

एला-प्रबन्ध की चर्चा में यह बताया जा चुका है कि षडंग प्रबन्ध की जाति मेदिनी, पंचांग प्रबन्ध की जाति आनन्दिनी, चतुरंग प्रबन्ध की जाति दीपनी, त्र्यंग प्रबन्ध की जाति भावनी और द्व्यंग प्रबन्ध की जाति तारावली होती है । ब्रजभाषा-ध्रुवपदों में इन अंगों से युक्त किन्हीं-किन्हीं जातियों के दर्शन होते हैं । बैजू के निम्नांकित ध्रुवपद में स्वर, पद और ताल तीनों अंगों का प्रयोग हुआ है और यह भावनी जाति का उदाहरण है ।

सा रे ग म प ध नि सप्त सुर, मो मन में ऐसी ही आवे ।
आरोही अवरोही और संचारी लय दिखावे ॥
नी ध प म ग रे स नीनी धध पप मम गग रेरे स ।
स रे ग म प ग म प ध नी सा रे स ।
नीध नीध पम पम गम नीध रेगम पम गग रेरे,
अलंकार नाद तीन ग्राम मूर्च्छना श्रुति प्रमान
सा नी ध प स रे गम, कंठ बरन बनावे ।
कहै बैजू बावरे सुनिये गोपाल, संगीत मुद्रा सुद्ध बानी ।
तन्त्र मत सौ बतावे ।^१

पाटाक्षरों का प्रयोग हमीर राग और चौताला ताल में गेय निम्नांकित ध्रुवपद में किया गया है :

बाजत हैं हो मिरदंगी इनि भेदनि तकिटि तक धि धि किटि तक धा धा किटितक ।
सम विसम अतीत अनाद्यात आन आन भांतिनि दिषावत तकिटि धिकिटि धितांग
तकधा किटितक । उलटि पलटि परनि ढरनि मुरनि संगीत रीति नैन विरस सरस करत
सुध मुद्रा जानत । प्रेमदास यह प्रकाल गुनीअनि मन भावत तकिटि तक धिधिकिटि
तकधिय धिलांग धिलांग धिलांग तकिट्या धिलांग धिलांग धिलांग तक धाधा
किट तक ।^२

इस ध्रुवपद का विषय आदर्श-गान और वादन है तथा इनमें ताल-मृदंग के पाटाक्षर पद और ताल का प्रयोग हुआ है । यह दीपनी जाति का उदाहरण है । राजबहादुर के एक और ध्रुवपद को उदाहरण के रूप में यहाँ दिया जाना पर्याप्त होगा, जिसका विषय लक्ष्मीनारायण की स्तुति है और जिसमें पद, पाटाक्षर स्वर और ताल का

१. बैजू और गोपाल, पृ० ७४ ।

२. परिशिष्ट आ, १७३ ।

प्रयोग है। चतुरंग होने के कारण यह भी भावनी जाति का ही उदाहरण है। इसमें दूसरी तुक में आये हुए अर्थहीन अक्षर मृदंग के और चौथी तुक में आये हुए अक्षर 'ती श्रैय', 'ती श्रैय' नृत्य के पाटाक्षर 'थेईया थेईया' के अशुद्ध रूप है। प्रतिलिपिकर्त्ता का प्रमाद इस अपभ्रंश में कारण है। ध्रुवपद निम्नांकित है :

परमात्मा जीवात्मा तुं अन्तरात्मा श्रीलक्ष्मीनाराइन जगव्यापक ।
संगीत नाद ताल सकल आपु तकिटितक धि धि किटि तकध्रुअं ॥
तक जग नग नग धुम किटि तक धा गुप्त आपु ही व्यापक ।
सप्त सुर सम्पूरन तुम ही प सां रे रे रे रे सा सा नी ध प
मा ग रे सा तुम ही जप जायक ।
ती श्रैय ती श्रैय आ सब तुम ही 'राजबहादुर' परम पुरिष श्री
श्रीधर साहिब ध्यान आपु ही ध्यापक ।^१

जिन ध्रुवपदों में आश्रयदाता की प्रशंसा है, उनमें सार्थक वाक्य-समूह पद है और प्रशंसा-विरुद्ध । वे व्यंग माने जाने चाहिए; क्योंकि ध्रुवपदों का अनिवार्य अंग ताल है। ऐसे सभी ध्रुवपद भावनी जाति के उदाहरण हैं। जिनमें केवल वर्ण्य विषय है, उनमें केवल दो अंग—पद और ताल समझे जाने चाहिए, वे तारावली जाति के उदाहरण हैं। इनसे अधिक अंगवाले ध्रुवपदों की सम्भावना भी है, जिनका उल्लेख विस्तार-भय से नहीं किया जा रहा है।

(आ) वाग्गेयकारों की परम्परा और ध्रुवपद के विषयों का स्रोत

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। इन पुरुषार्थों की प्राप्ति मानव-जीवन का ध्येय है। प्रथम तीन पुरुषार्थ इस जीवन में प्राप्त होते हैं और यदि परस्पर अविरोधी रूप में मनुष्य इन तीनों पुरुषार्थों का साधन करता रहे, तो परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति में बाधा नहीं पड़ती। धर्म अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का साधन कहा गया है। जो अभ्युदय में बाधा डालता हो, वह धर्म नहीं है और जो निःश्रेयस-विरोधी हो, वह भी अधर्म है। जीवन में सन्तुलन बनाये रखकर धर्म के दोनों पक्षों की सिद्धि विवेकशील मानव का कर्त्तव्य है।

श्रेय की ओर प्रवृत्ति प्रयत्न से होती है और प्रेय की ओर मनुष्य स्वतः झुक जाता है। श्रेय भी मनुष्य को ललित प्रतीत हो, उसमें से उपदेश की कटुता निकलकर कान्ता-वाक्य जैसी मधुरता और प्रियता आ जाय, इसीलिए ललित कलाओं का विकास हुआ है। काव्य का प्रयोजन यश, अर्थ, व्यवहार-ज्ञान, अमंगल की शान्ति और लोक-रंजन है। यही स्थिति 'गीत' की है। उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का साधन बताया गया है। वीणावादक ब्राह्मण किसी युग में यज्ञों में वीणा-

वादन करते थे, गाते थे। याजकों के धर्म की और गायक-वादक ब्राह्मणों के अर्थ की सिद्धि गीत से होती थी। श्रुति कहती है, स्त्रियाँ गायक की कामना करती हैं, अर्थात् गीत, कामसिद्धि का साधन है।^१ आहत नाद की सिद्धि से गायक को अनाहत की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि गीत भी पुरुषार्थ-चतुष्टय का साधन है।

काव्य गीत का अंग है, और काव्य के लिए संगीतशास्त्र में 'पद' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथास्थान बताया जा चुका है कि यह पद निबद्ध और अनिबद्ध दो रूपों में विभक्त है। अनिबद्ध पद की संज्ञा चूर्ण-पद भी है। ये शब्द क्रमशः पद्य और गद्य के नामान्तर हैं।

वाणी की रचना करके उसे गेय रूप में ढालनेवाले व्यक्ति 'वाग्गेयकार' होते हैं, जिनमें व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, रस, भाव तथा देश-स्थितियों का ज्ञान अनिवार्य बताया गया है।^२ इनकी एक बहुत बड़ी विशेषता परचित्त-परिज्ञान बताई गई है,^३ जिससे कि ये श्रोताओं के प्रत्येक वर्ग को सन्तुष्ट कर सकें। इस दृष्टि से यह सिद्ध होता है कि वाग्गेयकार को जहाँ एक ओर संगीत के शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों में निष्णात होना चाहिए, वहाँ उसे उन सभी बातों में चूडान्त पण्डित होना चाहिए, जो सत्साहित्य के निर्माण के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से वाग्गेयकार का स्थान बहुत ऊँचा और कर्त्तव्य कठिन है।

लोक की भिन्नरुचिता को दृष्टि में रखते हुए विचारको ने गीतों का वर्गीकरण किया है। भरत का कथन है कि आचार्य (संगीत के मर्मज्ञ) 'सम' गीत को पसन्द करते हैं। पण्डितों के लिए 'व्यक्त' गीत रुचिकर होता है। नारियाँ 'मधुर' गीत पर रीझती हैं और अन्य लोग 'विक्रुष्ट' गीत की कामना करते हैं।^४

१. गीतस्य धर्मसाधनत्वं तावदश्वमेधप्रकरणे 'ब्राह्मणौ वीणागायिनौ गायतः... ब्राह्मणोऽन्यो गायेत्' इति श्रुतेर्देवार्चनादिषु गीतादेस्तदङ्गत्वेन परिग्रहाच्च सिद्धम्। अर्थसाधनत्वं लोकतो दृष्टम्। कामसाधनत्वं तु 'तरमाद्गायन्तं स्त्रियः कामयन्ते' इति वेदतो लोकतश्च सिद्धम्। मोक्षसाधनत्वं च :

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।

तालज्ञश्चात्रयासेन मोक्षमार्गं स गच्छति ॥

इति दाज्ञवल्क्यस्मृतेः, प्रकरणाख्यमद्रकादिगीतेषु 'शिवस्तुतौ प्रयोज्यानि मोक्षाय विदधे विधिः' इत्युक्तत्वाच्च। —कल्लिनाथ, सं० २०, अ० सं०, प्रथम खण्ड, पृ० १७।

२. शब्दानुशासनज्ञानसमिधानप्रवीणता ।

छन्दः प्रभेदवेदित्वमलङ्कारेषु कौशलम् ॥

रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी । —सं० २०, खण्ड २, पृ० १३५।

३. परचित्तपरिज्ञानं । —सं० २०, खण्ड २, पृ० १३५।

४. आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः।

स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥ —ना० शा०, पृ० ६४१।

सम : जिसकी गति न द्रुत हो न विलम्बित, जो ऊँचे-नीचे स्वरों से युक्त हो, साथ ही जिसमें पद और ताल की योजना हो, वह गीत 'सम' कहलाता है ।

व्यक्त : क्रिया-कारक से युक्त, सन्धिदोष-हीन और स्वरों के व्यक्त रूप से युक्त गीत की संज्ञा 'व्यक्त' है ।

मधुर : ललित अक्षरों से युक्त शृंगार-रसपूर्ण और श्राव्य नाद एवं समता (काव्य और संगीत का सन्तुलन) से संवलित रूप 'मधुर' कहलाता है ।

विक्रुष्ट : तालस्वरयुक्त और प्रयोगबहुल गीत 'विक्रुष्ट' है ।^१

पाश्वर्देव का कथन है कि उच्च-नीच स्वरों एवं वीर-रस-प्रयोज्य अक्षरों से युक्त आरभटी-वृत्ति-संवलित और उत्साहपूर्ण गीत वीरों को प्रिय होता है : शृंगार-रस-भूषित प्रेम का उद्दीपन करनेवाले शब्दों से युक्त तथा करुण कण्ठध्वनि से गाया जानेवाला गीत, विरही जनों को भला प्रतीत होता है । उल्टे-सीधे शब्दों से युक्त स्वरभंगी-प्रधान और परिहासपूर्ण गीत विटों का मनोमोहक है । गूढार्थ और परमार्थ को प्रकट करनेवाले वाक्यों से युक्त गीत योगिवल्लभ होते हैं, जिनका विषय अध्यात्म होता है । शुभ वाक्यों एवं मंगलमय शब्दों से युक्त विवाहादि उत्सव में प्रयोग के लिए विरचित मंगल-गीत महिलाओं को प्रिय होता है । देवता की स्तुति से युक्त उनके प्रभाव को बतानेवाला और श्रोताओं में आस्तिक्य-भाव की संचार करनेवाला गीत भक्तों को प्रिय होता है और गमक-बहुल, रुक्ष एवं विषम गीत वादिवल्लभ है (संगीत के उस्तादों को प्रिय है) ।^२

१. आचार्याः सममिच्छन्ति व्यक्तमिच्छन्ति पण्डिताः ।

स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥

उच्चनीचस्वरोपेतं न द्रुतं न विलम्बितम् ।

पदतालैः समं गीतं सममाचार्यवल्लभम् ॥

क्रियाकारकसंयुक्तं सन्धिदोषविर्वजितम् ।

व्यक्तस्वरसमायुक्तं व्यक्तं पण्डितसम्मतम् ॥

ललितैरक्षरैर्युक्तं शृङ्गाररसरञ्जितम् ।

श्राव्यनादसमोपेतं मधुरं प्रमदाप्रियम् ॥

स्वरैरुच्चतरैर्युक्तं प्रयोगबहुलीकृतम् ।

विक्रुष्टं नाम तु तद्गीतमितरेषां मनोहरम् ॥

—पाश्वर्देव : सं० २०, ख० २, पृ० १६३; सिंहभूपाल द्वारा टीका में उद्धृत ।

२. गानमारभटीवृत्त्या वीरसङ्गतवर्णकम् ।

उच्चनीचस्वरं गीतं सोत्साहं शूरवल्लभम् ॥

प्रेमोद्दीप्तपदप्रायं शृङ्गाररसभूषितम् ।

करुणाकाकुसंयुक्तं करुणं विरहिप्रियम् ॥

उपर्युक्त वर्गीकरण से हमें यह ज्ञात होता है कि वाग्गेयकार का कर्त्तव्य कितना कठिन है। साहित्यकार या कवि जहाँ अरसिक श्रोता की अरसिकता पर उपेक्षापूर्वक हँसकर छुटकारा पा लेता है, वहाँ वाग्गेयकार अथवा गायक को यह सुविधा नहीं। गीत की तो योजना ही सबको रिझाने के लिए है। भरत के रंगस्थल में स्त्रियाँ, बच्चे और मूर्ख भी हैं, जिनका रंजन करना गायक का कार्य है और गायक को सर्वलोकरंजक सामग्री देना वाग्गेयकार का। अतः, वाग्गेयकारों का कार्य कवियों की अपेक्षा कहीं कठिन है। कवि अपनी रचना का आस्वाद सहृदयों को करा सकता है, परन्तु वाग्गेयकार द्वारा प्रस्तुत सामग्री में जनता के प्रत्येक वर्ग को रिझानेवाले तत्त्व होने चाहिए।

पन्द्रहवीं शती ईसवी के ध्रुवपदकारों की योग्यता उपर्युक्त वाग्गेयकारों की अपेक्षा कम थी, परन्तु उनकी समस्याएँ वही थी; क्योंकि लोक सदा ही भिन्नरुचि होता है। उनकी प्रवृत्तियाँ भी वही थी, उनका कार्य आनुवशिक था और कुछ विशेषताएँ उनकी ध्रुवी में पड़ी हुई थी। अतः, ध्रुवपदकारों की रचनाओं पर विचार करते समय हमें उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

प्रथम अध्याय में यह बताया जा चुका है कि वैदिक संगीत के आधार पर ही नाराशसी गाथाओं का निर्माण हो चुका था और वैदिक गायक नाराशसी गाथाओं के गानेवालों को अच्छा नहीं समझते थे। यह भी बताया जा चुका है कि लोकरंजन के लिए संगीत के प्रयोक्ताओं की दृष्टि में वैदिक लोग विनोद के पात्र-भर रह गये थे। यह प्रवृत्ति उस समय से आज तक चली आई है। निश्चक शांगदेव जैसे चतुर्मुख आचार्य ने 'छान्दस' व्यक्तियों को 'अविदग्ध' कहा है^१ और मनुस्मृति में हम गीत-वाद्य और नृत्य का निषेध देखते हैं^२ और यह व्यवस्था पाते हैं कि सवर्णों को गीत-वाद्य और नृत्य से आजीविका का

विपरीतपदैर्युक्तं स्वरभङ्ग्युपबृंहितम् ।
गीतं हास्यरसोदारं परिहासं विटप्रियम् ॥
गूढार्थैः परमार्थैश्च संसारसुखमुख्यकैः ।
पदैर्नियोजितं गीतमध्यात्मं योगिवल्लभम् ॥
शुभवाक्ययुतगीतं शुद्धपञ्चमनिर्मितम् ।
विवाहाद्युत्सवे गेयं मगलं महिलाप्रियम् ॥
देवतास्तुतिसंयुक्तं तत्प्रभावप्रबोधकम् ।
आस्तिक्योत्पादनं गीतं रम्यं भक्तजनप्रियम् ॥
अभ्यवस्थानकं गीतं तालपाटैरलक्षितम् ।
प्रयोगबहुलं रुक्षं विषमं वादिवल्लभम् ॥

—पार्श्वदेव : सं० २०, अ० सं०, खण्ड २, पृ० १६२ पर सिंहभूपाल द्वारा अपनी टीका में उद्धृत।

१. 'छान्दसोऽचतुरप्रियः' । —सं० २०, अ० सं०, खण्ड २, पृ० १६६ ।

२. न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् । —मनु०, पृ० १४७, श्लोक ६४ ।

उपार्जन नहीं करना चाहिए। मनुस्मृति सूतों, मागधों और नटों को वर्णसंकरता का परिणाम बताती है। ब्राह्मणी और क्षत्रिय के धर्म-बाह्य सम्बन्ध का परिणाम 'सूत', ब्राह्मणी और वैश्य के अधर्मयुक्त देह-सम्बन्ध का फल 'मागध' और व्रात्य (धर्मच्युत) क्षत्रिय से सवर्णा में उत्पन्न सन्तान 'नट' कहलाती है।^१

वर्णसंकर जातियों की आजीविका के लिए जब उनके व्यवसायों की व्यवस्था की गई, तब सूतों, मागधों और नटों को कुछ कार्यों के करने का एकाधिकार मिला। उन कार्यों से आजीविका कमाना सवर्ण जातियों के लिए निषिद्ध कर दिया गया। सूतो, मागधों और नटों की चर्चा हम अत्यन्त आरम्भिक कहे जानेवाले युग में भी पाते हैं। 'वाल्मीकि-रामायण' में सूतों, नटों इत्यादि की चर्चा अनेक स्थानों पर आई है। ये हमें स्तुतिकर्त्ताओं एवं सगीतजीवियों के रूप में मिलते हैं।

'नाट्यशास्त्र' के 'नटशाप' अध्याय में बताया गया है कि ऋषियों के शाप से भरत-मुनि के पुत्रों का वंश शूद्राचार, अशुचि एवं स्त्री-बालोपजीवी हो गया।^२ जातिवाची 'भरत' शब्द का अर्थ 'जायाजीव' (स्त्रियों की कमाई खानेवाला) हुआ। अमरकोश में 'शैलाली', 'शैलूष', 'जायाजीव', 'कुशाश्वी', 'भरत', 'नट', 'चारण' और 'कुशीलव' सगीत-जीवी जातियों में गिनाये गये हैं।^३

'कुशीलव' का मूल राम के पुत्र कुश और लव के जोड़े में है। 'वाल्मीकिरामायण' में इन दोनों भाइयों के नाम का साथ-साथ प्रयोग 'कुशीलवौ' कहकर अनेक स्थलों पर किया गया है।

वाल्मीकिरामायण के टीककार 'राम' ने लिखा है कि कुशीलव शब्द में पृषोदरादि गण के प्रभाव से 'कुश' का 'कुशीभाव' हो जाता है और 'कुश' तथा 'लव' के वाचक 'कुशीलवौ' पद की सिद्धि होती है।^४ हम यह जानते हैं कि कुश और लव इन दोनों को

१. क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।—मनु०, पृ० ४०४, श्लोक ११।

त्रैश्यान्मागधवन्देहौ ॥—उपश्रितम् ।

शूलो मल्लश्च राजन्याद्ब्रात्यान्निच्छिविरेव च ।

नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥—मनु०, पृ० ४०६, श्लोक २२।

२. निर्ब्राह्मणो निराहूतः शूद्राचारो भविष्यति ।

यश्च वा भवतां वंशः स चाशौचो भविष्यति ॥

ये च वो वंशजास्तेऽपि भविष्यन्त्यथ नर्त्तकाः ।

परोपस्थानवन्तश्च पुंस्त्रीबालोपजीविनः ।—ना० शा०, व० सं०, पृ० ६६१।

३. शैलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवाः कुशाश्विनः ।

भरता इत्यपि नटाश्चारणास्तु कुशीलवाः ॥—अमरकोश, पृ० २४१।

४. कुशीलवौ कुशलवौ । कुशशब्दस्य कुशीभावः पृषोदरादित्वात् ।—वा० रामायण, पृ० १७ की टीका ।

भगवान् वाल्मीकि ने रामायण की शिक्षा गेय रूप में भी दी थी और दोनों ने सर्वथा अपरिचित रहकर भगवान् रामचन्द्र की सभा में गुणियों के समक्ष इसका गान किया था। रामायण-गान के लिए कुश और लव को अयोध्या भेजते समय वाल्मीकि ने उपदेश दिया था कि तुम्हें जब रामचन्द्र राजसभा में गान के लिए बुलाये, तब धन की इच्छा से तनिक भी लोभ न करना; क्योंकि फल-मूल पर निर्वाह करनेवाले आश्रमस्थ व्यक्तियों को धन का क्या करना है।^१ प्रतीत यह होता है कि कालान्तर में कुछ संगीतजीवियों ने अपने-आप को गायक-वादक होने के कारण कुश और लव के सम्प्रदाय से सम्बद्ध बनाना आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि 'कुशीलव' शब्द नित्य द्विवचनान्त न रहकर जातिवाची बन गया। अमरकोश के टीकाकार महेश्वर ने कुशीलव शब्द का अर्थ 'कुत्सित शील से युक्त' कर डाला।^२ महेश्वर की यह चेष्टा जातिवाची 'कुशीलव' शब्द को बलात् अन्वर्थ बनाने का प्रयत्न है।

अस्तु; यह सिद्ध है कि संगीतजीवी ध्रुवपदकारों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और वे अपनी लीक की रक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी करते चले आ रहे थे।

बात-वात पर नैतिकता की दुहाई देनेवाले कुछ सज्जन भारतीय संस्कृति को ब्राह्मण युग, क्षत्रिय-युग इत्यादि में बाँटकर और नटों, नर्तकों, गणिकाओं, वेश्याओं तथा उनके आश्रयदाताओं को क्षत्रिय-युग की देन कहकर उस भरत को भी निवृत्तिमार्गियों में गिना डालते हैं, जिसके नाट्यशास्त्र का मुख्य प्रयोजन जनरजन है और जिसमें कवियों, गायकों, नटों, विटो और नायिकाओं की ही चर्चा मुख्य विषय है। यहाँ इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि पाश्चात्त्यों ने भारत पर शासन करने के लिए यहाँ की वर्ण-व्यवस्था का चित्र वर्ण-भेद के रूप में करके हिन्दुओं में परस्पर फूट डालने के लिए ही सवर्ण-असवर्ण और उच्च-नीच के भेद को उभारा और भारतीय मूल ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा से असम्पृक्त भारतीयों को अपने 'नारे' दुहराने के लिए 'मसाला' दे दिया।

जैसा कि कहा जा चुका है धर्म, अर्थ और काम में सन्तुलित साधन एक आदर्श है, परन्तु बह्मवादी जनक जैसे व्यक्तियों की सेनाएँ नहीं उत्पन्न होती और न शंकराचार्य जैसे व्यक्ति ही प्रतिदिन उत्पन्न हुआ करते हैं। ऐसे व्यक्ति लोक के लिए आदर्श होते हैं, परन्तु लोक के समस्त व्यक्तियों को अपने समान बना देने में कभी सफल नहीं होते।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा, नायिकाओं के रूप-वर्णन और ईश्वरो के विलास को हेय दृष्टि से देखनेवाले व्यक्तियों में अधिकांश ऐसे होते हैं, जिनके लिए यह स्थितियाँ स्वप्नमात्र होती हैं। अयोध्या का तथा किष्किन्धा और लकापुरी के अन्तःपुरो का जो वर्णन महर्षि

१. लोभश्चापि न कर्त्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया ।

किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनानां सदा ॥

—वा० रा०, उ० का०, पृ० १११० ।

२. 'कुत्सितं शीलमस्त्यस्य कुशीलवः ।—अमरकोश-टीका, पृ० २४१ ।

वाल्मीकि ने किया है, वह उन मूर्तियों की आँखें खोल देनेवाला है, जिन्होंने सम्भवतः वाल्मीकि और भरत के ग्रन्थों का दर्शन किये बिना ही इन वस्तुओं को तथाकथित क्षत्रिय-संस्कृति की देन बना डाला है। वाल्मीकि और भरत को एक तथाकथित ब्राह्मण-युग में जिस निर्दयता के साथ इन बेचारों ने ढकेला है, वह अपना उदाहरण स्वयं है।

पन्द्रहवीं शती ईसवी के ध्रुवपदकारों ने जिन सम्राट् आश्रयदाताओं के गुणों का वर्णन किया है, वे कालचक्र के कारण अहिन्दू हैं। यदि यही हिन्दू होते, तो उनके विलास सम्भवतः हमारी दृष्टि में उतनी घृणा का विषय न बनते, क्योंकि 'मालविकाग्निमित्र' और 'मालतीमाधव' जैसे नाटकों के नायकों को हम घृणा की दृष्टि से नहीं देखते और इन नाटकों के काव्यगत सौष्ठव पर निरन्तर मुग्ध होते आ रहे हैं।

राजनीतिक दृष्टि से हम मुगल-सम्राटों के विषय में कोई भी सम्मति रखें, परन्तु इतना हमें मानना होगा कि अकबर से बहादुरशाह द्वितीय तक काव्य, संगीत और विलास की जो परम्पराएँ उनके दरबारों और अन्तःपुरों में रही हैं, वे उन्हें भारत से ही मिली हैं। सचमुच, इन परम्पराओं की रक्षा करने के लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

'श्रीमद्भागवत' के अनुसार, इतिहास के सर्वप्रथम राजा स्वायम्भुवमनु की कन्या एवं महर्षि कपिल की माता देवहूति ने अपने पति महर्षि कर्दम के प्रभाव से जो प्रासाद प्राप्त किया था, उसमें सहस्रों अलंकृत सुन्दरियाँ उन दोनों की सेवा के लिए विद्यमान थीं। अतः, मुगलों के बड़े-बड़े महलों में सहस्रों दासियों की उपस्थिति न तो आश्चर्य का विषय होना चाहिए, न आपत्ति का।

स्मृतिकार मनु परदाराओं से बातचीत करने की अनुमति केवल भिक्षुकों, बन्दीजनों यज्ञ के लिए दीक्षित ब्राह्मणों और भृत्यजनों को देते हैं,^१ परन्तु नट इत्यादि जाति की स्त्रियों से वार्त्तालाप की अनुमति वे सभी को निर्बाध रूप में देते हैं, क्योंकि नट तो अपनी स्त्रियों को अलंकृत करके आजीविका कमाने के लिए पर-पुरुषों के पास प्रच्छन्न रूप से भेजते ही हैं।^२ बादशाह, अमीर या कलाकार यदि रूपाजीवाओं पर रीझते और नायिका-भेद के वर्णन में आनन्द लेते हैं, तो वे बेचारे हमारी दृष्टि में तो मनु के नियम का उल्लंघन नहीं करते।

जिन कलावन्तों, ढारियों अथवा अन्य संगीतजीवियों की चर्चा ध्रुवपदकार के रूप में की जा चुकी है, उनकी आजीविका का आनुवशिक साधन संगीत था। इसीलिए,

१. भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिता : कारवस्तथा ।

सम्भाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युः प्रतिवारिताः ॥—मनु०, अ० ८, पृ० ३३५,
श्लो० ३६० ।

२. नैष चारणदारेषु विधिनर्त्तमोपजीविषु ।

सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥

—मनु०, अध्याय ८, श्लो० ३६२, पृ० ३३६ ।

हम उनमें ब्राह्मण इत्यादि सवर्ण जातियों में उत्पन्न व्यक्तियों का प्रायः अभाव पाते हैं। जिन जातियों का आनुवंशिक कार्य विरुद्ध अथवा स्तुति का गान करना रहा, वे जब मुसलमान हुई, तब भी उनकी आजीविका का साधन यथापूर्व बना रहा। कलावन्त, ठारी इत्यादि जातियाँ भी प्राचीन संगीतजीवी जातियों के मध्यकालीन रूप हैं। बन्दीजनों में स्तुतिपाठ के साथ-ही-साथ गान-वादन भी आजीविका का साधन हो गया था, आज भी है। इस जाति ने जहाँ अनेक समर्थ कवि उत्पन्न किये, वहाँ अच्छे वाग्गेयकार भी। इन जातियों में साहित्य और संगीत दोनों की सेवा करनेवाली महान् विभूतियाँ हुई हैं। आज भी ग्वालियर इत्यादि स्थानों में इसके अनेक उदाहरण विद्यमान हैं।

राज्याश्रित ब्रजभाषा-कवियों ने जीवन की जिन झाँकियों को अपने काव्य का विषय बनाया है, वे सभी विषय ध्रुवपदकारों के साहित्य का भी विषय बनी हैं, उनका स्रोत एक है और वे उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। ध्रुवपदकारों ने अपनी जिन कृतियों से वाङ्मय के प्रासाद को सजाया है, वे उतने ही समादर की अधिकारिणी हैं; जितना कि हम पाठ्य अथवा श्रव्य रचनाओं को देते हैं। मानव-जीवन को जिन चार आश्रमों में हमारे पूर्वजों ने बाँटा है, वे चतुर्वर्ग के साधन हैं। परन्तु, विशिष्ट-विशिष्ट पुरुषार्थ के साधन में विशिष्ट-विशिष्ट आश्रम अधिक उपयुक्त है। धर्म की चिन्ता प्रतिक्षण की जानी चाहिए, परन्तु विशेषतया मोक्ष का साधन बुढ़ापे की बात समझी जाती है।

जिस प्रकार राज्याश्रित ब्रजभाषा-कवियों के मन में वृद्धावस्था एक प्रकार के निर्वेद का उदय करती थी और वे चौथेपन में काशी, वृन्दावन अथवा गंगातीर का आश्रय लेना चाहते थे, उसी प्रकार ध्रुवपदकार भी चौथेपन में प्रायः हरिनाम की ओर झुकते थे। अनेक देवी-देवताओं की स्तुति में सफल छन्दों की रचना करनेवाले पद्माकर भट्ट जिस प्रकार अपनी उन रचनाओं के कारण भक्तों की कोटि में नहीं आ पाते, उसी प्रकार बुढ़ापे में शिथिलेन्द्रिय गायकों की विरक्तिपरक रचनाएँ उन्हें भक्त नहीं सिद्ध करती। गायक-वादक और ध्रुवपद-रचनाकार राज्याश्रित थे तथा उनका राजकीय वातावरण से प्रभावित होना आश्चर्य की बात नहीं है। वे एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति थे, जो अनुकूल स्थिति पाकर ही पनपता है, लहलहाता है और इस स्थिति के अभाव में मुरझा जाता है।

निम्नांकित पंक्तियों में हम उन विषयों और उनके उदाहरणों का उल्लेख-मात्र करेंगे, जो ध्रुवपदों की परिधि में आये हैं। उनका साहित्यिक मूल्यांकन इस प्रकरण के अन्तर्गत नहीं है।

स्तुति : ध्रुवपदकारों ने जिन स्तुतियों की रचना की है, वे राजाओं के मन्दिरों में अथवा उनकी दैनिक विधि में पूजन के समय गान के लिए हैं। हिन्दू-राजाओं के आश्रित मुसलमान-ध्रुवपदकारों ने विष्णु, शंकर, गणेश इत्यादि देवताओं की स्तुति में और हिन्दू-ध्रुवपदकारों ने अल्लाह, पीर, पैगम्बर इत्यादि की प्रशंसा में आजीविका के कारण ही ध्रुवपद लिखे हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है। उनकी स्थिति उन व्यवसायियों जैसी थी,

जिन्हें प्रत्येक वर्ग के ग्राहक को प्रसन्न करने और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सब प्रकार की वस्तुओं का मेल अपनी दुकान में रखना पड़ता है। हिन्दू-ध्रुवपदकारों ने जिन ध्रुवपदों की रचना हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति में और मुसलमान-ध्रुवपदकारों ने इस्लाम से सम्बद्ध महापुरुषों की प्रशंसा जिन ध्रुवपदों में की है, वे उनके लिए 'एक पन्थ दो काज' की कहावत को चरितार्थ करनेवाले सिद्ध हुए। ऐसी रचनाओं से उनकी अपनी धार्मिक भावनाओं को सन्तोष भी होता था और उपर्युक्त आश्रयदाता की भी मनस्तुष्टि हो जाती थी। ध्रुवपदों में एक बड़ी मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यह दिखाई देती है कि मुसलमान आश्रयदाताओं को 'अशीस' देते अथवा उनके लिए मंगल-कामना करते समय ध्रुवपदकारों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुरु, गणेश, सरस्वती इत्यादि का भी स्तवन किया है और सम्बद्ध ध्रुवपदों की रचना अपने मुस्लिम-आश्रयदाताओं के समक्ष उनके दरबारों में गाने के लिए की है। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह प्रथम इत्यादि मुगल-सम्राटों के दरबारों में गाये जानेवाले ध्रुवपद इस प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। औरंगजेब के लिए मंगलकामना करते हुए किसी ध्रुवपदकार ने कहा है :

गुर गनेस्वर सरसुती नरहर और ब्रम्ह परब्रम्ह प्रसन भए आराधे तब ऐसौ
साहिब मैं पावौ । साहिब किरानमानी साहि जिहां नंदन जगवदन सुलितानि औरंगजेब
चतुरदिसि विद्यानिधान कपांन (ल) जिहांन में नर जाते रीझि जसु गायौ ।

—परिशिष्ट आ, १५६ ।

एक और मनोरंजक प्रवृत्ति यह है कि जो आश्रयदाता स्वयं भी ध्रुवपदकार थे, उन्होंने अन्य धर्मों के महापुरुषों से मंगलकामना की है। केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह 'धीरज' को गणेश, रामचन्द्र, गंगा, विष्णु, शंकर तथा अन्य तैंतीस करोड़ देवता पर्याप्त न प्रतीत हुए और उन्होंने निम्नांकित ध्रुवपद में ख्वाजा हिन्द से रोग-दोष दूर करने तथा किसी शत्रु के नाश करने की प्रार्थना की है :

बरसत घटा रितु ध्वाजा हंड (हिन्द) चातुरीमास । दुरजन वाह (बांह) विलन्द
(बुलन्द) कीनि (कीन्हीं) काई फटत बूंद की तांस । रोग दोख दूरि करौ धीरज को
होउ सत्रु कौ नांस ।

दूसरी ओर बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने दक्खिनी-भाषा के अपने ध्रुवपदों में हिन्दू-देवी-देवताओं का स्मरण किया है। एक ध्रुवपद निम्नांकित है :

गनपति मूरत हस्तमेघ मन्द बरखत पानी । दंत दामिनी घंट घोर घोर गोर
मंडान भाल बिधु बानी । सरसुती पवित्र स्वांति घन जल कैसे जिय जानी । 'इबराहीम'
नवरस मगुता निकसत या कारन नहिचें मानी ।—किताबे नवरस, पृ० १०६ ।

इब्राहीम का विश्वास था कि सरस्वती और गणेश जैसे देवताओं की उपासना से कण्ठस्वर मधुर होता है और सरस्वती के प्रसाद के बिना सगीत नहीं आता। उसने अपनी

पुस्तक 'किताबे नवरस' का मंगलाचरण सरस्वती की प्रार्थना से किया है और मोहम्मद की प्रशंसा दूसरे छन्द में की है। ध्रुवपद निम्नांकित है :

नवरस स्वर जुग जग जोति आणीं सर्व गुनी ।

यो सत् सरसुती माता इबराहीम प्रसाद भई दुनी ।^१

अलख : ऐसे आश्रयदाताओं की कमी नहीं थी, जो अपने दैनन्दिन जीवन में सन्तुलन रखने के कारण मर्यादाओं से बाहर नहीं जाते थे अथवा अपने किसी लौकिक मनोरथ की पूर्ति के लिए साधुओं, सन्तों, पीरों और फकीरों के प्रति आस्था रखते थे। ऐसे रचनाकार भी थे, जिनकी भक्ति स्वतः सन्तों और साधुओं की ओर होती थी और आश्रयदाताओं की, अथवा अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा से इन ध्रुवपदकारों को साधुओं के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था। उन लोगों की चर्चाओं से ये प्रभावित होते थे। पन्द्रहवीं शती और उससे पूर्व अलख, अनाहत नाद, जोगी और चौरासी सिद्धों की चर्चा लोक में भली भाँति हो चुकी थी। भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा से सम्बन्ध रखनेवाले सन्त घर-घर घूमकर अपना सन्देश दे चुके थे, अतः उपर्युक्त विषय भी ध्रुवपदों में मिलते हैं। बैजू, तानसेन, मदनराय, हरिदास डागुर आदि ध्रुवपदकारों ने अपनी रचनाओं में इसे स्थान दिया है।^२

हरिदास डागुर की एक रचना इस दिशा में उल्लेखनीय है :

ग्यान मध मति जे नल (नर) निसु दिन तिनकों कबहूँ न होत षुगारी (खुमारी) ।
सत्त के प्याले में धर्म भरि-भरि पीवत छके रहत निसु दिन, लगी रहत तारी । तनकरि
भाटी मन करि चढ़ाओ पंच भृतारी अग्नि परजारी । 'हरिदास डागुर प्रभु' तुम्हारी
सुमिरन करत धनि विधना रचौ पुरिष यौर (और) नारी ।^३

इस्लाम-प्रशंसा : मानसिंह ने जिस शैली का प्रवर्तन किया, उसने मुस्लिम-क्षेत्रों को भी प्रभावित किया और उन सूफी खानकाहों (मठों) में भी ध्रुवपद गूँजने लगे, जहाँ कि एक समय खुसरो के चलाये हुए 'कौलो' की धूम थी। जो इस्लाम संगीत का घोर विरोधी है, उसके 'रसूल' और 'कलमा' तक ध्रुवपद-शैली से प्रभावित हुए और ब्रजभाषा ने अपना अंचल वहाँ तक फैलाया। सुरज्ञान खाँ का निम्नस्थ ध्रुवपद इस प्रवृत्ति का प्रमाण है :

करत सब जग कां मे सुभै होत तब ही जब पैहैलै कहै लेत विस्मिल्लाह । जासों
बढ़े दीन उदोत इलम जे पावें अतिबुधि को ततछिन पढत रहत मोला मोला । अरस
कुर (स) लोह कलम कौ भेद जब पावें रसनां सों पढत रहत लाइलाइलिला (लाइलाह)

१. किताबे नवरस, पृ० ६५ ।

२. परिशिष्ट आ, १, २७, ६५, ६४, ६५, ६६ ।

३. परिशिष्ट आ, ६६ ।

इल्लल्लाह) । फरज सुनति (सुन्नत) सों लगाइ ग्यांन ध्यांन 'सुजान' सेवक पर करम कीजें महंमद रसूलिला (मुहमदुरसूलिल्लाह) ।^१

वैराग्य : कभी-कभी सगीतज्ञ भी सांसारिक उतार-चढ़ाव से ऊबने पर संगीत को भगवत्प्रसन्नता के लिए प्रयुक्त करते थे । राजदरबारों के कटु और मधुर अनुभवों की स्मृतियाँ इनकी दृष्टि में सांसारिक मान-सम्मान और धन-सम्पत्ति को निस्सार सिद्ध कर देती थी और वे वृद्धावस्था में सचमुच ईश्वर के प्रेम की ओर झुकते थे । बैजू एक ध्रुवपद में कहते हैं :

विद्या सोई क्यों न गाइये, जासों मिलि हैं री नन्दलाल ।

वृन्दावन सघन कुंज रणित, नाचत रास, बाजें मृदंग, ताकिट तक ताकिट तक धुमकिट तक गावत विविध दे दे ताल ।

सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना प्रमान, वंशी मदि ढेरत तान,

थकित सुर नर मुनि विमान, राखत है कुसुम माल ।

'बैजू प्रभु' के साथ तीन लोक मोहि लियौ ब्रह्मा महादेव ध्यान थकि चन्द्र सूर्य, पवन पानी सेष पाताल ।^२

सांसारिक भोग-विलास की एक सीमा होती है और व्यक्ति कभी-कभी आत्म-चिन्तन करता है । जिस प्रकार बड़े-बड़े भक्त-कवियों ने अपने मन को सम्बोधित करके ईश्वरोन्मुख होने की प्रवृत्ति दिखाई है, उसी प्रकार ध्रुवपदकार भी इस दिशा में प्रवृत्त हुए हैं । राजाओं और सम्राटों के वैभव की गोद में खेले हुए तानसेन भी अन्ततोगत्वा प्रभु-चरणों में रत होने के लिए अपने मन को इस प्रकार प्रेरित करते हैं :

तू जपि जपि रे मन राम नाम जामें होइ काम बनवारी श्याम हरिनराइन निरंजन । भक्त वल्लिल जगदीस गोसाईं अनाथन नाथि श्रीपति सुदामा दालिद्र भंजन । दीनबंधु दीनानाथ मनोहर कंसराइ निकंदन । 'तानसेन' लघु विनती करत राधापति मन रंजन ।^३

यह प्रवृत्ति गुलाब और प्रेमदास जैसे रीतिकालीन ध्रुवपदकारों में भी दिखाई देती है ।

गुरु-महिमा : ज्ञानाश्रयी शाखा में और सगुण सम्प्रदायों में गुरु का महत्त्व बहुत अधिक है । ध्रुवपदकारों पर भी यह प्रभाव है और वे गुरु के चरणों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का दाता मानते हैं । राजबहादुर ने गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए कहा है :

गुरु सहाइ ते उनके चरण कृपा ते सब काम बनि आवैं । मन भरि अर्थ धर्म काम मोक्ष आवि दें जोई जोई मागैं (मांगैं) सोई सोई पावैं । ब्रम्ह रूप हरि बिस्न प्रजापति अगिम निगम गुन जाकौ यह विधि गावैं । 'राजबहादुर' चहत लहत महामोद उपजावैं ।^४

१. परिशिष्ट अ, ६६ ।

२. बैजू और गोपाल, पृ० ७२-७३ ।

३. परिशिष्ट आ, २६ ।

४. परिशिष्ट अ, २३२ ।

कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ :

भगवान् कृष्ण की छवि, मुरली, उनपर रीझनेवाली गोपियाँ, वृषभानु-नन्दिनी तथा वृन्दावन में होनेवाली लीलाएँ भी ध्रुवपदकारों को अपनी ओर आकृष्ट करने में भली भाँति सफल हुई हैं ।

बैजू रास का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

ब्रज ब्रजिता बनि बनि आवत भुषन सजि समूह ग्रह ग्रह तै मुरली की धुनि सुनि प्राँन प्यारे । तजी लाज गुरजन की को जानै लगन मन की, तन की तपति बुझी दरस परस देखें ते तिहारे । इकटक रही निहारि मुग्धा गँधारि आइ रास मंडिल मंडि बीच वंसीवट पर विहारिनि विहारी विहरै । 'बैजू प्रभु' बदन चन्द निरत करत नंद नंद भई छत्रासी रैन बाजत मंद बेन बिमान हू थकित भये देव पुष्प वरषा करत होत नहीं उदय भाने उडगन तिहारे ।^१

कृष्ण-छवि पर मोहित गोपियों के मध्य में विराजित 'लाल' लालिमा से किस प्रकार परिवेष्टित है, इसका वर्णन तानसेन की सीधी-सादी भाषा में दर्शनीय है :

लोचन लाल चुनरीलाल बूटे छूटे सबुज (सब्ज) लाल ।

गरै बीच हीरा लाल, नासिका कौ मोती लाल, पाँय लाल,

प्यारी लाल, सेज लाल, बाजूबंद लाल, लाल कर, कंगन लाल,

लाल चरन, पाई लाल चलत हैं मंद चालि ।

'तानसेन' भूमि लाल, ब्रज की सब गोपी लाल, ता मद मदन गोपाल लाल ।^२

यमुना-तीर पर विचित्र बानिक बनाये हुए मदनमोहन के अंग-प्रत्यंग एवं वेश-भूषा-सहित मुद्रा का सफल वर्णन धीरज ने इस ध्रुवपद में सफलतापूर्वक किया है :

बानिक बनि ठनि ठाड़े मोहन सुन्दर जमुना तीर ।

मोर मुकुट कटि चन्दन पौरि कुटिल अलख भौहैं धनक दृग षंजन श्याम बरन नांस कीर ।

अधर दसन अधर बिम्ब चिबुक गाड ग्रीवं मुक्तिमाल बनमाल और बिसाल छीन कट नाभि गंभीर ।

पगनि उपर रुनुकि झुनुक पीत बसन मदन मोहन कर मुरली 'धीरज' प्रभु गोपीनाथ गोविन्द बलवीर ।^३

शरद् की रात्रि में कृष्ण की वंशी और कुलवधुओं पर उसके प्रभाव का वर्णन गुलाब ने पदशैली से प्रभावित इस रचना में किया है :

१. परिशिष्ट आ, १० ।

२. परिशिष्ट आ, ४३ ।

३. परिशिष्ट अ, १०० ।

अरे निरदयी लंगर मोहन मोहि लई ;
 बंसी तान सुनत ही श्रवननि सुधि बुधि बिसरि गई ।
 इत कुल कान प्रीति अति तेरी तापर हो री चौप नई ।
 'प्रभु गुलाब' दोउ और फिरत जैसे मानी फिरत रई ।^१

गोरस बेचने के बहाने कृष्ण को ढूँढती हुई उत्सुक और विकल गोपी की छवि और चेष्टाओं का वर्णन करते हुए तानसेन का यह कथन अत्यन्त मनोहारी है :

लै चली हौ गोरस बेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल ।
 तरफरात प्रान, बिथुरी अलकै आननि पर और सोहै कुम्हिलानी माल ॥
 गोरस के मिस झूठेहुँ डोलत, ढूँढ़त फिरत गोपाल ।
 'तानसेन' के प्रभु सों हिलि-मिलि ऐन नैन चलि गज की चाल ॥^२

होरी : तन और मन दोनों को रंग देनेवाला पर्व 'होली' हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के ध्रुवपदकारों को समानरूपेण रंगीन प्रतीत हुआ था । 'धमार' ताल में गाये जानेवाले गीतों की संख्या 'होरी' हो गई थी और ऐसे गीत ध्रुवपद-गायकों के गान का एक अनिवार्य और अत्यन्त ललित अंग थे । होली का त्योहार मुगल-महलों में भी प्रचलित था, यहाँतक कि मुगल-सम्राट् शाह आलम ने स्वयं भी अनेक होरियाँ लिखी है । होली और रंग की चर्चा आते ही जिस कन्हैया का स्मरण हो आता है, वह अपनी राधा और गोपियों के साथ मुगल-अन्तःपुरों तक में विराजमान था । तानसेन, चंचलसस, सदारंग, अदारंग, मनरंग, नूररंग, सबरंग, अदारस, इच्छाबरस, गुलाब एव प्रेमदास जैसे सभी ध्रुवपदकारों ने होली का वर्णन किया है । प्रेमदास की एक होरी में अपने रूप को बचाये-बचाये फिरनेवाली एक गोपी से कहा गया है :

अरी जह जोबन तेरो होरी में कैसे बचैगो री ।
 एक डर है मोहि वा दिन को सखि जा दिन रंग मचैगो ॥
 जो कहुं डीठि परैगी स्याम की तब वासै कौन पचैगो ।
 'प्रेमदास प्रभु' कठिन कान रस लै और संग नचैगो ॥^३

होरियों में प्रोषितभर्तृका अथवा अन्य विरहिणियों की चर्चा भी ध्रुवपदकारों ने की है । नूररंग की किसी नायिका के लिए फागुन मास दुःखदायी हो गया है । चारों ओर ढप (डफ) बजने लगे हैं, कामदेव उसपर चढाई कर रहा है और उस बेचारी का पल-पल नहीं बीतता । यह ऋतु अपनी उत्तेजक स्थिति के कारण विरह-दुर्बल के लिए उद्दीपन बन गई है । नूररंग के शब्दों में नायिका अपनी स्थिति का वर्णन यो करती है :

१. परिशिष्ट आ, १४६ ।

२. परिशिष्ट अ, ४४ ।

३. परिशिष्ट आ, १६५ ।

आली आयो जह फागुन मास पीअ कीनों गमन मो पै कैसें कटे जह रितु उन
बिन माई ।

ज्यों-ज्यों सुबि आवत मोहन की प्रेह आंगन अति दूबर भईली देत विरह
दुखदाई ।

चहुं ओर डफ बाजन लागे मनमत (थ) करत चढ़ाई ।

जह दुख बैरी पाछे लगौ बड़ौ कठिन है माई ॥

पल-पल छिन-छिन ऐसी बीतत कहै न सकत तेरी धुआई ।

‘नूर रंग’ के दरस देखे बिना नैननि नींद न आई ॥^१

मियाँ ‘मनरंग’ मदनमोहन और वृषभानु-दुलारी का स्मरण होली के दिनों में इस प्रकार कर रहे हैं :

कछु ऐसो मंत्र पढ़ि रंग छिरकौ री होरी के दिनन में,

इन मनमोहन बनवारी ।

सकल त्रीअनि में कोनें सिषाई हों,

न जानो ऐसी कौन है नारी वारी ।

मोहि जानि वृषभानु दुलारी मनहर लीनो नंद के विहारी ।

जौ हों ऐसी जानती ‘मनरंग’ सैहैस गारी वै भई मतवारी बजाइ तारी ॥^२

ऋतु-वर्णन : ऋतु-वर्णन की प्राचीन परम्परा का प्रभाव ध्रुवपदकारों पर भली भाँति है । कुछ राग ही ऐसे हैं, जो विशिष्ट ऋतुओं से सम्बद्ध हैं । उन रागों में गाया जानेवाला साहित्य अनिवार्य रूप से ऋतु-सम्बद्ध है । फलतः, ध्रुवपदकारों और गायकों की परम्परा में ऋतु-वर्णन का होना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है । हिन्दी के अधिकांश कवियों ने प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में किया है, यही प्रवृत्ति प्रायः ध्रुवपदकारों की भी है, परन्तु अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे ध्रुवपद भी हैं, जिनमें प्रकृति आलम्बन है । तानसेन का एक ध्रुवपद प्रस्तुत है, जिसमें वसन्त का वर्णन प्रातर्गोय राग भैरव की चर्चा के साथ है :

सघन वन छाये द्रुमवेली मध,

पवन अति प्रगास बरन बरन पहुँप रंग लायो ।

बोलत कोकिला कीर पीक कपोत चात्रक,

सब ही आनंद करै चहुँ ओर रंग बरसायो ॥

बाजत किनिर रिसाल बीन मृदंग,

बीन मृदंग सुरुसुती बर पायो ।

कहैं ‘मीयाँ तानसैनि’ सुनौं हो,

अलाप करि प्रथम ही राग भैरों गायो ॥^३

१. परिशिष्ट अ, १३० ।

२. परिशिष्ट अ, १२८ ।

३. परिशिष्ट अ, ७२ ।

तानसेन ने कृष्ण में घन का आरोप करके रस-वर्षण में बूंदों, मुरली-ध्वनि में गर्जन, मुस्कान में बिजली, दन्त-कान्ति इत्यादि में वक-पवित इत्यादि का निर्वाह करते हुए एक सांगरूपक बाँधा है :

कान्ह ओलरि आयौ हो,
बरसि बरसि रिसिझिमि रस-बूँदिनि ।
मुरली की गरजन तपनि लडत मुसियानि,
दसन ओप बगपांति, ग्रीम डुलनि पीहौप गूँधन ॥
चहँ ओर धुरवा सँ धरें,
तामें मोर चंद्रका इंद भयौ रस गूँधन ।
'तानसेनि' प्रभु की अधिक झंकोरनि,
भोजि गई वृजवनिता सहित भूषन फूदन ।^१

काव्यगत विशेषताओं का दिग्दर्शन यहाँ नहीं किया जा रहा है, फिर भी इतना कहे बिना मन नहीं मानता कि श्लेष के कारण 'झंकोरनि' में जो ध्वनि है, वह सहृदय-संवेद्य है और समर्थ कवियों के काव्य में ही सम्भव है ।

निम्नांकित ध्रुवपद में नेत्र 'घटा' के आरोप का विषय बने है । उपमान के रूप में वर्षा की योजना 'इच्छाबरस' की विदग्धता और सूक्ष्म दृष्टि की परिचायिका है :

तूअ नैनां मैं मानौँ काम की घटा सी उमड़ि आई ।
पलक धुनि सोई गरजनि चंचल,
विलवत चपला सी कौंधत ऐसी सुहाई ।
अरु वरुनी धुरवासी ताही बग पंथ,
तारन की जोति जीगन सी मन भाई ।
अरुन डोरिनि भाँनौँ इन्द्रवधू पाति सोहै दान पै,
रस बूँदिनि सौँ 'महंमदसाहि' पीआ की अंछयावरसाई ।^२

अन्य ऋतुओं का वर्णन भी ध्रुवपदों में हुआ है, परन्तु विस्तार-भय से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है ।

संगीत :

(अ) सिद्धान्त के ध्रुवपद : जिन ध्रुवपदों में संगीत के रहस्यगर्भ सूत्रों की योजना होती है और जिनका वास्तविक तात्पर्य समझना गुरु-हीन अथवा असम्प्रदायज्ञ व्यक्तियों के वश की बात नहीं होती, ध्रुवपद-परम्परा में वे सिद्धान्त के ध्रुवपद कहलाते हैं । यद्यपि ऐसे ध्रुवपदों का विषय हमारे विचार-क्षेत्र से बाहर है, तथापि एक ऐसे ध्रुवपद को उद्धृत करने का लोभ हमें होता है, जिसमें भारत के प्राचीन मूर्च्छना-सिद्धान्त और मुस्लिम-

१. परिशिष्ट आ, ४१ ।

२. परिशिष्ट अ, २८१ ।

प्रभाव के कारण भारत-भर में आज प्रचलित मेल-सिद्धान्त में एक सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। यहाँ इतना और कहना पर्याप्त होगा कि मूर्च्छना-सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले भरत मुनि जैसे हमारे पूर्वज 'स्वर' और 'भाव' एवं 'राग' और 'रस' के जिस सम्बन्ध का विवेचन कर चुके हैं, वह मूर्च्छना-सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के बिना असम्भव है। तानसेन का निम्नांकित ध्रुवपद शताब्दियों से उलझी हुई इस ग्रन्थि के खोलने में सफल होता है :

धईवत पंचम मधिम गंधार,
रेषव षरज सुर साधि साधि साधि गुनी निषाद रे।
तेरौ अलंकार बाईस श्रुती साधि, बाद चारि (उचारी?),
सा रे ग म प ध नीं सा सु ध र सा नी धा नी ध प म ग रे।
त्रिविधि त्रिविधि सुरनि मधि त्रतीश त्रतीश त्रतीश अरे नितैत
जानत वेदमान (विद्वान्),

सप्त सुर तीनि ग्राम इकईस मूर्च्छना छतीस भेद नाद वा तानसैनि विधान रे।^१

(आ) ग्रन्थ ध्रुवपद : संगीत से सम्बद्ध ध्रुवपद सांगीतिक परिभाषाओं से भरे हुए हैं और उनमें संगीत के प्रयोग पर अनेक साग-रूपक बाँधे गये हैं। तानसेन के 'नाद-सागर',^२ 'नाद-समुद्र',^३ 'नाद-नगर',^४ 'नाद-गढ़';^५ चंचलसस का 'नाद-समुद्र',^६ सुरज्ञान खाँ का 'नाद-दल',^७ हरिदास डागुर का 'नाद-गढ़',^८ और इच्छाबरस का 'नाद-बन्दूक'^९ ध्रुवपदकारों की उस प्रवृत्ति के परिचायक हैं, जिनमें उनकी दृष्टि के साहित्य-पक्ष और संगीत-पक्ष दोनों उभरकर आते थे। सांगीतिक परिभाषाएँ हमारे विचार का विषय नहीं हैं, इसलिए इस प्रवृत्ति का उल्लेख-मात्र कर दिया गया है।

नख-शिख-वर्णन : ध्रुवपदकारों का सम्पर्क निरन्तर सत्कवियों से हुआ करता था। अनेक कवि और गायक एक ही आश्रयदाता के आश्रय में रहते थे। छन्द के बन्धन में जकड़ी हुई रचनाओं में प्रायः वर्णों की कृष्यता सम्भव नहीं थी, जो सांगीतिक दृष्टि से ध्रुवपद-गान में कभी-कभी परम अनिवार्य है। इसीलिए उन विषयों पर ध्रुवपदकार स्वयं रचनाएँ

१. परिशिष्ट अ, १८७।

२. परिशिष्ट अ, १२।

३. परिशिष्ट अ, ४८।

४. परिशिष्ट आ, ६७।

५. परिशिष्ट आ, ६८।

६. परिशिष्ट आ, ७७।

७. परिशिष्ट आ, ८७।

८. परिशिष्ट आ, १०२।

९. परिशिष्ट आ, १३७।

करते थे, जो ब्रजभाषा-कवियों के भी विषय थे । प्रेमदास का निम्नांकित ध्रुवपद नख-शिख-वर्णन का एक सुन्दर उदाहरण है :

आली तेरौ चन्द्रभाल कला, भौहैं धनक, पला सुख पला, नेत्र षंजन, बरुनी संम्हारि,
श्रवन छीप, दसन हीरक, रसना पौहौपदल, कपोल दर्पन, नासा कीर, अध (अधर) बिद्रम,
कंचन की पाटी पीठि, तापर सोहै बैनी ब्याल । ठोड़ी गा(ड़), स्याम बुंद रूप दस गुनौ
भयौ, कु(च) श्रीफल, अधर पान, रौमावली सलिता, ना(भ) भ्रमर, भुज चनाल (मनाल) ॥
कड भंगोरव, षंभ जांघै, पिडरीं बिनान, जावक चरन, ऐंडी तरवां, अंगुरी नष अरुन अति
रिसाल । यह छवि देखि रीझे नाइक दछिन चतुर बिचछिन सुलछि भलछिन वौ हौ
भांतिनि करि 'गुलाब' कौ प्रभू माधौ मन मोहन लाल ॥^१

सिंघार : अंग-अंग में आभूषण पहने नायिकाओं की छवि का चित्रण भी कवियों का प्रिय विषय रहा है । ध्रुवपदकारों ने भी सद्यःस्नाता अथवा अन्य नायिकाओं के शृंगार का वर्णन किया है । मोहम्मदशाह रँगीले के दरबार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी गायिका नूरबाई की छवि निम्नांकित ध्रुवपद में अंकित है :

करि मंजन प्यारी ठाढ़ी चौहोर पवन लेत लागत,
जैसे जलधर की घटा उनै आई ।
लाल जरद बस्तर सोहत अंबर तामै हरी कोर धनक,
कैसी दांमिनि चौका चमकनि भारी ।
ऐसी कच स्यामतासी देखी नाहि,
न मानौ निभि गिरवर पर घूमरी धाई ।
पौहौप माल और बगुला सी करवट लीनै,
साहि अचानक 'नूरसाहि' कौ अंकौ भरि लई याते रंग महल रंग मूरति
उमणि काम की चौंय बरसै बड़ी-बड़ी बूदिनि छिन-छिन नई-नई ॥^२

अंग-अंग में शृंगार का वर्णन अकबर की मुद्रा से अंकित तानसेन-रचित निम्नांकित ध्रुवपद में और है :

प्रथम मंजन करें पैहरें सारी अंगीआ करनाटी झूमि रही काननि बेल फूल फूली
मांग मुकताहुल सीस फूल टीकौ जामें जम उबोत कापे सुजा प्यारी के मांथे चंदन लायें बीरा
षायें चौका अधर बनायें और छवि छूटी अलष सोहत कूं कूं की आड । नासिका बेसरि
सोभा लायें काननि करनफूल पुटिला पीअ के नग अमोलक तिनिकों आटक फाटक बनाई
राखौ कोउ लैन हूं न पावत । मझ गरे झूले पौहौपनि की माला टूटी सेवा पूजा चढ़ायें
राजत भुजनि टाड । ताईता पौंची आ माला मौतिन की पांति भाई नीकी लगत मकतूल
फूल फूदा कर कमलनि से भमरनि से भूलि रहे छुद्र घंटका की लर लगी सोभा की कसक
गाढ़ी अनवट बिछीआ बरषा कैसे बोलै कमल पांति जगमगाति महावर ऐंन गजनि चालि

१. परिशिष्ट आ, १५२ ।

२. परिशिष्ट आ, २७८ ।

चलत गति सी दिषावत भाव तिरी राग धुनि सी उपजत कोउ कुमुकुमु डारत कोउ करत
सौतिनि की नजरि न लागत चिर चिरजीवो साहि अकबर जाके सुष ऐसी नारि सुहाग भाग
लाडिली लाड ॥१

नेत्र-वर्णन : अंग-वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। अंगों में भी नेत्रों को देखने पर विदग्धहृदय 'जिअतु-मरत झुकि-झुकि परत' वाली स्थिति में प्रसन्नतापूर्वक आते रहे हैं। ध्रुवपदकारों ने नेत्रों का जो अनोखा सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, वह किसी भी महाकवि के वर्णन से हल्का नहीं पड़ता। रात्रि में नायक के साथ जागी हुई नायिका के नेत्रों का वर्णन 'अकबर' की छाप से अंकित एक ध्रुवपद में तानसेन ने किया है। जहाँगीर ने सम्भवतः तानसेन के इसी ध्रुवपद की प्रशंसा 'तुजुके जहाँगीरी' में की है। ध्रुवपद निम्नांकित है :

लाल के संग ललनि रेंनि जागी और लाल लोइनि लागे री मांनों बंदूके (बन्धूक)
पौहोप डीठे । ता मध पुतरी ऐसी लागे मानो भमर लटपटात उनि मध उडि परे रंग
मजीठे ॥ उनि के हेष भेष रही हों मेरे जान कमल षंजन मीन अंग लागे हैं सीठे । साहि
अकबर की सों हो वापै रीझी अलक लड़े फुनि बड़े छबीले ढीले चितवत नीके ॥३

रात्रि में जागे हुए नयनो पर तानसेन की एक अन्य अति सुन्दर रचना इस प्रकार है :

ऐसे नैनां अरुन बरन ते रे री पीअ संग जागे रंग रस पागे ।
सेत सेत तारे कमल दल लोचन निरखि आनन कुल त्यागे ॥
पलक पषुरीआं सी मुदत चितवत ही मनो वान से लागे ।
पौहोप सरोवरि पांनप पूरे तानसेनि प्रभु अनुरागे ॥३

नायक-रूप-वर्णन : नायकों के प्रताप, पराक्रम, शील, दानशीलता, उदारता इत्यादि गुणों की प्रशंसा साहित्य में होती रही है। राम और कृष्ण जैसी अलौकिक महाविभूतियों के रूप का वर्णन माधुर्यभाव की उपासना के परिणामस्वरूप हुआ है, परन्तु नायिका-सामान्य के रूप का वर्णन कवियों का जितना प्रिय विषय रहा है, उतना प्रिय नायकों के रूप का चित्रण नहीं। फारसी और उर्दू-साहित्य में प्रेम-पात्र पुल्लिंग होता है और उर्दू के कवि उसी परम्परा का निर्वाह आज तक किये जा रहे हैं। ईरानी संस्कृति का एक विशिष्ट

१. परिशिष्ट अ, ५७ ।

२. (क) परिशिष्ट अ, ८० ।

(ख) Of these poets the chief was Tansen Kalawant who was without a rival in my father's service (in fact there has been no singer like him in any time or age). In one of his compositions he has likened the face of a young man to the sun and the opening of his (her) eyes to the expanding of the Kanwal and the exit of the bee.

—Tuzuk-Jahangiri, Vol. I., p. 413,

३. परिशिष्ट अ, ४६ ।

अंग समानलिंगीय प्रेम है। आयुर्वेद-ग्रन्थों में जहाँ नपुंसकों के प्रकारों का वर्णन किया गया है, वहाँ यह सिद्ध करता है कि ऐसी प्रवृत्ति भारत में भी थी। स्मृतियों के प्रायश्चित्त-प्रकरण और 'कामसूत्र' के 'औपरिष्टक-प्रकरण' के अध्ययन से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समानलिंगीय यौन-सम्बन्ध समाज में थे। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ भारत में इस अप्राकृतिक प्रवृत्ति को घृणित एवं त्याज्य माना गया, वहाँ ईरान जैसे देशों में इसे बुरा नहीं समझा गया। घृणित समझना तो दूर की बात है, वहाँ के साहित्यकारों ने ऐसे 'माशूकों' के रूप की प्रशंसा में 'गजले' लिखी, जिनकी मसे भीगी न थी।

दूसरे अध्याय में जलालुद्दीन और अलाउद्दीन के दरबारी संगीत का वर्णन करते हुए हम सुप्रसिद्ध इतिहासकार बर्नी का उद्धरण देकर यह बता चुके हैं कि अमीर खुसरो का कार्य उन 'मरदो' (किशोर लड़कों) के हाव-भाव-कटाक्ष और रूप की प्रशंसा करना भी था, जिनके कपोलों पर रोएँ तक न जमे थे और जो युवतियों की भाँति सुन्दर थे। समानलिंगीय आकर्षण की यह भावना मुसलमानों के आगमन के साथ भारत में अधिक फैली और फैशन हो गई। अलाउद्दीन का पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारक शाह अपने प्रेमपात्र सेनापति खुसरो खाँ के हाथ से ही मारा गया था। बर्नी ने तारीखे-फीरोजशाही में इन सम्बन्धों का वर्णन अत्यन्त खुले शब्दों में किया है। अस्तु, बादशाहों और अमीरों के अनुकरण से यह प्रवृत्ति कलाकारों में भी आई थी। परिणामस्वरूप, मुस्लिम-दरबारों में इन रूपवान् पुरुषों के रूप की प्रशंसा में भी ध्रुवपद लिखाये और लिखे गये।

इस्लामशाह सूर की आसक्ति उस दौलत खाँ पर थी, जिसका परिचय भक्तिकाल के आश्रयदाताओं में दिया जा चुका है और कहा तो यहाँ तक जाता है कि तानसेन के नयन-चकार भी दौलत खाँ के मुख-चन्द्र की रूप-सुधा का पान आतुरतापूर्वक करते थे। इसीलिए, हमने अनुमान किया है कि दौलत खाँ के रूप की प्रशंसा में विरचित ये ध्रुवपद तानसेन के ही हैं। बड़ी निपुणता के साथ भारतीय परम्परा की रक्षा के लिए इन ध्रुवपदों को नारी की उक्ति बना दिया है। रचना निम्नांकित है :

माई प्यारे की सुरति कौ री, मुष प्रकास काहू पर कहौ न जातु री मन ही मन
आंनीये। जेती सिराहना कीयौ चाहत सु उचरै जाके तेई चित जानीये। उपमा काहू की दर्ई
न जाइ द्वजौ रचौ ही तौ ताकी समझ गति जानीये। ऐसौ जु प्यारौ दौलतिषाँन जीवत
कौ फलु तौ गिनीये चाके संग सुष मांनीये।^१

एक अन्य ध्रुवपद में दौलत खाँ मान किये बैठे हैं। भारतीय साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह स्थिति सर्वथा विलक्षण है। मान कामिनियों का अस्त्र है, पुरुषों का नहीं। इस ध्रुवपद को नारी की उक्ति बनाकर भारतीयता का जामा पहनाने की जो चेष्टा की गई है, वह दौलत खाँ के मान से व्यर्थ हो जाती है। रचना इस प्रकार है :

मोसों रुसनों ही कित करत हौ प्यारे,
 जो मोते कछू चक परी ताहि तुजही लुधारन हारे ।
 अब तौ गरै लगाई जीअ में उताडल भई,
 पीति वचन तजि अऐ न्यारे ॥
 कौन जहं सीष बई कहा तुम जीअ धरी,
 मोसों यों कहा हा हारे ।
 हसि करि बूझत उतर काहे न देत,
 दौलतिखान उज्यारे ॥^२

दम्पती-केलि : संयोग में वियोग की आणका रागवर्द्धक होती है और वियोग में संयोग की आशा प्रेमियों के जीवन का आश्रय होती है । फलतः, संयोग और विप्रलम्भ दोनों को चित्रित करने में महाकवियों ने अपने कौशल का परिचय दिया है । आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार की रतियों का विशद वर्णन संस्कृत के महाकाव्यों में हुआ है । भक्त-कवियों ने और भक्त-गायकों ने केलि-वर्णन में विशेष आनन्द का अनुभव किया है । एकमात्र भक्त ध्रुवपद-गायक स्वामी हरिदासजी की लीला-सम्बन्धिनी रचनाओं के एकमात्र संग्रह का नाम ही 'केलिमाल' है । ध्रुवपदकार साहित्य की इस दिशा में भी पीछे नहीं रहे हैं । दम्पती-केलि का वर्णन उन्होंने भी सफलतापूर्वक किया है । जगन्नाथ कविराय का यह ध्रुवपद इस विषय में ध्रुवपदकारों की सफलता का सुन्दर प्रमाण है :

ऐहो बैठे दम्पति सुरति सुष की बातें करत,
 प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत ।
 छिनुक आंषि षुलि जात पुनि मुसिक्यात अंचल ओट दै,
 जम्हांत अरसात वहि रसिक रंग उपजावत ।
 बदन चिबुक गहि आपु तन सूधौ करि,
 हरषि निरषि हरि हीये लगावत जगन्नाथ कविराइ के प्रभु ।
 रिझवार रीझि नैननि सो बेंन प्रान प्यारे मुष गावत ।^१

नायिका-भेद : भरत मुनि के युग से आज तक नायिका-भेद सहृदयों के लिए प्रिय विषय रहा है । गुण-रूप-स्वभाव-अवस्था, अंगयष्टि एवं देश के भेद से आचार्यों ने सुन्दरियों के वर्गीकरण किये हैं । उन वर्गीकरणों में हमें उन मनीषियों की उस सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है, जो मानव-स्वभाव का पूर्णतया विश्लेषण करने में समर्थ थी । यह वर्गीकरण हमारे पूर्वजों का प्रयास है, परन्तु अन्तिम नहीं । युग के परिवर्तन से आज अनेक प्रकार की नायिकाएँ केवल चर्चा का विषय रह गई हैं । सभ्य कहलानेवाले

१. परिशिष्ट अ, १४५ ।

२. परिशिष्ट आ, १०६ ।

समाज में घूँघट, सास-ससुर की लाज इत्यादि मर्यादाएँ शिथिल होती जा रही हैं। उस स्थिति का धीरे-धीरे सर्वथा लोप हो रहा है, जो पति के मन में पत्नी के लिए एक प्रकार की उत्सुकता जगाये रखती थी और एक ही घर में रहते हुए पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए प्रतिदिन की दाल-रोटी नहीं थे। आज न पायल की ध्वनि है, जो कभी सुन्दरी के प्राण-प्यारे के शरीर में रोमांच कर दिया करती थी और न आज छिप-छिपकर किये जानेवाले नयन-संकेतों की आवश्यकता है।

रीतिकाल की कुलवधुओं के ऐसे अनेक मनोरम चित्र आज केवल इतिहास की वस्तु रह गये हैं, रीतिकालीन कवियों के द्वारा जिनका अंकन आज भी सहृदयों के तन-मन को गुदगुदा देता है। अस्तु; प्रस्तुत विषय यह है कि सुन्दरियों के मनोरम चित्र ध्रुवपदकारों ने भी खींचे हैं और नायिका-भेद की नित्य-नूतन परम्परा का निर्वाह भली भाँति किया है।

मानसिंह तोमर के युग से रीतिकाल के अन्त तक नायिका-भेद की परम्परा ध्रुवपदकारों में भली भाँति फली-फूली और उसने हमारे गेय साहित्य को भली भाँति समृद्ध किया। इस स्थान पर ध्रुवपदकारों के द्वारा प्रस्तुत किये हुए, सुन्दरियों के कुछ रूपों को उपस्थित करना अप्रासंगिक न होगा।

तानसेन की खण्डिता अपने प्रियतम के अलसाये गात, डगमगाते चरण, असंगत वचन और बारम्बार की जमुहाइयाँ इत्यादि देखकर कहती है :

आजु आए रसमसे अलसाने गात, धनि वह को है जानें वसरि राषे हौ जू । चरननि डगमगात बचननि तुतरात बारबार हौ जम्हात सौहैं जूठी हौ जु षात । फूनि के चिन्ह जानें जानें हौ जू जांनि जाउ प्रगट बताअं देत दुरत न रस बात । तानसैनि कौ प्रभु तुम बौ हौ नाइक भली कीनी सुधि लीनी मेरे आए हौ जू प्रात ।^१

चंचलसस द्वारा प्रस्तुत खण्डिता प्रियतम के अधरों पर किसी की बरौनियों का अंजन, कपोलों पर कुछ निशान, पीठ पर मुद्रिका के चिह्न और मस्तक पर किसी के तिलक का अंक देखकर उस दृढ़ आलिंगन के विषय में जान जाती है, जिसे प्रियतम के माध्यम से मानों उसे जलाने के लिए ही उसकी सौत ने भेजा है। ऐसी अवस्था में भला धैर्य कहाँ सम्भव है ? उसके हृदयोद्गार सहसा इन शब्दों में फूट पड़ते हैं :

बरुनीनिकौ अंजन ऐ बिराजै लाल अधरनि पर ताही में अंत ही उजागर कपोलनि लागीये ते ऐ ठंठे अंक । बिना अंग पीठि पाछे मुद्रिका गढि रही गाढे आनंदन (आलिंगन) सोहत मुक्तिमाल और और अंक ॥ फुनि भाल तीलक दीये लिलाट सौं लगै जगै और दोउ पर रीझीं सूधी सूधी अलक परत परत वंक । चंचलससि प्रभु रीझे भीजे वा छवि सौं आए मेरे' सौहैं भए निसंक ॥^२

१. परिशिष्ट आ, ५७ ।

२. परिशिष्ट आ, ८३ ।

प्रीतम को वश में करनेवाली सौत किसी भी सुन्दरी के लिए 'आँख की किरकिरी' ही होती है। 'धीरज' की खण्डिता के प्रियतम भी सौत की सौगाते अपने साथ लाये है। वह प्रियतम का स्वागत इस प्रकार करती है :

ढीले-ढीले पग धरत ढीली पाग ढरकि रही,
ढऐ से परत ऐसे कौन पर ढऐ हौ जू।
गाड़ी जू पीआ के हीअ ऐसी गाड़ी,
कौन त्रीआ गाढे गाढे मुजति सों गाढे करि गहै हौ जू।
लाल लाल लोहें लाल उनींदी आंघें सांची,
का हौ पीआ हों तो लाल लहे हौ जू।
कहि धीरज प्रभु निसुके उनींदे जागे भयौ,
प्रात कहै वात राति कहां रहे हौ जू।^१

बहादुरशाह की मुद्रा से अंकित एक ध्रुवपद में खण्डिता कुछ अधिक तीखी है। प्रियतम के अगो पर जली, सौत के सम्भोग-चिह्न देखकर उसके धैर्य का बाँध अकस्मात् टूट जाता है। वह अपने प्रियतम को तबतक देहरी के अन्दर पैर भी नहीं रखने देना चाहती, जबतक कि वह सिर से पैर तक नहा न ले। 'भरगजे' वस्त्रों का परित्याग न कर दे। चतुर प्रियतम की चतुराई-भरी बातों में आनेवाली वह नहीं है, उसके सम्मुख वह दर्पण प्रस्तुत किये देती है। ध्रुवपदकार ने इन शब्दों में यह चित्र अंकित किया है ;

ठाडे रहौ आंगन ही मेरे जौ लौं देह नव सिष भीजें।
न्हाइ लेउ गंगवा नैं पांनों उतारि धरौ
जे बस्तर जब गेह देहरी पग दीजें।
अधरनि अंजन लिलाट महावर चतुर चतुरई जिनि कीजें।
साहि बहादुर तुम बौहौनाइक सकुचौ जिनि दर्पन लीजें।^२

उल्लेख-मात्र के लिए तानसेन के काल से बहादुरशाह तक के युग में लिखे हुए केवल खण्डिता के उदाहरण ही प्रस्तुत कर दिये गये हैं। अन्य नायिकाओं की चर्चा यथास्थान आयगी।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा : एक बार में एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देनेवाले राजा रामचन्द्र को तानसेन ने 'गाहक' और स्वयं को 'व्यापारी' कहा है। कीर्ति को अमर कर देनेवाला अकबर तानसेन के शब्दों में 'पारखी' है और वे स्वयं 'जौहरी' हैं। आनन्द खाँ को भरपूर पुरस्कार देते रहकर भी अमीरों और सरदारों से मिली हुई एक दिन की समस्त भेटें दे डालनेवाला जहाँगीर भी ध्रुवपदकारों की दृष्टि में प्रशंसा का पात्र बना है और जगन्नाथ कविराय को चाँदी से तुलवाकर सम्मान बढ़ानेवाला शाहजहाँ ध्रुवपद-

१. परिशिष्ट अ, ११५।

२. परिशिष्ट अ, १८७।

कारो की दृष्टि में प्रशंसा का पात्र हुआ है। यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी कलाकारों को हजारों मुद्राएँ और खिलअते देकर प्रशंसा प्राप्त की है।

यहाँ तक हम जानते हैं, वहाँ तक राज्याश्रित किसी भी कवि को तानसेन जैसा बड़ा पुरस्कार नहीं मिला। उस युग में इतना धन और सम्मान भला किस कलाकार को आश्रयदाता की प्रशंसा करने के लिए विवश न कर देगा।

राजा राम ने पर्याप्त समय तक अकबर से डटकर मोर्चा लिया और अकबर के राज्याभिषेक से प्रायः २९ वर्ष पश्चात् वे अकबर से मिलने तब गये, जब कि उन्हें लेने के लिए जैन खाँ कोका और वीरबल जैसे प्रतिष्ठित सामन्त भेजे गये। इनकी प्रशंसनीयता असन्दिग्ध है।

अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के पराक्रम और प्रताप में किसे सन्देह है। अपने इन आश्रयदाताओं के पराक्रम और प्रताप का वर्णन ध्रुवपदकारों ने यदि जी खोलकर किया है, तो ठीक किया है। उसमें अत्युक्ति नहीं है। हाँ, औरंगजेब के बाद जो मुगल-सम्राट् गद्दी पर बैठे, उनमें पूर्वोक्त सम्राटों जैसा ऐश्वर्य, तेज, प्रताप और पराक्रम न था और उनके आश्रित ध्रुवपदकारों को शान्त, निश्चिन्त एवं उच्चस्तरीय वातावरण भी उपलब्ध न था। उस काल के ध्रुवपदकारों ने अपने आश्रयदाताओं के पराक्रम और प्रताप का जो वर्णन किया है, वह या तो आंशिक सत्य है या परम्परा का निर्वाह-मात्र।

सम्राट् वैसे न रहे थे, परन्तु भुवनमोहिनी सुन्दरियों की उत्पत्ति पर कोई प्रतिबन्ध न हो सकता था, इसीलिए रीतिकालीन ध्रुवपदकार नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन में अधिक सफल हुए।

आश्रयदाताओं के परिचय के साथ ध्रुवपदकारों द्वारा किया हुआ उनका चरित्र-चित्रण भी यथास्थान दे दिया गया है, अतः पराक्रम, दानशीलता, उदारता इत्यादि से सम्बद्ध ध्रुवपदों को यहाँ दुहराना पिण्ड-वेषणमात्र होगा।

(इ) भक्तिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन

सामान्य परिचय :

पिछले अध्यायों में वैदिक संगीत से लौकिक संगीत के विकास, मुसलमानों के आक्रमण के कारण राजकीय सांगीतिक परम्पराओं के विनाश, मानसिंह तोमर के प्रयत्न से व्रजभाषा-ध्रुवपद के जन्म और मुगल-सम्राटों तथा अन्य आश्रयदाताओं, उनसे सम्बद्ध ध्रुवपदकारों एवं अज्ञातपरिचय रचनाकारों की चर्चा भी की जा चुकी है। ध्रुवपदकारों की प्राचीन परम्परा और उनके क्षेत्र का वर्णन भी यथास्थान हो चुका है। यहाँ हम उन सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे, जो अधिकांश ध्रुवपदकारों में पाई जाती है।

व्रजभाषा-ध्रुवपद का जन्म अत्यन्त विषम परिस्थितियों में हुआ था। लोदी-वंश का अन्त और सूरवंश का उत्थान-पतन तानसेन जैसे ध्रुवपदकारों ने अपनी आँखों से देखा था। बाबर और इब्राहीम लोदी तथा हुमायूँ और शेरशाह के पारस्परिक संघर्षों का दर्शन बैजू, गोपाल, तानसेन, रामदास और वृन्दावनवासी स्वामी हरिदास ने अपने जीवनकाल में किया था और उन लोगों के जीवन के आदिम भाग राजनीतिक अस्थिरता के युग में व्यतीत हुए थे।

ऐसे कलाकार सौभाग्यशाली होते हुए भी गिने-चुने ही थे, जिन्हें अकबर के आश्रय में मान-सम्मान, अर्थ, ख्याति आदि सब कुछ प्राप्त हुए थे। बैजू और गोपाल जैसे कलाकारों को जिन राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था, वे स्वयं संघर्षों में फँसे थे। जिस कोटि के वे आश्रयदाता थे, उसी कोटि की रचना उनके सम्बन्ध में ध्रुवपदकारों ने की है। इन आश्रयदाताओं में केवल रामचन्द्र बघेला ऐसा था, जिसकी वीरता और उदारता की प्रशंसा करने के लिए अकबरी दरबार का इतिहासकार बदायूँनी मुल्ला भी विवश हुआ है। अस्तु, अस्थिरता के उस युग में ध्रुवपदकारों को दरबार छोड़कर भटकने के लिए विवश होना पड़ा। इसका एक शुभ परिणाम यह हुआ कि दरबारों की परिधि से निकलकर उन्हें जनता का भी थोड़ा-बहुत सम्पर्क मिला। बैजू और तानसेन जैसे ध्रुवपदकारों की रचना में विषय-सम्बन्धी विविधता के पाये जाने का एक यह भी कारण है।

धार्मिक पर्वों, उत्सवों अथवा कीर्त्तनों के अवसर पर राजाओं के पराक्रम और प्रताप का वर्णन नहीं गाया जा सकता था। अतः, आजीविका के लिए इन्हें इस प्रकार के ध्रुवपद लिखने पड़े, जिनके विषय की संगति उपर्युक्त अवसरों के साथ थी। जनता के सामाजिक उत्सवों में गा-बजाकर अर्थोपार्जन करने के लिए भी इस प्रकार की मांगलिक रचनाएँ उपयुक्त नहीं थी, जिनमें किसी विशिष्ट आश्रयदाता को सम्बोधित किया गया हो। फलतः, इस प्रकार के ध्रुवपदकारों द्वारा ध्रुवपदों की रचना हुई, जो उत्सवों एवं विभिन्न संस्कारों के अवसर पर किसी भी गोष्ठी में गाये जा सकें।

सांसारिक अभावों से त्रस्त व्यक्ति अनेक दिशाओं में हाथ-पैर मारता है। निराकार भगवान् तो उसे दिखाई नहीं देता, मन्दिरों में जाता है और वहाँ मनोरथ-पूर्ति की प्रार्थना करता है। वहाँ भगवान् साकार होते हैं, परन्तु बोलते-चालते नहीं। इसीलिए मनोरथ-पूर्ति की आशा मन में लिये हुए लोग सिद्धों, सन्तों और पहुँचे हुए फकीरों की शरण में भी जाते हैं, जिन्हें अल्लाह या भगवान् से नित्य-सम्पृक्त समझा जाता है। ये पीर और गुरु साक्षात् ईश्वर होते हैं; क्योंकि ये मुरीदों, शिष्यों और भक्तों की कठिनताओं को सुनते हैं, सम्मति, सान्त्वना और आशीर्वाद भी देते हैं। ध्रुवपदकार भी सामान्य जीव थे, जीवन की विषमताएँ इनके लिए भी थी। हिन्दू-सन्त और मुसलमान सूफी गाने-बजाने पर रीझते ही थे और ध्रुवपदकारों के पास उन्हें रिझाने के लिए अपनी कला के अतिरिक्त और था ही क्या। इसीलिए, निगुण ब्रह्म, अलख, नाद, मुद्रा, सेली, पैगम्बर और पीर भी ध्रुवपदों में दिखाई देने लगे।

नारी, किसके लिए आकर्षण की वस्तु नहीं है। भर्तृहरि ने कहा है :

एताञ्चलवलयसंहतिमेखलोत्थञ्जकारनूपुरपराजितराजहंस्यः ।

कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो विव्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥

अर्थात्, 'वे तरुणियाँ अपने विव्रस्त और मुग्ध हरिणियों जैसे कटाक्षों से किसके मन को वश में नहीं करतीं, जिन्होंने हिलते हुए कंकणों, मेखलाओं और नूपुरों के झंकार से राजहंसों को पराजित कर दिया है।' नारी के इस विश्वविमोहन रूप की विभिन्न झाँकियों का वर्णन ध्रुवपदकारों ने लोकरंजन के लिए किया, जिनमें किसी भी आश्रयदाता को सम्बोधित नहीं किया गया है। राजा हो, चाहे रंक, अपनी प्रेयसी के लिए वह 'दुष्यन्त' है और प्रेयसी उसके लिए 'शकुन्तला'। ऐसी रचनाओं ने सभी के मन को मोहा है। अबुल फजल ने भानसिंह तोभर के दरबार में जन्म लेनेवाली जिस गीत-शैली को सर्वजनमोहक कहा है, वह इन्हीं गीतों की शैली है। वख्शू जैसे कलाकार को बहादुरशाह गुजराती के दरबार में ऐसी रचनाओं के प्रताप से ही हाथो-हाथ लिया गया था।

कुछ बातें मांगलिक समझी जाती हैं और रूढ़ हो जाती हैं। विभिन्न अवसरों पर दरबारों में गायकों द्वारा मंगल-गान अथवा विरुद-गान की एक परम्परा रही है। अतएव, पराक्रम एवं प्रताप जिन ध्रुवपदों का विषय है, वे विभिन्न उत्सवों, मांगलिक अवसरों और त्योहारों पर आम दरबार में गाने के लिए हैं। उनका प्रयोजन संगीत-गोष्ठियों में श्रोताओं को रससिक्त करना नहीं है। इसीलिए, इन ध्रुवपदों में समर्थ ध्रुवपदकारों का मन भी पूर्णतया रमा नहीं है। व्यक्ति-विशेष भले ही अपनी प्रशंसा से सन्तुष्ट होता हो, परन्तु जो व्यक्ति राम और कृष्ण के समान लोकनायक न होकर केवल कोई राजा या बादशाह होता है, उसकी प्रशंसा से पूर्ण कविताएँ श्रोताओं को रसमग्न करने में सदा असमर्थ रहती हैं।

ध्रुवपदकारों की रचनाओं में भक्ति-सम्बन्धी ध्रुवपद भी हैं और कही-कही ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वान्तःसुखाय भी लिखे गये हैं। दरबारों की परिधि में न रहकर जिन्होंने सर्वथा अपने आराध्य को रिझाने के लिए ही रचना की, ऐसे एकमात्र ध्रुवपदकार वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी हैं, जिनकी पंक्ति-पंक्ति से रस की धाराएँ प्रवाहित होती हैं। इनके पदों में एक प्रकार का आर्जव है, बाल-सुलभ भोलापन है और एकान्त अनुभूतियों का अत्यन्त मनोरम एवं हृदयस्पर्शी चित्रण एवं विश्लेषण भी। ये अपने समान स्वयं ही हैं। इस स्थान पर उस काल के समस्त सन्तों अथवा भक्त-कवियों के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है, जो उस युग को अपने बहुमूल्य व्यक्तित्व से प्रभावित कर रहे थे और जिनके सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य के विद्वान् पर्याप्त मात्रा में अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ सामग्री प्रस्तुत कर चुके हैं। ध्रुवपदकार भी समकालीन सन्तों के परिचय में आये थे और उनसे प्रभावित हुए थे। तानसेन और सूर के पारस्परिक मिलन की बात अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि तानसेन ने—

किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर ।

किधौ सूर को पद सुन्यो, जो अस बिकल सरीर ॥

कहकर 'सूर' के पदों की प्रशंसा की थी और सूरदास ने—

बिधना यह जिय जान कै, सेषहि दिये न कान ।

धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान ॥

कहकर तानसेन का अभिनन्दन किया था । यदि सचमुच सूर की प्रशंसा से युक्त उपर्युक्त दोहा तानसेन का है, तो वह उनकी ऐसी कविता का एकमात्र प्राप्त उदाहरण है और उन्हें शब्दों का निपुण शिल्पी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है । स्वामी हरिदासजी तो तानसेन के गुरु प्रसिद्ध ही हैं ।

ध्रुवपदों के विषयों और उनके स्रोतों का वर्णन हो ही चुका है, अतः ध्रुवपदकारों की उपलब्ध कृतियों के आधार पर साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

काव्यपुरुष का प्राण 'रस', शब्द एवं अर्थ 'शरीर', 'ओज', 'माधुर्य' और 'प्रसाद' गुण तथा काव्यगत 'अलंकार' आभूषण हैं । इन वस्तुओं में काव्य के अन्तरंग और बाह्य पक्षों का अन्तर्भाव प्रायः हो जाता है । इसी दृष्टि से हम ध्रुवपदों का अध्ययन करेंगे ।

१. बैजू :

मानसिंह तोमर के काल से बहादुरशाह गुजराती तक के काल में इनकी चर्चा मिलती है । इन दरबारों के पण्डितों, कवियों और कलाकारों से इनका सम्पर्क था । 'मानकुतूहल' की रचना में जिन गुणियों का योग रहा, उनसे इनका परिचित होना स्वाभाविक है । एक ध्रुवपद में इन्होंने स्वयं को आदिकवि (परिशिष्ट, आ ८) कहा है और हमारी दृष्टि में भी ब्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदिकवि यही है । इनकी रचनाएँ गायकों के मुख से सुनाई देती हैं । 'रागकल्पद्रुम' में इनके ध्रुवपद यथास्थान विद्यमान हैं; क्योंकि गेय रचनाओं का रागानुसारी वर्गीकरण रागकल्पद्रुमकार ने किया है । 'रागकल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण का सम्पादन जिन पण्डितों की सहायता से हुआ, वे संगीत और उसके इतिहास से परिचित नहीं थे । उन सज्जनों ने मूल पाठ का मनमाना सशोधन भी किया है । सम्पादक ने संगीत से अपनी अनभिज्ञता स्वीकृत की है ।^१ इन्हीं कारणों से 'रागकल्पद्रुम' में संकलित कुछ ऐसी रचनाएँ भी बैजू-कृत मान ली गई हैं, जो बैजू-कृत नहीं हैं । उदाहरण के लिए, निम्नांकित रचना में संकेतवाचक विशेषण 'वे' और 'जू', मिल कर 'बैजू' हो गये हैं :

दोनों करतार तुमें राज साज की

सकल सोभा ऐसी नाह और कोउ जानी ।

साहब सुजान समझ तान की राखत हो तुम

गुनी आय गावत ए नीकी सुध बानी ।

१. रागकल्पद्रुम, भाग २, ग्रन्थकार और ग्रन्थ का परिचय, पृ० ४ ।

जानत है नीके भाग आपन बैजू रहत है
 रीझ जगत में तुमारी अमीर रावरानी ।
 बेत हो दान सनमान दुख दारिद्र विडयन (विडारन) हमरे कारण
 कियो तुमहूँ को अब साहिब किरानसानी ।^१

‘साहिब किरानसानी’ शाहजहाँ की उपाधि है, जिनकी प्रशंसा में किसी ने इस ध्रुवपद की रचना की है । शाहजहाँ के युग से बैजू का कोई सम्बन्ध नहीं । ‘बैजू और गोपाल’ नामक पुस्तक में ‘साहिब किरानसानी’ को सम्पादित करके ‘साहब फिरा निसानी’ कर डाला गया है । मानों इस ध्रुवपद में कोई किसी से अपनी ‘निसानी’ वापस माँग रहा हो ।^२

बैजू की रचना के विषय—गणेश, दुर्गा, शंकर, हरिहर, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, राम, कृष्ण और सर्वदेव की स्तुति, गुरु-महिमा, हरि-स्मरण, नाम-महिमा, ब्रह्म की व्यापकता, प्रबोध, नाद-साधन, संगीत, नायिका-भेद, जन्मोत्सव की बधाइयाँ, वशी और रास हैं ।

वस्तुतः, इन्हे एक युगप्रवर्तक ध्रुवपदकार माना जाना चाहिए, जिनके दिखाये हुए मार्ग पर चलकर तानसेन और अन्य ध्रुवपदकारों ने संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

शैवों और वैष्णवों के परस्पर सिर फोड़नेवाले दिलों में बँटी हुई जनता जब विष्णु और शिव की एकता को भूलकर पारस्परिक विग्रह में निमग्न थी, तब ‘रामचरितमानस’ की रचना से कही पूर्व यह महान् गायक विष्णु और शिव की एकता का प्रतिपादन करता हुआ कह रहा था :

बंसीधर पिनाकधर, गिरवरधर गंगाधर, चंद्रमालीलाधर हो हरिहर ।
 सुधाधर, विषधर, धरनीबर, शेषधर, चक्रधर, त्रिसूलधर नरहरि शिवशंकर ।
 रमाधर, उमाधर, मुकुटधर, जटाधर, भस्मधर, कुंकुमधर, पीताम्बरधर, व्याघ्रांबरधर ।
 नन्दीधर गरुड़धर कैलासधर बैकुंठधर, कहै ‘बैजू बावरे’ सुनौ हो गुनीजन, निसदिन

हरिहर ध्यान उर धर रे ॥^३

केवल विशेषणों के प्रयोग से बैजू ने इस रचना में विष्णु और शंकर दोनों को सफलतापूर्वक मूर्त रूप में चित्रित कर दिया है । इस प्रकार की अन्य रचनाएँ भी बैजू के साहित्य में प्राप्त होती हैं ।

बैजू का पौराणिक ज्ञान अच्छा था और वे अपनी नाभि से ब्रह्मा को प्रकट करने-वाले विष्णु-स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का भी प्रतिपादन करते थे । विष्णु और परब्रह्म की यह एकता उनके इस ध्रुवपद में भली भाँति प्रतिपादित है :

१. रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ० १२६ ।

२. ‘बैजू और गोपाल’, पृ० ५६ ।

३. उपरिचित्, पृ० ४५-४६ ।

निरंजन निराकार परब्रह्म परमेश्वर, एक ही अनेक होय व्याप्यो विस्वंबर ।
अलख ज्योति अविनासी जोतिरूप जगतारन, जगन्नाथ जगतपति जगजीवन जगधर ।
वाही में सब जीव-जंतु सुर-नर-मुनि गुनी-जानी, नाभि-कमल तें ब्रह्मा प्रकटायो
और सतरूपा मन्वंतर ।

कहै 'बैजू' वही ब्रह्म वही विराट रूप वही आपु अवतार भये चौबीस वपुधर ।^१

रूप-वर्णन साहित्य का एक विशिष्ट अंग है । बैजू की पद्मिनी सुन्दर, नवेली और प्रवीण होने के साथ ही नितान्त कोमल है । स्वकीया के रूप में यदि ऐसी रमणी किसी को प्राप्त हो, तो उसके समान भाग्यशाली कौन होगा । जिन उपमानों से बैजू ने पद्मिनी को सजाया है, वे भारतीय साहित्य में नये नहीं हैं, परन्तु ध्रुवपद-साहित्य के आदिकवि बैजू ने उनका परिचय अपने क्षेत्र में अत्यन्त सफलतापूर्वक दिया है । रचना प्रौढ़ है, उसमें शिथिलता नहीं है । अत्यन्त शान्त और कोमल यह पद्मिनी 'कामसूत्र'-वर्णित विशेषताएँ अपने अन्तरंग और बहिरंग में लिये हुए कृशता के कारण केश-भार से दबी-सी जा रही है ।

सुन्दर अति नवीन प्रवीन महाचतुर, मृगनैनी मनहरनी चपकबरनी नार ।

केहरि कटि, कदली जंघ, नाभि सरोज, श्रीफल उरोज, चन्द्रबदनी, सुक नासिका,
भौंह धनुष, काम द्वार ॥

अंग-अंग सुगंध पद्मिनी, भंवर गुंजत सुवास आवत क्रोध नहीं, सांत सरूप, कृसता
ही दबी जात बारन के भार ।

धन-धन ताकौ भाग, तोसी तिया जा घर बैजू प्रभु रस बस कर लीने, काम-जाल
डार ॥^२

पति की प्रतीक्षा में निमग्न वासकसज्जा का एक रूप बैजू के द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रित हुआ है । 'शंका', 'उत्सुकता', 'वितर्क' इत्यादि संचारी भावों को अत्यन्त सक्षिप्त रूप में जिस प्रकार बैजू ने इस छन्द में प्रस्तुत किया है, वे कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हैं । नायिका बेचारी को न लेटे ही चैन है, न बैठे ही । शृंगार करने पर भी वह विरहिणी जैसी है । मन में उमंग है और अंग-अंग को वह अँगड़ाई ले-लेकर मरोड़ रही है । प्रतीक्षा का मूर्त रूप यह सुन्दरी स्वयं है । भाव, अनुभाव और संचारी भाव इस रचना में सजीव हो उठे हैं । रचना इस प्रकार है :

कर पै गुलफ धरै तिय वुचित अनमनी, करके सिंगार बिरहिन ह्वै बैठी री ।

पिय-पिय, रट लागी, मग जोहत, मोहत रंग, उमंग भरी आलस अंग-अंग मरोरत है
ऐंठी री ॥

नख-सिख लौ आभूषन भूषन जगमग रहे, पिय आवन की उछाह, नाहिन पत कल
नैक लेटी री ।

१. बैजू और गोपाल, पृ० ५१ ।

२. उपरिचत्, पृ० ६५ ।

‘बैजू’ प्रभु मनमानी आय गये वाही छिन, धन-धन भाग सुहाग नारि अंग-अंग
भंटी री ॥^१

प्रमियों के लिए स्वप्नों का संसार अत्यन्त मनोरम रहा है। निष्ठुर-से-निष्ठुर प्रेमपात्र भी अत्यन्त हताश प्रेमियों को स्वप्न में आकर दर्शन देता रहा है। जो सुन्दर मुख जागरित अवस्था में प्रेमी के लिए दुर्लभ रहता है, वह स्वप्नों के स्वर्णमय जगत् में प्रेमी के मनोरथों की पूर्ति करता है। उस संसार में जो व्यक्ति प्रेमपात्र के साथ प्रेमालाप में निमग्न होता है, उसके लिए आँख का खुलना अत्यन्त अवांछनीय होता और उसके मन में प्रियतम से साक्षात् मिलन के लिए एक तीव्र उत्सुकता जगा देता है। संचारी भाव ‘स्वप्न’ के साथ अन्य संचारी भावों के द्वारा विप्रलम्भ-शृंगार का सुन्दर परिपोष बैजू के इस छन्द में हुआ है, जिसमें नायिका स्वप्न-मिलन के सुख का अनुभव करने के साथ-ही-साथ विरह की तीव्रता से ग्रनमनी हो रही है :

आज सुपने में सांवरी सलौनी सूरत देखी, सैनन करी मो सौं बात ।
तबतैं मैं बहुत सुख पायौ, जागत भई परभात ।
मधुर बचन बोल मदन मंत्र पढ़ि डारौ, उन बिन छिन-छिन कछु न सुहात ।
‘बैजू’ ब्रज की नारी, जंत्र-मंत्र लिख सारी, कल न परत गात, सब दिन-रात ॥^२

बैजू की भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु अपने तद्भव रूप के कारण वे भाषा में घुल-मिल गये हैं। व्यर्थ शब्दों का प्रयोग बैजू नहीं करते और उनके यहाँ भरती के शब्द नहीं हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग उनकी कविता में स्वयं हो गया है, वे प्रयत्न का परिणाम नहीं हैं। माधुर्य और प्रसाद उनके काव्य के सहज गुण हैं और अनुभूति उनके ध्रुवपदों में पद-पद पर है।

यहाँ यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि जिस मानसिंह तोमर की राजसभा में बैजू की वाणी का स्रोत खुला, उसके राज्याभिषेक के समय महाकवि सूरदास की आयु प्रायः चार वर्ष की थी और गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्म (सन् १५३२ ई० अथवा सवत् १५८६) के लिए भारतवर्ष को प्रायः ४७ वर्ष की प्रतीक्षा करनी थी।

बैजू के काव्य ने पश्चाद्वर्ती सरस्वती के वरद पुत्रों को कहाँ तक प्रभावित किया, यह चिन्तन का विषय है। इस दृष्टि से भी साहित्य में बैजू का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमारी दृष्टि में ‘सूर’ और उनके साथी कवियों को ब्रजभाषा की जिन रचनाओं ने प्रभावित किया, उनमें बैजू की रचनाएँ प्रमुख हैं।

२. बख्शू :

बख्शू की ख्याति संगीतज्ञों में बहुत अधिक है और इन्हें अत्यन्त सुन्दर ध्रुवपदों का रचयिता कहा जाता है। शाहजहाँ के काल तक इनकी रचनाएँ सहस्रों कण्ठों से गुंजित

१. बैजू और गोपाल, पृ० ६८ ।

२. उपरिबत्, पृ० ६७ ।

होती थी। 'रागकल्पद्रुम', द्वितीय भाग, पृ० २२३ पर गणेशस्तुति-विषयक इनकी निम्नांकित रचना दी हुई है :

पूजौ रे गणेश को गुनि ।
रिद्धि सिद्धि के दाता विघ्न हरण बुनि ॥
जिन ध्यायौ तिन पायौ मन इच्छा भनि ।
बखसू के प्रभु को ध्यावत, सुर-नर-मुनि ॥

इस पद में 'रागकल्पद्रुम' के पण्डितों ने कृपा करके 'रिद्धि-सिद्धि' के स्थान पर 'रिद्धि-सिद्धि' और 'विघ्नहरण' के स्थान पर 'विघ्नहरण' करके मूल पाठ का 'सम्पादन' कर डाला है। साथ-ही-साथ लेखक-सूची में ऐसी रचनाएँ भी बखशू के नाम में गिना दी हैं, जिनमें 'दो' के अर्थ में 'बखशो' क्रिया का प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं, 'बाँक बखश' की मुद्रा से अंकित ठुमरियाँ भी वहाँ बखशू के खाते में जमा कर दी गई है।

कहा जाता है कि शाहजहाँ ने इनके सहस्र ध्रुवपदों का संग्रह कराया था।

३. गोपाल द्वितीय .

गोपाल द्वितीय बैजू के शिष्य थे। इनकी रचना के विषय संगीत, कृष्णलीला और गान-प्रतियोगिता है। कुछ ध्रुवपदों में ये प्रतिस्पर्द्धी की भाँति बैजू को सम्बोधित करते दिखाई देते हैं, तो कुछ में बैजू के द्वारा इनकी भर्त्सना भी मिलती है। सम्भवतः, इन्हे अभिमान हो गया था और ये अपने गुरु से स्पर्द्धा करने लगे थे। इनके ध्रुवपदों में सिकन्दरशाह (सिकन्दर सूर) और छत्रपति संग्राम, राणा सांगा तथा राजा राम (रामचन्द्र बघेला) को सम्बोधित किया गया है। इनकी रचनाएँ संगीत के पारिभाषिक शब्दों से भरी हुई हैं और प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये शुष्कहृदय व्यक्ति थे। परिशिष्ट अ में ११ और १२ संख्यक इनकी रचनाएँ हैं।

४ श्रीस्वामी हरिदासजी :

वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी एक विशिष्ट सखीभाव की उपासना के प्रवर्तक हैं। ये रस में सर्वांगमग्न महापुरुष थे। इनके श्याम-श्यामा अलौकिक हैं, उनकी 'केलि' भी अलौकिक तथा उनका नित्य निकुंज-विहार भी अलौकिक एव नित्य है। सखियाँ अपने सख्य के कारण श्याम-श्यामा के परम गोपनीय एवं रसमय एकान्त व्यापारों के देखने की अधिकारिणी होती हैं। स्वामी हरिदासजी स्वयं में सखी-भाव का आरोप करके अपने उपास्य 'युगल' की लीलाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं। वे उनके समक्ष सदा विद्यमान हैं, वियोग के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है। नित्यविहार में वियोग के लिए अवसर ही कहाँ ? वे कहते हैं :

माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम घन दामिनि जैसैं ।
प्रथमहूँ हुती अबहूँ आगे हूँ रहिहूँ न टरिहूँ तैसैं ।
अंग-अंग की उजराई सुखराई चतुराई सुन्दरता ऐसैं ।
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा, कुंजविहारी सम वैसे-वैसे ।

केलि-सम्बन्धी पदों में हरिदासजी ने श्याम-श्यामा के स्वाभाविक मधुर और कान्त क्रीडा-व्यापारों का जो ऋतु-वर्णन किया है, वह स्वतः प्रवाहित अमृतस्रोत के समान है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि हम कोई दृश्य सचमुच देख रहे हैं, उसमें कोई प्रयत्न नहीं है। श्याम श्यामा से पूछते हैं : 'प्रिये ! जैसे मैं तुम्हारी आँखों में स्वयं को देखता हूँ, उसी प्रकार तुम्हें भी मेरे नेत्रों में अपना दर्शन मिलता है या नहीं ?' उत्तर मिलता है : 'मैं तो आँखें मूँदे हुए हूँ, फिर भला लाल निकलकर कहाँ जायेंगे ?' श्याम फिर कहते हैं : 'मुझे निकलने के लिए स्थान तो बताओ। सच कहो, पैर पड़ता हूँ, बलि जाता हूँ। निरन्तर तुम्हें केवल देखना चाहता हूँ। मेरे लिए अन्य कोई सुख नहीं है।' हरिदासजी के शब्द हैं :

प्यारी जू जैसे तेरी आँखिन में हौ अपनपौ देखत हौ,

ऐसें तुम देखत हौ किधौ नाहीं।

हौ तोसों कहाँ प्यारे आँखि मूँदि रहौ,

तौ लाल निकस कहाँ जाहीं ॥

मोकौ निकसिबे को ठौर बतावौ,

साँची कहौ बलि जांव लगौ पाहीं।

श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा कुंजविहारी,

तुम्ह देख्यौ चाहत और सुख लागत काहीं।^१

ऐसी रचना को केवल आलंकारिकों की दृष्टि से देखकर यहाँ 'स्वभावोक्ति'-मात्र बताना इस दूध से धुले हुए ध्रुवपद का अपमान करना है। परम सुन्दरी अप्सरा का दर्शन करके उसके उत्तरीय की किनारी पर दृष्टि गड़ाना है। इस काव्य-मन्दाकिनी में सर्वागमन होकर स्वयं रस-रूप हो जाने में ही आनन्द है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव खोजकर भी ऐसी रचनाओं का मूल्यांकन सम्भव नहीं। इसमें जो कुछ है, वह सहृदय-जन-संवेद्य है, उसका विश्लेषण द्रौपदी का चीरहरण है।

हरिदासजी की श्यामा सकल कलाओं की मर्मज्ञा हैं। उनके सामने गुण की बात भला कौन जान सकता है ? यदि कोई कुछ जानता है, तो वह ज्ञान भी उन्हीं का प्रसादमात्र है :

गुन की बात राधे तेरे आगे को जानै।

जो जाने सो कछू उनहारि।

नृत्य गीत ताल भेदन के भेद न जाने।

काहू जिते तिते देखे झारि।^२

बाह्य प्रकृति ने स्वयं श्याम-श्यामा की केलि में सहयोग देना आरम्भ कर दिया। कोई सखी कहती है कि "अरी राधे चल, हरि बुला रहे हैं, कोकिला आलाप कर रही है, विहंग स्वर दे रहे हैं, राग बन गया है। वहाँ चल, जहाँ मोर काँछ बाँधे नृत्य कर

१. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ७१।

२. उपरिबत्, पृ० १२।

रहे हैं, मेघ पखावज बजा रहे हैं और बन्धान गिना हुआ है। ये सब वस्तुएँ लौकिक नहीं हैं, फलतः ध्यान के बल पर मैंने इस स्थिति को जाना है और मैं आई हूँ, कहना कुछ चाहा था, कह कुछ और रही हूँ” :

राधे चलि री हरि बोलत ।

कोकिला अलापत, सुर बैत पंछी, राग बन्यो ।

जहां मोर कांछ बांधे नितं करत, मेघ पखावज बजावत, बंधान गन्यो ।

प्रकृति की कोऊ नाहीं याते ।

सुरति के अनुमान गहि हों आई मैं जन्यो ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा

कुंजविहारी की अटपटी बानि औरै कहत कछू औरै भन्यो ॥१

ये ऐसी उक्तियाँ हैं, जो साहित्यशास्त्र को नये नियम देती हैं। विष्णु और लक्ष्मी जैसे पौराणिक नायक-नायिकाओं में इन श्याम-श्यामा की गणना नहीं हो सकती, क्योंकि इस रूप में ये पुराणसिद्ध नहीं हैं, यहाँ कोई कथा नहीं है, नित्यकेलि है। इन्हें अन्य दिव्य पात्रों की भाँति भी नहीं कहा जा सकता। श्याम-श्यामा प्रकृति के लिए स्वयं उद्दीपन हो गये हैं और राधा की प्रतीक्षा में निमग्न हैं। साथ ही यह प्रकृति सामान्य बाह्य प्रकृति नहीं है। वे कोकिलाएँ अलौकिक हैं, वे पंछी अलौकिक हैं, वे मेघ अलौकिक हैं। इस तथ्य का पोषक अन्तःसाक्ष्य ‘प्रकृति की कोऊ नाहीं’ में निहित है। गिने-बँधे प्रकारों में ऐसी रचनाओं का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और सचमुच इनमें आलम्बन-उद्दीपन गिनाया जाना सम्भव नहीं है। जो स्वयं में अपूर्ण है, उसे किसी बाह्य उद्दीपन की आवश्यकता होती है। जो स्वतः पूर्ण है, उसे उसकी क्या आवश्यकता? उद्दीपन कहलानेवाली वस्तुएँ स्वयं उससे जीवन लेंगी। प्रकृति का कवि के शब्दों में यह अलौकिक एवं परम रहस्यमय रूप साहित्यशास्त्र में गिनाई हुई विधाओं के अन्तर्गत कम-से-कम हमारी दृष्टि में तो नहीं आती और हम ऐसे वर्णन को प्रकृति के आलम्बन या उद्दीपन-रूप में वर्गीकृत करने के लिए स्वयं को सर्वथा असमर्थ पाते हैं। सब कुछ कहने के पश्चात् भी सखी उस स्थिति की अवर्णनीयता की ओर सकेत करती हुई कहती है कि ‘मैं कहना चाहती थी कुछ, कह गई कुछ’। यहाँ आलंकारिक विश्लेषण कौन करे?

प्रेम के अनेक अंगों का वर्णन हरिदासजी के यहाँ है। ढूँढनेवालों को उसमें ‘मान’ भी मिल जाता है, परन्तु ‘विरह’ खोजनेवालों को हरिदासजी के द्वार से निराश लौटना पड़ेगा। हमारे द्वारा उदाहृत प्रथम पद्य की आदिम पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार है, परन्तु वह सीधी-सादी उत्प्रेक्षा नहीं है। वहाँ उपमान-द्वय और उपमेय-द्वय में केवल वर्णसाम्य ही नहीं, कुछ और भी है। जोड़ी प्रकट हुई है, परन्तु वे एक और एक दो नहीं हैं, घन-दामिनी हैं। घन से अतिरिक्त दामिनी की सत्ता सम्भव नहीं। अतः, इस उत्प्रेक्षा में स्वयं में

उस जोड़ी के पारस्परिक नित्य ऐक्य को प्रकट करनेवाली जो ध्वनि है, उसपर मन नाच उठता है।

द्वितीय रचना में परस्पर एकटक देखना और अटपटी-सी बातों में उत्तर-प्रत्युत्तरो का बहक-बहका होना अनुभाव हैं और वे इन अलौकिक छवियों के अलौकिक शृंगार का पोषण करते हैं। चतुर्थ रचना में कोकिल-कोकिला, विहंगों के कलरव, मयूरो के उल्लास और मेघ के गर्जन में आलाप, स्वर छिड़ना, नृत्य और मृदंग का साम्य आदि 'साध्यवसाना लक्षणा' द्वारा देखे गये हैं, जहाँ उपमानस्थानीय व्यापारों ने उपमेयस्थानीय व्यापारों को सर्वथा निगीर्ण कर लिया है।

केलि-सम्बन्धी ध्रुवपदों के अतिरिक्त स्वामीजी के जो ध्रुवपद मिलते हैं, वे सिद्धान्त-सम्बन्धी हैं। उनमें जीव की विवशता, ईश-कृपा का महत्त्व, प्रबोध, विनय इत्यादि भाव हैं। एक विशिष्ट पद में जीव और ब्रह्म में जन्य और जनक का सम्बन्ध देखा गया है। पद है :

बन्दे, अख्त्यार भला ।

चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला ॥

न फिर दर-दर पिदर दर न होहु अंधला ।

कहि श्रीहरिदास करता कीया सो हुआ सुमेरु अचल चला ॥^१

प्रस्तुत पद में हरिदासजी की भाषा सर्वथा परिवर्तित है। 'अख्त्यार, बन्दे, दर-दर, पिदर' जैसे फारसी शब्द स्वामीजी की सहज प्रवृत्ति नहीं हैं। 'कीया' और 'हुआ' जैसे खड़ी बोली के क्रियापद भी यहाँ विद्यमान हैं और 'करता कीया' में 'ने' की अनुपस्थिति खड़ी बोली की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देती है।

अन्तिम उदाहरण मुसलमानों अथवा फारसी के पण्डितों के साथ उनके सम्पर्क का परिचायक है और कुछ सधुक्कड़ी प्रवृत्ति का है। इसमें उपदेश की रूक्षता है, कविता की कान्ता-सम्मितता नहीं।

५. भगवन्त :

इनकी अधिक रचनाएँ अभी तक प्राप्त नहीं हैं। परिशिष्ट आ मे १३, १४, १५ और १६ संख्यक इनकी रचनाएँ हैं, जिनमें प्रथम तीन पर पद-शैली का कुछ प्रभाव है। उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक इत्यादि अलंकारों का प्रयोग इन्होंने सफलता के साथ किया है। भाषा में प्रवाह है और जहाँ ये केवल भगवान् के नाम गिनाने में नहीं लगे हैं, वहाँ लालित्य भी है। इनकी रचनाओं के विषय शोभा-वर्णन, प्रेम, अंग-वर्णन और भगवन्महिमा है।

६. तानसेन :

समसामयिक एवं पश्चाद्वर्ती राज्याश्रित ध्रुवपदकारों में ये सर्वश्रेष्ठ हैं और बैजू के योग्य उत्तराधिकारी। इनकी रचनाओं के विषय देवस्तुति, विनय, प्रबोध, पीरों की स्तुति,

प्रताप, कृष्णलीला, गोपी-प्रेम, नायिका-भेद, अनाहत नाद, अलख, ऋतु-वर्णन ऐतिहासिक घटनाएँ तथा संगीत हैं। अपने युग में प्रवर्तित ब्रजभाषा-काव्य की परिधि में आनेवाले प्रायः प्रत्येक विषय का सफल स्पर्श इन्होंने किया है।

‘मिश्रबन्धुविनोद’ में तानसेन-कृत तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। उनके नाम ‘संगीतसार’, ‘रागमाला’ और ‘श्रीगणेशस्तोत्र’ हैं। उनमें प्रथम दो उपलब्ध हैं और उनका विषय संगीतशास्त्र है। ‘श्रीगणेशस्तोत्र’ अनुपलब्ध है।

जहाँगीर के अनुसार, तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की थी। इनमें से अधिकांश की खोज अबतक नहीं हुई है। डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने तानसेन-कृत १८२ ध्रुवपद संगृहीत किये हैं। श्रीनर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने ‘कवि तानसेन और उनका काव्य’ में इनके २४६ ध्रुवपद संकलित किये हैं। ‘हिन्दी के संगीतज्ञ कवि और उनकी रचनाएँ’ नामक एक दूसरे संग्रह में तानसेन-कृत कहकर २४७ ध्रुवपद दिये गये हैं और श्रीप्रभुदयाल मीतल ने ‘संगीत-सम्राट् तानसेन’ में २८८ ध्रुवपद तानसेन-कृत समझकर संगृहीत किये हैं। इन चारों संग्रहों का आधार प्रधानतया ‘रागकल्पद्रुम’ है, जिसके दूसरे संस्करण का पाठ प्रयत्नपूर्वक भ्रष्ट किया गया है।

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट ‘अ’ में अकबर की मुद्रा से अंकित तानसेन-कृत ६१ और परिशिष्ट ‘आ’ में तानसेन की मुद्रा से अंकित ५८ ध्रुवपद ‘रागमाला’ के आधार पर, संगृहीत किये गये हैं। इनमें अनेक ऐसे हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं और अवशिष्ट ऐसे हैं कि जिनके पाठ का ‘स्वच्छन्द’ सम्पादन किसी ने नहीं किया है, अतएव इन सभी ध्रुवपदों का बहुत महत्त्व है।

अकबर के साथ स्थायी एवं अस्थायी रूप में हिन्दी के अनेक कवि सम्पृक्त रहे थे। ‘करनेश’, ‘दुरसाजी’, ‘होलराय’, ‘ब्रह्मभट्ट’, ‘कुम्भनदास’, ‘सूरदास’, ‘व्यास’, ‘चन्द्रभान’, ‘चतुर्भुजदास ब्राह्मण’, ‘राजा आसकरण’, ‘पृथ्वीराज’, ‘सूरदास मदनमोहन’, ‘मनोहर’, ‘टोडरमल’, ‘नरहरि’, ‘वीरबल’, ‘गंग’ और ‘रहीम’ ऐसे ही कवियों में हैं। अकबरी दरबार में अपने जीवन के अन्तिम २८-२९ वर्ष बितानेवाले तानसेन का परिचय अथवा निकट सम्बन्ध इन कवियों के साथ अवश्य रहा होगा। इन सज्जनों की कृतियों का आनन्द लेने और उन्हें अपनी कृतियों से आनन्दित करने की पूर्ण क्षमता तानसेन में विद्यमान थी। जीवन की स्वच्छ अनुभूतियों के साथ, समर्थ कवि की सूक्ष्म दृष्टि और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता के साथ-साथ कल्पना की भरपूर उड़ान हमें तानसेन की रचनाओं में वहाँ मिलती है, जहाँ उन्होंने स्वान्तःसुखाय लिखा है।

अकबर के महान् ऐश्वर्य का उन्होंने दर्शन ही नहीं किया था, वे उसके अत्यन्त निकट रहकर उपभोग में भी एक प्रकार से इस गुणग्राही और कला-मर्मज्ञ आश्रयदाता के सखा रहे थे, इसीलिए उनमें वह दृष्टि थी, जो एक निष्णात ध्रुवपदकार में होनी चाहिए।

‘ध्रुवपदों के विषय’ नामक प्रकरण में उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ दी जा चुकी हैं जिनमें ‘कृष्ण-जलद’ का साग-रूपक उनकी प्रतिभा का प्रगाढ़ परिचय देता है। जिस

स्वाभाविकता के साथ उन्होंने वहाँ साग रूपक का निर्वाह किया है, वह कुशलता उन समर्थ कवियों में ही मिलती है, जिनके समक्ष अलंकार हाथ बाँधे खड़े रहते हैं।

उस प्रकरण में तानसेन द्वारा नायिका के शृंगारों का वर्णन हुआ है, जो हमारे समक्ष एक ऐश्वर्यशालिनी नायिका का चित्र खड़ा कर देता है।

वहाँ नयन-वर्णन से सम्बद्ध एक ध्रुवपद भी दिया जा चुका है, जहाँ तानसेन ने नयनों और उसके भावों में सहज सुन्दर एवं मोहक उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। यहाँ हम उनके काव्य-सौष्ठव का परिचय देने के लिए कुछ अन्य ध्रुवपद प्रस्तुत कर रहे हैं।

नायिका के मद-भरे नयन झूम-झूम आते हैं। छूटी हुई अलकें श्याम घन जैसी प्रतीत होती हैं और झपक-झपककर उधड़ जानेवाले नयन तारे के समान प्रतीत होते हैं। अरुण-वर्ण नैन, उनमें लाल-लाल डोरे और साथ-ही-साथ उन नयनों में मद की लहर देखकर तानसेन इस ठवि पर वारि-तरंगों को न्योछावर कर रहे हैं। ये नयन अंजन के बिना ही काले हैं। जो इन्हे देखता है, वह सदा छका ही रहता है। ध्रुवपद निम्नांकित है :

झूमि-झूमि आवत नैनां भारे तिहारे ।

विथुरी अलकें श्याम घन सीं लागत झपकि-झपकि उधरि जात मेरें जान तारे ॥

अरुण बरन नैनां तामें लाल लाल डोरे तापर यह मौज, वारि-वारि डारे ।

तानसैनि कौ प्रभु सदाई छके रहत, कोकिला की धुनि मोहि बिनै अंजन कारे ॥^१

यह उक्ति वस्तु-व्यंजना का सुन्दर उदाहरण है। नयनों का विशेषण 'भारे' और व्यापार 'झूमि-झूमि आवत' इस तथ्य की स्पष्ट व्यंजना कर रहे हैं कि इस सौभाग्य-शालिनी स्वाधीनपतिका को इसके पति ने रात-भर सोने नहीं दिया है। बिखरी हुई अलकों को श्याम घटा कहना तो कोई विशेष बात नहीं है, परन्तु उनमें छिपते नेत्रों में मेघखण्ड-विचुम्बित तारकों की उत्प्रेक्षा करना तानसेन की अपनी विशेषता है, जो उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती है। नयन अरुण-वर्ण है, उनमें लाल-लाल डोरे हैं, यहाँ तक भी कोई विशेष बात नहीं, परन्तु 'मौज' शब्द का साभिप्राय प्रयोग तरंग से साम्य स्थापित करने के लिए ही है। संयोग-शृंगार के केवल एक अनुभाव नयनों के भारी होने और झूमने के आधार पर तानसेन ने एक रमणीय चित्र थोड़े-से शब्दों में हमारे सामने उपस्थित कर दिया है।

स्वाधीनपतिका का एक और उदाहरण प्रस्तुत है :

लोचन जु मिलि करि कमल उनींदी निस अलकें विथुरि रही आनन अंक पर ।

ठौर-ठौर आभूषन चल कोंचल विथुरे बार अमल सुफल फल कुभ दरसत कंचुकी तर ।

रसन बसन देषौ री है री लटपटे री तन-तन सोहै री अनोषी छवि पीअ कमलनि पर ।

साहि अकबर पीअ सौ रितु मांनो सब सखीअन में तू ही वर ॥^२

१. परिशिष्ट आ, ५१ ।

२. परिशिष्ट आ, ७४ ।

‘ठौर-ठौर आभूषण चल कोचल’ और ‘सुफल फल कुंभ’ में जो सूक्ष्म व्यञ्जना हैं, आलोचना में उसे अभिधा बना डालना सहृदयता नहीं, उसके विपरीत है। मर्यादा की रक्षा करते हुए ‘सुफल फल’ में जो एक लम्बी कहानी कह दी गई है, वह तानसेन की अपनी प्रतिभा का परिणाम है। ‘पीअ कमलनि’ में अलंकार ढूँढनेवालों को अपनी अतिशयोक्ति भी मिल जायगी।

प्रतीत होता है कि तानसेन अवश्य किसी के नयन-बाणों से विद्ध थे, इसीलिए नयन-वर्णन में उनका मन झूम-झूम उठता है। मानिनी की तिरछी चितवन का वर्णन करते हुए तानसेन कहते हैं :

त्रिवेणी उलटि बहीं मानों तिरछी चितवनि श्रीआ पीआ तन देखौ ।
त्रिवेणी गंगा सलिता कों संग लीयें सागर सों कछु अनमन देखौ ॥
कैधों कहू पतितन घेरी कैधों कहूँ पाप मोछ कैधों बौहौराइवे के ठनगन पेखौ ।
तानसेनि कौ प्रभु मोहिनी सी पढ़ि डारत कैधों कहूँ जागे संकर मुनि देखौ ॥३

‘सेत, स्याम, रतनार’ आँखों को त्रिवेणी कह देना कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु स्वकीया मानिनी की तिरछी चितवन के रूप में उस त्रिवेणी को उलटा बहा देना एक अनूठी उत्प्रेक्षा है। नायिका स्वकीया है, पतिप्राणा है, उसके पति को सागर बताकर त्रिवेणी के अवरोध में जिस प्रकार औचित्य दिखाया है, उसकी प्रशंसा के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। माना कि त्रिवेणी सागरोन्मुखी है, परन्तु यदि पतित उसे घेर ले, तो उसे एक क्षण के लिए ठहरना होगा। यदि कुछ पापी मुक्त करने से रह गये हों, तो उनके लिए पीछे भी लौटना होगा। सन्देहालंकार के द्वारा त्रिवेणी और नायिका के व्यापारों में सादृश्य प्रतिष्ठित करके तानसेन ने पातिव्रत्य की मर्यादा को जिस प्रकार से सुरक्षित रखा है, वह प्रकार अन्य कवियों में ढूँढना पड़ेगा। यदि राजा रामचन्द्र ने ऐसी उक्तियों पर एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दी थी, तो उचित ही किया था।

अनेक अभियानों में तानसेन भी अकबर के साथ रहे थे, वे केवल गायक-वादक नहीं थे। युद्धक्षेत्र का उन्होंने अनेक बार प्रत्यक्ष दर्शन किया था। वर्षा ऋतु में आकुल विरहिणी के मुख से अपह्नुति अलंकार द्वारा मेघों और कामदेव की सेनाओं में जो साम्य प्रस्तुत किया है, वह केवल गाने-बजानेवालों के बस की बात नहीं है। विरहिणी की दृष्टि में वर्षा के मेघ ‘बादल’ नहीं हैं, उस बेचारी पर आक्रमण करने के लिए मन्मथ की सेनाएँ हैं। बिजली उनका खड्ग है, बूँदें बाण-वर्षा हैं और गर्जन दमामों की वीरोत्तेजक ध्वनि है। चातक इस सेना का जासूस है, जो उस बेचारी को ढूँढ लाया है, दादुर नफीरी बजा रहे हैं। नाच-नाचकर मोर शहनाइयों जैसी आकृति बनाये हुए हैं। वह बेचारी इस सेना से अपनी रक्षा भला किस प्रकार करे? तानसेन के शब्दों में इस विरहिणी की स्थिति इस प्रकार है :

घन न होइ री माई जो आई मोपर मनमथ की फौजें धावन ।
 दामिनीं षर्ग लीयें बूंद वान वरसत गरजन बीर रस दमांमौ बजावन ॥
 जासूस चात्रग लायौ हो डेर मोहि माहि अकेली सप्त सुरन दावुर नफीरी सुनावन ।
 सैहैनाइनि मोर करत हैं नाचि नाचि जे सब तानसैनि के प्रभु के आंगे आवत
 करन ॥^१

उपर्युक्त क्षेत्र से हटकर तानसेन ने स्वान्तःसुखाय जो रचनाएँ की हैं, उनमें भी तानसेन तन्मय हो गये हैं। कृष्ण के विरह में आकुल गौश्री का स्वाभाविक वर्णन इस रचना में है :

कान तेरे बिन देखे गईयां काजर पीअरी धौरी धुंमरी दूबरी ।
 और ग्वाल पैहैचानत नाहीं, अधरनि दसनि तिरन चरत जह पाप लीयौ है कूबरी ।
 ऐकनि तजे पान ऐकनि तजे प्रांन ऐक रहौं सूपि सूपि री ।
 तानसैनि को प्रभु वेगि आंमन कीजै कब दैहौ हेरी ऊबरी ।^२

अत्यन्त सरल भाषा में गोपाल की विरहिणी गौश्री का यह चित्र स्वभावोक्ति का सुन्दर उदाहरण है। गौश्री के वियोग को तो वियोग-शृंगार कोई नहीं कहेगा, परन्तु उनकी 'वकालत' करके गोपियाँ बात अपनी कह रही हैं। 'जह पाप लीयौ है कूबरी' में स्थित 'ईर्ष्या' संचारी भाव के रूप में वस्तुस्थिति स्पष्ट किये दे रही है।

कविता के विषय में तानसेन के दृष्टिकोण पर एक अन्तःसाक्ष्य प्रस्तुत करके हम सन्तोष करेंगे। किसी मूर्ख रचनाकार का वर्णन करते हुए तानसेन कहते हैं :

जौ धुरपद नां सुध अछिरनि उक्त जुक्त न संगति राग बनावै ।
 जे अर्यांन गुनीमन को पचावे भिम सें निगुइनि को कीयों गावै ॥
 नौरस राग जानें नअ लोकमध वाद ही कवि कहावै ।
 साहि अकबर कीसों मोहितों दुष और हांसी याहीते आवति अरथ पूछे ते कवि
 नांहीं करि आवत ॥^३

तानसेन की आडम्बरहीन मनोरम शैली और प्रसादगुणयुक्त भाषा का दर्शन प्रस्तुत उदाहरणों से भली भाँति होता है। विदेशी शब्दों का प्रयोग इनमें नहीं जैसा हुआ है, परन्तु जिन ध्रुवपदों का विषय इस्लाम, पीर इत्यादि की प्रशंसा है, उनमें फारसी और अरबी के शब्दों का अपभ्रंश-रूप भली भाँति दिखाई देता है। पराक्रम और प्रशंसा जिन ध्रुवपदों का विषय है, उनमें कही-कही ओज गुण के दर्शन होते हैं।

दशहरा और ईद जैसे त्योहार भी इनके वर्णन का विषय बने हैं और कुछ ध्रुवपद अकबर के ब्रजमण्डल में आगमन अथवा इलाहाबाद (इलाहाबाद के दुर्ग) से सम्बद्ध हैं। इनकी रचनाओं से उस समय के शृंगार की शैली का भी पता चलता है।

१. परिशिष्ट आ, ६४ ।

२. परिशिष्ट आ, ४७ ।

३. परिशिष्ट आ, ५१ ।

७. बाबा रामदास :

इनका परिचय यथास्थान दिया जा चुका है । इनकी रचनाएँ अनुपलब्ध हैं ।

८. व्यास (हरीराम)

ये सत्कवि थे । इनकी अधिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं । अकबर की प्रशंसा में रचित इनके ध्रुवपद परिशिष्ट आ (सं १०४, १०५) में सकलित हैं । अपनी एक रचना में इन्होंने अकबर के पुत्र (जहाँगीर) के टीके का वर्णन करते हुए गगन-थार का सुन्दर सांग-रूपक बाँधा है । इनकी भाषा में प्रवाह है और वह प्रसादगुणयुक्त है । ये रचनाएँ सिद्ध करती हैं कि इनके अन्य ध्रुवपद भी प्रयत्न किये जाने पर सम्भवतः मिल सकते हैं ।

९. चंचलसस :

परिशिष्ट आ में इनकी रचनाएँ दी गई हैं, जिनके विषय नाद-समुद्र, मेघ, नायिका-भेद और होती है । काव्य के भावपक्ष पर इनकी दृष्टि गई है । भाषा सरल और स्वाभाविक है, जो कि ध्रुवपदकारों की विशेषता है; क्योंकि इन रचनाओं के रस का आस्वाद अपने युग के श्रोतृ-सामान्य को कराना इनका तात्पर्य था । ध्रुवपदों के वर्ण्य विषयों की चर्चा करते समय इनके कुछ ध्रुवपद प्रस्तुत किये जा चुके हैं । अनुरक्ता नायिका का चित्रण करनेवाला इनका एक ध्रुवपद प्रस्तुत है :

बुरि बुरि देषत मुरै मुरि चलत है री सु कौन कारन मानों पीआ को अंको भरत
पल पल पल कलनां ।

मोसी चातुर आतुर मिलों चाहत दरस परस करि हों रीझे तुम रीझे निरषत फिरि
फिरि फिर चल ब्रग मलिन ॥

अब जानीरितु मानीअ मनमांनी अंसी कंधों नंद वंहैरत फिरत चित्त कल ल्यान ।
चंचल ससि प्रभु मोहन के अंग सग देखिबे को जे अचरज जे कटाछि बस्तर निर्मल
ते भए मलिन ॥^१

प्रियतम की प्रतीक्षा में आकुल एक अन्य कामिनी अपने मान करने पर पछता रही है और प्रियतम के दर्शन के लिए उत्सुक है । यौवन-गर्व के कारण प्रिय के मनाने पर भी उसने 'अनबोला' साध लिया है । अपनी इस निष्ठुरता की स्मृति उसे इस समय रह-रहकर सता रही है । उसे विरह का प्रथम अनुभव है और वह विरह की 'सार' नहीं जानती । उत्सुकता, स्मृति, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव यहाँ वियोग-शृंगार का स्वाभाविक पोषण कर रहे हैं । विरहिणी की मानसिक अवस्था का सीधा-सादा चित्र यहाँ कवि ने प्रस्तुत किया है और यही इस रचना का सौन्दर्य है ।

री हों तौ मान करि पछितानी माई वौहौरि आवें कब मिलेंगे री मनभांमन ।

वे जो मनावत हों अनबोली ह्वै रही जोबन अति गर्व कहा कीजें लागी बिरहा
तनतावन ।

हों तौ कबहू न भई न्यारी अब तौ में जानीं विछरन की सार ।
 त्यों त्यों सुधि आवत पीअ की त्यों त्यों लागी वृष पावन ।
 मेरो तो जनम जीतव तबही गिनो भाई जब मिसैं चंचल ससि प्रभु आवेंगे मेरे
 प्रांन जिषावन ।^१

सुरतान्ता का एक चित्र चंचलसस इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :

उरझे फूल वशीले वारन भानों घटा मधि ताराइन अंसे नीके मो मन मुक्तिमाल
 बगपांति तरषा सी कोंधन सुरति अंत लट छूटी स्यामघन जहू अचरज देखौ सषी अग
 मीन कमलवनि रहे एक ठौर मो मन सोभन चंचलससि प्रभु के अंग संग राषी री मुअ पर
 तुअ वनि रही ईधनिधनि ।^२

वेणी-मोचन के परिणाम-स्वरूप अलकों बिखर गई हैं और जूड़े के फूल सुगन्धित केशों में इधर-उधर उलझकर रह गये हैं । इस स्थिति को देखकर कवि मेघशावकों में से चमकनेवाले तारों की उत्प्रेक्षा करता है । मुक्तमाल में उसे बकपंक्ति का सादृश्य दिखाई देता है । इतना कहकर ही कवि को सन्तोष नहीं होता, छूटी हुई अलकों से झलकती हुई वह माला घन के अंक में चमकती हुई चंचला-सी प्रतीत होती है । उक्ति का चरमोत्कर्ष तीसरी पंक्ति में होता है, जहाँ अतिशयोक्ति के द्वारा मृग और मीन के समान चंचल नेत्रों को रतान्त के परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली अचंचलता के कारण कमल बताया गया है । मर्यादा का रक्षण करने के लिए यहाँ 'साध्यवसाना लक्षणा' का आश्रय लिया गया है । ऐसे काव्य की शोभा अलकारों से नहीं होती, अपितु अलंकार स्वयं ऐसे काव्य के कारण शोभित होते हैं ।

१०. सुरज्ञान खाँ :

इनकी रचनाएँ परिशिष्ट आ में हैं, जिनका विषय इस्लाम, संगीत और नायिका-भेद है । रचना साधारण कोटि की है । इस्लाम-सम्बन्धी ध्रुवपदों में मुसलमानों का पूरा 'कलमा' विद्यमान है । अरबी एवं फारसी के शब्दों का प्रयोग संस्कृत-शब्दों के साथ हुआ है और दोनों ही भाषाओं के शब्द तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं । संगीत-सम्बन्धी रचनाओं में एक ध्रुवपद का शीर्षक 'नाद-दल' है, जिसमें संगीत के उपकरणों पर दल का आरोप किया गया है, जो परिशिष्ट आ (सं० ८८) में संगृहीत है । स्वाधीनपतिका का एक उदाहरण परिशिष्ट आ ८६ है, जो साधारण कोटि का है । इन रचनाओं में फारसी और अरबी शब्द नहीं हैं ।

१. परिशिष्ट आ, ८४ ।

२. परिशिष्ट आ, ८२ ।

११. ज्ञान गुरु :

इनकी कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम', भाग प्रथम में हैं, जिनका विषय संगीत है। एक रचना में सरस्वती का ध्यान करने के लिए ये तानसेन को उपदेश दे रहे हैं। रचना इस प्रकार है :

पार नहीं पाइये गुण समुद्र अथाह कौन विधि तरीअं ।
कहा करिअं कवन भांति जानीअं मन ज्ञान नेत्रन असुज लागं ।
सुरतान ताल किस तरह घट में आनीयै ।
जब उठत है ध्यान अति प्राण डरौ जाय चरण धरौ धाय-धाय कंसे गरदानीयै ।
कहै गुरु ज्ञान तानसेन, सुरसुती ध्यान धर अगस्तनो अचपानीयै ।^१

सम्पादको की कृपा से 'गुन', 'प्राण', 'चरण' के 'नकार' का रूप 'णकार' ने ले लिया है। खड़ी बोली का 'किस तरह' न जाने किस तरह आ घुसा है और 'अगस्तनो अचपानीयै' सम्भवतः 'अगस्त ज्यौ अचमानीअं' है।

१२. मदनराय ठारी :

इनकी प्राप्त रचनाओं का विषय सरस्वती-कृपा, अलख-वर्णन, अल्लाह का स्मरण तथा नाद है। एक रचना में इन्होंने गर्वोक्तिपूर्वक कहा है कि मदनराय को^२ सरस्वती का ऐसा प्रसाद मिला है कि वह 'निकाई' के अनेक अंग सुनाता है। एक अन्य रचना में यह 'आनन्द सुजान' को सम्बोधित कर रहे हैं, जो सम्भवतः जहाँगीरी दरबार के 'आनन्द खाँ' है।^३ इनकी भाषा में कही-कही 'अल्ला' और 'साहब' जैसे अरबी शब्द आते हैं। भाषा मुहावरेदार है। इनकी प्राप्त रचनाओं में कोई लालित्य नहीं है। अलख का वर्णन इन्होंने तन में मन्दिर का आरोप करते हुए इस प्रकार किया है :

काँम नीँम (नीँव) धरौ हो तापर अग्न माटी पांती बयारि मिलि कियौ गारौ ।
अस्त पषाँन बनाइ धरे विचित्र रजरो सन सजि कै प्रकत पचीस लगाइ कीनों
मंदिर भारौ ॥

आँख करीअ झरोखा पलक पट और धरे कुच कलस नीकी बात धरिबे को कीनों
हो विलुआरौ ।

मदन कौ साहिब अलख लख्यौ न जाइ सो रसना के बोलन में उनारौ ।^४

सांग-रूपक का निर्वाह इस ध्रुवपद में सफलतापूर्वक हुआ है। जबतक इनकी अन्य रचनाएँ न प्राप्त हों, काव्य की दृष्टि से इनके स्थान का निर्धारण करना कठिन है।

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० १३२ ।

२. परिशिष्ट आ, ६३ ।

३. परिशिष्ट आ, ६६ ।

४. परिशिष्ट आ, ६४ ।

१३. धौधू :

कीर्तन-संग्रहों में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। मानव-हृदय के व्यापारों पर इनकी दृष्टि पहुँची है और विषय के चित्रण की भी क्षमता इनमें भली भाँति है। गुप्तानायिका का सफल चित्रण इन्होंने निम्नांकित रचना में किया है। नायिका 'गुप्ता' होते हुए भी 'प्रगल्भा' है :

अरे कान्हू धीरी रे धीरी रे ।
हाथ लकुटिया काँधे कमरिया निडर निडर आवै नीरी ॥
जानत हौं कुल गोत बड़े हौं काहे कौं होत रातौ पीरी ।
धौधू के प्रभु तुम वीहौनाइक आषरि जात अहीरी ॥^१

ध्रुवपद-शैली की निम्नांकित रचना में प्रकृति का वर्णन संयोग-शृंगार के उद्दीपन के रूप में हुआ है। रचना बँधी-बँधाई परिपाटी की है :

आली री गरजत घन रिमि झिमि झनंकार ता समये प्यारे कीनौ आंमन ।
चात्रग घन मोर सोर तैसोई तँसी तिरछी तरेर बूँदिनि परसत सांमन ॥
कोकला रितु मानी प्रान प्यारे सुष दैनी बोलत इअत बानी हर्ष बढ़ावन ।
धौधू के प्रभु तुम बहुनाइक पै नहीं मानत दंपति प्रीति बाढी लीगे (तागे) री अति
सुष पावन ॥^२

भाषा का सारल्य इनकी रचनाओं में पाया जाता है और ध्रुवपद-शैली की ऋजुता भी उसमें है। यहाँ प्रथम ध्रुवपद में 'आषरि जात अहीरी' जैसे वाक्य से भाषा में दैनिक बोलचाल की भंगिमा का प्रवाह उत्पन्न हो गया है।

१४. चरजू :

इनका परिचय यथास्थान दिया गया है। इनकी रचनाएँ अभी तक अनुपलब्ध हैं। .

१५. रूपमती .

इस प्रसिद्ध सुन्दरी की केवल एक रचना का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध होता है, जिसमें विरहिणी का चित्रण है। वह एक रचना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि इस एकमात्र ध्रुवपद-निर्मात्री में अनुभूति की गहराई है। भाषा सरल, सुन्दर, प्रवाहमयी एवं प्रसादगुणयुक्त है। रचना निम्नांकित है :

विछरि दुष दीनों हो प्रान मेरे आवत कहँ न लाज ।
जब जु लालन संग निकसि न गए अब धौं रहे कौन काज ॥
पापी प्रान रहत घट भीतर करे ही चाहत सुष राज ।
रूपमती पीअ हम सी न दुषीआ कहा धौं बहादुर बाज ॥^३

१. परिशिष्ट आ, पृ० ६१ ।

२. परिशिष्ट आ, ६३ ।

३. परिशिष्ट अ, २३ ।

यह सम्पूर्ण उक्ति वियोग-शृंगार का अनुभव है। निर्वेद और ग्लानि जैसे संचारी भाव विप्रलम्भ को परिपुष्ट कर रहे हैं। रचना का ऐतिहासिक महत्त्व है। अकबर से संघर्ष मोल लेने के कारण बाजबहादुर को इधर-उधर भटकना पड़ा था। सम्भवतः, बाजबहादुर की पतिप्राणा प्रेयसी ने अपने हृदय की वास्तविक स्थिति का चित्रण पूर्वोक्त रचना में किया है।

१६. छाछ :

इनकी एकमात्र रचना प्राप्त है, जिसमें अनेक नायिकाओं तथा बहुनायक अकबर की चर्चा है। मुगल-अन्तःपुरों में गायिकाओं को विशेष उपाधियाँ मिला करती थी। उनमें किसी नायिका की उपाधि 'मृगनयनी' है, तो किसी की 'पिकबैनी'। मनुविक के अनुसार, ये हिन्दू-घरों से भगाई हुई लड़कियाँ होती थी। रचना निम्नांकित है :

सोई भली है री जाकों साहि अकबर देहै बड़ाई ।

ऐक तो विचित्र नारी प्रउडा (प्रौढा) अंग अंगली ताई की विद्या अंतिम ताई
की निकाई ।

ऐक तो अंगनैनी ऐक तो पिकबैनी ऐक तो आनंददैनी सब सुषदाई ।

ताई कौ भाणि सुहाग ताही कौ लाल जलाल तुम लाड़ लड़ाई ॥^१

१७. गंग :

'तुलसी गंग दुआँ भये, सुकविन के सरदार' में जिन गंग कवि की चर्चा है, उनका एक कवित्त बड़हंस राग और चौताला ताल में गेय बताकर ध्रुवपदों में संगृहीत किया गया है। फकीरुल्लाह ने भी अपने युग के कुछ गायकों को कवित्त गाने में दक्ष लिखा है। रामपुर-दरबार के कुछ ध्रुवपद-गायक भी कवित्तों को ध्रुवपद-शैली में गाते थे। स्तुति-वाचक जातियों में एक ही व्यक्ति का कवि के साथ-साथ गायक होना आश्चर्य की बात नहीं। एक विशिष्ट प्रवृत्ति की ओर संकेत करने के लिए हमने गंग का उल्लेख इस प्रकरण में किया है। 'रागमाला' में संगृहीत छन्द का विषय भिखारियों के कार्य का औचित्य सिद्ध करता है। प्रतीत होता है कि इस मस्त और दूर की कौड़ी लानेवाले कवि को किसी ने विरुदावली बखाननेवाली जातियों का प्रसंग उठाकर छेड़ दिया है और परिणामस्वरूप इन्होंने बड़े-बड़ों को अपनी विरादरी में सम्मिलित कर लिया है।

कन्यादान लेत कर ओडत हों छत्रपती,

हमें दाँन गज दाँन भुमिदाँन भारी है ।

राउ माँगै राजनि सों, राजा उमराउनि पै,

षाँन सुलिताँननि पै मागिबो का गारी है ॥

माँगिबे के काजँ कवि गंग कहँ बलि द्वार,

ठाढ़ौ कर ओडै तीनि लोक को विहारी है ।

सम्पदा के काजें कहौ कोकों न पसारै हाथ,
जी कौ जैसो दाता तीको तैसोई भिखारी है ॥^१

१८. हरिदास डागुर :

इनकी रचनाओं के विषय शिवस्तुति, त्रिवेणी, ज्ञान-प्रशंसा, कृष्णलीला तथा संगीत है। रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी की अनन्यता से अपरिचित व्यक्ति हरिदास डागुर की रचनाएँ स्वामी हरिदासजी की रचनाओं के साथ नत्थी करते चले आये हैं, परन्तु इन दोनों व्यक्तित्वों में कोई तुलना नहीं है। भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से इनकी रचनाओं में बहुत बड़ा अन्तर है।

हरिदास डागुर संगीतजीवी ध्रुवपदकारों की परम्परा के व्यक्ति हैं और इनका स्मरण जगन्नाथ कविराय ने सम्मानपूर्वक किया है। प्राप्त रचनाओं के आधार पर ये अच्छे ध्रुवपदकार सिद्ध होते हैं। 'बहुनायक' का वर्णन करते हुए इनके एक ध्रुवपद में कहा गया है :

लाल कहाँ आज कौन कौन सौं रितु भांनि कासों कासों कीनी प्रीति कासों नेह
वाढ़ौ है वोहौरमनीरमन ।

कौन कौन धौं मनाई कौन कौन धौं रिसाई, कासों कासों कीनी भामरि को है
भागिमंती कांम हू के कांम डोलत हौ भसन भमन ।

तुम वोहौनाइक ऐकनि सौं हसत वोलत डोलत ऐकनि रिझावत ऐकनि षिजावत ऐकनि
सौं घातें मिलवत ता त्रीअ के कठिन जो तुम्हें ही देखे ही अनदेखे वीकल होत घर
घर के गमन ।

हरदास डागुर के प्रभु या प्यारी सौ अवधि वदि जात जे होत वोल पवन ।^२

दूती के द्वारा बहुनायक के प्रति उपालम्भ का यह अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। जिस शैली से दूती प्रश्न कर रही है, उसमें नारी-सुलभ व्यंग्य स्वाभाविक रूप में चित्रित हुआ है। 'कांम हू के कांम' कहकर नायक के सौन्दर्य और कमनीयता को अत्यन्त संक्षेप में पूर्णतया व्यंजित कर दिया गया है। किसी को वचन देना, किसी से प्रीति करना, किसी को मनाना, किसी को रिसाना और किसी 'भागिमंती' के बन्धन में बँध जाना बहुप्रेयसीक कामियों का स्वभाव है। उपालम्भ में इसका चित्रण भली भाँति हुआ है और यह सब कुछ किसी एक ऐसी सुन्दरी का स्मरण दिलाने के लिए है, जो विचारी 'कांम हू के कांम' नायक का दर्शन न करने के कारण विकल हो रही है, एक-एक घड़ी जिसके लिए कठिना-पूर्वक व्यतीत हो रही है और जिसके प्रियतम अवधि देकर भी किसी के साथ हँसते-बोलते डोल रहे हैं और किसी के साथ घाते कर रहे हैं।

१. रागमाला, पृ० ८५ आ ।

२. परिशिष्ट आ, १०० ।

रचना में प्रवाह है। भाषा प्रसादमयी और स्वाभाविक है, इसीलिए पाठक के मन में एक चित्र खड़ा कर देती है।

एक अन्य रचना में उस ग्वालिन का वर्णन है, जिसे किसी से अनुराग हो गया है और भाँति-भाँति के बहाने करके वह पनघट पर आती ही रहती है। सचारी भावों के द्वारा शृंगार का पोषण परकीया के इस रूप में भली भाँति हुआ है और उसके व्यापारों का चित्रण कवि ने सफलतापूर्वक इन शब्दों में किया है :

भरि भरि धरि धरि आवत गागरि नागरि नांरि तू कौन के रस, मिस करि ।

थोरे दिननि तू ऐक ही बेर हरी पनीआं भरन, आज कईअौ बेर आई गई असे

कहा भअै नंद के हरि ॥

जौ तू सास नंद की कान न करिहै, तौ तू अपने कुलहि लजावै करि ।

मोहि दोष हरिदास डागुर के स्वामी नैन प्रांन जुगऐ डरि ॥३

हरिदास डागुर ने संगीत और उससे सम्बद्ध परिभाषाओं को लेकर उनमें एक दुर्ग का रूपक बाँधा है^१ तथा एक अन्य रचना में संगीत उन्हें एक सैन्य के रूप में दिखाई दिया है।^२ दोनों रूपक अत्यन्त सुन्दर हैं। हरिदास डागुर के विषय में उनकी प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी दृष्टि भावपक्ष और कलापक्ष पर समान रूप से पड़ती थी और ये ध्रुवपद-शैली के समर्थ कवि थे।

१६. तानतरंग :

इनकी रचना का विषय कृष्णलीला एवं संगीत है। अपने पिता तानसेन का वास्तविक उत्तराधिकारी इन्हें कहा जा सकता है। ध्रुवपद-शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रौढ़ कही जा सकती हैं, परन्तु अभी तक अधिक परिमाण में प्राप्त नहीं हुई हैं। इनकी भाषा में सारल्य एवं प्रवाह है और वर्ण्य विषय को मूर्त रूप देने में ये अत्यन्त कुशल हैं। इनकी निम्नांकित रचना में पनिहारिन सुन्दरी का चित्र है, जिसमें अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक रूप में स्वतः आ गये हैं :

चुनरीआरीं प्यारी पचरंग पैहरै सु पनीआ गगरीआ भरै आवत और दोउ हाथ
ग्रीवानि धरै ।

गोरे भुंजनि में गाढे वश फूनि दड़बनि मैं स्याम चुरीं, हथेरिनि नौहिनि मैहवी
गैहैरौई रंग करै ।

उसासनि बेसरि दधिसुत डोलत ता मध मुष प्रसिधि, भौहैं ताने अघर दसन
दंपति सो काननि वीरै गरै मोतिनि लरै ।

१. परिशिष्ट आ, १०१ ।

२. परिशिष्ट आ, १०२ ।

३. परिशिष्ट आ, १०३ ।

कुच उतंग मतंग से वैषीअत वनीताजनौरी सु चोषे कुलेल भरै ।

जे हरि जोति सूरज सौं होड़ परी आगै बिछोआ वाजने तिनि मध लाल गुधाअं
लगाअं महावर पगनि तरै।

तानतरंग प्रभु कौ मन मोहत गति सी दिषावत सो मुसिक्याइ बाल हरे ॥^१

इनका एक अन्य ध्रुवपद और प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे कोई ग्वालिन प्रतिदिन दान माँगनेवाले कृष्ण पर अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे झुँझला रही है। भाषा अत्यन्त सरल, प्रसादगुणयुक्त और मुहावरेदार है। कन्हैया के छल-बल और कौशल को वह भली भाँति पहचानती है और उसे प्रतिदिन की इस छेड़छाड़ पर खीझ है। यह 'खीझ' वस्तुतः 'रीझ' का एक बड़ा ही सुन्दर रूप प्रकट करती है। यह उपालम्भ नहीं है, अपितु ग्वालिन का वह सौभाग्य है, जिसपर वह गर्वित है और सचमुच उसे यह छेड़छाड़ अत्यन्त प्रिय है। रचना इस प्रकार है :

सूधेई मागि लैहो दान ।

हम पर जाति को रहों न नातौ,

मन मिली बातें काहे कों बनावत राषी जू अपनो ग्यान ॥

अँसी छल बल की वतीआ काहे कों करत हो जू,

जैसी न वैषी सुनी कहूँ कान ।

'तान तरंग' प्रभु अपने ही गों की करत,

मानत न काहू की आन ॥^२

२० सूरदास :

अकबरी दरबार के इस संगीतजीवी आनुवंशिक ध्रुवपदकार की कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' में हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से ये रचनाएँ अच्छी हैं। परम्परा के अनुसार, इन्होंने अपनी कृतियों में नायिकाओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं। खण्डिता का एक चित्र प्रस्तुत है, जिसमे वाक्यों के खण्ड अनुप्रास-युक्त है। व्यर्थ शब्दों का कही पता नहीं है और निरन्तर एक प्रवाह बना हुआ है :

मैं जानी जहाँ रित मानि आये हो लालन,

जब चिरियां चुहचुहानी ।

ऐसे पद अंखियां रसमसानी और पाग लटपटानी,

भाल जावक रंग चिन्हांनी ।

अधर अंजन प्रगटानी बिन गुन माल बनानी,

सब अंग अंग उलटी निसानी ।

'सूरदास' गुन निधानी धन तिय जो तुमकों सुखदानी,

संग जागत रैन बिहानी ।^३

१. परिशिष्ट आ, ७५.१

२. परिशिष्ट आ, ७६.१

३. 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ४८ ।

यह रचना कवि के काव्यरचना-सामर्थ्य को भली भाँति प्रकट करने को पर्याप्त है। यद्यपि विषय नया नहीं है, तथापि शैली में अत्यन्त प्रौढता है। 'चिरियाँ चुहचुहानी' कहकर प्रभातवेला का वर्णन साकेतिक रूप में करके इन्होंने वर्णन में एक स्वाभाविकता ला दी है।

२१ विलास खाँ :

तानसेन के इन प्रसिद्ध उत्तराधिकारी ध्रुवपदकार की रचनाओं का विषय कृष्ण-लीला और सगीत है। प्राप्त रचनाओं के आधार पर ये अच्छे ध्रुवपदकार सिद्ध होते हैं। निम्नांकित ध्रुवपद स्वकीया नायिका का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

पिय के मन में न नैनन भावै तेरो जोबन नियको ।
तेरे रूप रस बस भयौ प्रानपति तौ जिय चाहै,
आन न काहू तियको ।
रूप जोबन तो है दीनों करतार बनाय,
आली कोप ना रहो गर्भ (गर्व) हिय को ।
प्रभु विलास नवललाल रिसाल प्रीत नई,
आली री आनन्द बढ़ो जिय को ।^१

एक अन्य ध्रुवपद में इन्होंने अज्ञानियों को प्रेरणा दी है कि यदि राग, रंग, तान और अक्षर सीखना है, तो तानसेन जैसे ज्ञानी गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। ध्रुवपद के तृतीय चरण में कुछ ऐसा सकेत है कि सगीतजीवी कलाकार साधु (फकीर) गायको को प्रामाणिक गायक नहीं मानते। रचना निम्नांकित है :

कौन भ्रम भूल्यो रे मन अज्ञानी,
सीखत न राग रंग तान अक्षर सुधबानी ।
और स्वारथ सों जनम गंवायो,
विद्या बात अधिक सयानी ।
जे साधु गुणी भए तिन कौन गुण की मत ठानी ।
विलास के प्रभु को जो भलो चाहत,
तो मिलाओ तानसेन गुरु ज्ञानी ।^२

२२. आनन्द प्रभु :

इनकी रचनाओं का विषय कृष्णलीला और नायिका-भेद है। मुरली की ध्वनि से आकुल एक सुन्दरी का चित्रण एक ध्रुवपद में है, जिसे एक अच्छी रचना कहा जा सकता है। सुन्दरी से मुरली-ध्वनि सही नहीं जाती; वह मृग की भाँति भूल रही है, उसकी सुध-बुध बिसर गई है, रोमांच (सात्त्विक भाव) उसे पल-पल पर हो रहा है,

१. 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १२१ ।

२. उपरिचत्, पृ० १२६ ।

छाती धक-धक कर रही है और आँखों में आँसुओं (सात्त्विक भाव) की नदी-सी भर आई है। वह कहती है कि कोई जाकर कन्हैया को बरज दे कि वे मुरली न बजाये। 'कुल कांनि', 'लोक-लाज' और 'घर की मर्यादाओं' से विवश परकीया का यह चित्रण इस प्रकार है :

कन्हैया आजु बन बनि बांसुरी बजाई,
सुधी सूधी सूधी ताननि ।
सुनत हीं धुनि मृग यों (ज्यों) भूलि रही,
सोचि समुज जीअ सुधि बुधि सब बिसराई ।
रोम उठि आए छतीआ धकधक करत,
नैननि असूआ नदी सी भरि आई ।
कोउ जाइ वरजौ आनंदप्रभु कों,
नैक राषि धीरज देइ वह रोइ रोइ अति अकुलाई ।^१

जडता, मोह इत्यादि सचारी भावों ने इस कृति में संयोग-शृंगार को भली भाँति परिपुष्ट किया है।

२३. धीरज :

केशव और प्रवीणराय के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह 'धीरज' की रचनाओं के विषय देवस्तुति, कृष्णलीला, नायिका-भेद और सगीत है।

युगल-केलि का वर्णन करते हुए उद्दीपन के रूप में वर्षा के दृश्य की योजना इन्होंने इस रचना में की है :

बोलत मोर चहूं दिसि चात्रग पिक दावुर,
घोरि घुमड़ि घहरानो घन ।
इत दामिनि भामिनि, भुमि भारी हरी भई,
जित तित वे लिपिटि झुकि झूमि सघन वृन्दावन ।
राधामाधव दोउ क्रीला (क्रीडा) रोझत भोजत टपकत जोबन ।
ता चढ़ि दंपति काम ही रंग हिडौरें,
धीरज प्रभु हरषि निरषि झुलावत गोपोजन ।^२

पहली पंक्ति में 'घ' के छेकानुप्रास तथा 'ड', 'ह' और 'र' अक्षर एक नाद-सौन्दर्य उत्पन्न कर रहे हैं, जो घुमड़ती हुई घटाओं का रूप सम्मुख ला देता है। दूसरी पंक्ति में भी छेकानुप्रास के सुन्दर प्रयोग हैं। अतिशयोक्ति द्वारा भीगे हुए क्रीडारत राधा-माधव के वस्त्रों से टपकती हुई बूँदों का स्वाभाविक वर्णन 'टपकत जोबन' कहकर किया गया है और पूरे छन्द में भावानुसारिणी शब्दयोजना बल खाती हुई चलती है।

१. रागमाला, पृ० ५१ अ ।

२. परिशिष्ट, अ ६७ ।

एक भी व्यर्थ शब्द का प्रयोग न करना, छोटे-छोटे वाक्यांशों से वर्ण्य विषय का चित्र प्रस्तुत कर देना और अलंकार का साभिप्राय प्रयोग करके प्रभाव में वृद्धि कर देना धीरज की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'छेकानुप्रास' का विदग्ध-जन-सुलभ प्रयोग इन्हें अत्यन्त प्रिय है, जिसमें कही भी सायासता नहीं प्रतीत होती। निम्नांकित रचना में 'धीरज' जिस गूजरी का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं, उसके लिए 'लाल' का ललचाना स्वाभाविक है :

नैन नचावत गूजरी उजरी, गोरें गात,
भौहैं कसत, मन कसं जात ।
हरौ लहैगा, केसरि भरी अंगीया,
सूही सारी, तन सुष अति सुहात ।
भुष की निकाई कहा कहौं माई,
चन्द्रमा की जोति मलिन हों जात ।
रौम रौम छवि पर वारौ धीरज प्रभु,
क्यों न लाल ललचात ।^१

भौहों को कसकर मन को बन्धन में कस लेना इस सुन्दरी की विशेषता है। नयन-बाणों के प्रयोग की इसे आवश्यकता नहीं है, भ्रू-धनुष ही अपने आखेट को बाँध लेने के लिए पर्याप्त है। 'नैन नचावत' में इस जोबन-भरी का मनोहारी हाव किसे वश में नहीं कर लेगा। हरे केसरिया और गहरे लाल रंगों ने इस सुन्दरी को, मानों इसके व्यक्तित्व को, इन्द्रचाप बना दिया है। इस कोमलांगी के मुख की 'निकाई' का सादृश्य चन्द्रमा की ज्योति में ढूँढ़कर दो अमूर्तों को 'व्यतिरेक' का आधार बनाया गया है।

खण्डिता का एक चित्र प्रस्तुत है :

ढीले-ढीले पग धरत ढीली पाणि ढरकि रही,
ढैसे परत अैसे कौन पर ढऐ हौ जू ।
गाड़ी जू पीआ के हीअ अैसी गाड़ी कोन,
त्रीआ गाढ़े गाढ़े भुजनि सों गाढ़े करि गहिहौं जू ।
लाल लाल लोहें (लोही) लाल उनींदी आंखें सांची का हौ,
पीआ हौं तौ लाल लहे हौ जू ।
कहि धीरज प्रभु निसु के उनींदे जागे,
भयौ प्रात कहौ बात राति कहां रहे हौ जू ।^२

इस छन्द का भावपक्ष तो कविजन-सुलभ है, परन्तु कलापक्ष में धीरज की अपनी विशेषता है। 'ढ' जैसे महाप्राण एव माधुर्य-विरोधी अक्षर को वृत्त्यनुप्रास का आधार बनाकर जागे हुए नायक की दशा और व्यापारों का मूर्त-वर्णन 'ढकार' की कटुता और महाप्राणता

१. परिशिष्ट अ, १०३ ।

२. परिशिष्ट अ, ११५ ।

को भुला देता है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने 'अटवर्गारणौ लघू'^१ कहकर माधुर्यगुण 'टवर्ग' के प्रथम चार अक्षरों को एक प्रकार से शृंगार-रस का विधातक बताया है, परन्तु 'धीरज' अत्यन्त धैर्य-पूर्वक प्रस्तुत चित्रण में इस नियम का सफल उल्लंघन करते हैं। दूसरी तुक में फिर 'ड' और 'ढ' विराजमान हैं और अपनी ध्वनि के कारण ही नायिका की सौत के द्वारा किये हुए प्रियतम के 'प्रगाढ आलिंगन' का परिचय दे रहे हैं। 'ढाँ-ढाँ', 'गाड़ी-गाड़ी' तथा 'लाल-लाल' जिस रूप में यमक का उदाहरण बने हैं, वहाँ प्रयत्न का कोई चिह्न तक नहीं है। रतजगे नयनों की लाली के लिए प्रत्यूष की लाली का उपमान अत्यन्त सात्त्विक एवं निर्मल है।

काव्य के उभय पक्षों को देखते हुए निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि धीरज ध्रुवपद-परम्परा के प्रतिनिधि कवियों में अन्यतम है।

२४. जगन्नाथ कविराय :

इनकी रचनाओं का विषय नायिका-भेद, आश्रयदाता की प्रशंसा और संगीत है। कुछ गुणियों के कालक्रम का निर्देश करनेवाला इनका एक ध्रुवपद ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्य है। 'रागमाला' के ८६वें पृष्ठ का जो चित्र इस ग्रन्थ में दिया गया है, उसमें यह ध्रुवपद विद्यमान है।

दम्पती-केलि पर इनकी एक रचना ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय निर्दिष्ट करते हुए दी जा चुकी है, जिसकी आलोचना के अवसर पर पुनः उद्धृत करने का कारण इनकी रचनाओं का अधिक संख्या में न मिलना है। रचना निम्नांकित है :

ऐहो बैठे वंपति सुरति सुष की बातें करत,

प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत ।

छिनुक आँखि पुलि जात पुनि मुसिक्यात अंचल ओट दै जम्हांत,

अरसात वहि रसिक रंग उपजावत ।

वदन चिबुक गहि आपुतन सूधौ करि,

हरषि निरषि हरि हीयें लगावत ।

जगन्नाथ कविराइ के प्रभु रिझवार रीझि,

नैननि सो वैन प्रान प्यारे मुष गावत ।^२

इस रचना में जो आर्जव है, वह राज्याश्रित ध्रुवपदकारों में प्रायः नहीं देखा जाता, अपितु इसमें अनन्य रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी की रचनाओं जैसी सुगन्ध मुखरित है। सुरति-सुख की बातें करते हुए प्यारी की पलकों का झपक-झपक जाना, कान में कूक देकर प्रियतम का उन्हें जगाना, क्षण-भर के लिए प्यारी की आँखों का खुल जाना, मुसकाना और अंचल की ओट देकर जमुहाना, नायिका के ऐसे अनुभाव है, जिन्होंने संयोग-शृंगार का चित्र मूर्त कर दिया है। प्रिया के चिबुक को स्वयं हाथ से उठाकर अंगयष्टि

१. काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, कारिका ७४, पृ० ४८४ ।

२. परिशिष्ट आ, १०६ ।

को सीधा करते हुए उसका आश्लेष नायक के सुन्दर अनुभाव है और प्यारी के नेत्रों पर रीझकर प्राणप्रिय का गा उठना केवल सहृदय-जन-सवेद्य रस की सृष्टि कर रहा है।

यदि शाहजहाँ ने इस समर्थ ध्रुवपदकार को चाँदी से तुलवाया था, तो उस सम्मान में ऐसी अनूठी उक्तियाँ ही कारण है, जिनमें अधिकांश का प्राप्त करना अभी अवशिष्ट है।

यहाँ इतना कहना अप्रासंगिक न होगा कि शाहजहाँ के आश्रित, पण्डित सरस्वती-रुवीन्द्र, प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि, सुन्दरदास, शिरोमणि और वेदांगराय से जगन्नाथ कविराय का घनिष्ठ परिचय रहा होगा।

२५ शेख बहाउद्दीन : २६. पीर मोहम्मद :

इन दोनों ध्रुवपदकारों का परिचय यथास्थान दिया जा चुका है, जिनकी रचनाओं की खोज करना हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए अवशिष्ट है।

भक्तिकाल में इन छब्बीस ध्रुवपदकारों का पता चलता है, परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक समर्थ रचनाकार ऐसे हुए होंगे, जिनके विषय में खोज करने पर कुछ पता लगना सम्भव है। अकबर के दरबार में संगीतज्ञों को सात भागों में इस प्रकार विभक्त किया गया था कि सप्ताह में किसी-न-किसी दिन प्रत्येक की बारी आ जाती थी।^१ अबुल फजल का कथन है : 'अकबरी दरबार के संगीतज्ञों का विस्तृत वर्णन अत्यन्त कठिन है, परन्तु मैं केवल प्रमुख संगीतज्ञों की चर्चा कर रहा हूँ।'^२ यह इस तथ्य का अखण्डनीय प्रमाण है कि तानसेन के युग में अनेक ऐसे कलाकार भी विद्यमान थे, जो राज्याश्रित होने पर भी प्रमुख गुणियों की कोटि में न आ पाये। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी इस स्थिति के कारण गुण-सम्बन्धिनी निकृष्टता हो, अपितु दलगत राजनीति भी उनकी प्रमुखता में बाधक हो सकती है। तानसेन से स्पर्द्धा करनेवाले गुणी कदापि राजकीय इतिहास में चर्चा का विषय नहीं बन सकते थे। ऐसे इतिहास लिखाये जाते हैं, स्वयं कम लिखे जाते हैं। जौक और गालिब के सेहरे उन दोनों की प्रतिस्पर्द्धा के परिचायक हैं और इस तथ्य के भी कि 'गालिब' जैसे महाकवि को भी बादशाह के उस्ताद 'जौक' से एक प्रकार क्षमा ही माँगनी पड़ी थी। अकबर के लाड़ले ध्रुवपदकारों और गायकों के समान विरुद्ध-गान जिन अच्छे कलाकारों ने नहीं किया होगा, उन्हें उचित सम्मान से भी वंचित रहना पड़ा होगा; क्योंकि अकबरी दरबार में निकृष्ट कलाकारों की तो पहुँच ही सम्भव नहीं थी। आनुवंशिक गायकों के पास इस प्रकार की सामग्री का मिलना सम्भव है, जो अकबरकालीन ध्रुवपदकारों की संख्या में वृद्धि कर सकती है। भले ही, उन्हें अकबर से उपयुक्त सम्मान न मिला हो, परन्तु साहित्य का विद्यार्थी उनके काव्य-सौष्ठव को देखकर उनके वास्तविक स्तर का निर्णय कर सकेगा।

१. 'संगीत', मार्च, १९६० ई०, पृ० १३८।

२. A detailed description of this class (musicians) of people would be too difficult, but I shall mention the principal musicians.

—AIN. BLOCH, p. 680

यही स्थिति अन्य मुगल-सम्राटों के दरबार की है, जिनमें गायक और वादक प्रभूत संख्या में थे ।

भक्तिकाल की समाप्ति के साथ-ही-साथ ध्रुवपद का स्वर्णयुग भी समाप्त होता है । रीतिकालीन ध्रुवपदकारों के साहित्य का परिचय अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है ।

(ई) रीतिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन

सामान्य परिचय :

हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल का आरम्भ एक प्रकार से ध्रुवपद के पतनकाल का आरम्भ है । औरंगजेब ने खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ और ऐसे अन्य कलाकारों को राजदरबार से छुट्टी दे दी थी, जिनकी पीढियाँ मुगल-दरबारों में पली थी । जो ध्रुवपदकार शाहजहाँ के युग में वैभव और सम्मान का उपभोग कर रहे थे, उन्हें औरंगजेब के शासन-काल के आदिम दस वर्षों के पश्चात् आजीविका के लिए छोटे-मोटे गढ़पतियों और जमीन्दारों का मुँह देखना पड़ा ।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल-साम्राज्य का दिवाला निकल चुका था और उसके उत्तराधिकारियों का प्रताप धीरे-धीरे क्षीण पड़ता जा रहा था । बहादुरशाह (प्रथम) का शासनकाल केवल पाँच वर्ष, जहाँदारशाह का केवल ग्यारह मास और फर्रुखसियर का केवल छह वर्ष रहा । ये सभी अस्थिर रहे और इनके दरबारों में कलाकारों को अपने पूर्वजों जैसी निश्चिन्तता एवं वातावरण न मिला । मोहम्मदशाह ने प्रायः उन्तीस वर्ष राज्य किया । इसके दरबार में अवश्य सदारंग और अदारंग जैसे ध्रुवपदकार हुए, परन्तु उस समय दरबार में वेश्याओं का प्रभाव बढ गया था । मोहम्मदशाह के उत्तराधिकारी अहमदशाह के राज्यकाल में हम ध्रुवपदकारों का एक क्षीण स्वर पाते हैं और आलमगीर (द्वितीय) के पचवर्षीय राज्यकाल में भी । शाहआलम कहने के लिए तो सैंतालीस वर्ष तक मुगल-सम्राट् रहा, परन्तु उसका साम्राज्य केवल लाल किले की सीमा में ही था । अंगरेजों, मरहठों एवं अन्य सरदारों की अँगुलियों पर इसे नाचना पड़ा और उस विपरीत परिस्थिति में भी ध्रुवपदकारों का क्षीण स्वर कभी सुनाई पड़ जाता था । अकबर (द्वितीय) का दरबार भी इस दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहा जा सकता और न बहादुरशाह (द्वितीय) का ही ।

वाजिद अलीशाह के मुसाहब मुहम्मद करम इमाम ने सांगीतिक दृष्टि से उस काल का जो चित्रण किया है, वह ध्रुवपद की हीन स्थिति का परिचय देता है । मुहम्मद करम इमाम के शब्द इस प्रकार हैं : “इस युग में ख्याल, ध्रुवपद, होरी इत्यादि का गाना अत्यन्त अल्पमात्रा में अवशिष्ट रह गया है और वह भी जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं । अमीरों और रईसों में आजकल ठुमरियाँ पसन्द की जाती हैं और वे लोग उनके खब्त में फँसे हुए हैं : ‘आदमियान गुमशुदन्द मुल्के खुदा खर गिरफ्त’, अर्थात् ‘मनुष्य लुप्त हो गये और ईश्वर की सृष्टि गधों की गिरफ्त में आ गई ।’

यह सब कुछ होते हुए भी चेतर्सिंह, राजबहादुर, प्रेमदास, गुलाब इत्यादि ध्रुवपदकार इस युग में ऐसे हुए हैं कि जिनपर किसी अंश तक गर्व किया जा सकता है।

इस युग के गिने-चुने ध्रुवपदकारों की रचना का संक्षिप्त साहित्यिक मूल्यांकन करके हम सन्तोष करेंगे और व्यर्थ विस्तार से बचने के लिए कुछ ध्रुवपदकारों की रचनाओं के नमूने देंगे। इस अवसर पर हम उन व्रजभाषा-कवियों की भी सूची दे देना आवश्यक समझते हैं, जो औरंगजेब एवं इसके उत्तराधिकारियों के आश्रय में रहे और जिनके सम्बन्ध स्वाभाविक रूप में उन सम्राटों के आश्रित ध्रुवपदकारों के साथ रहे। यद्यपि रीतिकालीन कवियों के समान ध्रुवपदकार रीति-ग्रन्थों की रचना नहीं कर रहे थे, तथापि उनके काव्य के विषय समसामयिक अन्य कवियों से पृथक् नहीं थे।

औरंगजेब के आश्रित कवि कालिदास, किशन, वृन्द, ईश्वर, इन्द्रजीत, कासीराम एवं सामन्त थे।

शाहजादा आजम के आश्रित थे रीतिकाल के प्रख्यात महाकवि देव और कवि नेदाज।

मुगल-सम्राट् बहादुरशाह के आश्रय में रहकर कविता-कामिनी की कमनीयता की चर्चा में व्यस्त थे कवि आलम, अब्दुर्रहमान और मदनकिशोर। आजम के पश्चात् महाकवि देव और वृन्द भी बहादुरशाह के दरबार की शोभा बने।

मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाह रंगीले के दरबारी कवि थे आजम, युगलकिशोर गुमान मिसिर, रसमूर्ति और व्रजभाषा-काव्य के प्रधान स्तम्भ थे घनानन्द और लक्षण-ग्रन्थों के महान् रचयिता सूरतिमिश्र।

मुगल-सम्राटों के अतिरिक्त अन्य आश्रयदाताओं की सभा में भी कवि एवं ध्रुवपदकार विद्यमान और परस्पर सम्पृक्त थे। रीतिकालीन अन्य आश्रयदाताओं का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

२७ खुशहाल खाँ कलावन्त :

वास्तव में, ये उन ध्रुवपदकारों में हैं, जिन्होंने भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि देखी थी। तानसेन के दौहित्र लाल खाँ के पुत्र होने के कारण इन्हें शाहजहाँ और औरंगजेब के दरबार में उच्च स्थान मिला था। तानसेन और उनके वंशजों की यह परम्परा रही थी कि वे अपने आश्रयदाताओं के नाम से अंकित ध्रुवपदों की रचना किया करते थे।

इनके जीवन का परिचय देते हुए यह तथ्य सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है, कि शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद इनकी रचनाएँ हैं। इस दृष्टि से औरंगजेब की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद भी इनके ही होने चाहिए, क्योंकि औरंगजेब के राज्यकाल के आदिम तेरह वर्षों में इनको निश्चितरूपेण औरंगजेब का आश्रय प्राप्त रहा। इस दृष्टि से इनकी रचना के विषय अभिषेक और वर्षगांठ जैसे उत्सव, नौरोज और वसन्त जैसे त्योहार,

पराक्रम, प्रताप, प्रशसा और नायिका-भेद रहे। शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित उन्नीस और औरंगजेब की मुद्रा से अंकित पन्द्रह रचनाएँ हमने 'परिशिष्ट अ' में संगृहीत की है।

शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित मानिनी का एक चित्र इस प्रकार है :

बैठी री कर पै कपोल धरे रीजीये दुचिती,
अनमनी आज पिया सों कछू अनबनी ।
रूठी सी रूठी से आंननि विलषी सी मनु मारे तामस कीये,
मानत न काउ को कहौ क्षल त्रीअनि सें तूही मन मांनी ।
साहिजहां पीअ तेरै रस बस भए वे बना तू बनी ॥

प्रस्तुत रचना मानिनी के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों का चित्रण करती है। 'बैठी-री कर पै कपोल धरे कहकर नायिका की मूर्ति की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है और 'रूठी सी आंननि विलषी सी' कहकर मानों उस रूपरेखा में रंग भरे गये हैं। 'दुचिती', 'अनमनी', 'मनु मारे', 'तामस कीये' आदि मानिनी के अन्तर का चित्रण करते हैं। साथ-ही-साथ 'मानत न काऊ को कहौ' कहकर उसे रूपगर्विता बताया गया है तथा 'तेरै रस बस भए', 'वे बना तू बनी' कहकर उसे स्वाधीनपतिका के रूप में चित्रित किया गया है। थोड़े-से शब्दों में बड़ी बात ऐसी रचनाओं का प्रधान गुण हुआ करता है। भाषा की विशुद्धता सरलता, प्रवाहमयता और प्रसादगुणयुक्तता दर्शनीय है।

औरंगजेब की मुद्रा से अंकित एक अन्य रचना में एक अनुपम चौपड़ प्रस्तुत की गई है :

ते तौ आपु ही मैं बनाई अनूपम चौपरि ऐ ।
रूप जोबन गुन वानिक बिसाति माध वसीकरन,
घर कीनों फुनि दीनौ त्रिविधि कटाछि पांसे करि ।
वौ सुभ दांव षतन तोही कौं फुरेरी औरनि के,
चौक चाक वांधि वांधि चतुर वतीआं कीनी जाही ते पूजी सार ।
सौतिनि सों वाजू पीअ जीति लीनी,
साहि औरंगजेब रीझि रुचि सों कंठ लगाई भुज भर ।^१

नायिका प्रणय-द्युत में प्रियतम को सौत से जीतने के लिए बैठी है। अपने रूप, यौवन, गुण और शोभा को उसने चौपड़ की बिसात के चारो पट बनाये हैं। वशीकरण उस चौपड़ का 'घर' (गोटे लाल होने का स्थान) है। नवीन (नव-नउ-नौ) दांव (चातुरी) ही चौपड़ का शुभ दांव (नौ) है, जिसके अनुसार चाल चलकर (नीति बरत कर) और अन्य सौतों के चौक-चाक (उपमेय-पक्ष में प्रयत्न और उपमान-पक्ष में चौपड़ के वे घर, जिनपर बैठी हुई गोठ पिटती नहीं और प्रतिस्पर्द्धी की गोठों को आगे बढ़ने से रोक लेती है) बाँधने के कारण उसे प्रसन्नतामय रोमांच हो रहा है और प्रियतम से चतुरतापूर्ण

बार्ते करना ही उसका 'सार पूजना' (मनोरथ पूर्ण होना, गोटे लाल करना) है। इस प्रकार, उसने जब बाहुबल के द्वारा शाह औरंगजेब को जीत लिया, तब शाह ने उस सुन्दरी को भुजाओं में भरकर कण्ठ से लगा लिया।

रचना में सांगरूपक अलंकार है, जो कई स्थानों पर श्लेष से अनुप्राणित है। 'नौ', 'दौव', 'चौक-चाक', 'पूजी सार' इत्यादि शब्दों का सफल प्रयोग अभंग श्लेष की सृष्टि कर रहा है। रचना में कवि का प्रयत्न है, परन्तु जिस प्रकार वह प्रस्तुत किया गया है, उससे उक्ति में सरलता और प्रवाह की सृष्टि हो गई है।

उदाहृत दोनों रचनाओं में भाषा सरल, स्वाभाविक एवं प्रसादगुणयुक्त है।

२८. सबाद खाँ ढारी, २९. किशनसेन (नायक अफजल), ३०. गुलाम मुहोउद्दीन, ३१. किशन खाँ कलावन्त, ३२. सालिम खाँ डागुर, ३३. कसबकुव्वतधारी 'कबजायत', ३४. पूजा, ३५. रहीमदाद ढारी ३६. मुहम्मद बाकी और ३७. सुधीन सेन की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है। इनकी रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हैं।

३८. मियाँ डालू ढारी :

इनकी कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' में हैं। एक रचना प्रस्तुत है, जिसमें दिल्ली के बादशाह के लिए मंगलकामना की जा रही है। रचना प्रत्येक दृष्टि से साधारण कोटि की है :

सोहै उत्तम गढ़ औ रंगमहल बनाए तिनहूँ में सुन्दर नारन ।
अति ही रही और पवन की छवि ऐसी लागत है,
मानो पहिरे हरी सारी फुलवारी आनन पर धन रही धरन ।
और जे छूटत है फुहरि मानो अलम बनाए नोछावर, करत तन मन धन ।
डारु भाग जागे दिल्ली के श्रवणन कों सुब दिए शाहपति,
पातसा चिरंजीव रहो करोर बरस नरन ॥^१

३९. मध(धु)नायक :

इनकी रचना का विषय कृष्णलीला और राजप्रशंसा है। औरंगजेब की प्रशंसा से युक्त इनका एक ध्रुवपद परिशिष्ट अ में (स० १५३) संगृहीत है। इनका एक अन्य ध्रुवपद भी प्राप्त है :

कारे री कारे कुंजनि कारे दंडनि दारें कामरि कारी,
कार्लिदी तट टेरे धेनि कारी ।
कट छुद्र घंटका रीअ वंसीहितकारी,
कारी कर पल्लवनि अंगलता कारी ।

गौपी ग्वाल हंस कारी नाचै,

नट नित्तकारी होत है किलकारी कोकिला रव धिकारी ।

मधनाइक नाथों कारी संग सुन्दरि राधिका री,

जिमि दांमिनि चमकत घटा कारी ।^१

भाषा पर कवि का अधिकार है । प्रस्तुत रचना में कवि की दृष्टि पादान्त्यमक पर अधिक है । व्यतिरेक और उपमा का प्रयोग यथास्थान हुआ है ।

४०. बिसराम खाँ : ४१. मिसरी खाँ :

इन दोनों की रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं ।

४२. भूपत :

इनकी चार रचनाएँ परिशिष्ट 'अ' में संगृहीत हैं, जिनमें रमपुरा-नरेश छत्रसिंह की चर्चा आती है । सम्भव है कि केवल छत्रसिंह के नाम से अंकित रचनाएँ भी इन्हीं की हों । नायिका-भेद-सम्बन्धी दो रचनाओं में भी केवल छत्रसिंह का नाम है । भूपत की मुद्रा से अंकित ध्रुवपदों के विषय रूढ और भाषा सरल है । एक रचना में नाद-बाग की रचना सांग-रूपक के द्वारा की गई है, जिसमें गुणियों का कण्ठ 'भूमि', सप्तस्वर 'तरुवर', अक्षर 'पुष्प' और शुद्ध वाणी 'पत्ते' हैं । सुर-नर-मुनि इस तरुवर को सिंचित करते हैं और इसमें उपज (नवीन सांगीतिक उद्भावना)-रूपी 'फल' लगते हैं, जो सुघर व्यक्तियों को भले प्रतीत होते हैं । इस उपवन की सैर महाराज छत्रसिंह के श्रवण करते हैं ।^२

४३. रसबीन खाँ :

इनकी रचनाएँ कतिपय ध्रुवपद-गायक प्रायः गाते हैं, परन्तु लिखाने में उन्हें आपत्ति होती है ।

४४. नायक पूरन :

इनकी कुछ कृतियाँ 'रागकल्पद्रुम' में संगृहीत हैं । औरंगजेब की शोभा का वर्णन करनेवाली एक रचना में तैमूरलग, बाबर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के नाम गिना दिये गये हैं और एक अन्य रचना में सरस्वती की चर्चा है ।^३ रचनाएँ प्रत्येक दृष्टि से साधारण कोटि की हैं । औरंगजेब से सम्बद्ध रचना निम्नांकित है :

छत्र छवि छाजै बिराजै हुमाऊं तखत,

बैठो चारों चक्र जोत आयो दिल्लीवर ।

ऐसो हठीली नर नरेन्द्र नरेश धावत,

शत कोस काहू पै न रोको जाय तकवर ॥

राख लई हमर तिमिर लिंग बाबर की,

बृद्ध किरात साहन मन बावसाह ताहि दयो अलहुवर ।

१. रागमाला, पृ० २८२ आ ।

२. परिशिष्ट अ, २२३-२३० ।

३. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २६० ।

नायक पुरन करत बखान तेरी बाबरसुत,
तांको सुत हुमाऊं अकबर सबल नर ।
अकबरसुत जहाँगीर ताको साहजहाँ,
ताको औरंगजेब भयो है भुव पर ॥^१

४५. मुबारक :

इनकी एक रचना नायिका-भेद के सम्बन्ध में है, जिसमें शाह आलम की चर्चा है ।
रचना साधारण है, जिसमें रूढ़ि का पालन-मात्र किया गया है :

निपट कर जो दुराव करत मो सों हौं नहीं जानत,
पीय अधिक चतुर तुमही और होही अयानी ।
कोटि जतन करत है तिन गुण कर प्यारे तुम्हारे,
देखीयत जे करत फिरत घर घर मनमथ के वस,
ज्यों तिया अंग संग रंग करत बहु जानी ॥
अटपटी पाग पेच लटपटे कीन्हें बोलत मन्द वचन,
चक कहत कहानी ।
शाह आजम विचित्र छत्रपति की बाते तेऊ मेरे,
जान पाई तब त्योहीं मुबारक ना आवत तुमारी,
गत हम मन विच क्रम कर पहचानी ॥

४६. सदारंग :

इनकी रचनाओं का विषय, संगीत, नायिका-भेद और होली है । मुहम्मदशाह की मुद्रा से अंकित रचनाएँ भी इन्हीं की कही जाती है । तानसेन की परम्परा में उत्पन्न गायकों के आश्रयदाता के नाम से ध्रुवपद-रचना करना सिद्ध एव विख्यात है । निम्नांकित रचना में इन्होंने नवोढा स्वकीया का चित्र अंकित किया है :

कोउ तो मोहि बताओ री पीअ सों मान करिवे कौ हवा ।
पै असे कीजे जामें नैक मलीन न होवे और अपनी हूँ बात रहौ सब ।
उनिकी कहा कहौ वै तो निपट प्रवीन रसिक लाल,
देखि रहे अनेग जोषिनि की फरकनि तिनि सों छिपि सकै कब ।
यह भूल मो मन आई गई ताते सदारंग पीअ सों,
रिस हूँ रो व रूसीअ कवहूँ अब जब तब ।^२

नायिका नवेली है । मान की रीति नहीं जानती, परन्तु मान करना चाहती है । स्वकीया है, अपनी बात भी रखना चाहती है और उसकी यह भी इच्छा है कि मन भी मैला न हो । प्रियतम के अपराधों को वह मार्जनीय समझती है और इसके लिए प्यारे की भूलें मन में आई-गई हो जाती हैं । वह अपने प्राण-धन से कोप की अवस्था में भी

१. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २०६ ।

२. परिशिष्ट आ, ११६ ।

रूठना नहीं चाहती । सदारंग ने नवोढा के हृदय का वास्तविक चित्रण किया है । सीधी-सादी मुहावरेदार भाषा नायिका के हृदय का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देती है ।

एक अन्य रचना में विरहिणी का चित्र प्रस्तुत किया गया है । उसका मनचीता वसन्त आ गया और उसकी संगिनी कोकिला ने विरहिणी को सताना आरम्भ कर दिया । रचना निम्नांकित है :

अब तौ कोकिल धूम मचाई पीआ विदेस मोहि पाइ अकेली विरहिनि जानि सताई ।
एक तौ हती में बैरिनि उनिकी करत चवाउनि आई,
बोलि बोलि जब वांन से मारत तन मन वेधत जाई ।
कुकि कुकि डरपाई री जीअ में अति ही ऊक बढ़ाई,
जीतौ वसंत जब आयौ फागुन अब कहा करौ मोरी माई ।
ये समये सुधि लीजौ सदारंग सुषदाई दुषदाई ।^१

सदारंग में मानव-जीवन के अन्तर तक पहुँचने की दृष्टि है । अलंकारों की ओर उनका मोह नहीं है और जब वे रूढ शैली में वर्णन करते हैं, तब भी उनका व्यक्तित्व रचनाओं में दिखाई दे जाता है ।

४७. अदारंग :

इनकी रचनाओं का विषय आश्रयदाता तथा पीरों की प्रशंसा, नायिका-भेद, संगीत और होली-वर्णन है । ऐसा लगता है कि किसी समय ये आश्रय-विहीन हो गये । किसी शाहशाह (सम्भवतः, आलमगीर द्वितीय) की याद में ये एक ध्रुवपद में कह रहे हैं कि अदारंग सदा से तुम्हारा ही कहलाता है और तुम कृपा करके उसे कब याद करोगे ।^२ अपने ध्रुवपदों में इन्होंने मुहम्मदशाह और आलमगीर द्वितीय की स्तुति की है । इनकी रचनाओं में तानसेन-परम्परा की विशेषताएँ लक्षित होती हैं । नायिकाभेद-सम्बन्धी इनकी एक रचना प्रस्तुत है, जिसमें मानिनी का चित्रण है :

ए री यह औसर भली है अलवेली चतुर नारि,
चलि चलि पीअ पास ।
नव सत सिंगार साज तजि दीअ लाज आस,
अधराति भई चंद्र हू चढ़ौ अकास ।
मेरीअ कहौ मांनि औसी छांड़ि कै रसरी काम तुम,
अब जोनि करि विविधि विलास आस ।
जब तैं निहारी तोहि अदारंग जब तैं महेमव सा प्यारे,
वेषि प्रान लागि रही तेरी आस ।^३

१. परिशिष्ट आ, ११८ ।

२. परिशिष्ट आ, १२२ ।

३. परिशिष्ट आ, १२७ ।

होली-विषयक इनकी एक रचना निम्नांकित है :

अरगजा गुलाल लै केसरि रंग पिचकारी भरि भरि छोड़त ।
अतर गुलाब और चोवा चंदन पीअ मुष मीजत वनि वनि
वनिता सों तव बेहू लाल मिलि गए गुपित गांठ टकटोरत ।
लाज सकुच छाड़ि दीनी लोगनि की जब ऐक ऐक कों जो
बस करि रस में वोरत ।

कहा कहों समयौ अति सुंदर सदारंगीले ऐ नौला सी तिनिकों भुज भेंटत
कुचहि मरोरत ।

सध कौ मतवारी अदारंग करि दौर गरवहीआं डारत मसकोरत ।
ऐ सषी री याह वौहौत दिननि कौ विछुरौ मिलौ याते फागु प्रीति
वाहन जुरत ।^१

४८. इंछाबरस

रूप-वर्णन, ऋतु-वर्णन, होली और संगीत इनकी कृतियों के विषय हैं । 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय' नामक प्रकरण में इनकी एक सुन्दर रचना दी जा चुकी है, जिसमें नेत्रों में घटाओं का सादृश्य देखा गया है । वर्षा में विरहिणी की स्थिति को प्रकट करनेवाला इनका एक ध्रुवपद निम्नांकित है :

भमन जानौं सूनों भाई काम कैसें षाड़ मोपे आज,
घन असवारी करी है जहै कोप ।
पवन तुरंग छाड़ि धुरवा निसान आंगे गरजि बमामुद,
पंछी मोर ब्रम्हांवत चपलान होइ दई अती अरुन ओप ।
अनेग दल वादल सेना तमकि पचि पैहैरवान बूंद
बरसावत धीरन जामगीलगामारंत ओला गोला धरधरात
सों मानौ बरषों तोप ।
सुष सब लूटि लयौ बैठौ जब दिनकर छत्रपती महंमद
साहि अपनी अंछ्याबर सौं साहि नाहीं करत है तप ।^२

भवन सूना जानकर काम ने मेघ को वाहन बनाकर विरहिणी पर चढ़ाई की है । पवन 'तुरंग', बादल 'निशान', गर्जन 'दुन्दुभी' और मोर 'बन्दीजन' है । चपला नहीं, अपितु आक्रान्ता का तेज है । बादलों के दल सेना है, जिसके योद्धा तमककर परिश्रम-पूर्वक बूंदों के रूप में बाणों की वर्षा कर रहे हैं, उन्हें धैर्य नहीं है और जामगी (तोप में आग देने का पलीता) लगाकर ओले बरसा रहे हैं, मानों तोपे अग्नि-वर्षा कर रही है ।

इंछाबरस की दृष्टि सादृश्य-विधान पर भली भाँति पड़ती है । प्रयत्नपूर्वक वह वर्षा में चढ़ाई का आरोप अच्छे ढंग से कर लेते हैं । इस प्रकार के रूपकों की रचना

१. परिशिष्ट आ, १२५ ।

२. परिशिष्ट, आ, १४१ ।

ध्रुवपदकारों की एक विशिष्ट परम्परा बन गई थी, जिसका निर्वाह इंछाबरस ने पूर्ण योग्यता के साथ किया है। एक अन्य ध्रुवपद में उन्होंने गुण (संगीत-कला) पर समुद्र का आरोप किया है। गुण 'समुद्र' है, उसमें तन 'जहाज', मन 'सौदा', कण्ठ की साँस 'पवन की गति', गमक 'बादबान' (पोतपट्ट) और सप्तस्वर 'लंगर' है। सुर (तम्बूरे पर निरन्तर छिड़नेवाला स्थायी स्वर)-रूपी 'महानाविक' (कप्तान) श्रुतियों की 'ऐनक' लगाये हुए विवादी (राग के विघातक स्वर) की ओर उससे बचने के लिए देख रहा है। ध्रुवपद की चारों तुके ही इस जहाज के चार प्रकोष्ठ हैं, जिनमें बोल (सार्थक शब्द)-रूपी मोती भरें हैं, उनकी कान्ति जवाहरों जैसी है और अनन्त अच्छे 'वर्णों' (स्वर-सन्निवेशण), सुन्दर अक्षरों का ओर-छोर नहीं दिखाई देता। मुहम्मदशाह के समक्ष ऐसे ध्रुवपद और जहाज से युक्त गायक लाखों और गावों। इच्छा पूरी करने के लिए सबको लाख-करोड़ गिन दिये हैं। ध्रुवपद निम्नांकित है :

गुन समुद्र तामैं तन जिहाज मन सौदा गलौ साँस पवन कै जोर ।
गमन बादवान सप्तसुर लंगर परे सुरनि षुदा (नाखुदा=कर्णधार)
सुरति ऐनक दीअँ चितवत मगर विवादी की ओर ।
चारों तुकै तेउ चारौ कोटनि में बोल मोती जोति जवाहर अनंत सुवरन
न देषत ओर छोर ।

अँसौ धुरपत जहाज सौ पुरौ महम्मदसाहि कौं लाखों गावो अँछयावरसन
कौं सकल गिन दीन्हें लाख करोर ।^१

इंछाबरस से पूर्व 'बैजू', 'तानसेन' और 'चंचलसस' भी नाद अथवा संगीत में समुद्र का आरोप कर चुके थे ।^२

४६. प्रेमदास :

ये इस युग के समर्थ ध्रुवपदकार हुए हैं। परिशिष्ट 'आ' में इनके सत्रह ध्रुवपद संगृहीत हैं। इनकी रचनाओं के विषय देवस्तुति, देवरूप-वर्णन, ऋतुवर्णन, नायिका-भेद, प्रबोध एवं संगीत हैं। 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय' नामक प्रकरण में इनकी एक 'होली' उद्धृत की जा चुकी है। भाषा पर इनका अधिकार है। चित्रण में यह किसी भी अन्य दरबारी ध्रुवपदकार की अपेक्षा कम नहीं है। निम्नांकित रचना में शकर के अर्द्धनारीश्वर रूप का चित्रण है :

ऐक ओर पाटी सम्हारि गुहे मुकताहल ऐक ओर जटाजूट सोहत हैं सिर गंग ।
ऐक ओर चंद्रभाल ऐक ओर आड दीये ऐक ओर नेत्र लाल ऐक ओर अंजन छवि
ऐक ओर गौर वदन ऐक ओर भसम लायें ऐक ओर अरुण अधर तमोल (ताम्बूल)
ऐक ओर विष मुख अचवत लै भंग ।

१. परिशिष्ट आ, १३६ ।

२. 'बैजू और गोपाल', पृ० ५८; परिशिष्ट अ, १२ एवं परिशिष्ट आ, ७७ क्रमशः ।

ऐक ओर श्रवण ताटक नासा वेसरि ऐक ओर मुद्रा छवि अर्द्धवदन केस ऐक ओर
स्याम पोति ऐक ओर लीलकंठ ऐक ओर रत्नहार मुंडमाल ऐक ओर बाघंबर
ऐक ओर कंचुकी वसन अति सुरंग ।

ऐक ओर अंग अंग आभूषण क्षिलिमिलात ऐक ओर ठौर ठौर नाग लिपिटाऐ ऐक
ओर वीन वजत ऐक ओर डवरु नाद, ऐक ओर असूल कर कमल ऐक ओर ऐक ओर
चरनपाद ऐक ओर नूपुर धुनि प्रेमदास जाकौ त्रैलोक सकल ध्यान धरत सो
गिरिजापति अर्द्धंग ।^१

नायिका के समस्त शृंगारो का वर्णन भी इन्होंने किया है । इनकी नायिका मज्जन करने के पश्चात् शृंगार करने बैठी है । माँग, सिर, कान, भ्रुकुटियाँ, नेत्र, नासिका, अधर, दशन, स्मित, कण्ठ, उरोज, उर, भुजाएँ, मणिबन्ध, हाथ, अँगूठा, कनिष्ठिका, कटि, चरण, पैरों की अंगुलियाँ और एडी सभी को इन्होंने सजाया है । बीच-बीच में उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग से इस रचना के कुछ अंश अलंकृत किये गये हैं । रचना में स्थान-स्थान पर एक लय बनती है, मानों कोई मुक्तवृत्त पढ़ा जा रहा हो, परन्तु ध्रुवपद के विशाल प्रवाह में तरंगों की भाँति प्रकट और लुप्त होती चलती है ।

यह बात नहीं, कि ये सीधे-सादे ढंग में कोई बात न कहते हों । निम्नांकित ध्रुवपद उस स्वाधीनपतिका का एक रूप प्रस्तुत करता है, जिसके वदन-चन्द्र को देखते ही सपत्नियों के मुख फीके पड़ गये हैं, जिसकी छवि ने सजी-सँवरी सौतों के मद और मान को विचूर्ण कर दिया है । विधना ने उसे ऐसा रूप दिया है, जिसपर सुन्दरियों को बारम्बार न्योछावर कर दिया जाता है । इस छवि को देखकर प्रियतम तो कुदृष्टि से बचाने के लिए तिनका तोड़ते हैं, और दूसरी (सौते) खीझ-खीझकर कामोपम प्रियतम से झगड़ा करती है । रचना इस प्रकार है :

तेरौ वदन चंद्र नीकौ लगत अति सौतिनि के देखि मुख रूपे परे हैं री ।

आई सब सजि सिंगार अनैग प्रकालन (प्रकार) करि जाकी छवि छीनि मध मान
हरे हैं री ।

असो सरूप रूप विधना दीयो सम्हारि बार बार नारिनि जू उतार धरे हैं री ।

प्रेमदास प्रभे प्यारे रीझि रीझि तोरत तन दूजें षीझि षीझि रति पति झगरे हैं री ।^२

उपर्युक्त रचनाएँ प्रेमदास की चित्रण-शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती हैं । अन्तिम रचना में भाषा सरल, प्रसादगुणयुक्त एवं मुहावरेदार है ।

५०. मनरंग :

इनकी एक 'होरी' ध्रुवपदों का वर्ण्य विषय बताते समय दी जा चुकी है, जिससे इनकी भाषा मुहावरेदार और सरल प्रतीत होती है । शैली में कोई मौलिकता नहीं है । सम्भव है, खोज होने पर अच्छी कही जा सकनेवाली वस्तुएँ मिलें ।

१. परिशिष्ट आ, १५६ ।

२. परिशिष्ट आ, १६६ ।

५१. सिम्भू :

इनकी एक रचना प्रस्तुत है, जिसमें दूती मानिनी को मना रही है । काव्यगुण इसमें है और इससे सिम्भू अच्छे रचनाकार प्रतीत होते हैं । रचना यों है :

धरीअं जू धरीअं महल पग धरीअं पीअ मग जोवत प्यारी ।

चित्र की लिखी सी वल कैसी कहा वैठीं हौ जू ।

नवसत साज तन भूषन सम्हारीअं जू ।

कहों री निहोरि हारी सौहं कर जोरि षात चित धरि और न विसारीअं जू ।

‘सिम्भू’ नवललाल रसिक पीतम प्यारे उठि चलि हिलि मिलि वचन न टारीअं जू ।^१

५२. आलम :

मुगल-सम्राट् अहमदशाह की मगलकामना से युक्त इनकी एक रचना निम्नांकित है ।

देश देशन की पातुरन तेरो बहुत यश करो ।

तोरे रंग राय तोसीको पै सरवर बांधे को धरो ॥

करीम रहीम अब चल पातसाही, तुम कीनें करतार के ।

धन करम जान आए खिदमत में तुमारी सब सरस भट आवत संसार के ।

जैसो नीमरुव भूलो आपन तन सम मकरन लागा, सकत आगे साहब की भार के ।

अहमदशाह राज करो कोटि वरस लों आलम हुसैनन के सिपाई सरकार के ॥^२

५३. देवीदत्त :

संगीत से सम्बद्ध इनकी यह रचना रागमाला में है :

अहो तुम गाओ होरी सुर संगति सौं सब गुनीअनि मिलि लेत तान नईअ नईअ
गुरनि के मति की ।

नीके अछिर गति अनूठी तार सुरति अति गति की ।

सांचे सुरनि बुलाई लीजै रंग राग बहु हित की ।

ऐते निपट प्रवीन वीन नदलाला देवीदत्त की ।^३

५४. चेतसिंह राजबहादुर :

इनकी रचनाओं के विषय विभिन्न देवताओं की स्तुति, ऋतु-वर्णन, नायिका-भेद और संगीत है । विषय के अनुसार, इनकी भाषा बदलती हुई चलती है । स्तुति-विषयक रचनाएँ संस्कृत-शब्द-बहुल हैं तथा नायिकाभेद-सम्बन्धी रचनाओं की भाषा सरल और प्रवाहमयी है । इनके द्वारा की हुई सूर्यस्तुति इस प्रकार है :

श्री मारतंड प्रचंड वृम्हांड मंडन तिमिरहरन अभूवन को ।

चंड करि भासमान अर्क आदित्य रवि ऐक चक्र रथ रुढ़ ईस जगत को ॥

१. परिशिष्ट अ, २८० ।

२. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २८८ ।

३. रागमाला, पृ० १८४ अ ।

बल प्रताप अघ आप संधार करता ग्यान वान बर्मदान सुषदाता तिनिकी ।

राजबहादुर कौ दुषमोचन मोदभरन पूरन करत प्रन (त)मन कौ ॥^१

होरी के दिनों में एक उमंग भरी मदमाती मदनमोहन के साथ बरजोरी करने के लिए उद्यत है । वह मानों उनकी की हुई बरजोरियों का भरपूर बदला इन दिनों चुका लेना चाहती है । वह प्रियतम को गाकर, बजाकर, नाचकर रिझायेगी । उसके पास कुचों का कुमकुम है और वह मदनमोहन को अपने हृदय से लागकर मुख में रोली मल देगी । मदनमोहन के अधरों पर उसका अंजन, ललाट पर महावर और पलकों पर पीक के गहरे चिह्न होंगे । आज वह अपने मन की करने पर उतावली है । नायिकाएँ सदा प्रियतम के अधरों पर सपत्नियों के नेत्रों का अंजन, ललाट पर महावर इत्यादि देखती और कुढ़ती चली आई है, परन्तु राजबहादुर की यह मदभरी नायिका प्रियतम के शरीर पर उन्हीं चिह्नों को बनाने के लिए उत्सुक है । रति में वह 'कर्म' नहीं, 'कर्त्ता' बनना चाहती है । अपनी बात वह मन में ही नहीं सोचती, अपितु मदनमोहन के समक्ष उसने अपने उन संकल्पों की घोषणा भी कर दी है, जिन्हें मनोरथ के रूप में वह न जाने कब से सँजोती चली आई है । नायिका का यह चित्र इस प्रकार है :

गाइ नाचि बजाइ रिझैहों पीअ तुमकों रची होरी ।

कुचनि कौ कुमकुम उर बिच लँहों मुष सों माँडिहों रोरी ॥

अधरनि अंजन जावक लिलाट पलकन पीक न थोरी ।

राजबहादुर मन की करिहों मदनमोहन बरजोरी ॥

५५. शेख मीर :

इनकी एक रचना रागमाला में संगृहीत है, जिसमें पीरों की एक सूची प्रस्तुत करके उनकी स्तुति की गई है ।^२

५६. गुलाब :

इनकी रचनाओं के विषय देवस्तुति, प्रबोध, ऋतुवर्णन, कृष्णलीला, होली एवं नायिका-भेद है । 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय' नामक प्रकरण में इनके कुछ सुन्दर ध्रुवपद दिये जा चुके हैं, जिनमें से एक में 'नख-शिख-वर्णन' और दूसरे में 'वंशी' है । निम्नांकित रचना में इन्होंने कनीनिका में नर्तकी का आरोप किया है :

आली री तेरी पुतरी पातुर नीकी नित करत है डोरे वस्तर पैहरें सुरंग ।

हाउ भाउ जैसी सुधंग बतावत निपट चतुर अंग अंग ॥

अविधि कटाछि संगीत भेद सों सौभा अधिक सुधंग ।

तार हीं तार गुलाब बाजत सम पलक थाप नैनां अदंग ॥^३

१. परिशिष्ट अ, २४३ ।

२. रागमाला, पृ० ६६ अ ।

३. परिशिष्ट अ, १५३ ।

इस रचना में गुलाब ने अपनी संगीतज्ञता और सूक्ष्म दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। कनीनिका में नर्तकी का आरोप प्रधान है। लाल डोरे उस नर्तकी के अच्छे वस्त्र हैं। हाव-भाव के सांगोपांग अभिनय में कुशल होना कनीनिका और नर्तकी में सामान्य धर्म है। त्रिविध कटाक्ष संगीत के तीन अंग—गीत, वाद्य और नृत्य हैं। अनुरंजन दोनों पक्षों में सामान्य धर्म है। नेत्रों के तारे ही तार (ताल=मंजीरे) हैं, जो नृत्य के 'सम' (काल का वह भाग, जहाँ गायक, वादक और नर्तक आकर मिल जाते हैं) पर बज रहे हैं। पलक 'थाप' दे रहे हैं और नेत्र मृदंग हैं।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय, तो इस रूपक में कुछ सूक्ष्म विशेषताएँ हैं। वस्त्र अपने-आप में धारणकर्त्ता को लिये होते हैं, इसीलिए पुतली के चारों ओर विद्यमान डोरों को कनीनिका-नर्तकी का वस्त्र कहा गया है। साधारण नर्तक शरीर के अनेक अंगों के द्वारा जिस भाव का अभिनय कर पाते हैं, कुशल नर्तक उन सब भावों को केवल नेत्रों से अभिनीत कर देते हैं। पुतली शरीर का अंग-मात्र है और नर्तकी शरीर के समस्त अवयवों से युक्त होती है, इतना होने पर भी सम्पूर्ण हाव-भावों के प्रदर्शन की क्षमता यहाँ उपमेय और उपमान का साधारण धर्म है। बात केवल यहीं समाप्त नहीं होती, जो काम नर्तकी (उपमान) समस्त अंगों का सहारा लेकर करती है, वह कार्य कनीनिका (उपमेय) केवल एक अंग होकर कर देती है। अतएव, यह अलंकारध्वनि का उत्कृष्ट उदाहरण है और यहाँ व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

त्रिविध कटाक्ष, केवल संख्या-साम्य को देखते हुए ही 'संगीत' (गीत, वाद्य और नृत्य) में नहीं बता दिये गये हैं, अपितु गीत का कार्य आकृष्ट करना, वाद्य का श्रोताओं में चंचलता उत्पन्न करना और नृत्य का कार्य गीत और वाद्य के प्रभाव को उपरंजन के द्वारा अभिवृद्ध कर देना है। आकृष्ट करना, तड़पा देना और मोह लेना त्रिविध कटाक्षों के भी गुण हैं, इसीलिए कटाक्ष और संगीत में सादृश्य ढूँढ़ा गया है।

मंजीरों का आधार नर्तकी होती है। पुतली नयन-तारों को अपने-आप में धारण किये हुए है। मंजीरे भी वृत्ताकार होते हैं और आँखों के तारे भी। इसीलिए, इन दोनों में साम्य देखा गया है। पलक 'थाप' है और नेत्र 'मृदंग'। नेत्र और मृदंग का सामान्य धर्म क्रमशः पुतली और नर्तकी को अपने-आप में प्रतिष्ठित करना है। मृदंग, ताल का व्यंजक होता है, और 'ताल' (तल् प्रतिष्ठायाम्, घञ्=ताल) में गीत, वाद्य और नृत्य की प्रतिष्ठा (स्थापना) होती है। यही प्रतिष्ठा उभय पक्ष में सामान्य धर्म है।

ऐसी रचनाओं का आनन्द लेने के लिए साहित्य और संगीत दोनों की मर्मज्ञता अनिवार्य है।

५७. कृष्णानन्द रागसागर :

इनकी रचनाएँ साधारण कोटि की हैं, जिनमें ध्रुवपदकारों की परम्परा का पालन-मात्र किया गया है। यथानिर्दिष्ट ध्रुवपद में नवाब गाजिउद्दीन हैदर की प्रशंसा की गई है :

ए गाजुदीन हैदर पातसाह शाह जमन
 पिय कब आवेंगे मेरे घर सजनी ।
 चिर चिर जीयो ध्रुव धरन तरन जोलों,
 मेरु पवन पानी राज करो दिन रजनी ॥
 गुनी पंडित नायक गावे मन इच्छाफल पावै,
 दुख दारिद्र घूर तजनी ।
 अचल राज करो महिमंडल में वैत अशीश,
 यही रागसागर अविचल रहो मन रजनी ॥^१

५८. मियाँ ज्ञानी :

इन्होंने देवी की कृपा को अच्छे संगीत की प्राप्ति के लिए कारण मानते हुए उनसे कृपा-प्रार्थना निम्नांकित ध्रुवपद में की है :

ग्यांन नाद धरें सुर बुधि पाउ जब हो प्रगास भमानी ।
 सीषत सुनत रहत धरनि मुरनि सौं लेत तांन रसषानि ॥
 उत्तिम मधिम प्रकाल (प्रकार) सीषि सोचि संगति गुर तें पाईअत कहें मींआं ग्यांनी ।
 जब गुनीअनि मन मांनी कृपा कीजै भमानी नंगकोट रानी ॥^२

५९. अचपल :

इन्होंने प्रधानतया ठुमरियाँ लिखी है, परन्तु रागमाला में इनकी कुछ ऐसी रचनाएँ हैं, जो ध्रुवपद की परिधि में आती है और जिनमें पाटाक्षरों का प्रयोग है ।^३ जबतक इनके अन्य ध्रुवपद प्राप्त न हों, साहित्यिक दृष्टि से इनके स्थान का निर्धारण सम्भव नहीं है ।

६०. कवि गोपाल :

इनकी इस प्रौढ रचना में गणेश की स्तुति है, जिसमें व्यर्थ शब्द कोई नहीं है और जो ताल और छन्द के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है, साथ ही द्रुतलय में गेय है :

गवरी नंदन गजवंदन, जगईस परमानंदन,
 गजराज मस्तक सुंड डुंड, कर त्रसूल धरंत ।
 चंद्रभाल सिद्धर सोहै गुन अपार अनंत इक दंत
 गनपति विघन हरता सुख सहाइ करंत ।
 प्रवंद बलन प्रचंड कहिअत कोटि विघन हनत ॥^४

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम, भाग पृ० २१४ ।

२. रागमाला, पृ० १२४ आ ।

३. उपरिषत्, पृ० ६४ अ ।

४. उपरिषत्, पृ० २०८ आ ।

अज्ञातपरिचय ध्रुवपदकारों की रचनाएँ

६१. अदारस :

कहा बंठी है री तू नारि उठि चलि पीआ पास षेलि लै होरी ।
 अतर गुलाब और चोवा चंदन और अबीर गुलाल की भरि लै जोरी ॥
 मेरे कहैं तू उठि चलि पीआ पर मति करि मान ऐ गोरी ।
 अदारस मिलि करि फागु षेलि लै अभिचल रहौ राधा कस्य की जोरी ॥^१

६२. आदिनराइन :

सिबू हर रे गंगाधर रे कांस तजन मन चिन्तामनि कल्प ब्रह्म कांस धेनि मन संपूरन
 करि रे ।
 करि असूल त्रैलोचन मांत मंतंग कालकट अंबर रे लीलकंठ भसम भूषन रे फुनि
 मन मुनी मान मुद्र षपर घर रे ॥
 चंड करन नव कुंडि मंडित श्रवन अषंड हर लेके तंडव सिवराजत मुष मंडित भंड
 भंड भंडासुर भानन रे ।
 दंड दंड दानव कुल दैवतरे करि प्रताप सुर नर मुनि रंजन रे ता तीश्रम औ अ
 अश्रमअया आदि नराइन कवि भनत गीत श्री उरद तु वदंत रे अवमतिफल
 (अभिमतफल) दाइक नाइक जनु प्रीश्र करि रे ॥^२

६३. इस्करंग :

राजस्थानी-भाषा पर होरी-शैली का प्रभाव दिखाने के लिए इनकी प्रस्तुत रचना का उल्लेख किया जा रहा है । रचना घमार ताल में गेय है :

उभो अगा नैनी जोवै थारी गैल मध
 छकौ बालम आजौ म्हांरे मैं हैंल ।
 दारुडी पिलावै सावां रैनि जगाओ
 इस्क रंगीली रसीआ छैल ॥^३

६४. खेमरसिक :

बैनी निरषत भुजंग तजि पताल लोक
 गऐ जे द्रग देवै तैं मीन जलज दुरे ।
 छवि निरषत कलाहींन उड़गन ससि भूअ ईस हसन
 दसन दामिनि दुति उर अनार दरकि मुरे ।
 सिंघसकुच कट निहारि लंघन दस कीयैं चारि पावस तन जरि जरि ।
 कंचन तन वारि वारि पैम रसिक छवि निहांरि डारों तिनुका टोरि ॥^४

१. परिशिष्ट आ, १३५ ।

२. रागमाला, पृ० ८६ आ ।

३. उपरिबत्, पृ० २६६ अ ।

४. उपरिबत्, पृ० १८६ अ ।

६५. जुगराजदास :

सर्वाणी सर्वकलाशक्ति सारदा सरस्वती,
 श्यामा सुन्दरी सुखकरनी दुखहरनी ॥
 कामरुकामाख्या कामदायनी काली,
 कल्याणी दुष्टहरनी ।
 कमलवदनी करणकारणी काश्मीररानी,
 कैलासी कालहरनी ॥
 परमेश्वरी पार्वती परमपुण्यपावनी,
 जुगराजदास श्यामवरणी महाकाली तारणतरनी ॥^१

६६. तानवर :

वर्ण में पवित्र ब्राह्मण पशुन पवित्र गऊ
 भोजन पवित्र घृतसार ।
 जल में पवित्र गंगाजल देवन में पवित्र विष्णु महेश,
 तृण में पवित्र कुशतार ॥
 धातु में पवित्र सोनो पत्र में पवित्र तुलसीपत्र,
 पोहाप में पवित्र पारिजात पछिन में पवित्र हंसप्यार ।
 कहे कवि तानवर तानन में पवित्र तानसेन,
 नाम में पवित्र हरिनाम उरधार ॥^२

६७. तानवरस :

विद्या में नाद विकट शास्त्रन में न्याय विकट गढ़ में
 लंक विकट लोक में विकट सुरलोक देव विकट हर जान ।
 पशुन में विकट सिंह मुनिन में विकट दुरवासा
 मणिन में विकट कौस्तुभमणि पचभूत में विकट अग्निमान ॥
 पछिन में विकट गरुड़ उदधि विकट छारोदिक
 अवतार विकट नरसिंह मीन विकट मकर गीत विकट संगीत प्रमाण ।
 कहत कवि तानवरस सुर विकट नामि,
 गायन तान विकट तानसेन जाको सुयश बखान ॥^३

६८. नूररंग :

कट लचकावत भौहैं मटकावत औसी ठोठ निलज यह दइआ ।
 जहाँ पावत तहाँ पकरि रंग में बोरत है हलधर कौ भइआ ।
 नूररंग कहैं या कौ तकत है जैसी होइगौ ब्रज कौ बसइआ ।^४

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ४४ ।

२. उपरिवत्, पृ० १३२ ।

३. उपरिवत् ।

४. परिशिष्ट आ, १३२ ।

६६. प्रेमरंग :

प्रेमरंग होरी खेल मचाएं । जो न सुनी वैषी रीं सजनीं सो नैननि बिषझाएं ।
हरि सों रची मची मति मेरी अब नतु मैं सकुचाएं ।
तारी बं बं हसि ब्रज सगरौ लाज अबीर उडाएं ॥
साँची कहौ सुनौ यह सब ही उनहीं कौ गुन गांएं ।
गोकुल वास कान कौ संगम फेरि जनम कहां पांउं ॥^१

७०. महानादसेन :

प्रथम अलाप ठीक तान शुद्ध अक्षर सो कीजिए प्रमान ।
सुरताल श्रुतिग्राम मूर्च्छना की वानी सो करो गुनी जन गान ॥
और को कह्यो न माने हिय जिय हठधरे याही है अतिमूढ़ज्ञान,
नाद ही को करविनान ।
महानादसेन कहे गुण के जानकार एक आद होत है तुम बुझो जान सुजान ॥^२

७१. मुरसद :

मेरे मन अल्ला अल्लाहु रट रे रसना ज्यो करे आय ।
निशि दिन ज्ञान ध्यान और जप मुरसद को यह सीख सीख ले सप्तधाय ॥^३

७२. रसरंग :

जो पीअ तोसों कहत सषी सो पीअ है प्यारी राधे संग ।
वह वैषी जमुना कुंजबिहारी नितंत मोहन भयो रस रंग ॥^४

७३. रामराय :

तैं बस कीनो री प्यारी नंद नंदन वर गिरधारी ।
तुअ मुष वैषत चंद लजावत तो कों नही सुधि मतचारी ॥
तेरौई ग्यांन ध्यांन तेरौई सुमिरन, तेरी रट लागी रहत निसुदिन री ।
रामराइ प्रभु तेरे रूप लुभ्यांनो विकानों अनमोलौ श्री वषभान दुलारी ॥

७४. लक्ष्मणदास :

शिवसुत गणपति तैं ज्ञान पावैं अनेक प्रकार जाते अति ही बुध आवैं ।
गायन विद्या सब निगम मूल चार वाजे सुरवाणी सों गावैं ॥
गिरिजा को नन्दन आनन्दकन्द जगवन्दन सब देवन में सोहावैं ।
लक्ष्मणदास पै अपनी मया कीजो दीजो मन इच्छा फल पावैं ॥^५

१. रागमाला, प्रथम भाग, पृ० २४३ अ ।

२. रागकल्पद्रुम, पृ० ५१ ।

३. उपरिवत्, पृ० ५६ ।

४. परिशिष्ट आ, १३४ ।

५. रागकल्पद्रुम, पृ० २११ ।

७५. वंशीधर :

सब मिल गावो बजावो मृदंग, आज हमारे लालन को बरसगांठ ।
कनक थार भर मुक्ता हसकर करि न्योछावर पायो ॥
नव नव पल्लवन की माला द्वारन द्वार बंधायो ।
वंशीधर प्रभु को जस सुनियत है सबही को लागत सुहायो ॥^१

७६. सबरंग :

लाल लै गुलाल सषी मेरौ मुष गंहे मींडो गूँज मुरकी नय की इनि बरजोरी ।
कंचुकी दरकी मोरी अंक भरि लीनी इहगति कीनी हैं मोरी ॥
लाल लगर लगराई करत हैं गोरी दिननि की थोरी ।
जाही नगर में अब सब रँग सौ खेली हैं मनभाई होरी ॥^२

७७. साजन :

धुनि सुनी श्री मोहन के मुष मुखली बाजी री आज ।
षरजकधर की मूरति नौछावरि सुर नर किनर मुनि कों साज री आज ।
सप्त सुर तीनि ग्राम उनंचास कोटि ताननि गाई री ।
साजन कौ प्रभु लेत बलईआं जसोधा माई री आज ॥^३

७८. वाणीविलास :

सुनि धुनि डफ धुकार के सजनी बाजत आवत मधवन की ओर री ।
धूम धमार अवीर नव छायाँ दरसत दूरि ते मुकट मोर री ॥
चतुर बिलार ग्वाल गरभीले से रसभीन सब सोर वोर री ।
वांनी विलास सरसगति नांचत गावत आवत नवलकिसोर री ॥^४

७९. रसनिधान :

देवमणि दिनमणि भान दिन कहां से तिमिर हरत
रंनि तपनि त्रिगुण द्वादश आत्म नेत्र मार्तण्ड ।
हृत्तरम्मपुषा जगतारण जनचक्षु जगवन्दन
पापहरण प्रचण्ड ॥

सूरज सुर सहस्र गृह तू वेजानपति,
अगति तू अगति सप्तद्वीप नवखण्ड ।
रसनिधान सेवको दीज सुदृष्ट कीज
दीजिए सुर ताल अखण्ड ॥^५

१. उपरिबत्, पृ० ६० ।

२. परिशिष्ट आ, १३३ ।

३. रागमाला, पृ० १२४ आ ।

४. उपरिबत्, पृ० १३८ आ ।

५. रागकल्पद्रुम, पृ० ७३ ।

(उ) उपसंहार

विक्टोरिया का शासन आरम्भ होने पर ध्रुवपदकारों को देशी नरेशों का आश्रय लेना पड़ा। पाश्चात्य सभ्यता का जितना-जितना प्रभाव देशी नरेशों पर पड़ता गया, संगीत, राजदरबारों से उतना-उतना ही दूर होता गया। रामपुर, जयपुर, उदयपुर ग्वालियर इत्यादि कुछ रियासतों में ध्रुवपद की लकीर पीटी जाती रही। इस युग में ध्रुवपद-गायक हुए, परन्तु उल्लेखनीय ध्रुवपदकार नहीं। रचना तो दूर, अनेक ध्रुवपद-गायक तो प्राचीन रचनाओं का अर्थ तक न समझने के कारण उन्हें अत्यन्त भ्रष्ट रूप में चिल्लाते रहे। इनकी दृष्टि केवल सांगीतिक चमत्कारों की ओर थी। रस की तो बात ही क्या, वाच्यार्थ की भी उन्हें चिन्ता न थी। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारत के एक ऐसे प्रसिद्धतम गायक, जिन्हें कि उच्चतम राजकीय सम्मान प्राप्त हो चुका है, निम्नांकित कृति का गान करते हैं :

हर बिन नायक लम्बूधरो छत्र गोपीजन गाय बजाय बृज में।

ऐसो री गावै तान सुनावै नंद छैल नीके गाय सुनाय गुनीजन में।

इस रचना में 'लम्बूधरो' लम्बोदर की कपाल-क्रिया का परिणाम है और 'छत्र' चतुर की 'हर बिन नायक' की संगति बिठाना तो ब्रह्मा के लिए भी दुस्साध्य है ! इस रचना का एक रूपान्तर निम्नांकित है :

हर विनायक लम्बोदर चतुर गोपीजन गाय बजाय बृज में,

ऐसो री गावे, तान सुनावे, नंद छैल, गीत छंद और ध्रुपद।

नीके गाय सुनाय गुनीजन में।

'नंद छैल' और गोपियों के गाने-बजाने में 'हर' और 'विनायक' क्यों, कैसे और कहाँ से आ घुसे, यह जानना असम्भव है।

'गुनीजन में' आकर 'नंद छैल' और गोपियाँ किसके दरबार में मुजरा कर रहे हैं, यह रहस्य योगियों के लिए भी अगम्य है !

संगीत के महान् उद्धारक कहे जानेवाले स्वर्गीय भातखण्डे महोदय ने यह गोरख-धन्धा जैसा-का-तैसा अपना कर केवल 'बृज' के स्थान में 'बिरज' कर दिया है और 'ध्रुवपद' के पहले 'धोरू' और जोड़ दिया है।

प्रतीत होता है कि कोई खाँ साहब गणेश-स्तुति से सम्बद्ध किसी ध्रुवपद के आदिम वाक्यांश 'हरसुत विनायक' को 'हर बिन नायक' कह रहे हैं और उसके पश्चात् भ्रमवश किसी ऐसे ध्रुवपद के अंश जुड़ गये हैं, जिसका विषय कृष्णलीला है। इतना अनुमान कर लेने पर भी 'नीके गाय सुनाय गुनीजन में' की संगति नहीं बैठती।

यह स्थिति इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि संगीत के आचार्य, युगप्रवर्तक तथा न जाने क्या-क्या कहलानेवाले साक्षर व्यक्ति भी अर्थ की उपेक्षा पूर्णरूपेण करते थे। ऐसी स्थिति में ध्रुवपदकारों के जन्म की आशा शशक-शृंग के दर्शन की अभिलाषा-मात्र है।

आज गीतकारों की कमी नहीं है, परन्तु सचमुच गेय तत्त्व के मर्मज्ञ वाग्गेयकारों का सर्वथा अभाव है, जो रस-परिपाक के समस्त पक्षों से अवगत हों और वाग्गेयकारत्व की कसौटी पर खरे उतरते हों। उन्हें कोई एक धुन रटी होती है और उसमें वे अपने समस्त गीतों की ढेर कवि-सम्मेलनों में लगाया करते हैं।

दूसरी ओर इन गीतकारों की रचना को गेय रूप देनेवाले वे व्यक्ति उन गीतों की खींच-तान स्वच्छन्दतापूर्वक करते हैं और उनका 'कार्टून' बना देते हैं, जो इनमें साहित्य-पक्ष की ओर से विरक्त होते हैं। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि गेय काव्य के साहित्यिक और सांगीतिक पक्ष साथ-ही-साथ एक ही हृदय से उत्पन्न होते हैं, यह साझे की दूकान नहीं है। बाईं आँख के काने और दाईं आँख के काने दो व्यक्तियों को साथ-साथ बाँध देने से दो आँखवाला एक व्यक्तित्व तैयार नहीं होता। संस्कृत की एक प्राचीन उक्ति है :

सङ्गीतं चापि साहित्यं नृणामेतद्द्वयम् ।

एकेन विकल. काणः द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥

अर्थात्, संगीत और साहित्य मनुष्य के दो नेत्र हैं, इनमें से एक का अभाव उसे एकाक्ष और दोनों का अभाव प्रज्ञाचक्षु बना देता है।

प्रज्ञाचक्षु कहे जानेवाले महाकवि सूरदास उपर्युक्त दोनों नेत्रों से सम्पन्न थे। यह कौन नहीं जानता कि उनके पूर्ववर्ती विद्यापति 'मिथिला-कोकिल' कहलाते थे। काकली के बिना कहीं कोयल का अस्तित्व होता है ?

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का लक्ष्य जहाँ गेय रचनाओं की ध्रुवपद-परम्परा का परिचय देना और उनका निर्माण करनेवाले ध्रुवपदकारों के साहित्यिक महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना है, वहाँ युग की इस कमी की ओर भी ध्यान दिलाना है, जो हिन्दी-साहित्य में वाग्गेयकारों के अभाव से उत्पन्न हुई है। उस शास्त्रीय परम्परा को नवजीवन देने की ओर यदि हिन्दी के माननीय विद्वानों और साहित्यस्रष्टाओं का ध्यान गया, जो कि उत्तर भारत में अभिनयगुप्त के पश्चात् उच्छिन्नप्राय होती हुई कालान्तर में नष्ट हो गई, तो हमारा यह नगण्य परिश्रम सफल होगा।



परिशिष्ट 'अ'
आश्रयदाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद
(रागमाला से संगृहीत)

अलाउद्दीन खिलजी

प्रताप :

भीमपलास-सूरफाकता, ८६ आ

घकदलन रे प्रवल्लनाद सिंघनाद वल अपवल वक्कवर । कुडान धीर अडान
मिलवत चपल चाप अचपल अक्कअर । गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर । साहिनिसाहि
अल्लावदीं तपै डिली नरेस जाके वसुधा सुचित तुअत्तक्कधर ॥१॥

मानसिंह तोमर

प्रताप :

गन्धार-तेवारा, ३२ आ

तुअ सुनत उनि पग डगे कहा करौं तेरौ वषांन तू महाजांन गुनिअनि देत गजदान
दिल्ली नरेस रे, तेरौ वाजै बम्म रे चढि फौजै संगनि और अमांन लीअौ ललकारि माचौ
हंकारि रे । तू उगीअौ सूरज मांन रे । धारू गावत गोपाल राजा मांन चंकवै सजांन रे ॥२॥

श्रेष्ठ वस्तुएं :

षट-अपताला, ५८ अ

प्रथम मनि औअंकार देवनि मनि महादेव ग्यांन मनि गोरिष वेदमनि ब्रम्हा ।
विद्यामनि सरस्वती नदीनमनि गंगा भक्तमनि नारद नितंमनि रभा । ब्रछमनि कल्पब्रछ
गजमनि औरापति षर्ग मनि कलवार राग मनि इद्रा । भनत गोपाल सुनौं हो राजा मांन
द्यौस मनि सूरज रैन मनि चदा ॥३॥

धारू :

धानी-तेवरा (धारू), ८६ अ

अत गत मत्त गाअैआ ममग मगे ममगे मगेम्यंगे म्माग । ताधम कटे ता ताता कै
क्राक नांनां झेकझे । लैलैकभुमकमदन रे ततकाल नितं अपार रे औ आ औ धै धै चंदा फुनि
फुनि मन में । तडक्तकझूमल जुगलरे ततकाल नितं अपार रे जह भार रे धारू गावत
गोपाल राजा मांन चतुर उभै ॥४॥

राजा राम

मंगलकामना :

वागेशुरी कांन्हरा-चौताला, १८८ आ

अचल चक्रवती वघेलौ चक्रता नरेस गुर गनेस बुधि सुरेस सकल विद्या विनानी ।
छत्र पाट सिंगासन अभिचल रहौ जौ लौ दधि सुमेर भुअ लौ सुलितानी । सप्त दीप नव
षंड दसौं दिसा जसु छायाौ षट दरसन निवास परम ग्यानी । बीरभान जूं कौ नद करन
ष (विशेष) मंहाराजा राजा रामचंद्र इंद्र सनमानी ॥५॥

दरबार :

षट-चौताला, ५७ आ

देखी इंद्रलीला इंद्र सोभा इंद्र कैसो दरबार थकित भऐ है अचल मुनी । षंडनि में भर्तृषंड, दीपनि में जंमू दीप, ऐसैं दिपत जैसें समंद हीरा । ऐकनि बुलाई देत ऐकनि कों बकसत जरवाफ चीरा । राजा राम पीय तुम्हारो दरस देखे जिनिके आगे गुनी करत क्रीला ॥६॥

श्यामा :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ आ

आली री बदन निर्मल बरस या चौदसे ग्यारै बरस लागी बतीआं करन भोरी बांम । बारही बरस अेडी बेडी सी डोलत तेरे ही बरस लागी पीय तन हेरन भूलि रही अेह धाम । हौं जु पाई जीअ की सोरह कला संपूरन आंनि व्यापौ तन काम । मेरे कहे तू उठि चलि राजा राम पीअ पर घरी घरी पल छिन छिन सुषु पावैगी अस्ट जाम ॥७॥

नयन-तुरंग :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ

आली री जिमि तुरंग बनाई राखीअै राजाधिराज कों विचित्र षदाई री कांम । पलकनि कें कर जीन पुछीअत भौहे मटुकी लाल डोरे पारे अत ही सुरग अंजन लीकल गाम । पुरीअ कटाछि कहावत आवत मानों अलकै उरझी ताजन स्यांम । पैहलें साट बनाई रीझे राजा राम छत्रपती तन मन दीनही इनांम ॥८॥

दानशीलता :

पुरीआ-चौताला, ८१ आ

दये जौ तुरंग राजा अधिराज ऐमोल अमोल तिनि कौ भयौ जगमगाट जराउ जीनै । अनेग गज कों न गिनै बातिनि पाऐ अैरापति सम के अैसे दान दीने कुंज कुंज दूरि बीनि लीनै । षट दरसन कौ निवास महंअर्म ग्यानी लाषति दीनै करोरनि दान सुषकरन । राजा राम छत्रपती मोजदरीआ दालिद्र भजन ॥९॥

बसन्त :

हिन्दोल-चौताला, २५० आ

अहो नीकी घरी नीके दिन नीके महरति नीके गुनीअनि बसन्त अस्थापी । बेल निवारी सौनजुही दै गुलाल बरन लाल पौहौप जाई दीनौ री भौर प्रान प्यारे कौ फुनि पंचम अलापी । बरन-बरन अबर तैसेई राजत गावत री विद्याधर जब अ्रव(न) नि मै व्यापी । सकल जाचक तिनि कौ भातिनि भातिनि दौनौ जब रीझे रामचद्र राजा प्रतापी ॥१०॥

सभा-संगीत :

टोड़ी धीमा-तिताला, ६५ आ

जहाँ सभा पडित निरत कालीन होइ ते मनरजन अ्रवननि दुषभजन कलाअंत कलानिधि नाम । जोई जो राजा राम और जो कौन काम सुनि चक्रवती तहा रिधि सिधि नाम । प्रथम ही गइ अलापि रसु राखि विनु रीझौअै कछू कहै अदना । जिनि जिनि के नेत्रनि सुषु जीवन कौ फलु सु तौ तुम नीके जानत जाकी सम को मेरे जान कोउ जग मध ना ॥११॥

नादसागर :

मालकोस-तेवरा, २२८ आ

अगम अपार नादसागर की राह तामै तम जिहाज मान आहत अनाहत जंम जानि इकईस मूरछिनां वादवांन बाइस सुरति सौ चलावै । कावि रीति संगीत गीत

प्रवद धुरपत धरु तत वितत जानि ता मध बैठि षरज लगाइ लंगर सप्त सुर मंदराचल
उनचास कोटि सु तान सुध फिराइ मथन करै सु चउदह रतन लेइ निकारि नाम गनावै ।
ओडव षाडव संपूरन वादी संमवादी अतीत अनधत सम विसम तीनि ग्रामिनि के करि
दिषावै । दस विधि गमकलै आरोह अवरोह मंद्र सो मध तार स्फुरत प्रत्याहित उपज
करि धरनि मुरनि अलापचारी सघन औ सुर बरज जानै अस्थान चारि विचारि राग लीऐ
निकारि अनेक रतन संगीत रतनाकर सौं कहि माल धूअ माठादि ताल समेति गाइ रिझाइ
गुनी जन राम कौं तब भावै ॥१२॥

नयन :

सुध मलार-चौताला, २७५ आ

अति सुघारे री तेरे नैननि ता मध गज रंग मीन उज्यारे । षंजन मीन अगहू ते
अति चंचल अमी भरे अनिआरे । आजु कौ वानिक वनि रह्यो आली पुतरी स्याम
तामध सोहत तारे । निरषि निरषि (!) दुराई चतुराई राजा राम पीअ प्यारे ॥१३॥

रूपयौवनगर्विता :

सारंग-चौताला, ७२ आ

जोवन गरुर अति गिनत काहू न फुनि विद्यावर री और पीआ की मया तै । तूअ
प्रताप तेज और सौतै घटि लागै री जैसे दीपक मलिन हेतु और लीय लागत नीकी न यातै ।
चंदन जोति कुंदन चंपी वरनौ सब सौतै छीन भई तेरी छवि देखै तै । राजा राम कौ
अंगु संग पायो सुष समूह न टरत छत्रछाया तै ॥१४॥

द्वितीयवचन, मानिनी :

ईमन पूरीआ धीमा-तिताला, १४१ आ

मान नरम करि मन अग्यांन तेरौ आली जाई तै सुख आननि । हौं जौ आई तोहि
लैन उठरी गौयारि नारि मैं तो तेरौ कहा कीनौ तू जौ रुसि रही कौन काम । तेरी री
अरति कौ पठई हौं पिआरे लैन उठि चलि मेरे कहै त्रसुष करि धांम । दोछ न दीजै मो
बापुरी कौ चढ़ाई बड़ाई राजा राम ॥१५॥

चिप्रलब्धा :

पूरबी धीमा-तिताला

मोहि गिनत अवधि गई तन मन छीन भई पीर न पाई पीअ मोर जीअ की ।
पतीआ न पठई प्यारे पीतम तुम औसी क्यो बिसारि डारी षवरि न लई उनि मो जीअ की ।
घरी घरी पल छिन जुग से बीतन लागे देखौ धुनि कहारी अनि के जीअ की । राजा राम पी
अनत बिलमि रहे कौन सी टेउ परी पीअ की ॥१६॥

इस्लामशाह (सलीमशाह)

नायिका :

ईमनी बिराउरि-जलद, ३८ आ

गोंहीं गोंहीं ते रिझायौ सुलितांन सलेम नांगर । तू ही बिचित्र तीअ, तू ही चतुर, पीअ
तोसों री परम सुषु पावै ॥१७॥

नायिका :

हमीर-चौताला, ११२ आ

आनंद भयो आली, मेरे प्राननि कौ सुष, देखत ही पिया की मुष । जो कछू विथा
व्यापति मो बिरहिनि पर भूलि गए तनमन के दुष । हों तौ तिहारों सुष चाहत कीनी

नौछावरि पग परसत रोम रोम तब होत संतोष । पात साहि सलेम साहि मनसा के दाता
तब भए सुष ॥१८॥

नायिका :

ईमन-चौताला, ११२ अ

जी तौ तेरी आनन पर कर धरे चद । चाल चलत तू री जोवन अति मति गइंद ।
एक रूप देखिबे की कही न जात असलहेम साहि की तो ही सों भांभरि सुष आनन्द । जाते
अति ही हासि लेत लटपटात दै रही मन फद ॥१९॥

दौलत खाँ

रूप :

मारऔ-चौताला, १०१ अ

भाई प्यारे की मुरति कौ री भुज प्रकाश काहू पर कहौ न जातु री मन ही मन
आनीये । जेती सिराहना कीयौ चाहत सु उचरै जाके तेई चित जानीये । उपमा काहू की
दर्द न जाई दूजौ रचौ हो तौ ताकी समझ गति बांनीये । ग्रैसौ जु प्यारौ दौलति षान
जीवत कौ पलु तौ गिनीये वाके संग सुष मानीये ॥२०॥

मनावन :

छाया-धीमा-तिताला, १४५ अ

मौसों रूसनौ हो किल करत हौ प्यारे जौ मोते कछू चूक परी ताहि तुम हीं सुधारन
हारे । जब तौ गरै लगाई जीअ मे उताउल भई पीति बचन तजि अऐ न्यारे । कौन जंह
सीष दर्द कहा तुम जीअ धरी मोसौ यौ कहा हा हारे । हसि करि बूझत उतर काहे न देत
दौलति षान उज्यारे ॥२१॥

बाजबहादुर

आगमिष्यत्यतिका :

गोरसा रंग-चौताला, ७६ अ

सुनत भनक परी पीअ आंमन की, जातें प्यारी आभूषन सम्हारत । कबहूँ द्वारे षड़ी
होत कबहूँ भूअन ऊपर होत सषिनि संग ग्रैसी चोंप लगी मन भांमन की । अलबेली अलकै
छूटीहै कुचनि पै और दीअें बेदी सोभा लामन की । रूपमती पीअ बाजबहादुर इतनी कही
समझावन की ॥२२॥

विरहिणी :

नट-चौताला, ८७ अ

बिछुरि दुष दीनों हो प्रान मेरे आवत कैहं न लाज । जब जु लालन संग निकसि
न गऐ अब धौं रहे कौन काज । पापी प्रान रहत घर भीतर करे ही चाहत सुष राज ।
रूपमती पीअ हम सो न दुषीआ कहा धौ बहादुर बाज ॥२३॥

वाढ्ढंक्थ :

नटनाराइन-चौताला, ८८ अ

जीवन जात दीये दगा । और रंगनि की कहा कहौ तोसौ जैसे कसूमी रगा । कारे
काग गऐ घर अपने आऐ सेत बगा । रूपमती के बाजबहादुर कोऊ न जीवै सदा ॥२४॥

अकबर

प्रताप :

महीअरी टोड़ी-चौताला, ५२ आ

धनि धनि तू चकवती नरेस जलालदीन सब देस लीअे कीअें जेर जबर अपने षर्ग के वर । तूअे सब बिधि प्रथीपाल परवानन उदीआचल भरतेई नेहेचे जहां तहां सकल भूपनि पर । तौ सौ तुही ऐक अब बली माहासुभट नेहेची अली तूअ सभाई तूअ समान आननि रचौ बिरंच कौन देहों पटितर । चर चरंजीअों जौ लौ तौ लौ धुअ धरनि तरनि गगा जमुनां जल क्षत्रपती साहिनिसाहि दालिद्र हर ॥२५॥

अकबर का ज्ञानित्व :

नट-चपक

मेरै को घर-घर डोलै घट तै ग्यान बोलै कैधौं अल है डोलै । मांषन छीनि लीयौ साहि अकबर को मेरै छाछि बिलोवै आंगन डोलै घर तै ग्यान बोलै ॥२६॥

मंगलकामना, अकबर बुजुर्ग मुर्शिद :

राग खट जलद-तिताला, ५८ अ

आलम पनाई साहि अकबर चरजेवी होई जाके निस्तारन कों करों निहाल अपने सुभाय । अल्ला दीयौ तषत मो पर मेंहेरबान सकल नरन मे । प्रभात हो तब ही परसे पाय । जनक जनम के दुष दालिद्र काटत है और देत अघाई । साहि अकबर बुजरक (बुजुर्ग) मुरसद (मुर्शिद) जामे अलाहि (अल्लाहि) पाइ सोई न्यामति देत अघाइ ॥२७॥

सिंहासन :

झसोटी-चौताला, २६३ अ

आओ गाओ सब गुनी छंद महां जान छत्रपती अकबर . । असदल सजि प्रचंड हिनाउ को नंद तषत बैठो बषत हिंदा ॥२८॥

प्रशंसा :

गौरी-परिताल, १०६ अ

साहि जलालदीन कवि रासनंद चतुर जान मान । अनेग कवि गिरंथ में जान संगीत मत मत लीने ॥२९॥

प्रशंसा :

नाइकी-चौताला, २०० आ

भुअ लोक पद न तूअ समान अकबर साहि चहु चक आन । कुलिपती ई पातुर छौ यै (!) ऐक छत्र धरै जलालदीन महमद सुग्यान सु मेरे विवष चेतामनि सब गुन निधान ॥३०॥

प्रशंसा :

टोड़ी-वरा, ६५ अ

कलि कर पूरी मदार रमदाता अदेगनाल सुनि गंभीर अटल मेरे जान । जगपती जग उजिआरौ भुमिभार साहि जलाल प्रान प्यारी अटल इद्र समान ॥३१॥

मन्दिर की मुबारकबादी, संगीतज्ञता :

खट-चौताला, ५७ आ

मंदिर तुमकों नवल मुबारष हो यै कोटि बरस लों कीजै राज महाराज । नाना प्रकालनि सों वे जौ मनाई इअत रस रंग छाया काइम दाइम तौलों चंद्रधरन अरु ब्रम्हांड ताज । जिनकी मति आगे और की न देखीं अस्तुति कै केंस करों ऐक रसना मेरें संगीत रतनागर के भेद पढत न्यारे साज । साहि अकबर प्यारी चिरजीव रहौ चरजेवी इंद्र सम

तोहि देंहों ने बरसत चत्रमास तुम द्वादस झर लायौ वै बिनि के गुनी गंधप निस्तारन तारन
बिधनां रचि पचि के समाज ॥३२॥

मुहम्मदी नूर, शरणागतवत्सलता :

सहानां कांन्हरा, जलद-तिताला, १६१ अ

जहां महमदी नूर हुआ हुआ जहूर और न्यामति नित मामूर पूर गुन गंधप गन और
साजै । जे मन प्रतीत करि आवत चरननि धावत अकबर साहि छत्रपती साव करै ते अचल
आराम राजै ॥३३॥

अकबर के लिए मंगलकामना, गौरक्षण, ईशरूपता :

ईमनी-बिराडरि, ३७ अ

राजलीला रेंहो जग पर विस्वबर करै धर्म । जे भूले ते कहै परचाही तू आयु
जगबदन साहि अकबर परम पुरिष परसोत्तम पाराकर्म । पुनि जीव जन्म तन्म मन्म गानि
रछि पा कपाल हो दयाल औतार लीऔ सब सिस्टि पूरन ब्रम । जे ग्यानी भक्त गुन गावे
प्रभु 'सूरति' को अस्ट सिधि रिधि नव निधि ततछिन जगाईये कर्म ॥३४॥

प्रताप, योद्धा-प्रशंसा, व्रजमण्डल-आगमन :

केदारा-जलद, १६७ अ

आयो आयौ रे ब्रजमंडिल साहि छत्रपती अकबर । सप्त दीप नव षण्ड दसौ दिसा नर
नरेंद्र कांपौ थर थर डर । असदल गजदल नरदल प्याददल ऐक तै ऐक जोधा अजगर ।
ऐक तै ऐक सुभट करि आवै पावै कमान गुरज नेगा तंबल समसेर । हिमाउ के नदन पै
बसन न पावत लंक नगर जित तित सुनी अतिदल भारी जलालदीन महंमद कौ
लसकर ॥३५॥

प्रताप, अल्लाह, मुहम्मद, मुइनुद्दीन ख्वाजा :

केदारा-जलद, १६७ अ

गिर मेर चढत चारौ चक कांपौ और आयौ है घर घर घर कीयो रेर । जित
तित तकत भूप न नीद परै ज्यौ ही डर डरानौ साहि अकबर कै त्रासन निसु दिन आपुन ही
और कर बर बरष कीऐ सब जेर । जासौ सम सर कैसे करी जाई जापै अलह महंमद
करम कीजै मौनदी मदति जु बधाई समसेर । ख्वाजा औसो छत्रपती भूअ दल मलन हौं जु
कहत तजि जाइ जान पावै कौन हूं वेर ॥३६॥

प्रताप :

केदारा-चौताला, १६३ अ

ऐ अनभाती बातें हो तुम्हारी प्रवीन अकबर साहि काहि दीजै उपेमां (उपमां) सु
ताहि बताई है जताई हैं छत्रपती साहि जलाल जू । दसौ देस दसौ दिसा इतने नर नरेंद्र
सम को करै को लरैहो को धीरज धरै का की मजाल जू । जो परवान अनुसरत तही तही
भूप डरत मही वाहि पांइ परत तब ही कहत जोई दै जोई मांगीऔ इ रिसाल जू । औसो
रचि पचि बिरंच कानौ सेव आपने कर जानीयै और मानीयै ति निध हो तेजवंत प्रचंड
प्रताप दिनकर जे सब मिलि बिनती करत है तुमको सुनि कपाल दयाल जगपाल प्रथी-
पाल जू ॥३७॥

प्रताप, आतंक, करनाल :

जैत-चपक, १५६ अ

अकबर आयौ रे वैही देस बाजी करनाल । भाजनै होड़ सु भाजै रे सुनि बंम
मीर मुगुल सब राजा राना राउ ॥३८॥

पराक्रम, कश्मीर, गुजरात :

श्रीजलद-तिताला

अकबर दौरि दौरि आवे है बटपारी है सब ठौर । कहूं जीति लई कसमीर धरि
गुजराति बल जह दौर ॥३९॥

प्रताप :

नटनाराइन जलद-तिताला, ८८ अ

तजि मरम भजि रे भजि कंथ जान जानत अकबर नर छाया । चलत समीर मीर
देखिअत चहू ओर जहं सुख सुनीअत अब जैसे उमड़ि धुमड़ि घन उनआया ॥४०॥

अकबर दुल्हा, दिल्ली दुलहिन, प्रताप :

राग खट-चौताला, ५७ आ

दुल्हौ अकबर नरवर दिली दुलहिनि बर पायौ । छत्रकाली जे राजा जिनिहूं ते
गाड़ी सांन पांनी समस (!) बषत प्रताप जगमगायौ । जब दिगानो ऐलि पेलि दीनो है
दुरजन चारों दिसाते भयौं जगमगायौ । बजे निसांन आनंद मंगल गाऐ चरंजेवी हिमाउ
को जायौ ॥४१॥

अकबर का पराक्रम, अनुपमता :

महीअरी टोड़ी-चौताला, ५२ आ

धनि धनि तू चकवती नरेस जलालदीन सबदेस लीअ कीअ जेर जबर अपने षर्ग के
वर । तूअ सब बिधि प्रथीपाल आंन परवांनन उदीआचल भर तेई नेहेंचे जहां तहा
सकल भूपनि पर । तो सौ तुही ऐक अपवली महासुभट नेहेंचे अली तूअ समाइ तूअ
समान आंननि रचौ बिरंच कौन देहौं पटितर । चर चरंजीजो जौलो तौलो धुअ धरनि
तरनि गंगा जमुनां जल छत्रपती साहिनिसाहि दालिब्रहर ॥४२॥

गायक से प्रश्न :

बरबारी कान्हूरा-चौताला, १७६ अ

प्रथम औअं नाद अनहद दूजै आहद आहद तिनि करि छयासुट श्रुत उपजाई भर
कल्लिनाथ हनूमन्त भर्त (भरत) मत सगीत में षैवे कौन धुनि होत तुम प्रवीन गाइनि
हौ तो गाओ तौ करौ अब इत बरवान । सो सुतै कौन कौन केती केती षरजादिक सविद
सविद सुर प्रत ठहरानी बारह विक्रत (विकृत) और सुर वादी संवादी अनुवादी
विवादी तिनि मै होत अहंअंस न्यास तिनि ठौर रूप प्रधान । तिनितै तीनि ग्राम बिस्तार
बिस्तारी स रे ग म प ध नी ध प म ग रे सा रे सा आदि दै दै कै और कई अक तान सु
जानत गुन मांन कीजै प्रवान पंद्रह गमक अलापत छिन वाहि त्रैसटि उनचांस कोटि
(कूट ?) तान ओडव षाड़व कीजै निधांन जाते हो गुन मान नं कीजै आंन जह अगिम
अथाह रनि कोउ जानत संपुरन गुन मांन तौ गाई सुनाओ साहि अकबर के आगै सही होत
विद्या की परिवान ॥४३॥

संगीतज्ञता :

गौड मलार-चौताला, २८१ अ

तार सुरनि मिलिऐ जौलौ जांनि मांनि गर ग्यान के वरन । उगति जुगति जानत
सुध्धं असुध्ध पहचानत रीझि रिझावत कवित कहावत । संगीत मति गति उगति जुगति

धरीअ तब करीअ सुमति सआन । जब रीझे साहि अकबर जाननि मन ग्यांन करत
मांन ते मांन ॥४४॥

संगीतज्ञता :

सुध मलार-चौताला, २७५ अ

तार काल की लै जानत अकबर गुन की है री निधान । जे गुन रूप प्रकालन ते
तुम सब जानतै हौ राग उदै की जा छबि चितई ऐते पर सुरगुरु सुलितांन । राग धाइ
(अध्याय) सुर धाई औड़व षाड़व सपूरन गुनीगंद्रप तिनि के करत बिनांन । सप्त धाइ
संगीत कौ साह जलाल लाल री समाइ जब बैठि गुनीअनि देत विद्या दांन ॥४५॥

संगीतज्ञता, मेधा :

ईमन-जलद, १२४ अ

धा छत्रपति साहि अकबर तान चट गाइनि आछिर चित कबि बात चट पंडित
कैसी तनमन मे आंनत मांनत कैसे । जे कतूंत प्रत तांन गिनत प्रभू जाके ततछिन अनत
ही गनत पर ॥४६॥

अकबर संगीतज्ञ, जगद्गुरु :

गौरी-चौताला, १०६ अ

परगट करि विद्या तूही भरि पूरन काम कोटि जानी सुचित जुगति पुधि जु भली ।
साहि अकबर जगतगुरु जलालदीन उक्ति जामै विनान करत राग रंग महांवली ॥४७॥

संगीत :

टोड़ी-चौताला, ६३ आ

अनूप बांम देषी री भाई नादसमुद्र भरौ अपरंपार संगीत गुर । पंचम साध वीर
चारी (उचारि) जो कहै सारगराइ (शांगंदेव ?) गंधार मधिम सुर । कंद मति असतम-
वन्त (?) कहत विस्त्राषारी जान जानीअ अपने मुष पर । करन साषि दै अस्टसिधि
नवनिधि जाननि मन जानी साहि अकबर जानीअतु तिहू पुर ॥४८॥

प्रशंसा, संगीतज्ञता :

दरबारी कांन्हुरा-चौताला, १८२ आ

सुरपत हू कै वाही साहि तिहारे से गुनी गुन पुरौ संगीत मत सरस सप्त धाइ
(अध्याय ?) के न्यौरे न्यारे न्यारे करि दिषावत है । करतार ताकिटि किटि ताकिट किटि
सुर बीध प म ग रे सा वाजै धिधिलाग धिलाग धुमकिटि तक थुंन तकट थेई थेई ते प्रबंद
वद करै संकीरन सप्त राग बिवेष बिवेष करि कै वर साहि तुम ही आवत है । देव गुनी
गंद्रप ते सब मोहि रहे सो देषत सुनत तेरी सभा असो को गुनी जाकी धीरज न आवत ।
गावत बजावत गुरनि गुरु जलालदी महंमद अैसे जाके चहू दरसन संतोष पावत ॥४९॥

संगीतज्ञता :

केवारा-चौताला, १६५ अ

प्रथम गुरनि मांनि कान गैहै वरतीअ अषवत डर हो राग मूरति सूरति जा मै
ग्यांन सरंस सांनी । आंड तिलक गुरै पलटि तार समझि देषिअत तिनिहूं मै समझि बूझि
होत गुर ग्यानी । सम बिसम आतीत आनाघात माते मते तेउ बेदनि जानी । जगतगुरु
जलालदीन आवै कृपा करि मो पर दूध की दूध पानी की पानी ॥५०॥

मूर्ख गायक-वर्णन :

आसाधरी-चौताला, ५३ अ

जो ध्रुपद ना सुध अछिरनि उक्त जुक्त न संगीत राग बनावै । जे अग्यांन गुनी मन को पचावे भिम से निगुरनि को कीयौ गावै । नौरस राग जाने नअ लोकमध वाद री कबि कहावै । साहि अकबर की सौ मोहि तौ दुषं और हासी याही ते आवति अरथ पूछे ते कबि नांही करि आवै ॥५१॥

वसन्त :

हिन्दोल-चौताला, १५० अ

रितुनि को राजा आयौ हौ बसंत वीर चत्र दिसां प्रगटौ सबनि मानौ आनंद । भांति भांति अरगजा अबीर भरतलाल कौ रहसि लहै अगसुगंद । विद्या द्रुम मोरे अगिमु जानि पुरले भमर आसु लौ ले भए मध मद । यह बिधि धामार षेली अकबर साहि प्यारे सुरति अंत के कंद ॥५२॥

शरद्, आगतपत्तिका :

अडानां-चौताला, १६५ अ

ग्रीष्म बीती हिनु वरषा रितु तेऊ गई री अस आई है रितु सरद । यह रितु जैसी पावस होति दूनी यह दुष पी परी भई जैसै हरद । सूनौ भवन नैना भरमत आली री जैसै पासे पीछै पीछै फिरत नरद । यह विद्या जानि आनि मिले साहि अकबर तब तै गयौ दुष दरद ॥५३॥

वर्षा :

ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ

पावस रितु हों न जानों मानों इंद्र पठाई साहिनि साहि को बधाई । अदगी घनघोर तेउ संग करि धाए पवन तैसी बग पंथ सेवक वरन वरन अंवर तेउ अबीर डारे और नितं करत दामिनि पातुर चातुर नाइक सौंधाई । और जो बूदिनि बरसत मेरे जानि नोछावरि और जो कला गायें राग सुहाई । सही साहि अकबर पर वारने होत अठारा बास बनसपतीनि कौ तभूअन नर नारी सिस्टि मध को को न धाए ॥५४॥

शाहजादे का टीका : 'व्यास' की कृति :

नाइकी-चौताला, २०० अ

आली री गगन धार, ता मै उडगन पौहौप, सकल वरन वरनबादर चंदअबीर लीजै है री अवछरा (अप्सरा ?) साहजादे कौ अहै बिधि इंद्र कीयौ टीकौ । सेत सेत अरापति तुरंग अति सोहत तुअ नारद मगल गावत है ऐअब तुअ नर चारौचक्री कौ । कलपव्रछ सकल हम जानै री आंगै भए निहाल अदीआचल अस्ताचल ज्यौ बदी वदनी कौ । व्यास आसीरवाद यौ दीनों काइम सुलितांन जुगानिजुग चरंजीव अकबर छत्रपती कौ ॥५५॥

मालिन नौबहार मास ;

गौर सारंग-चौताला

मालिनि ल्याई कसू'मी सारी पैहरें गात ऐक ही हाथ नोंला सी (!) ऐक ही हाथ डलिया नए बास की । अगनैनी पिकबैनी अत ही सोभा देत तुअ बेसरि नास की । चुनि चुनि कलीआ बेला चमेली गुलाब पुहुप माला गूंधि लाई गास की । चर चरजीजौ साहि अकबर छत्रपती कों आई देंन मुबारफ नौबहार के मांस की ॥५६॥

नखशिख :

सुध कल्यान-चौताला, ११८ अ

प्रथम मंजन करें पैहैरें सारी अंगीआ करनाटी झूमि रही काननि बेल फूल-फूली मांग मुकताहल सीस फूल टीकों जामे जम उदोत कीये सु ना प्यारी के माथे चंदन लायें कौरा षायें चौका अधर बनायें और छवि छूटी अलष सोहत कं कूं की आंड । नासिका बेसरि सोभा लायें काननि करनफूल षुटिला पीअ के नग अमोलक तिति कों आटक फाटक बनाई राखी कोउ लैन हूं न पावत मझ गरें झूलें पौहौपनि की माला टूटी सेवा पूजा चढायें राजत भुजनि टाड । ताईता पौंचीआ माला मौतिनि की पांति भाई नीकी लगत मकतूल फूलफूदा कर कमलनि से भमरनि से भूलि रहे छुद्र घटकारी लर लगी सोभा की कसक गाढी अनबट बिछीआ वरषा कैसे बोलै कमल पांति जगमगाति महावर अन गजनि चालि चलत गति सी दिषावत भावति री रागधुनि सी उपजत कोउ कुमुकुमु डारत कोउ करत सौतिनि की नजरि न लागत चिर चिरजीजो साहि अकबर जाके सुष ऐसी नारि सुहाग भाग लाड़िली लाड़ ॥५७॥

नायिका-नयन-छवि :

गन्धार-चौताला, ३२ अ

सेत औ सेत तारें जां तार को निर्मल जोमल नवल तिनि में पुतरी नों भाई कवि लीनों मासीऐ । पूरन चंद्र को छांह परी इनि नैननि की उपमा पान पै मंजन षंजन नैन धरै दीनौ मासीऐ । इनि कमलनि मै मजन छाप करी बिधि रिधि अकबर साहि कों छाजत ऐक सरस भयौ नीरज तिनि में औरन की बुधि नासीऐ ! जे अंषिआं जलाल मंहमंद की आरसी तिनि में आपुन कों देषी चाहत मानों अंजन कौ मजन श्रीभस्म मनो ओप न मन अग्रवासीऐ ॥५८॥

नायिका-छवि :

केदार मलार, ताल-चौताला, २७८ आ

प्यारी के चौ हौर बिथुरे मन मनाउ (उं) धर (झर) धारी स्याम घटा उनैआई सौतै मधं पौहौप छूटि छूटि परत जैसे बड़ी बड़ी बूंदिनि । दसन बंग पंथ तामें बिजुलता सी कौधंत इंद्रानीं सी सोभा देत घूँघट पट ओट दीअ सु जै नेत्र खंजरीट लीक पीक बोलत बोलै रुधेनि । लाल सारी पैहैरे हरी कोर मंदिर चलि घूँघट करि रही सौधें । पीछे ते देषीअत लाल मुनईआ सी मैहैदी की आकास बीरबहोटी सी बनी असी सु दर प्रवीन नारि अकबर साहि कौ काम कौ हार लै चलीं गूँधन ॥५९॥

नवोढा :

ईमन जलद-तिताला, १२३ आ

नैननि आयो हो कटाछ बिराजन अति सुष पायौ सुंदर साजन लाज काज दूरि करि री जब लाजन आवै काज न । तूअ तन जोवन सुवन बनो री आली सषीआं सुहांनी लागत जाकों कलपतर अकबर भरि लायौ छाजन ॥६०॥

आगमिव्यत्प तका, शकुन :

रागिनी टोडी-चपक

फूली फूलनि आंगन माही मिलन बनेगौ ललनां कौ । सगुन होत और अचरा फहरात और फरकै आंषि बांही । अति हुलास और रोम-रोम अंच मई तनकी तनक तनीई । अकबर साहि मिलोगी जब तन मन करिहों बधाई ॥६१॥

द्वितीयवचन :

देसकाल-सूरफाकता, १६ अ

चौकी चाहि रही री तूं तेरे घूंघट में रबिचंद । पीरौ पैहरि उठि चलि री पीतम
पै तें कहू कहूं पौहोप हार बंद छूटि रहे और दै रहे पीतम मन फंद । मरगजे बसन नव
सिथल सोहै गात गयंद । अकबर साहि पीअ सौ ते रितु मांनि मांनि होत प्रेम आनंद ।

कामशास्त्रमर्मज्ञ :

टोडी-जलद, ६५ आ

सोई करीअ जो जीअ धारीअ सुषु पावत अकबरसाहि अन्तर जामी कामी कामि-
निवारन निस्तारन जीवन भीअ के सुमिरंथ । इतनी विनती सुनि लीजौ कानन परवान
जांनोंगी लछिन दछिन प्रीति की जौ रस समझत हौ तुम ही गिरंथ ॥६३॥

द्वितीयवचन, मानिनी :

मारओ-जलद, १०१ आ

रैन जाति है ढरकी ललना लाल अरति करन पठई तोकौ हित की कहत जो बदरि
चाल । चारौ जांम वितीत भए जामिनी देशीअत अंत कहूं कहू उडगन रहे जीये जानि
अजहूं अब बतिआं कहत वरकी । मांन कौ परिवान जांनत अयानी कहावत सयानी
ज्यों त्यों (ज्यों) कहीअत बात त्यों त्यों हठ ही कौ अतही सरकी । उठि चलि मिलि
बौहौनाइक है री पै काउ के बस न भए हों जु कहत तोसों तै प्रीति है री नारि अकबर की ॥६४॥

द्वितीयवचन, मानिनी :

मारओ-जलद, १०२ अ

गरव गरवानी अयानी न होवे सयानी । जहां तें कब की ऐक ही टेक ऐक ही टेक
वे जो सबही लीआ अनेग (अनेक) भांतिनि कीं री पीअ चितवत नही तिनि तन जाते निपट
अधिकांनी । पीअ की प्रकत लीयें जो चलिहै धन तौ पावै सुषु अनगन सुभ नव नौ री आली
पीति मनभानी । रुसन को न सवाद कों न विवाद उठि चलि हिलि मिलि साहि अकबर
प्रत पांनी ॥६५॥

द्वितीयवचन, मानिनी :

सुधकल्याण-चौताला, ११८ अ

हौं मनावन आई तूअ बोलै ते काहे न देषत है करि नैन सतरहे । तेरे गुन रूप की
सबै भई है री भाई मेरै तर उतर उतर तर देत कातर ऐ । रगमहल विचित्र लालन तोही
तोही तोही करत री छाडि दै असीली बातें वतरात ऐ । अकबरसाहि अंग संग सुषु पावैगी
रोम-रोम घात घातर ऐ ॥६६॥

मानिनी :

भोपाली-चौताला, १५३ आ

साहि अकबर कों रिझाई लै री तू मांन कीअ तै कहा पावै । पीअ की चोंप मै तू
उठि चलि री सुषु पावैगी दिन दिन री ॥६७॥

खण्डिता : दक्षिणनायक :

ईमनी बिराउरि-चौताला ३७ अ

अचानक आए हौ जू मेरे हौं लाल भलौ मनावन गुनगांमन के तेक गुनही औगुन
अनगिन न्यारे । नैन बैन कहें देत जागे अनुरागे पागे लीअ रंग जगावत और झपकि झपकि

आवत है हो उनीदे जैहें विधि भोर ही पगधारे । जह जानत ही मोहि पल छिन कबहुं न होइ लाल न्यारे । अकबरसाह पिअ दछिन लछिन जानत तुमै षोरि नाहीं हो जाको दरसत सोई परसत रीझे तामै रूप अनूप तुम जगत उजारे ॥६८॥

आगतपतिका : केदार मलार-चौताला, २७८ आ

आज धनि धनि मेरे भागि भाई सुषदाई मया करि मेरै आये । पलक पाउडे धरौं करौं तन मन धन नौछावरि रस गेह सब सु चाउ भये मन भाये । जोई चाहत ती सोई भये आये सुष सागर करौ बधाये । मनौ कर्म कर्म कै मिले साहि अकबर अंग अंगनि के रिझाये ॥६९॥

आगतपतिका : मालकोस-चौताला, २२८ अ

लाल आये अनेग जतननि कै पाये । तन मन उमग भई रोम रोम सुष भयो रसबस करि प्रेम पगाये । धनि धरी धनि दिनु धनि रजनी यह धनि मेरे भाथि भाये । मन भावन मन छत्रपती साहि अकबर हंसि करि कंठ लगाये ॥७०॥

सौभाग्यगविता : रागिनी तोड़ी-चौताला

पुंननि पाये री मै लाल देषौ मेरे भागनि की निकाई री । असी प्रकति जीअ सौ बनि आवै बतीआं करत मन भाई री । रस की कुरस की रिस की रौस की जोई कहत सोई लगत सुहाई री । अबकै मोहि मिलै सोई जीवन कौ फल साहि अकबर लाड लडाये री ॥७१॥

स्वाधीनपतिका : ईमन-चौताला, १२२ आ

पीआ प्यारी भारी भावत रैन दिना छिन छिन औ नां माने नाही तु हो । असै के रसबस करि लीनों है नैन प्रांन लालन के ललना हित चित नित करि अब तूअ ग्यांन ध्यांन की री लागी री तू ही । तू विनि के रंग रंगी पीअ तेरे रग रंगे असै जैसे दर्पन लै प्रतिबिंब देखीअत तू विनि के जीअ वसी लाल के तैरी उक्ति विचारी । धनि तेरौ भागि सुहान आलीं री धनि वे वालम अकबर धनि री धनि तू विचित्र नारी तुही ॥७२॥

बूती थौवनगविता : नटनाराइन-चौताला, ८८ अ

जौवन गरब ही गरवानी तू गरवांनी अयानी री । कै तू साहि पठई के है आई जह जानी अग्यानी काउ की करतरी अरवरांनी । आवत जात आली पग डग मग छकि रही वतीआं करत तोसौ जीअ पिरानी । साहि अकबर छत्रपति की मया तैं उतर न देत आली कहाँ लौं रहैगी अकरांनी ॥७३॥

सम्भोगचिह्ना नायिका : राग पूरीआ-चौताला, ८० आ

लोचन जू मिलि करि कमल उनीदी निस अलकै विधुरि रही आनन अंक पर । ठौर ठौर आभूषन चल कों चल विधुरे वार अमल सुफल फल कुच दरसत कुंचुकीतर । रसन दसन देषौ री है री लटपटे री तन तन सोहै री अनोसी छवि पीअ कमलनि पर । साहि अकबर पीअ सौ रितु मांजी सब सखीअनि मै तू ही वर ॥७४॥

द्वितीयवचन, सम्भोगफुल्ला नायिका :

पूरीआ-चपक, ८१ अ

आनंद कीजै सब रैन तोहि बिहानी तू जु फिरत प्रफुलित भई सु मैने जानी ।
देखै तूअ वांनिक गुरजन उठि गई सौतिनि कौ भई कहांनी । यह कौतिग लेषी इम्रत
ठांकि नीकौ करिहै पी हांनी । साहि अकबर विचित्र तुम्हारी मेहरबांनी ॥७५॥

द्वितीयवचन, अकबर दक्षिणनायक :

सारंग-चौताला, ७१ अ

ये री मनाओ नां जानै री पैहेंचानि री जाते चतुर कहैं ते मिलन जोवन भरि भरि
रंग करिऐ री । हौ जु कहत तुमसौं रति गति अनदैसे तेरी विचार पीअ रिझवन कौं
चतुर नारि री पीअ री निरुपम रेष दोउ मन एक करि । अंग अंग भेदनि डिढ
जानत री कहू न रसबस करि लीनों लालन मोहि देषत हैं री जब घरी घरी पल पल
छिन छिन पै हैर पै हैर रैन दिन गाढे कै हूँ न औसर अठिन कठिन करि न जानत हौ जु
कहत हित चित दै सनि लै अैसे री अछिन दछिन नाइक जाननि मन जलालंदीन साहि
अकबर ॥७६॥

बहुनायक :

छाया धीमा-तिताला, १४५ अ

सोई भली है री जाकौ साहि अकबर दैहैं बडाई । एक तो विचित्र नारी प्रउडा
(प्रौढा) अग अंग ली ताई की विद्या उतिम ताई की निकाई । एक तौ अगनैनी एक तो
पिकंवैनी एक तो आनंददैनी सब सुषदाई । ताई कौ भागि सुहाग ताही कौ लाल जलाल
तुम लाड लडाई ॥७७॥

प्रणय-कलह :

केदारा-चौताला, १६३ अ

नांगर रस के रोस चितई री पीअ तन सु मेरै जान कहत तू तनमन । अत ही
बिच छिन द्रग पीति बाढे तिनि के मांन हूं मै पाईअत अने बैन । लगन देत लग लागन
अैसी कौन पर क्यों हूं न रिझावत अंतर मति ध्यान । साहि अकबर प्यारे पीअ हधरपान
करिहैं जू दुतरी रसन ॥७८॥

अनुरक्त नायक :

वरबारी कान्हूरा-ताल चपक, १८२ अ

जौ तू चितई लालन तन महं भमर भारे कमल डगे । याकी छवि देखै तैं चटकि
चोंप होति ऐकें दुति षंजन अंग मेरे जान यों ही लागे । तीछनि कटाछिनि फिरि चितई री
आली ऐकै दो चंद राह षगे । अकबर साहि पीय तुम वौहौनाइक मोहन नैन ठगे ॥७९॥

रात में जागी नायिका के नयन :

विभास-चौताला, २१ अ

लाल के संग ललनि रैन जागी और लाल लोइनि लागे री मांनों बडूके (बन्धूक)
पौहोप डीठे । ता मध पुतरी अैसी लागे मानों भमर लटपटात उनि मध उडि परै
रंग मजीठे । उनके हेष भेष रही हौं मेरै जान कमल षंजन मीन अग लोग हैं सीठे ।
साहि अकबर की सौ हौ वापै रीझी अलक लड़े फुनि बड़े छबीले ढीले चितवत
नीके ॥८०॥

विप्रलब्धा :

श्री-चौताला, ११० अ

होई वैरागी कीनी लाल अकबर अनुरागी । इनि पतीअनि वतीअनि पीअ वेगि मिलाओ मो को होई गोंयारि कहा जानों असो दुष दीनों वे सुष त्यागी ॥८१॥

वीणावादिनी विरहिणी

वरबारी कान्हूरा, धीमा-तिताला १८१ आ

हौ कैसे राषी प्रान ऐसे लालन विना री आली छिननि घटत भई वार काहा वार । वह तौ दधि कौ सुत सारग वाहन नाद भूलौ री आली जवही मैं राषी वीन समझि कर धर । घरी घरी पल छिन जुग से वीतन लागे जवही मैं वाको रिपु बतायो चित्त चते उरो । अकबर साहि पीअ अकौ भाई भेटै चाहौ जबसे कलकी जंह मोहूतें न्यारो ॥८२॥

विरहिणी :

हुसैनी कान्हूरा-चौताला, १६२ अ

ग्रहन गावौ जे मेरौ मन ललनां कैसे वौहुरि न फेरि आली क्यों न बिसारत । जाकी औसेरनि मोहि वरष वरष वीतत निसु दिन उडगन निहारत । भूल पातिग बिछुरे तै कहू अनत सिधारत । अकबर साहि पिआरे के अग लागी मो सकत विन देखै कैसे आली री विहैरत ॥८३॥

होरी :

ईमन-धमार, १२७ अ

होरी षेलेई वनेगी रूसै अब न वनेगी । मेरौ कहौ तू मानि नवेली जब वारंग में सनेगी । कैई वेर आई गई तू नही मानत ऊंची करि ठौढी भौहे तनेगी । साहि जलालदीन फगुआ दीजै आपु ते आप मनेगी ॥८४॥

गायिका-प्रशंसा :

ईमन-चौताला, १२३ आ

ताहि वंदों रीझि रिझाई पीअ कौ मेरे जान गाई वजाई ग्यांन करि औ सुर तार । फुनि भ्रपधाइ रागधाइ परकीरन जे मन रंग जैसी कौन विद्या आर जानत सब अंग अंग प्रकास । जा भूअ लोक की कहा कहौ जे इंद्रलोक कहीअत सुनीअत नारद तुंवर कमला सी पातुर ऐहो नाही तूअ संम हीय जीय सोच करौ विचार । सर्वकला संपूरन साहि जलाल महंमद ऐक रचौ मधि संसार ॥८५॥

इन्द्रजीत सिंह 'धीरज'

गणेशस्तुति :

भैरों-चौताला, १ अ

लवोदर गज आनन गिरिजा सुत गनेस एक रदन प्रसन्न वदन अहनभेस । नरनारी गुनी गंधर्व कितर जछ तुंवर मिलि अम्हां विस्न आरती पुनवत महेस । सहस्र कला जाय मूष कौ वाहन विद्यापति जाहि सुमिरै सेस । धीरज अस्तुति करत विस्वंबर भूतेशुर सुत नमो नमो आदेस ॥८६॥

रामचन्द्र-स्तुति :

भैरों-चौताला, १ आ

सूरज वंस नमौ गुर इस्ट हमारौ जसरथ सुत राघव राम । जानुकीनाथ नांथा त्रभुवन के धनक धरन सोहत सुंदर स्याम । लछिमन भरत सत्रघन हनूमान संत सुधारन काम । रघुकुल तिलक दीयौ धीरज प्रभु प्रगटे अजुध्या धाम ॥८७॥

गंगास्तुति :

भैरों-चौताला, ३ अ

विस्न चरन जल वभा कमंडल सिव जाके राजत देवी गंगा । भागीरथी सकल जुग तारनी भुअ भार उतारनी अलकनि अंकनि दै री कटाछि तरल तरंगा । हरिद्वार प्राग सागर के संगम मत्त बदि वैनी त्रिविधि तरंगा । धीरज के दुष दूरि करौ पापपषारनी निरमल करौ यह अंगा ॥८८॥

अनेकरूप विष्णु :

ललित-जलद, २६ अ

पीआ बौहौरगी बौहौचगी बौहौरूप मोहि बतावत । तावर जंग में क्रीटि पतंगी अग सग वनि वनि आवत । कहू बालक कहूं विरद वृद्धा तरुन है कहूं भोर ही स्यान जनावत । कहू नारी कहू नर धीरज प्रभु निगम नेति जसु गावत ॥८९॥

शंकर-वर्णन :

अल्हईआ-चौताला, ४२ अ

जटा मध गंग अंग भभूति उमाये विछाअै षाल वधूंमर की । द्रग तीनि तसूल धरै गरै मुंडमाला विछाये षाल वाघंमर की । गाल बजाई निहाल करत मैई ताप हरै और किकर की धीरज बनमाल ऐती कहौ छवि कौन लषै सिवसंकर की ॥९०॥

विष्णु :

षट-चौताला, ५७ आ

गोकुल गौउअ अचरन गोपाल गरुडापति गरुडगामी गोविंद गिरधारी । जनारजन रंगनाथ रनछोर वामन वनवारी । जोनराई जक्तपति जगजीमन जगनाथ माधो मदसूदन मुरारी । धरुजि प्रभु विहारी निपट नाथ नितंकाली उर्प तर्प लेतं भारी रिझवन गोपधारी तांननि ब्रजधारी ॥९१॥

विष्णु-नामावली :

सारंग-चौताला, ७२ अ

गोविंद वनमाली री कैंस्न कमरनिधि करतार करम कमलावर केसौ केसकाल । धरनीधर दमोदर धनकधारी गिरधारी संष चक्र गदा पदमकर मुरलीधर गोपरम गोपीनाथ गोपाल । नरहरी नाराइन निरंजन निरंकाल भक्तवच्छिल भगवान भक्तनि प्रतपाल । ब्रज-विहारी केलि कुंद रसविहारी धीरज प्रभु पर्म पुरिष रिझवत ब्रज वाल ॥९२॥

कृष्ण-नामावली :

अडाना-चौताला, १९५ आ

जादोंनाथ जगतपति जगजीवन जग्यपुरस जगंनाथ जगवंदन । श्रीधर भूधर संषचक्र गदापदम मुरलीधर कंस निकंदन । नरहरि नाराइन वासुदेव वीठल मथुरा मदन माधौ मधुसूदन । जोग ध्यान ब्रवीनार मुनि रषी कैंस्न धीरज प्रभु है नंदनंदन ॥९३॥

स्वाजा हिन्द की स्तुति :

सुधमलार-चपक; २७६ अ

बरसत धरा रितु ष्वाजा हंद चातुरी मास । दुरजन वाह विलंद कीनि काई कहत वूंद की तांस । रोग दोष दूरि करौ धीरज कौ होउ शत्रु कौ नास ॥९४॥

कृष्ण का शृंगार :

अलहीआ-चौताला, ४७ अ

आज कौ सिंगार सौहै सांवरे गोपाल जू कौ कहतन वनि आवै देष ई वान आवैरी । बसन भूषन भांति भांति अंग अंग की सोभा मानों लटपटी सी पाग सोई चित कौ चुरावैरी ।

चालरी चलनहार हरि ठाढे कुंजडार हित सौ बुलावत जो तेरे मन भाईवैनारी । केसार की पौरि दीअ कट फेटा छोर बांधे यह छवि निरखत क्यों न धीरज मन न लावैरी ॥६५॥

कृष्ण प्रभु :

अडाना-चौताला, १६६ अ

छाकी छवि आली री तुअ स्याम रंग मतवारी । मोहन नैननि के करौ प्याले रूप मध पीवत कबहू न होत पुमारी । कवहूंक उठत कवहूंक बैठत कवहूंक कहत कहां हितकारी । धीरज के प्रभु यह जक लागी चरन चाह तुम्हारी ॥६६॥

वर्षा, राधा-माधव-क्रीडा :

गौड मलार-चौताला, २८२ अ

बोलत मोर चहूं दिसि चात्रग पिक दादुर धोरि घुमडि घहरानौ घन । इत दामिनि भामिनि भुंमि भारी हरी भई जित तित वे लिपिटि झुकि झुमि सघन ब्रदावन । राधा माधौ दोउ क्रीला करत है रीझत भीजत टपकत जोवन । ता चढि दंपति कांमही रग हिडौरै धीरज प्रभु हरषि निरषि झुलावत गोपीजन ॥६७॥

वर्षा-वृन्दावन :

सारंग-चौताला, ११३ अ

गउरज धूमरे घुरवा गरजत ऐ घनस्याम विन । पीति वसन दामिनि दुति हंसन वगपाति चन्द्रका धनक रिझावत मन । दादुर बोलत मोरकत सोर अतिसुगंद पवन वरै लागत सीतल प्रवान । धीरज के प्रभु प्रेम वढावत सब सुष दरसत श्री ब्रदावन ॥६८॥

शरदरात्रि, कृष्ण-नृत्य :

दरबारी कांन्हारा-चौताला, १८२ अ

आज बजाई री वासुरिआ रगभीनी मोहन मोहनी तांननि । श्रवन सुनत कुल कान तजी लजी कुलवधूअनि ग्रह तजि आई री कांननि । वसन भूषन सुधि वाहिनै तन की मृगनैनी लागी मनमथ वाननि । सरद रैननि नितंत धीरज प्रभु प्रेममई प्रेमवाननि ॥६९॥

मुरलीधर :

दरबारी कांन्हारा-चौताला, १७७ अ

वांनिक वनि ठनि ठाडे मोहन सुदर जमनातीर मोर मुकुट कट चदन सौरि कुटिल अलष भौहै धनक द्रग षजन नरयाम वरन नास कीर । अधर दसन अधर विव चिवुक गाड ग्राम मुक्तिमाल वनमाल और विसाल छीन कर नाभि गभीर । पगनि उपर रुनुकि झुनिक पीत वसन मदन मोहन कर मुरली धीरज प्रभु गोपीनाथ गोविंद बलवीर ॥१००॥

रास :

दरबारी कांन्हारा-चौताला, १७७ अ

मोर मुकुट माथे मकराकृत कुंडलि कुटिल अलक ललित भाल चदन वंदन भौहैं वकर वरुनि टेढी वडे नैन वांस कीस अधर विव मधुर सुर मुरली वजावत रिझावत स्याम सरीर । चुवक (चिवुक) गाड मो मन को गाड करत मुक्तिमाल वनमाल गुज गरें पीत वसन कर काछिनी काहैं मिनिकि झुनिकि किकिनि घुनि रुनुकि झुनुकि ठुमुकि पग नूपुर वाजत नितंत नवल अहीर बीन खाव किनिरि सुरमंडिल अदंग वाजत सुधंग सुसील वरपि तरपि गति देसी दिषवत हैं ताथेई थेई करत गाव वधूअनि की भीर । मांडल मध राजत धीरज प्रभु नवल विहार विरिनि के वस सो सुष सिव सनकादिक दुर्लभ सुष ब्रज वृंदावन कालिंदी तीर ॥१०१॥

रमणीरमण कान्ह

ललित-चौताला, २५ अ

कान्ह काहूँ भूलि परे काहूँ के घौरे भोरे भोरे उठि आए। अटपटी पाग ललौहे नैन सिथल गात अलस्याए। विनगुन माल मरगजै वागे दुरत न चित्त दुराए। प्रभु धीरज रमनी रमन लाल घर घर नेह सवाए ॥१०२॥

गूजरी :

सौरठि-चौताला, २२२ अ

नैन नचावत गूजरी उजरी गोरेँ गात मौहें कसत मन कसै जात। हरो लैहैगा केसरि भरि अगीआ सूही सारी तन सुष अति सुहात। मुष की निकाई कहा कहौ माई चद्रमा की जोति मलिन हो जात। रोम रोम छवि पर वारौ धीरज प्रभु क्यो न लाल ललचात ॥१०३॥

गूजरी :

नाइकी-धमार, २०१ अ

गूजरी मधमाती हरे कसव में डडीआ सोहै गोरी है वौहौत सुराई। गोरे भुजनि मै गाढेवरा चालि चलत इतराई। प्रभु धीरज ऐ तुम पर रीझे क्यों इतरात गौयार ॥१०४॥

गोपी :

छाया-धीमा, १४५ अ

ग्वारि गोरेँ गात गोकुल की गली में ठाढी निकरि वगर। जा दिन तें कछू और भए हैं ता दिन से आये तेरी डगर। ते रसबस कीनें मदनमोहन धीरज प्रभु नागरि जीति लीओ री सवरो नगर ॥१०५॥

जौवन-मदमाती गूजरी :

आसावरी-धमार, ५५ अ

गूजरि जौवन माती डोलै हो हो कहिकें वोलै। नैननि सैननि वैननि गारी गढि गढि वतीआं लागी डोलै। गठि जोरे की गांठि धीरज प्रभु वरुआ होइ सो षोलै ॥१०६॥

ग्वालिनी :

अडाना-धमार, १६८ अ

ऐ जू जवते निज भई यह ग्वालिनि आयौ फागुन मास। गुरजन डर चित तै जु विसारी विरह चढाई वास। पतिव्रत मै उपाई तै ठेली वाहिन करत सासु की त्रास। धीरज अली रूप मधमाती लगी प्रेम की गास ॥१०७॥

होली नन्द के घर :

भोपाली-धमार, १३८ अ

षसी जौवन मधमाती होरी खेलन आई लै लै नाउ नैहैरि रानी कौ गारी देत सुहाई। वरसाने की अति सरसानी नेह नजरि सौ लम्पाई। धीरज अली नद के द्वारै चाचर धूम मचाई ॥१०८॥

सखीवचन राधा से :

रामकली-जलद, १४ अ

मान काहे कौ कीजे श्री राधे रस के कुगर रस भीजै। नवल कुंजनि में सागर बनों नागर तेरौई ध्यान लाडिली लाड लडाई लीजै। तेरी तौ उनकी ऐक ही प्रीति है जो चाहै सो कीजै। धीरज प्रभु सौ भेटौगी जब हिलि मिलि सब रस कीजै ॥१०९॥

वर्षा, आगतपतिका :

गौड मलार-चौताला, २८१ अ

उमडि घुमडि आऐरी धन जित तित ते स्याम सेत अरुन वरन अरुन पीति अति सपाए । गरजनि तरफनि जलधार वरसत पवन चलत हलत पात भीजत वसन कंपत तन दादुर वोलेत मन भाए । भुभि मंडिल पर हरिआई लहलहाई इद्रवधू साजि आईं द्रुम वेलि लिपिटाई दादुर पिक मोर सोर झींगत झनक भाई मै पावस धीरज प्रभु भुज भरि गरे लगाए आऐ आऐ जीअ आनंद मंगल गाऐ ॥११०॥

वर्षा, विप्रलब्धा :

सुधमलार-चौताला, २७५ अ

तलईयां ताल भरे जित तित री वोलेन लागे मोर । पावसरित चित्रमास जल वरसत आली घन घोर । जैसीअ कोइल कू कू करत है है री निसु कामिनि काम सताई कान विनु तापर चात्रिग करत है री सोर । जैहैं विधि जैहैं जुग जैहैं री धीरज प्रभु मथुरा ते गोकुल ओर ॥१११॥

दक्षिण नायक

भोपाली-चौताला, १३५ अ

चंद्रमुख नेत्रकमल मूअ भंगी नासा कीर नीको । तनकी सुवासु आसपास फैलि रही आली हसनि दसनि दुति दांमिनी दमकत और जराउ को टीको । झूमत झुकत जोवन मधमाते मांनों मतंग मन मनमथजू को । धीरज के प्रभु तुम बौहोनायक दछिन नाइक सुहाग भागत्रीअ कौ ॥११२॥

आगतपतिका (प्रबन्ध) :

हमीर-चौताला, ११३ अ

प्राज आमन कीनौ सुभ घरी सुभ दिन सुभ महूरति लगुन सगुन करन जोग मन भामन । अदंगी अदंग उमंगि वजावत थरर थरर कूकू कूकू धी धिलाग ताथेई थेईय इनि भेदनि त्रीआ लागी री लाल रिझावन । उरप तिरप लाग डाट देसी दिषावत लेत और भई चरचरी विधि विधि अस्ताक भेद सुधंग वतावन । आउ (हाउ) भाउ कटाछि करि रिझावत धीरज प्रभु सप्त धाई (अध्याय) संगीत तान पावन प्यारे सारे गरेसा सारे गम गरेसा सां नी धपम गरेसा ऐ प्रवंद मध पुरअनू पानि तान वधावन ॥११३॥

भुक्ता नायिका :

आसावरी-चौताला, ५३ अ

अति अलसानी री आली झपकि पलन गति मंद चलनि । लालन सौ मिलि आई हों जान पाई चतुराई करत चतुर तरन । चोरी की वतीआ मोउसों दुरावत दुरत न जे सुगंदहार अरुन । धीरजि के प्रभु सों रितु मांनि आई काम जीति अब आये चमर दुरन ॥११४॥

दक्षिणनायक :

विभास-चौताला, २१ अ

ढीले ढीले पग धरत ढीली पाग ढरकि रही ढऐ से परत अैसे कौन पर ढऐ हौ जू । गाडी जो पीआ के हीअ अैसी गाडी कौन त्रीअ गाढे गाढे भुजपन सों गाढे करि गहे हौ जू । लाल लाल डोरें लाल उनींदी आंषे सौंची का हों पीआ हौ तो लाल लहे हौ जू । कहि धीरज प्रभु निसु के उनींदे जागे भयौ प्रात कहौ वात राति कहां रहे हौ जू ॥११५॥

जोगी :

ललित-जलद, २६ अ

भोरही आयौ मेरे घर जुगीआ अलस कहा कहा जागे । मोहनी मूरति अनैन वैन सी नैन अरे अनुरागे । अंग भभूति गरे विच सेली दरसत ही वैराग । तन मन वारों प्रभु धीरज पर राषौगी ऐक सुहाग ॥११६॥

आदिलशाह

मुख-छवि :

दर मुकाम भूपाली-नौरस (किताबे नौरस, पृ० ६६-६७)

सकल जन विद्वांस और कवि और महा उत्तम चातुर सुन या कहा धराई एक चांद बीब पेखत एको छंद मेरी माई बोट मानी दरपन भई मूरत और परछाई तेरी उपमां सुधांशु लच्छन चाहे अमृत दिखाई मो चख चकोर परचित अपनी आध सगाई इबराहीम मुछन भयो रीझे सुन्दरताई अधर अमृत चखा बहुर जिलाई रेग कर फिराऊं दमतन जोकेती शीशी तास फाल देखे जीव पीव कब आवे मजु पास ॥११७॥

भैरव-ध्यान :

दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० ६८-६९)

भैरव करपूर गौरा भाल तिलक चन्दरा त्रिनेत्रा जटा मुकुट गंगा धरा एक हस्त रुंड नरा तृसूल करा बाहन बलीवर्द सेत जात गुसाई ईश्वरा कास कुरुत कुंजर पृष्ठ चरम व्यागरा सरप सिगार टिष्ठन परछाई कल्पतरा रमनी वादन मृदंग धाम कैलास तदुपरा ब्राहीम उक्खत लच्छन राग भैरव महा उत्तिम सुन्दरा । सोम दौर सेत मुद स्याम मानो नयन सुन्दरी रूप बादर अंचर तापर मारुत लागे कब गुप्त कब प्रगट दिसै बदन ॥११८॥

हाथी की प्रशंसा :

दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १००)

नवरस गाओ गीत गुनि जन गुन गज पती जम जम जियो आतश खों सदा मस्त हती । आपी पारदी हुआ बहुत चतुर हाना घंट नाद सुना जग किगा दिवाना अब दीपक होना सो तुज नाऊं आतश खाना । धन्य धरित्री दमामा दायम धरे हाता नित खुशयाँ अलोल बजावे भुंइ पर भारे दांता बाजे फतेह नुसरत अतीत अनधाता । सौड उचावे गफीरी बजावे जग रिझावे दील इबराहीम अंबर लोक अप पराई राखें मील यो गज नाऊ तुज क्यों साजे इसराफील । दृग धुनी पाडु पयः पुर पलखाँ पाल सोहे तापर तारिका मानों नलिनि अजन नाल ॥११९॥

तिलक :

दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०१)

मुख गौरा फटिक तिलक छाये अधर तिलक अक्षता सो ईश्वर अग्नि नेतर । तिलक चंदन बीच अक्षता मंडल समुद्र मध्य मेरु पर्वता यो उपमा मो मन लागे निस पति लच्छन धरता । उपमा आकहूं भाल तिलक जगत्तर कौं कनक कसे कसौटी कर इबराहीम हेम परिचित तारिका मधुप पर । विद्या छाड जीवनायो अचरज सुन मूरख मूयो प्रान कौ खीजोना इबराहीम संदेशा आपका कहें समेत मोती खान ॥१२०॥

आगतपतिका :

दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०२)

प्यारे चादा आखों कथ दीन हुइ दुखी मन चाहे सो निस भई हम तुम रहे अब सुखी । बुझाऊं दीपक को तासों दिनकर आवेगा घर घर छप रह जासूस सब सुध पोहचावेगा पोह फाटी तो देख जा टाक धावेगा । इबराहीम न सो जाग ऐसा पीऊ कहाँ पावेगा सन्ध्या कर सिंगार लोब कंठ लावेगा रात थोड़ी मदन बहुत बना उठ जावेगा । ब्रिदन धुपारती सूरन असबंद सारे तारे मंडागिनी दंडी गगन पखा फिरे सदा पहारे ॥१२१॥

मोतीखान वीणा :

दर मुकाम आसावरी-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०५)

मोती खाँ सागर उपमां पुर तापर तत कलोल लहु गुरु । योमगुता समुद्र औ जल सारी ये जल मीठा ऊजल खारी । ओ पुर झक दादुर यो पुर गुनिजन एक जल जीव एक विद्या मन । मो विद्या अधिक करपा की परवरदिगार गुरु इबराहीम तम्बूरकार ॥१२२॥

वसन्त :

दर मुकाम तोडी-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०७)

सघाती संघात सब सहेलियाँ संग करै पीरत केरयाँ बाजियाँ झोट धरनी जग । होयाँ हो लट पट सट बिट रग तरग जे देखे भूले मन नव रतन नारी अग । कदम कस्तूरी केसरी कुसुम रग ढोलतियाँ झूमतियाँ मद शराब भग । उत्तिम बहुगुन गावे नवरस आहग तंबूरा रबाब जंतर कमाच चग । ढोलक डफ हुडुग ताल ब्रिदग शनाई पावा नय खालू उपग । इबराहीम वसन्त खेलै समुद्र गग भानु बसत विनती करै अरुन रग मग ॥१२३॥

गणेश-सरस्वती :

दर मुकाम मलार-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०६)

गनपति मूरत हस्त मेघ मद बरखत पानी दंत दामिनी घट घोर घोर गोर मडान भाल बिधु बानी । सरसुती पवित्र स्वाति घन जल कैसै जिय जानी । इबराहीम नवरस मगुना निकसत या कारन नहिचै मानी ॥१२४॥

मेघशोभा :

दर मुकाम मलार-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०६-११०)

शोभा देत है रे मेघ घाम जैसै मेघ राग असावरी समेत भई अनद कर । फुने ऐसे लागत दुर्गा दर्शन मानो सूर पसिजत लज्जा सकुचनि कपत थर थर । बहुर कचन थाल मोतिया भर इद्र पठायो नैछावर वार डारेव बानी पर । इबराहीम अकहै यो समयूरस बरन बिराजत रजत छीट केसरी बस्तर ॥१२५॥

संगीत :

दर मुकाम कनड़ा-नौरस (किताबे नौरस, पृ० ११६-११७)

नवरस भेद को उत्पति बचन आखों सर वननी हित चित लाये । ताल चटक सम स्वर मध्यम उपज न्यारी न्यारी कर देखायै । इबराहीम गाये बजाये रिझाये लच्छमी त्याग पाये हम सेवक सिव के बल बल मया के दिन दिन अधिक अधिकाये ॥१२६॥

जहाँगीर

प्रशंसा :

टोडी-चौताला, ६४ अ

वषत अरुन वषत वली चली तेरे नाम की करै सुर नर मुनि गुनी गंद्रप किनिर जहाँगीर । जे अग्यान ते भये सुग्यान ते धनमांन ध्यान कलकल्यान (कल कल्यान) करत हैं हो आगर सागर ते कै है चलि धाईतेर ॥१२७॥

शोभा :

सूही-चपक, ३४ आ

बाजै ढनन ढनन गज के घटा साहि जहागीर चढौ दलन मलन । घात पाति मनो कैसी नीकी लागत मनहू गगन लागे दिस्टि पै चलन ॥१२८॥

सेहरा :

दरबारी कान्हरा-चौताला

साहि अकबर सदां इल्हौ कौ सेषूजू श्री दूल्हौ दुलहिनि सप्त चरंजेवी होइ जौलौ चद्र धरन धूअ तारौ । अनेगनग्नरगन जटत (अनेगन नगन जटित) सेहरौ मुकुट बांधै सीस और विचित्र मालिनि गूंधि लाई चौसरहार वेला चमेली के राजत हार ।... परत पगनि जलालदीन चक्रवर्ती कीजै जिनि पठयौ ऐरापति प्यारौ और सब देवनि मिलि कहौ जह देवलोक या छवि पर वारौ ॥१२९॥

प्रताप :

मालंसिरी-चौताला, ८४ अ

दिल्ली-दलन भारत अचल चलत भूअ कोपौ साहि जहांगीर । जाकी अदलि दीन दुनी में प्रछति (प्रत्यक्ष) जाहर महा पीरानिपीर ॥१३०॥

जहांगीर-प्रताप :

ईमांनी बिराउरि जलद-तिताला, ३८ अ

सब सुषदाता विधाता रचौ ऐक नर भूअ पर अचल अडंडनि डंड । तूअ समान आन कौन दैहौ अब महाजान तूअ गुननिधान कुलमंडन । अपवली तपवली प्रतापवली जाकी कीरति चहू दिसि प्रचंडन । चर चर जीअो साहि अकबरनंदन सप्तदीप नव-षडन ॥१३१॥

प्रतीक्षमाणा, आगतपतिका

वागेशुरी कान्हरा-चौताला

पीअ मिलन कौ आगिम तबही मै जानौ जब फरकेगी वाही (बाई) आषि तब दैहौ सुहाग कौ कजरा । जब कुच फरकैगे सौधै सुवास कचुकी दैहौ मुक्त माल ग्रीम और जब भुज फरकैगे तब दैहौ बाजूवद गजरा । अचरा तआोग ही सौ तब दैहौ सरासारी मो आनद रजरा । साहि जहांगीर मिले सेज समै सुषु भयौ कामदद मो तन ते तजरा ॥१३२॥

नायिका-छवि :

संकरा-चौताला, २३७ आ

सोहत काननि वीरै देषि वेदी की झलक । ता मध जरनगात अति ही विराजत रीतिनि ढिग मुक्ताहल लागे मेरे जान क्रत कौ चंद्रमा नीरै । तैसी अधर पाननि की लाली और तैसी है वदन जोति दोई पर हीरै । यह छवि देषि रीझे साहि जहांगीर मानौ पदमिनि निकसि जात ससि चीरै ॥१३३॥

नायिका-छवि :

टोड़ी-चौताला, ६३ अ

तो तन सुगंध मलिआगर (मलयगिरि) सुवास मानो वैनी भमंग (भुमंग) पवन लेत । चद्रवदन की लाडिली लीनों इअत वचन किरिनि देत । या छवि की उपमां मनु रिझावत जहांगीर साहि सुजान सुचेत ॥१३४॥

संगीत :

कान्हूरा-चौताला, १८६ अ

अग अंगन सयान भरत मध विनान करत सप्तधा वरन सदा समांन तांन वरन ।
ऐक पूरै गीत नादभेद उत्तिम जेते सुर साधै अराधै कठ रूप अनूप वरन । सुर ग्यान गुन
निधान पर परमान ग्याननि सुढावनि सुढान जाते भयौ चित मानों रस सौ उधारन कौ भायौ
गुन अभरन । जैहै विधि विदाई कीनी साहि जहागीर जाते वौहौरि त्रीअनि री मन
उधारन ॥१३५॥

शाहजहाँ

अभिषेक :

सुध कल्याण-चौताला, ११८ अ

ये अधिक अति चक्रवर्ती रचौ है विरच नर सुलितान चक्रवती साहिजहाँ रचौ
भूअ लोक पर । जगत ईस पानीनिधि क्रया पातसाही नाम छाध दीन पाई साहिब किरानसानी
तपवर वषतवर किरवार दर । वौहौ विधि लछिमी विलास भूप भीर आस पास रिसाल
मुसाल द्रगपाल उमराउ जाके गीत वाद नित करत आनद भयौ प्रथमी घर घर । छत्रनि
कौ छत्रधारी तषति बैठे राजकाज दिल्ली आगरै करि अछयादान के कलपतर ॥१३६॥

सेहरा :

दरबारी कान्हूरा-चौताला, १७८ अ

सुभ दिन सुभ घरी सुभ महरति सौने छत्र इअत जौग साधै आराधै सुष संतोष भयों यों
धारौ लगुन आनंद समधि निधि । पारवती पति महेस सतगुर गनेस वृंम्हा विस्न व्यास
आस पुजवन कारन दरसन प्रभात कीने कर जोर प्रेम डोरे कंकन बाधौ दौउ अनि और
रंग रस पूरन होत षेम कुसल सुफल सिधि । औराइसि तरवर निहारि आतसवाजी
फुलझरी यों विराजे मेरै जान वन घन मे झीगन झमकत फुनि रामन पर भारी न्यारी वनि
वैठी मनो उदौत ते लछिमी प्रगटी वन घन के रूप चरन चार दिस दिसन सन वाजे प्रवांन
नित नितकाली पूरन चार विधि विधि । अजर अमर जो सिर पर छत्र धरै सेहरा सोहै
मोहै जगमग जोति कसूमी सौधै मनो पूरनमारी साहि जहांगीरनि दिन साहिजहा दिन
इल्हौ दुलहिनी सहित चरजवी सुरनर मंगल गावै अति कटाछि वाजे वजावै पावै दान गज
तुरग पटवर अ सिधि ॥१३७॥

प्रशंसा :

सुध कल्याण-चौताला, ११६ अ

इंद्रपति नरिद्र साहिजहा तू रचिपचि विरंच विनानी । दिल्ली सुर ईसुर जगदेस मे
कौ तू नर नाराइनि राजत जगत भरन पोषन कौ तू राजा छत्रपाल द्रगपाल सप्त दीप
नवसंड आनमानी ॥१३८॥

प्रताप :

संकरा-चौताला, २३७ अ

अरिनि दर दरेरि मारे भुजनि वर आयु वरननि जित तित द्रुअनि दल मोरै ।
जब कोपि कर अमर छाड़ै गाजै तव घन निहाल सेस कलमलात सौ कौन जे जोधा जु तो
सौ जंग जोरै । धनि धनि प्रताप पूरौ सूरौ सब ही अंगनि असौ कौन कौन असौ गरव करत
जोरै । धनि धनि साहिजहां प्रथीपति जाके गुनीअनि देत लाष करोरै ॥१३९॥

नौरोज :

आसावरी जलद-तिताला, ५३ आ

साइरपति नौरोज झर लायौ पोहौय मंदिर आकास दल धुअ तनायौ दसों दिसा तानी । गरज निसान वाजत राजत हो दान घटन झर लाई वरसत कनिक धारनि मुक्ता बूंद पवन पानी । चमर धुरत चमकत कचन अडंडनि सोई वादवान कीरति पवन चलानी । झालरि घटा और पछी बोलत गावत नर नारी अय अपनी बानी साहि को सुष दयौ साहिब कानसानी ॥१४०॥

नौरोज

सुघराई-चौताला, ३६ आ

छत्रपती कीनौ नौरोज रोज रोज उठत कोठांनि ते गुनी पावत जाचिग भरे भरे घर आगन । आसमान मदन छत्र न होहि मेरे जान झरोषा राषे जह देषिवे कौ है इद्र वर गनौ । मषमल जरवाफ कीपाप षरे लीने ता मध जरे हीरा मुक्ताहल काम के मनी साहिब कानसानी । कौ दरसन देषैं अस्टसिधि रहोअत है अब कोउ ना समान ग्यानी ॥१४१॥

काज (उत्सव) :

कामोद-सवारी, १५३ अ

भाई द्रमकै द्रमक द्रम द्रम वाजै मदिलरा ऐ । सात सषी मिलि मंगल गावहु साहि-जहाँ घर काज ॥१४२॥

जलकेलि, नौकाविहार, लालमहल :

जैत-तिताला, १५८ अ

धनि साहिजहां रिसाल लालमहल आगे करत जलकेलि ससि पाउडे करि जोति दई भैर अंअत के रसनि से । यह छवि निरसत सुरनारी, फूलि कमोदिनि जो जा मै नौछावरि करत सुमन सौ तै जु हरि कनि से । प्रभु के चरन परसत कालिमा गई भयौ विधि अब निर्मल तन से । नउका की निकाई कही न जात साहिब किरानसानी की सु दरताई की झाई की तरगिन से ॥१४३॥

नायिका-प्रशंसा :

ईमन कल्यान-चौताला, १२० आ

तो सी सुघर नाहि प्रवीन तेरी सय कौन करै प्यारी । तो सी तुही और नाही मेरे जान औसी रूप गुन उज्यारी । तेरी छवि सरूप मोहि कहि न आवत हाउ भाउ कटाछि गुन चंद्रमा उजारी । साहिजहां पीअ तो ही सौ हिलन मिलन सकल त्रीअनि में तू मनभांनी री ॥१४४॥

द्वितीयचन, सोभाग्यमयी नायिका :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ अ

सुंदर अनूप नव सत सिंगार साजत राजत चंद्रमा सी जौन वसन षोडस हित लसत तन जोवन प्रगास सोहत वदन तेरै । हरी ढिग कौ परस भयौ नासिका वेसरि मोती तारिका निकट रही और नछिन्न भूषन नगन ते तन पैहरै कुच काम कंचुकी बनाई सो छवि लहीअतु री ज्यों ज्यों प्यारी आवत पीअ नेरै । पति नवल उदै द्वादसिलाते अधिक विसाल छदसचारि विछानि कौ निपुन गुर ग्यान प्रवीन मति श्रेस्ट कीयें बहुत सुष मेरै । साहिजह के सग अरधंग तू ही ऐक ठौर भई जह अचरज देषि देषि सब सषी मिलि हेरै ॥१४५॥

सौभाग्यगविता :

पूरबी-चौताला, १५ अ

माई री अपने पीआ सौं हौ कवहूँ न रूसों न उनैहे (उन्हे) रुसाउ । जासौ वे रीझे ताहीअँ रिझाउ तासौ वे षीजिहँ ताहि षिजाउ । लगनि दुराउ जीअ की पाउ आनंदनि रसनि रैनजगाडा साहिजहा पीअ दूल्हा मेरौ हौ दुल्हिनि उनकी सौतिनि जराइ बहाउ ॥१४६॥

नायिका अधीना :

सारंग जलद-तिताला, ७२ अ

सब तुमही तन देषत तुम काहू तन देषौ हौ लाल कहा भयौ सबही तै सुघर सुंदर चतुर प्रवीन काहू धौ करौ निहाल । भली भई जो मेरे हू भागि जागे मोउ सौ अनुराग मैटे काम जंजाल । साहिजहा महाजान रसिकवर वंदी आधीन वाल ॥१४७॥

दूतीवचन, नायिका :

केदारा-धीमा, १७३ अ

दरस देषौ वेह री किमिस यैसे प्रीतम वलमा के । जल ससि प्रांन वनाई राष हम करम करम करि अधरसु लै लै सुंदर साहिजहा के ॥१४८॥

आगतपतिका, महलशोभा :

केदारा-चौताला, १६३ अ

तैसी है चांदनी सोभा वनाई तैसीय निकाई मैहैलनि की मानो विसकर्मा विधै सर के वनाई । और अति सोहत उत्तिम बिछौनांनि मै रुचित रचे फूलमाल नां अनगन अंग अंग करि आये, नौछावरि भयौ ससि साहि पै, कैधौं करत अंक ला नांर वरसा रेग मेरै जान चरन धरत हजरति कै भये सुदि धरन कलं कावि देषत ही लौ जू भाये । धनि धान साहिजहा प्रथीपति तहां जगेत के मन लै सुख दै दै दई वतलाई जब आये ॥१४९॥

दूतीवचन, मानिनी :

पूरबी-चौताला, ८६ अ

बैठी री कर पै कपोल धरे री जायें दुचिती अनमनी आज पीआ सौं कछू अनबनी । रूषी सी रूठी सी जाननि विलषी सी मनु मारे तामस कीयै मानत न काउ को कहौ सकल त्रीअनि मै तूही मनमांनी । साहिजहां पीअ तेरे रसवस भये वे बना तू बनी ॥१५०॥

अन्योपभुक्त नायक :

गन्धार-धीमा, ३४ अ

पीअरवा आज कौने कौने के राते भाते साहिजहां सु दर बारे । नैन कहै दैत बैन कहैं देत विन गुन कौ हरवा रे ॥१५१॥

खण्डिता :

ईमन पूरीआ-सूरफाकता

तुम जु दुरि अनत ही प्रेम प्रीति बढ़ाये कीयौ अपनी मन भाये हम जान पाये । तुम आये रितु मानन अनत ही रैन जगाये कंठ लगाये चंदरत वातै उमग संग की वास जनाई । हम सौ दुराउ करत हौ वाहू कौन रस के उनीदे नैन लीयै ललाई । जानि हौ जू जानि जाउ साहिजहां पीअ सोई त्रीआ सो तुम्हरे मन अति भाई ॥१५२॥

संगीतज्ञता :

श्रीसग-चौताला, ११० अ

अथतार सुरसाधें जोई गुनी सोई सुध मुद्रा वानी गावै । गति मति विलम्बती (विलम्बित) करि दिखावै । सप्त सुर तीनि ग्राम इकईस मूरछिना वाईस सुर (ति) ताके भेद पावै । सुरसुती होवै प्रसन्न्य ताको सोई साहिजहां के श्रवननि को रिझावै ॥१५३॥

संगीतज्ञता :

षट जलद-तिताला, ५८ अ

चरंजेवी तोहि जांनन मांनन कौ साहिजहा सव गुननिधान । सकल कला पूरन रागरंग लीये जाते गुनीजन कौ आदर मांन ॥१५४॥

औरंगजेब

औरंगजेब (शोभा)

दरबारी कान्हरा-चौताला, १७८ अ

सुभ महरति सुभ घरी लगुन सगुननि मिलि कै दर्ई देग जोग कै वर । बनिक डड चमर दुरत मानो चद बिरिनि निछावरि कीनी मुकता सीस सेहरौ आयंक आली फुनि मसलानी कै उदोत सब भूअ पर । आराइसी नव बनाइ ते गनई न जाई फुनि आतसवासी छांडी मानों प्रथम उदौ करि रस्म (रश्मि) पसारी हो दिनकर । कोटि जुगनि चरंजेवी रहौ साहि औरंगजेब या जेब सौ सदा अनगन गीत वाद निरत करत है सब नांरि नर ॥१५५॥

चतुर्दशविद्या-निधान :

ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ

गुर गनेस्वर सरसुती नरहर और ब्रह्म पर ब्रह्म प्रसन भऐ आराधै तब असौ साहिब मै पायौ । साहिब किरानसानी साहिपजहा नंदन जगवंदन सुलितानि औरंगजेब चतुरदिसि विद्यानिधान कृपान जिहांन में नर जाते रीझि जसु गायौ ॥१५६॥

सिंहासन-रत औरंगजेब, देवता, व्यास, नृत्य, काव्य, दानशीलता : आसावरी-चौताला, ५३ अ

उत्तिम लगुन सब सगुन गुनी गाइनि ब्रम्हा विस्न महेस व्यास कीनौ साहि औरंगजेब जसन तखत बैठे आनंदन । नगषचित धाम विसाति वरगातिनि मधम्हा गावत तिनि के साहि रीझि हरत दुष दंदन । ऐकै निरत लास तंड ऐके बम्हांवत कवि वंदी करि पडित कावि करत है दंदन । कनिक झर लगाये साहि आलमगीर जगतपीर ई लोक के लोगनि तारे जे फदेई रहत दुष दालिद्र के फंदन ॥१५७॥

सिंहासन-प्रशंसा, गान-वादन-नृत्य, दानशीलता :

आसावरी-चौताला, ५३ अ

अद्भुति कारीगर रचि पचि कै सुनषत वषत वली करन तषत अनूपम बनायौ । जा लागे रतन जनम गुन सव गुन कौ फुनि चिंतामनि करमं देव कौ अैसे नग कौ कापै जाइ मोल गनायो । गावत बजावत निरत जह कला जहां हीर चीर और बढ़ायौ नग कौ लीलक जर वषतर पतझर सव नेंह सो सुभ बनायौ । सुभ घरी सुभ मधिध बैठौ मधनाइक डिलीपति साहि कौ जेव दाता औरंगजेब इनि ने असीस दर्ई उनी गुनी कौ दुष दालिद्र अन्हायौ ॥१५८॥

पराक्रम, प्रताप :

मेघ मलार-चौताला, २७४ अ

चकता चमक चहूं चारौ में दलनि मलन आयौ दिल्ली नरेस । उत्तर दषिन पूरब पछिम अकर करे रौ बैठे सिघ नरेस । तिहारे चढ़ै दलवा (द) ल उनि आऐ सप्तदीप नवषंड तिहांरी पैर । साहिजहां जू कौ साहि औरंगजेब धौसा की धुकार कापौ पातल कौ सैर ॥१५९॥

पराक्रम, प्रताप, खन्दार-विजय

संकरा-झपताला, २३८ अ

सहज लई षंदार विदित कीन तप तेज कौन जोधा तो सौं जंग जोरै । आडड डडनि राषै दिली सरस बाधै पजरन गढन तोरै । देस देस नवषंड चहू चक्र मन महा जानीअै चहू चक्र सारै । साहिजहां को औरंगजेब महावली तौ से न भरो और भये करोर ॥१६०॥

पराक्रम, जिन्दापीर :

केदारा-चौताला, १६४ आ

आयौ आयौ रे महावली आलमगीर जाकी धाक कोउ धरै न धीर । अपवली तपवली आली जंग जोरै तेउ अटल गंभीर । दाछन दलभले विकट गढ हलहले जाकी तौ धुआई फिर दरीआ तीर । चकतावंस सुलितांन औरंगजेब साहिनि में साहि आलीआ जिद पीर ॥१६१॥

वर्षगाँठ :

षट-चौताला, ५७ आ

व्यास सोधन दिन गिन ज्यांन नीके सगुन लगुन धारी । दीनी बरसगाँठि साहि औरंगजेब की करत हैं कोटि कोटि वरसन की अविल धारी । भाए भए नर नारिनि के आनंद जनम जीतव सुफल फली चर चरजीजौ सुभ घरी । नीर पीर आलमगीर की जगत विस्तारी ॥१६२॥

बरसगाँठि :

टोडी धमार-षयाल, ६८ अ

सोइलरा आयौ औरंगजेब गाम्रो सषी मिलि कै सुघर मंगल चाइ । और गु वाजनि वाजे अछया पूजी सवनि की बरसगाँठि आनंद पायौ ॥१६३॥

वसन्त का मुबारकवाद, मंगलामुखियाँ :

हिन्दोल-चौताला, २५० अ

चरंजीव रहौ सुख संचति संपति साहि कौ एक छत्र दिलीराज कर वर होई दुहूँ पुर जस कीरति अधिकाई । रोमस (लोमश) कै सी जविल सोफल फल अनलेशन, लाष करोर वरस लौं जविल बाढे तिहांरि । और जो मन अछया होइ तुम्हांरी अब सोई करता करम केरे असी सुफल होइ हमारी । अनगिन आनद वसत मुवारष साहिनिसाहि औरंगजेब जू तुम असै ही अनगिन वरस लौ हम मंगलामुषीनि सग खेलौ धमारी ॥१६४॥

अनुपम चौपरि, नायिका ने पति जीता :

केदारा-चौताला, १६४ अ

तै आपु ही मै वनाई अनूपम चौपरि ऐ । रूप जोवन गुज वानिक विसाति मांघ वसीकरन घर कीनौ फुनि दीनौ त्रविधि कटाछि पांसे करि । वो सुभ दांव षतन तोही कौ फुरेरी औरनि के चौक चाक बाधि बाधि चतुर वतीआ कीनी जीही ते पूजी सार । सौतिनि सौ बाजू पीअ जीति लीनी साहि औरंगजेब रीझि रुचि सौ कंठ लगाई भुजभर ॥१६५॥

नायिका :

सूहौ-चौताला, ३४ आ

जोवन मधमाती राती रातिही अंषीआं लजाई । देषौ चाहत साहिकौ दरस नेह नजरि ललचाई । अँडात जम्हात और प्रगट चिन्न भौहें चढ़ाई । रस के रसीले लाल साहि औरंगजेब अपने मन काम के ग्वाई ॥१६६॥

नायिका :

आसावरी-चपक

परम ग्यांन गुन निधान सुलितांन औरंगजेब मेरी तौ कही हू न मानत कैधो मेरे भागिनि हू दोस । औसी दूती लूती सिषै दै कांव तिहारी मया ते मोहू कौ तो घर अंगना भयो सहस कोस ॥१६७॥

नायिका-दूती :

पूरिया-सूरफाकता, ८१ अ

तुम अवदि वदि आए कहि आवत हौ जू सो दिन धीरि न धरैगी । आनि बैठे जब त्रीअनि में वलमा सो जह रीति कैसें निवहैगी । हमसों अवदि वदि अनत विलमि रहे कोउ कहू अब जाई कहैगी । जानौं हौ जू जानि जाउ साहि औरंगजेब जाइ लगी अधराति सो कैसें कें सहैगी ॥१६८॥

दूतीवचन, प्रतीक्षारत नायिका से नायक-मिलन :

मालसिरी-सूरफाकता, ८३ आ

अब घरीं आवत है री लाल माई री अवधि कौ दिन आज । प्रफुलित वीही सुगंध मिलि अंजन कटि करि भूषन वसन बनाई पैहरै प्यारी तबहीं अरगजा भेंटत लगाये तब होइ मनभामतौ काज । वह देखौ आइ गए मनमोहन वलमां अंतरजांमी कामी कमन वरन कारन विरहिनि कारन मांनों गति तिनि कों लीये सुष समझाइ साहि औरंगजेब लीनीं गरें लगाइ प्रेम पगाइ कीनीं निहाल तोहै वाल दीनौ विभ डिठ सुहाग भाग आनंद-राज ॥१६९॥

आजम

पीरों की स्तुति : आपत्काल में :

भैरव-चौताला

साहि भरदान अली ष्वाज हसनं वसरी ष्वाज हवीव अजमील हजरति सेष दाम्रद ताई ष्वाज मौजदीन मांरूपकरक संस साही सकती अवदुलका सम जुनेद वगदादी हव वकर महंमद सेवली सेष साही अवदुल अजीज पीर । हजरति अवदुल वाहद सेष फजल परे तार तूसी सेष सईयद मीरा गौसिल आलम मुही अल अल अकबर सेवकली ष्वाज कुतव लै दीन अली समसदीन अली जलई दादमीर । सेष समुसदीन अली सेष कुतवदीन अवल गौस सेस वलअ कारू मसाइक समसदीन हजरति सेष जलाल वुषरी सैद आजम लै सेष वुढन वैराची दवेस (दरवेस) कसम साहि अवदुल कदुस सैद जलाल हाके सखदीन हजरति स्याह निजाम मुसकिलि आसान दस्तगीर । जे तुम सकल पीरसब मिलि करौ चरंजीव साहि आजम छत्रपती वे सेवक तिहारे आए मन विच क्रम (कर्म) करि जव जाकी तुम ही हरौ कठिन पीर ॥१७०॥

नायिका-छवि :

गन्धार-चौताला, ३२ अ

प्रगट चतुर वर नैंना री तैर कैधौं षंजन कमल वसे के कटाछि मांत पिता मुष सुष सागर ये पंकज नछावरि सरोवर मीन करत किलोल । कैधौं चंद लै सो तन गांर लै बैठी कदली, भौंहें डाडी कर पुतरी व होंइ दोउ पल सों पल नां लागत तो मैं, तांमे री विधि अनूप रूप जोवन छवि तोल । मुष सुष सलिता बीच नाव फिरत बाउ वई वरुनी चौप

तरंगनी फेदे फद फदांन देत षोल । कहें 'जुगल माहारूप' हसत मुदत खुलत फिरत जामें
भंडारी साहि आजम पीअ हुकम लेज षोलि षोलि देत त्रविधि हीरा मोती मोल
अमोल ॥१७१॥

आजम का पुत्र-पौत्र, माधो कवि :

सूहों-धमार, ३५ आ (सवैया)

चातुर चार वडौ रिखवार अवीर गुलाल लीजै भरि क्षोरी । गावत फाग भिगावत
रंगनि अंगनि केसरि रोरी । वाजत है डफ ढोल पषावज जैसो री (रीझि) करै बरजोरी
लाडिलो है साहि आजम को जंह माधो सपूत सो खेलत होरी ॥१७२॥

शिव-स्तुति, मंगलकामना :

गौरी-चौताला, १०५ अ

भष्म भूषन अ ग कर चक्र गंग सिकर (शिखर) विरूप सिव जोग डंमर में डवरू
वाजत फुकत फुनेस भारी । जोग जुगति अग्यात चित सित सरूप संकर हर कठ कंठ गर
विष नग्न वरन राजत परम अस्नांन (पद्मासन) ध्यान धरत मुक्ति रूप अवतारी । जंता
सती जंगम जोगी नषी सन्यासी उक्तिधारी अघोरी रुद्र वाइव कर इत नगिन करि प्रनाम
रहित चारी । धनि धनि धनि महादेव सिधि देव देवनि पति रिधि सिधि दाता साहिनि
साहि आजम कौ होउ सुषकारी ॥१७३॥

खण्डिता :

गौरी-चौताला, १०५ आ

निपट करि जु दुरावत मोसौं नही जानत पीअ अधिक चतुर तुमही और हौ ही अयांनी ।
कोटि जतन करि तन गुन प्यारे तिहारे देखीअत जे करत फिरत घर घर मनमथ के वस
जुवति अंग संग रंग करत बौहौ ग्यानी । अटपटी पाग पेच लटपटे कीयै बोलत मंद वचन
चक कहत कहानी । साहि आजम विचित्र छत्रपति की वाते अब मेरे जान पाई तब धाई
मुषरावत मन जावत न तिहांरी घात हम मन विच झम करि पैहेचानी ॥१७४॥

नायिका-बयन :

हमीर-चौताला, ११२ आ

नै तारनि तीषेरी आली साल सौतिनि सब लालनि मन भावत है री तूअ मन विच
क्रम करि तेरे अति प्रवीन अनियारे । कंजरानि कजरारे उजागरनि उजियारे वडे वडे
क्रपकारे सील सर्म लाज साज लाज सौ जु पूरन अति जिने देषि मोहत बिरहित आजम
प्यारे । चित चौरै चितवत चटकीले मोरे से चमकारे निस्ता तारे भारे छवि छवि मौतिनि
निडर निडर दैषत है हो जै कटाछनि भारे । धनि धनि धनि तूअ नैन हैं कुरंग कुरंग कीनै
मीन छींनन अति को गनै आली अमल कमल सेवत से षेजरीट हीट हीट सीषि सीषि सीषत
झपकत मतवारे ॥१७५॥

सुहागरात :

केवारा-चौताला, १६८ अ

आजु सुहाग की रैन मोहि लागत अति ही सुहावनी । सुलितान आजम दूलह
दुलहिनि में वातें भई मनभावनी ॥१७६॥

सेहरा :

दरबारी कान्हूरा-जलद, १८१ अ

सोहै सेहरा मोहै सबही के मन मोतिनि की लर विनि के मुष पर नीकी लागै मानौ सुधाधर लागौरी सुधावरसन । छवि के जोर ससि किरिनि जीति रापी ऐकटक रूप सागर सहसवार हवै सुरसुती अनूप दरस दरसानै आई विराजत है अप अपनी भातिनि उडगन । चरंजीव रहौ साहि औरगजेब कौ नद सुलितान आजम दूलह जाकी सोभा निरपि अपुनपै वारत सुर नर हू की धन ॥१७७॥

बहादुरशाह

स्तुति :

सारंग-सूरफाकता, ७२ अ

तुमही करीम रवि कवि करता घट घट पुरन जल थल भरतार । तुमही कादर तुमही कुदरति तुम ही साहि बहादुर नर ॥१७८॥

वर्षगॉठ :

भोपाली-चौताला, १३५ अ

सुभ दिन सुभ घरी सब सगुन सौ भले गावै सुभ नछित्त साहि आज बैठे नगन गरत तखत । नरनारी सब मगल गावत ऐक चतुरबाजे लीअै कर सों बजावत मनकी फूल सब ही के डहाडहे मुख ससि से लागत लखत । औसीअ सोहत भीर राजा राना उमरावनि की तैसेई सोहत तन विछौना रखत । कोटि जसन बरस गांठिकर साहिब आलमगीर दुलारे वधू अधरनि जगाए जाके जागे बखत ॥१७८॥

नई वर्षा :

गौड मलार-चौताला, २८३ अ

नए पवन नए वादर नयौ सजन नयौ नेह नई मैहैदी हाथनि रंग सुरगीरी । नईअ कसूमी सारी थोरे दिननि प्यारी मोती भरी मगीआ अगीआ उतंगी री । नयौ नेह नयौ मेह नईअ भूमि पर अति सुष संगीरी । साहि बहादुर तुम वौहौनाइक सामली सूरति और मधुकर रंगी री ॥१७९॥

नायिका-प्रशंसा :

परज-चौताला, २०२ अ

तू अंग अंग अंगरानी अत ही सयांनी पीअ जीअ मन मानी । सोरैहू कला सवांनी बोलत इअत वांनी तेरौ रूप देषि चंद जोति हू लज्यानी । कर केहरि कदली षंभ जिनि मै तू आंनी । जह छवि देखि रीझे साहि बहादुर तेरी प्रीति जौलौ तौलौ गग जमुन पांनी ॥१८०॥

नायिका-छवि :

परज-चौताला, २०२ अ

तूअ तन जोवन आयौ धायौ औसैं जैसैं जौनं सी फूलि रही ठौर ठौर अंगना कौन दैहुं पटितर तोसी न देषी सिस्ट मध इंद्रहू कौ नारि नै वारंगना । रतन जटत की सारी सोहै कर सोहै कंगना । साहि बहादुर तुम वौहौनायक कांम कोटि तरंगना ॥१८१॥

नवोढा, सौभाग्यगविता :

छाया धीमा-तिताला, १४५ अ

नैक दुरि चितयै मो तन लाल सो सौतिनि में प्रगट भयौरी । वह मो तन हैरत वह वातन कर पव दसन लयौरी । कहा कहीं कछू कहत न बनि आवै सकुच कौ आनंद उर में सहौरी । साहि बहादुर तुम वौहौनायक हसि करि चीर गह्यौरी ॥१८२॥

अधीना :

कुब-मलार (खयाल), २८० अ

मै कब कीयौ मांन पिआरे सौ तु तौ मोहि लैन आई । तु तौ मो लैन आई
पीअ नै पठाई अति सुष भयौ मेरै आंगै आगै तू चलि पिछे तै मै आई । साहि बहादुर तुम
वौहौनाइक सकल त्रीअनि मै तू मन भाई ॥१८३॥

नयन :

हमीर-चपक, ११४ अ

इनि मेरी अंखीअनि मोसौं वैर कीयौ । आयु मिली जाइ दरस परस करि मोह
मन बांधि लीयौ । देषत ही वस हो रही विनिके अंसौउ लाहौ लीयौ । साहि बहादुर
तुम वौहौनाइक रस सों रास कीयौ ॥१८४॥

आगतपतिका :

गौड-मलार, २८२ अ

प्यारे हौं वलि वलि गई असे सांमन मै आंमन की । हौ तो तिहारी आग्याकारी
सेवा की करन हारी अनूप रूप दरसावन की । कैधौ आयु ते आऐ कैधों मेरे भागि ल्याए
कैधौ मो विरहिनि की पीर हरन की । साहि बहादुर तुम वौहौनाइक भली सुधि लई मो
जिवावन की ॥१८५॥

अन्योपभुक्त नायक :

भैरव-चौताला, १ अ

कहू लगौ काजर कहूं पीक लीक सोहत नष की रेष गात । ऐक तो चतुर जामै प्रगट
भऐ री नैन असे तों तिहारे सांच अवधि बांनिक वनै दिषरावन आऐ पीअ प्रात ॥१८६॥

खण्डिता :

गौड मलार-धमार, २८३ अ

ठाडे रहौ आंगन ही मेरै जो लौ देह नष सिष भीजै । न्हाइ लेउ गंग वानै पांनी
उतारि धरौ जे वस्तर जब ग्रेह देहरी पग दीजै । अधरनि अ जन लिलाट महावर चतुर
चतुरई जिनि कीजै । साहि बहादुर तुम वौहौनाइक सक्रचौ जिनि दर्पन लीजै ॥१८७॥

दूतीवचन, मानिनी से :

गौड मलार-चौताला, २८३ अ

रुसनौ छाडि दैरी वौरी आवे विचित्र वहुनायक । अनेग भातिनि करि लाड
लडावत वौहौ भातिनि सुषदाइक । वे चले आवत तेरे री महल उठि आदर करि सुनि मन
भाइक । साहि बहादुर तेरे री वस भऐं सकल त्रीअनि मै तू लाइक ॥१८८॥

सामान्या :

गौड मलार-धीमा

द्विगति मेरे जौ ही लौं सुष जौलौ देषिवों करत हरि आंनन । ऐक पल अंतर होत
अध्यारौ सूजत न विन दीअै वोल न सुहात काहु कानन । हों तो तिहारी अग्याकार सेवा
की करन हारी तिहांरी लौ लागी मोहि निसुदिन प्रानन । साहि बहादुर तुम्हारी द्रुया ते
सब कोउ लागौ मो जानन ॥१८९॥

विप्रलब्धा :

मधमाध-चौताला, ७५ अ

लीजै हो सुधि मेरी पीअ प्यारे निसु तउल घटत लई इनि जु दवटि निपट याते
विरह भारी । ऐक जो विरह गात जा और छिर होत सो तुम श्रम जल सीचि सीचि
हारी । सुधि पवन सांस रुधै आवत जैसीअ टरावनी (डरावनी) रैन अंधेरी । साहि
बहादुर तुम वौहौनाइक पंचवान मोहि मदन घेरी ॥१९०॥

विप्रलब्धा :

बरारी टोड़ी-चौताला, ७० अ

अवधि वीतन लागी री अजहूं न आऐ कत । चारौ जांम मोहि जुग से वीतत उत्तरितु मांनो राजा वसंत । द्रुम वेली फूलैंगी री जब आमे कांम मूरतिवंत । साहि बहादुर कौ मिलिवे कौ री कव धौं वनैंगो तंत ॥१६१॥

द्वितीयवचन :

ईमन-धीमा, १२४ अ

जासों मन लागो ताई कौ मन लीअै चंलीअै रस सौ, रसीली रस ही रस ल्याईअै प्यारे । वे तौ वौहौनाइक सब सुषदाइक, वे तो भई आपुवास कैसै मन मनाई लीजै । साहि बहादुर तुम वौहौनाइक, अपनी चौप लाल आप लाईअै हौ प्यारे ॥१६२॥

प्रणय-कलह :

आसावरी-चौताला, ५३ अ

लालन भऐ हो नाइक पर भऐ है जू तुमसों अब नही बोलौं । सूधे चितवे की चालि चलत इत धूधट ई नही षोलौ । मेरौ मन तुम सों जु लागों रहतु है चद चंकोर । साहि बहादुर तुम वौहौनाइक हमसों करत पीति जोर ॥१६३॥

मुईजुद्दीन जहाँदारशाह

प्रशंसा :

सूहौ-चौताला, ३४ अ

ऐक रचौ साहि मौजदीन कौ ताके कारन दीनौ पयानौ । दोरी दोरी आवै कहा लग जावै कस्तूरी सग सु दीनौ पयानौ ॥१६४॥

प्रताप :

ईमन जलद-तिताला, १२३ अ

आयो आयौ रे छत्रपती नरेस नर देस देस षलबल हलहल चलत दल जमि कें पति राषत, तूअ डरनि । सकल षांन सुलितान वान कपान तूअ करि कमान औसांन जात गुमांन भजत और जित तित और घर धरनि । अति प्रचंड वलिवड भुजनि वर वौहौ षंड षंड अति अडंड डंड दीनै वौहौत जु अरि निकरि डारे थारनि । सुभट सुर सामंत कौ आनद जसु गावत साहि मौजदीन जू चरंजीव कुलि करन ॥१६५॥

विभिन्न मुल्क, विजय :

गन्धार-चौताला, ३२ अ

मुल्क पर मालाहोवाद मांरु मरहट मुगेल मालवा महावन मकनपुर मेवात मुलितान मिसर । वगेदाद वंदर वदा बुषार काविल खंदार गुजराती बूंदी वुदेलषंड बीजापुर वंदान हो विधि नूरविदर । सुमिरि कंठ सोरापर सारंगपुर सुनि सहांनपुर सूरति समसावाद पांनोपति सुनपति सिरोज रूम स्यांम षुरासांन सुंदरपुर तरंगपुर सेषपुर सषारपुर कासी कुमाउ कनवज केदार करार । करगहें कमन कोकिल जीते साहि मौजदीन महावली मुल्क धुमाई नर नारीनि सकल भूअ पर ॥१६६॥

सवारी :

पूरबी-चौताला, ६६ अ

तिहांरे होति असवारी सेना इनि राग विस्तार मिलि मुरि सलिल ठनंकार धुकार वनौ रंग अपार तामें उनपति धुनि सुरपति सुनि विचार सवादि सवादि गुनी गावत पठाऐ ।

करन। इनि रमन लागौ नवि दर्पन उडनि मांझ असुरनि घर दलन छोडन लगे अस्तुति करन
ध्रध्वान धमंकन लगौ व्रैहै मंडल हलन मनौ गरजन तरपन अति झांज झनंकार दंत तन
गहै इंद्र मेघ रिसाल लाए। तुरही वजत यो लागत मानौ ऐरापति बोलत आवत है तिति
में नरसिंघा नफीरी मनौ अछोई सवाद दै वाजे न आए। साहि मौजदीन की जंह असवारी
सुनत द्रगज द्रगज लंकेस फुनेस दनेस छिपि पताल गऐ सवनि पारि विष लाल कोउ न
ठहराए ॥१६७॥

सवारी :

पूरबी-चौताला, ६६ आ

सोहत माही मरातवं मानौ पातुर सोभा रवि निसान जामे धनक ते निर्तत छवि
गुवंद संग गुवंद सवै राजै। गांइनि सेहैनानि अलापनि सुनाई अस्तुति गाइ मचाई राग कर
मुरसलीनें मुदेगी परौ संग रंग करना औ वदन औ धरन तालधारी झंझी मुर मिलि तुरहीआ
बुंगी नै (नै) छाजै। फुनि महारिंद दीरग दंद मचौ रग धूम गज निसान चलीधि घुंघरू
पगनि धरी पौहौप उजरी वरछी चमकै दीप छवि उज्यारे नाइक अग्याकारी देषौ साहि
मौजदीन प्रताप रीझै ताकी तिहूं पुर गांजै ॥१६८॥

शिकार :

ढोडी-चौताला, ६३ आ

गढपति दलपति देसपति अतिमाते ते गरव अंग धीरे लीअे सिंघ बैठे और हैं कल-
गजिनि की खेलै सिकार मारि मारि जीति लाए। तूअ प्रचंड दल सकल गात वेनकर गात
जानौ प्रचंड प्रवंद के देषि मगदाता अकन सकल परी षलभली तव वे आए पग पंस पसारि
भजम उडन कौ भए। तां वर वरछी कुही बनाइ कुलाहि म्यांन पीर दस्तगीर जो दई
दिसाई जो लगी जाइ भाई भूअ गिराइ कै मारे जिनिके चकई चकवा प्रान भए। साहि
मौजदीन महावली सिकार कीनी कंपौ थरर थरर सुरेस फुनेस सुर लकेसुर द्रगपाल तजि
भजि गऐ ॥१६९॥

मन-वनजारा :

ललित-जलद, २६ आ

मो मन वनिजारौ आयौ प्रेम पुजी (पूंजी) लै सुरति पैड के गाहौ पीअ छवि तन।
चित ब्रषक (वृषभ) धर ग्यांन मौ न लै सूत सूतरी विभि सूआ सेर यामे तामें भरि पीअ
रूप सवनि। ऐसी षेप लाइ अमत चिकारि नाचै बचाइ भरि राषौ हीयौ चिकन जह वन
जू के मन। जीये कहा जो भयौ विवेष दुष गयौ गुपत प्रगट लाहि लीयौ साहि मौजदीन
जू दरसन धन ॥२००॥

मुहम्मदशाह

संगीत-कृषि :

मधमाध-चौताला, ७५ आ

आकार भुमि (भूमि) तामें गमक पवन झकोर सों राग कर लागौ तांन बुंद (बूंद)
वरसत षरी। आरोही अवरोही दोउ ब्रषव कै सुर हल सों सोधि सुरति बीज वयौ तांते
रीति बेलि बढी हरी। सप्त सुर साषा उपजी अलंकार फूल लगे ताल सोई पात और
मूरछिनां वार दई चारौ तुकै चारौ दिसां यह विधि नाद षेती भरी। गाइनि गुनी गंधर्व

किसान तीनो ग्रामनि करि वानी ल्याऐ छत्रपती महंमद साहि नेत्रनि सौ देषि श्रवननि
सवाद लै सब की अंछया पूरी करी ॥२०१॥

नायिका-छवि :

पूरीआ-चौताला, ८० आ

मंगली ललाट दियै चूनों रंग आभोज भ्रकुटी भ्रमर भूले । वंदन आगें आवत कुच
कैसे के नीके लागत मै जान हैरी झगरन झूले । कंचुकी कौधन लागी अग टाटग नीके वनै गत
घर लीले । यह छवि चाहों महंमद साहि कों दसन कुंदमंद तिल फूले ॥२०२॥

नवोढा :

ईमन पूरीआ-जलद, १४३ अ

कैहूं कैहूं करि चौकि झझकि मिटी औ प्यारे महमद साउ वाम की । ज्यों ज्यी
समझाउं त्यौ त्यौं षिनि षिनि अधिक होत धकधकी धरकी जीअ मै कवि रही है दिस्ट
अस्टजाम की ॥२०३॥

नायिका :

हमीर-धमार, ११५ अ

नही मानें री न माने तव तौ ऐ सैननि वरजौ । हो हो करि गावत निदरत बात
कहत निधरक गरजौ । महमद साहि सुजान पिआरौ लगौई आवत जीअ ती तन जी । है
उनहि सकुच काहू की न रही वह तौ सासु ननद के ऐ लरजौ ॥२०४॥

खण्डिता :

ललित-धमार, २८ अ

तुम जाउ जू जाउ पियारे जिनि के संग सब निसु जागे । भोर ही आए मोहि
षिजावन रसरग के पागे । चोवा चंदन अतर अरगजा सब रंग रग के वागे । महंमदसाहि
प्रवीन पियारे जवहूं आछे लागे ॥२०५॥

होली :

टोडी-धमार, ६७ अ

सुर सनी ताननि होरी गाओ, गाइ गाइ साहि कों रिझाओ, चतुर वाजे गहगड
सों वजाओ, नीके फागु रचाओ, जेहें विधि रिझाई महंमद साहि कों वीही भांतिनि मान
मनाओ ॥२०६॥

होली, मान :

ललित-धमार, २७ अ

हो तोकों कौलौ सिख देहों री नागर । तू तो होरी षेलत छिन छिन में रिसाइ बिनि
को मन राषै नं रस गुन के आगर । ऐतो मान गेहैरो न कीजै री जो (ज्यों) सागर ।
अवकी महंमदसाह कों कोउ मनाइ ले आवे तो भरोगी काची गागरि ॥२०७॥

फाग :

दरबारी कान्हरा-धमार, १८४ अ

जह देषौ धूम गुलाल अवीर अवरष की कहा लौं जामे दुरत ननै (नैन) सवनि के ।
फूलनि की मूठै छूटै कुमकुमां ऐक मारत ऐक रोकत देत गुमान सौ गारि ॥२०८॥

होली :

ईमन-धमार, १२२ अ

रंग महल में होरी षेलन आए प्रभु लाल महंमदसाह चतुर सुघर । चले वंठनि
(बनिठनि) फेंट अवीर गुलाल छोडों पिचकारी रंग भरि भरि ॥२०९॥

फाग :

हमीर-धमार, ११५ अ

वांनिक वानि आए री लालन षलन फागु आज अनुराग भाग मेरै महल । करि सुगंद अंग लाइ लाइ मुष गाइ गाइ नीकी तान मानिनी जीवन सुफल रंगरस की करौंगी टहल । महंमद साहि रिसाल लाल हौ दआल ऋपा कीजै मो पर मेरी करैगी सौतै सहल । हितूअनि वौहौ सुष पाइ भाइ प्रभु मन चीते कारज करे मची चाचर भई अति पैहल चैहल ॥२१०॥

होली-युद्ध :

टोडी-धमार, ६७ अ

अब कै होरी में प्यारी लीखे के सांमान तै कीन तै कीनै । डफ ढाल नोंलासी षण लीये सौतिनि के गुमान सुभट राग मारि लीनै । अदंग तोप गेंद गोला गुलाल लायें ताकी अवाज सुनि गरूर गढ छीनि लीनै । महंमद साह को सुहाग वढौ वाके हितूअनि के मुष घुंद फेरि दीनै ॥२११॥

आलमगीर द्वितीय

प्रताप :

टोडी-चौताला, ६३ अ

हिंद में आनंद भयौ को जह दुरजन गायौ बैठे तषत वली आलमगीर सानी । वजि निसान ठहरानी सुने गजपती फिरि गई धाक डर हुकम मानी । चले चहुं ओर तैं मिलन कौं जोरि कर आगै चंडोल घर सुघर रानी । अदलि इनसाफ अदारंग कहां लग कहौ कादर करीम की मेंहेरवानी ॥२१२॥

आगतपतिका :

पूरबी-जलद (खयाल)

आंमन कही आगिम भईलवा उनको भुज फरकै आखि वाही (बाईं) मोरी । असो सगुन विचार करौ जी अदारंग वेगि मिलै मोहि आलमगीर सानी ॥२१३॥

शाह आलम

प्रेमगगे नयन :

टोडी-चौताला (नादिराते-शाही, पृ० २१६)

हार गये सब चातुर चित मै सीख सिखाय के जेते सगे है । चचल चाल सौ भूल गये, और लाज के काज सबे ते भगे है । देखत रूप न औरनहार के जा दिन तै उन संग जगे हैं । नैन नही सुरझो उरझो अब, ऐ री सखी, अत पेम पगे है ॥२१४॥

नायिका :

टोडी-चौताला (नादिराते-शाही, पृ० २०७)

अंगन में आय देखौ सहज सुहाय, मो ही सोभा दरसाय प्रेम रस पियाय दियौ है । नैनन लगाय फेर मन को लुभाय, बैन मुख बनाय, मेरा चित चुराय लियौ है । आनद समाय, वह कीनी चित चाय, मांगन हूं से बुलाय, और रिझाय कर हियौ है । नीके सुर गाय, आछी तान परबीन कूं बजाय सुनाय, कछु चेटक सो कियौ है ॥२१५॥

भूतीवचन :

टोडी (नादिराते-शाही, पृ० २०५)

रीझ रीझ, रिझाय रिझाय, काम के किलोल कर मन के मनोरथ करे सहस सहस आंखों देखी, न कानों सुनी ऐसी जैसी तू तिया है, भचक रहत हूं तो कों लहस लहस यह

देखी तो मैं रीत नई, सखी, जाने न पुंछे कछु पीतम के जब आवे मौं सूं रहे बहस बहस हंस
हंस करत अछी बतिया, लग छतियां सूं अपने पिया को उर लावत रहस रहस ॥२१६॥

मेंहदी :

अड़ाना, चौताला (नादिराते-शाही, पृ० १६६)

क्या नीकी आज यह रोशनी मिहदी की हज़रत पीर दस्तगीर की बन आई ।
चिराग़न की जोत जगर ऐसी लागत जैसी रंगारग के जवाहिर से छाई । कैसी धूम की
बाजत नौबत और छूटत आतिशबाज़ी, गुनियन मिल के गाई कीनी नज़र मिहर की अपने
मुरीद पर, 'शाहे-आलम' ते मन की मुराद भर पाई ॥२१७॥

होली :

जँजैवन्ती-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १६०)

ले पिचकारी चलाए लला, तब चंचल चोट बचाए गई है । अपनी नाक सूं
खेलत है, कहा चातुर नार खिलार नई है । ऊचक आए सखियन को छोर के लाल गुलाल
के मूठ दिई है । नीकी लगे यह आंखन में, कहा रग अबीर सूं होरी भई है ॥२१८॥

वसन्त :

भटियार-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १५६)

फूलन के हार चार जूही, चबेली, चपा, सोसनरा बेल देख को किला की बानी
जीत जीत के करै । सरसों पाए लो फूल रही मुख गुलाब नैनन नरगिस अधर दस कंबलन
की साम्ता धरै । बेली सी नवेली बाल जाके बात में सब दादर केवरा, केतकी, मोतिया,
सुगंध फूल झरै । आप बन आई कामनी वसन्त रुत गड़वा देन आई 'शाहे-आलम'
बादशाह के घर भरै ॥२१९॥

गान :

अड़ाना-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १५१)

ताल, मिरदंग मुहचंग बजाय के प्यारी तिया गुन बैठ के गाओ खेलिये खेल अबीर
गुलाल सूं, औरन कौ नित पेम पगाओ । भूल गई, कछू याद नही, अब सोवत है काम
जगाओ अग में तोरी सो बोरी, लला, अब अग सूं हात न मेरे लगाओ ॥२२०॥

होली :

मुलतानी धनासिरी-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १४०)

तुम तो बड़ी हो चातुर खिलार, लालन तुम सूं खेल मचाऊ रंग भिजाऊं दफ़,
ताल, मिरदंग, मुहचंग बजाऊं, फाग सुनाऊं, अनेक भांत के भाव बताऊ । चोवा, चंदन,
अबीर सुगंध लगाऊ, फेट गहन कों धाऊं, और तुम को रिझाऊं । जह यह राग रंग ढग
मचाऊं, तब देखू चतुराई, तुमहारे जी को कैसे न भाऊं ॥२२१॥

होली :

(नादिराते-शाही, पृ० १३३)

जाओ चले जित जावत हो तुम हूं अब तो चुप नाह रहूंगी । नौखे नये जो खिलार
भये, तुम जैसी कहोगे, हूं तैसी कहूंगी । छाड़ के लाज सखी की पिया की सूं रावरे तो अब
फेंट गहूंगी । एक सही और दो भी सही, पर तीसरी चोट न लाल सहूंगी ॥२२२॥

छत्रसिंह

सिंहासन :

बरबारी कान्हारा-चौताला, १७६ अ

धनि धनि धनि धरी सधि कनिक रतन जटत तषत तापर बैठे राजा छत्रसिंह
जगतपती आनंद सरसाए । रन राजा राउ उमराउ कवि, राजत लैलै रिसाल ठाढे अति

प्रफुलित भए जाचिक अनेग कोटिक दरसाए । तव अमोलक वसन आभूषन पावत पांन सनमान वौहौ विधि सिस्ट कौ सुष परचाए । चरंजेवी महाराज छत्रपति छत पर अ सैंई नित नित करत कोटि कोटि जसन जाइ निरषि देव सुमन बरसाए ॥२२३॥

प्रताप :

सारंग-चौताला, ७१ आ

जीतत तुरत जे अजीत और प्रचड अडंड डडे षंड षंडनि वलिवंत तिहारी फिरत आंन । असपती गजपती सुरपती नरपती डरपत है जाते झपटि झहरावत झुकि झहरावत गिदवांन । कौन और कौन सरवर करै को धीरज धरै जब राम रोस करि गहत कमांन । अपवली तपवली महाराज छत्रसिंह तुमही जानत जीति जान ॥२२४॥

प्रशंसा :

केदारा-चौताला, १६६ आ

असौं दीनदयाल कपाल महाराज छत्रसिंह वहादुर । सब राजनि सिरताज इंद्र सम जस कीरति सुष सागर । धूअ प्रहैलाद समं राबै भूअ लोक पर अटल राज चहू दिसि भरपुर । परम पुनीत सुभग जसु गावत भक्त प्रभु कृपा कर ॥२२५॥

प्रशंसा, दानशीलता :

सुध कल्याण धीमा-तिताला, ११६ आ

असौ को तिहांरी सरवरि करि सकै तुम तेगवली दानवली जीओ जुगु जुगु भू पर । देस देस के गुनी आवत तुम तक तिनि कौ आदर मान सों देत हौ अनगन तुरग नग अंबर । मेरे ऐक रसना तिहांरे दांव करन की कहा लौ कहौ तुम से तुम ही नर । 'भूपति' कहत जगत के दालिद्र हरन को ऐक रचौ विघन माहाराज छत्रसिंह वहादुर ॥२२६॥

बसहरा :

टोडी-चौताला, ६४ आ

दसैंहैरौ मुवारष होइ तुमकों संचति संपति और सहित समांजा । गुनी गाइ गाइ आनंद वधाए जै असीस कोटि वरस लों भूअ पर अटल करो राज । तिहांरी अस्तुति को करि सकै तुम राजनि के राजा सवनि में सिरताज । 'भूपति' कहत महाराज छत्रसिंह दाता गुनी अनि की मनसा को दांन अभही मगाइ दीजै आज ॥२२७॥

नादबाग, संगीतज्ञता :

सुध कल्याण-चौताला, ११८ आ

कैसो नादबाग रचौ गुनी गाइनि कंठ भुंमि मध तुम दिषाओ सकल जान । सप्त सुर तरवर अछिर पौहौप पात सुधि वानी छाट सघन सुरनर मुनि नीर अषाडत यों लागत उपजि फल नीके लागत सुघरनि मन । 'भूपति' कहत जाकी सेल करन करिवे कों महाराज छत्रसिंह के श्रवन ॥२२८॥

आगतपतिका :

कान्हारा-चौताला, १८६ आ

करमनि वर पाए री आली सवही त्रीअनि में होंई सुख स्यानी । जनम जीतव सुफल करि मनायौ मै आजु ही जो हरि की निरषी अंषीआं सिरानी । दिन दिन के अभिलाष पूरन भई गाइ वधाए नवनिधि पाई । प्रानपति महाराज छत्रसिंह जू कौ मिलि कीनी रस की वतीआ मनभाई ॥२२९॥

आगतपतिका :

सारंग-चौताला, ७२ अ

नेत्र कमल प्रफुलित भए देष ते मोहन पीतम कों दरस । दिन दिन के ताप विरहा विलाप गऐ हैं री ततछिन जब अंकों भर लीनी अंक व रस । धनि धनि भागि सुहाग नैना धनि जनम जीतव सुफल प्रानपती प्रानेसुर घरी घरी पल पल छिन के दऐ सुख सरस । महाराज छत्रसिंह अंतरजामी जब अतरगति जानत तव अंग अंग अंग के मिटात रस ॥२३०॥

चेतसिंह राजबहादुर

खरबार, दानशीलता :

ईमन कल्याण-चौताला, १२० अ

असौ दरवार राजबहादुर कौ जामे रंक राउ राजा उमराउ आवे तिनि कों लाषन देत करत राजी । सब जग के दालिद्र हरन कों ऐक चेतसिंह नरेस रचो या भूअ पर विधनां धनि भाग वाके जावे तुम करत सरफराजी ॥२३१॥

गुरु-महिमा :

भैरो-चौताला, ३ अ

गुरु सहाई तो उनके चरन कृपा ते सब कांन वनि आवै । मनभरि अर्थ धम्मं काम मोक्ष आदि दै जोई जोई मामै सोई सोई पावै । वृंम्हरूप हरि विस्न प्रजापति अगिम निगम गुन जाको यह विधि गावै । राजबहादुर चहत लहत महा मोद उपजावै ॥२३२॥

श्रीधर-स्तुति :

भैरों-चौताला, २ अ

आनंत ब्राह्मांड नायक परब्रह्म श्री श्रीधर महाराज । कृपासिंधु भक्तिपाल सुषकर रक्षक मेरी लाज । जह विनती कबूल कीजै तुम जग सिरताज । श्री लक्ष्मीनारायण राजबहादुर के पूर्ण करौ सब आछे काज ॥२३३॥

श्रीनिवास-स्तुति :

भैरों-चौताला, २ अ

प्रसन्न्य होहु श्री श्रीनिवास अभय वर देउ । वानी सरस्वती हृदयै श्रीपति रोम रोम दास भाव ग्यान संतति सनेहु । दीनवध दयासिंध पतित पावन दुष दरिद्र हरि लेहु । राजबहादुर पै नित नित घरी घरी पल छिन कृपा दिस्ट करि देउ ॥२३४॥

श्रीपति-स्तुति :

भैरों-जलद, ४ अ

चरन सरन तन मं पात आ (पालय) त्वं श्री श्रीधर । राजबहादुर प्रनत जन कों कृपा करु चक्रधर गदाधर ॥२३५॥

श्रीपति-स्तुति :

भैरों-जलद, ४ अ

श्री श्रीपति महाराज प्रभु तुम्हारी कृपा ते सिधि होत मम मन के काम । राजबहादुर के त्व दाता राज अचल धन धन दुजै नित्य आनद जांम ॥२३६॥

लक्ष्मीनारायण-स्तुति :

भैरों-जलद, ५ अ

भई है कृपा मोपै प्रभु लक्ष्मी नाराइन प्रभु की अधिक वर । राजबहादुर के मनवांछित ते फल पावे सुष उपजाय आनंदकर ॥२३७॥

लक्ष्मीनारायण-स्तुति :

भैरौ धीमा-तिताला, गीत-अंग चतुरंग, ५ अ

परमात्मा जीवात्मा तुं अतंरात्मा श्री लक्ष्मीनारायण जग व्यापक । संगीत नाद ताल सकल आपु तकिरितकधिधिकिरितक धुं डड तक जगनग नगधुमकिरितकधा गुप्त आपु ही व्यापक । सप्तसुर संपूरन तुम ही पमां रेरेरे रेरे सा सानी धप मा गरेसा तुमही जप जापक । तीअय तीअय आ सब तुमही राजवहादुर परम पुरिष श्री श्रीधर साहिब ध्यान आपु ही ध्यापक ॥२३८॥

नारायण-स्तुति :

पूरबी-चौताला, ६५ अ

देषीअत दरवार जलाल त्रपु तरुनी अग्र हू ते भारी । हरिविरंच सुरपति सुरगनपति कर जोरि जोरि सोहै दंड धरी । जोई गात सोई पावत इछयाफल अस्तासिधि नवनिधि सुरमुनि नरनारी । नृप नाराइन चक्कवै चतुर्भुज राजवहादुर चाहत कृपा तिहारी ॥२३९॥

विष्णु-स्तुति :

रामकली-चौताला, १४ अ

वृ म्ह भगवान विस्न नरोत्तम नारायनि जपो नित्य तुअ नाम । वासुदेव गरुडध्वज कमलापति राजवहादुर कौ दीजै कल चारौ अभिराम ॥२४०॥

शिव-स्तुति :

भैरौ-जलब, ५ अ

विस्वेस्वर विस्वंबर वीरेस्वर वीरभद्र विस्वनाथ गौरी धर । गावत ही तुअ जस राजवहादुर पायो अचल हावर ॥२४१॥

इन्द्र-स्तुति :

केदार-सूरफाकता, १६७ अ

दंहू दिसि जीति लई राजा पुरदर सुरिद्र असुरनि सौ छिति प्रभु भुज जोर । ऐक तौ इन्द्र दूजै वज्र तव कर सम कौन तेरे करि सकै तू ही तक्कत राजा को ओर । सब के जान तुमं आपु वली महावली अरिगन के दरन तेज तुंग अति तोर माहा माहा दीजै राजवहादुर की जह विनती सकल मनोरथ कीजै मोर ॥२४२॥

सूर्य-स्तुति :

पूरबी-चौताला, ६५ अ

श्री मारतंड प्रचंड वृम्हाड मंडन तिमिरहरन त्रभूवन कौ । चंड करि भासमान अर्क आदित्य रवि ऐक चक्र रथ रूढ ईस जगत कौ । बल प्रताप अघ आप संधार करता ग्यान वान धर्मदान सुषदाता तिनि कौ । राजवहादुर कौ दुषमोचन मोद भरन पुरन करत प्रन(त) मन को ॥२४३॥

हनुमत्स्तुति :

भैरौ-तेवरा, ५ अ

वाइपुत्र महावलंद ससी समांत निषंडनं श्री रामदूत प्रनामिहं । वैरीनिषंडन दनुजदंडन भक्ति वरन जानामिहं । वज्र अंग गदाधरं हरिभक्ति ईस वरामिह । राजवहादुर सरण तूअ प्रभु चरन कमल भजामिह ॥२४४॥

विन्ध्यवासिनी-स्तुति :

भैरौ-तेवरा, ५ अ

आदि तू भमानी जै जै सकल जगरानी मांन सममांन दे विद्यावुधि वांती । करत दरसन होत प्रन्य (पुण्य) कलक सकल गए इच्छा पूर्णन मनोकामनां वरदांती । तकिटि

तकता किटि किटि तक धि लांग धिलांगि धिलांगि धाती आती अयआ तीआ तीआ राज
वहादुर पै प्रसन्न हो विदेवासिनी सकल गुन की षानी ॥२४५॥

गंगा-स्तुति :

ललित-चौताला, २५ आ

जै जै गंगे त्रगांमिनी अघहारनी विस्न पादोदकी अरु धर्मदानी । उजिल वरन
यातें उजिल करत जन कौ जंह गांनी सुरनर मानी । अवढर ढरनि सरनि असरनि की
जगतारनी जगरानी । राजवहादुर सेवत तूअ चरणाम्बुज सब सुष की पानी जानी ॥२४६॥

व्यास-स्तुति :

पूरबी-चौताला, ६५ अ

पारास्वरी सुत तुम जगवन्दन हरी रूप धरन वौहौ विधि सास्त्र करन । वेद भेद
करी वेदव्यास मुनि राजवहादुर तुअ सरन ॥२४७॥

नाद :

मालकोस-चौताला, २२७ आ

अगिम निगम अगोचर निरंकाल नाद सरूप तामै अगरंग तरंग । गीत प्रचड
धारू छुआ मढा त्वेवर तिलोना गाइ धुरपत कवित अधिक धनी तीआईआ चतुरग ।
निरौस्टक चतुराष्टक मनि मलिपति द्रुवनिचद निपरजा जोगी कट रागसागर राजवहादुर
गायौ अंग ॥२४८॥

नाद-महिमा :

अडाना-चौताला, १६५ आ

जनमनि आवै न पावै घाट नाद कौ जह ऐतौ सुनि नर । जाकी वडाई करै सुरमुनी
साक्षात ब्रम्ह रूप अरु व्यापत हीअ घर । जाकौ जेतौई घर ते तोई भरत आप पुरन सुधा
सौ सागर । राजवहादुर कहत नाद की वात साच मांनि श्रवन धर ॥२४९॥

संगीत-नादनगर :

कान्हुरा जलद-तिताला, १८७ अ

नादनगर ऐ तामै करत राज राजाधिराज जाकर सुरपति जै रूप भरै । श्रुतै
मूर्छना ताल लै रूप पचतत्व जाकौ षटराग षट अग ग्यान नैन करै । सप्त सुर
सप्तनाडी तीनि ग्राम गुन लाग डाट चतुराई गमक वानी गंभीरिता की गरै । आरोही
अवरोही गज चढि गीत लै उनचास कोटि तान वसुधा कौ वस करि राजवहादुर मोहन
नाम धरै ॥२५०॥

संगीत :

कान्हुरा-तेवरा, १८७ अ

अकार सप्त सुर सपूरन श्रुति मूर्छना उनचास कोटि तांननि सौ गाओ गुनी । जे
वरन सुंदर सुध राग सुध मुद्रा दोष रहित विस्तार करहु या विधि कहत राजवहादुर जे
गुरनि के मत सुनी ॥२५१॥

नाद-विचार :

भैरों-चौताला, ५ अ

जो जानै नाद कौ रूप तौ बोलि नाही तौ मौन गहु । संगति की तांन लै गुरनि
कै मत की जेते भेद जानी राजवहादुर तव जग जीवन पद लहु ॥२५२॥

स्वर-विचार :

भैरों-चौताला, २ आ

कौन सुरनि सौ कौन राग उपजै सहाइक मधिम कौ करत विचार । सुरनि की
गति अपरंपार गुरनि सौ पावै जो सो रे सरेग मप धनीसा नीधपमगरेसा तव लैवै सुढार ।

आरोही अवरोही सुरनि की उलटि पलटि असैं लैत राजवहादुर श्रुतै मुछिनां सहित करत विचार । सारेग सारेग रेगमरेगम गमपा गमपमधमपधमप पध पधनी पधनी धनी साधनीसा सनीधपमगरेसा तेवर मधिम सुकुमार ॥२५३॥

आदर्श गायक-लक्षण, संगीतज्ञता :

मारओ-चौताला, १०१ आ

सब मिलि विचार लेउ जह वात कौ सुधिताई सुर अछिर तांन राग की संगति मै ढराने मुरनि सों ढरै तव कहीअै वाकौ गाइक । और उक्ति जुक्ति कावि मै धरै अनूपास सौ धुरपद बनाइ गावै सुनावै असौ जु होइ सिस्ट सवन सुषदाइक । सुधि वानी लीये अलाप करम करि दिबावै वौहौ भातिनि सो राग गाइक । या गुन कौ गाहक जाननि मन जान राजा चेतसिंह जू वौहौनाइक ॥२५४॥

गायक :

अडाना-चौताला, १६५ आ

सुध मुद्रा नीकी वानी गाउ संगीतमत भरत हुनमत प्रकरण । अरे अरे वर 'रागारणव', 'संगीत रतनाकर', 'संगीत दर्पन' के बधूधति अनूसरण । ऐ तौ आवै तव हौवै गाइक वाहों तो परममूरिष ऐ वरन राजवहादुर ते गुंनीजे ना विस्तार करै जाही ठण ॥२५५॥

गायक (संगीत)-लक्षण :

गौड़ मलार-चौताला, २८१ आ

तव वे गावै गीतनाद के जेते अग जानि भरत हुनमत के मत के । जव रूप राग को साचौ मानीअै तव देषीअै प्रभाव सकल नैननि ते गुन गथ के । अरु सुनि मोहै भाति भाति जीव जंतु जेते तरे गलित सिला पर्वत के । राजवहादुर असौ गुन जानै ताकौ कहीअतु नायक नाद सत के ॥२५६॥

वसन्त :

हिन्दोल-चौताला, २५१ अ

आयौ वसन्त वन उपवन फूले सब याते कहायौ रितुराज । कोकिला करि अलाप भमर गुज सुर त्रिविधि समीर न्रीस तूअ करि समाज । लता तहनी वसन पल्लव बहुरंगनि पहिरै भरी वीनां मध लाज । राजवहादुर श्रीपति कै सौहै षरोन्है सब सुष साज ॥२५७॥

होरी :

गौड़-धमार २८५, अ

षेलत होरी फागुन मे रचो वरषा सुघर कुवर नदलाल । घन सम डफ धुकार गरजावत वरसावत रंग बडी बडी वूदिनि कोकिल सुरते रिझावत हैं ब्रजवाल । अधर दसन दांमिनी सी वैहैसत (विहँसत) जुगनू सो भोडर चमकावत है चतुर रिसाल । ग्वाल वाल सब सग लीअै राजवहादुर कौ करत निहाल ॥२५८॥

होरी :

ईमन-धमार १२७ अ

गाइ नाचि वजाइ रिझैहों पीअ तुमकौ रची होरी । कुचनि कौ कुमकुमा उर विच लैहौ मुष सो माडिहौ रोरी । अधरनि अजन जावक लिलाट पलकन पीक न थोरी । राजवहादुर मन की करिहौ मदनमोहन वरजोरी ॥२५९॥

होरी :

ईमन कल्यान-होरी, १२२ अ

फागुन मास में धूम मचाई गाइ तान सुथरी सुषदाइक । कर लीअे डफ गति नीकी वजावत संग सषा जन सषी मनभाइक । अपने गुमान भरौ काउ की न लाज मानै ब्रज लगवारो रस लाइक । सकल गुननि में दच्छ रंगीलौ राजवहादुर नाइक ॥२६०॥

होरी :

हमीर-धमार, ११५ अ

अज रंग वरषै पिचकारिनि सो षेलत नाइक राजवहादुर होरी । उडत अवीर गुलाल लाल सुष वौहो छवत नाचत गावति सोभली सुंदर गोरी । चहल पहल चांचरि की माची सव सघन पौरे पुरषोरी । डफ धुकार बाजै अदग नीके तानपूरा बीना रवाव ताल की जोरी ॥२५१॥

होरी :

पूरबी-धमार, ६८ अ

चढी अटारिनि दौरि दौरि षेलत कौ होरी । प्रसन्न वदन मुषचंद सोवै हसत कर लीयें अवीर की जोरी । आनत देषौ ब्रजवीथनि सौ मुकुट लकुट गरे चदन षौरि लगाये । अदंगवीन डफ झाझि वजावत संग ग्वाल लीयै धूम मचायें । इत राधा इत कुवर कांन जू दोउ जोरी मिलि फाग रचाये । नंद जसोमति राजवहादुर असी चाचरि वरसाने मे सुरनर मुनी मन ललचाये ॥२६२॥

होरी :

भैरों-धमार, ७ अ

षेलै लाल गुलाल लीयें कर दोउ मुष भीजत जुवतिनि के । ऐक सकुचत ऐक रोकत राजवहादुर ऐक कहत तोहि लाज नहीं हरि दिन के ॥२६३॥

प्रियाजू :

ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ

तेरौ री गुन अपार कैरै के कासों वरनी न जाई । ऐक चितवनि में मनवस कीनौ राजवहादुर त्रभूवनपति ब्रजभूषन वौहौनाइक के जातें सवति सव जेर पाइ ॥२६४॥

अधीना :

श्री-चौताला, ११० अ

कठिन गुन मन जो राषै ललनकौ सोइ सुघर नारी कहावै । जोई जोई कहै पीअ सोई सोई करै मनभावत प्यारी सुहागिनी राजवहादुर मोहन कौ सो भावै ॥२६५॥

वक्षिण नायक :

ललित-चौताला, २५ अ

जागे अनुरागे आए अब लालन बहुत दिननि परमंदे । झूठी झूठी सोहैं षत अंग अलसात भरि रहीं नैननि नीद घेरे । बेनी उपर लपट लपट रही कपोलन कहैं देत है तेरे । राजवहादुर मोहन मो मन आए छूवन न देवैगी नेरे ॥२६६॥

विरहिणी :

ईमन कल्यान-सूरफाकता, १२१ अ

पीअ प्यारे कौ पाउ तव हीये लाउ अति सुष छाउ । रही न जात मोसों उन विन ऐक घरी पल छिन कहा करौ मोरी सजनी कहां लग जीव तरसाउ । मेरे जान वे निपट प्रवीन चतुर सुंदर गुन सागर काम रूप देषै तै कैसे नैननि को समझाउ । महाराज नृप राजवहादुर कृपा करै तव आनंद पाउ ॥२६७॥

जगतसिंह (सवाई प्रतापसिंह)

प्रशंसा :

षंसाइच-धीमा (ख्याल)

सुहेली आली जारी छवि म्हानै भावै छै, निरसि नैन सुष पावै छै । रंग भीनों महाराज जगतसिंह कृपा करि म्हारे मै है लों आवै दै । कूरम कुल मै मान उदै हुआ जारी जग जस गावै छै । सवाई प्रताप ताप सुत छूअ जौ अटल रहौ पाता प्रीति निवावै छै ॥२६८॥

यादव-नरेश

प्रताप :

षट-अपताला, ५८ अ

कौन तोसौ लरै कौन धीरज धरै कौन सनमुष अरै तोसों जादों नरेस । चढत सजि सैन सुनत जह डका राउ राजा तजि भजे गढ देस ॥२६९॥

प्रशंसा :

टोडी-अपताला, ६५ अ

सुतेरी कीरति की कथा कथा ते जा भूअ पर जेते रहै गुनी । आप औतार विस्तार परम पार सप्तदीप दधि पार सुनी । जादों नरेस अवतंस कसनवंस जाकौ ध्यान धरै सुरनर महामुनी । रतनपाल कल्पव्रठ कलजुग रचौ जाकी सेवा कर जौरै दुनी ॥२७०॥

यादव-वंश : महाराज गोपाल

प्रशंसा :

टोडी-अपताला, ६५ अ

सुजस जगमगि रहौ देत गज तुरग नग लाल । देस देस के गुनी गंधर्व आवत पावत मुंक्ता माल । अपवली तपवली दानवली धर्म की धजा कवि होत निहाल । कहत साहिब जादों वंस चरंजेवी रहौ महाराज गुपाल ॥२७१॥

नवाब अमीर खाँ

प्रशंसा :

सारंग-चौताला, ७१ अ

सरस प्रताप तेरौ सूरते सकल जग सांचौ है समुद्र सौ सिमिकि सिमिकि सिधारि लीजै ताकौ दरस । वाकी दिन जोति तूअ निसु दिन जोति रहै अव भभं अस्टौ जांम रचि पचि भली बुरी सब लेत फिरि तूअ गजहै रचि पचि लैत कंठ नव है छरस । वाके लषि कमलनि के अ्रुष कोलज तेरे लषि कज चदुमुषी नैके सुष कौ लाज गेजापति तेरे न उगै करिहौ परस । वाकै गैहै रहौ तूअ गैहै तज नावत असैई सदा राज करौ नवाब अमीरषां जू मागत अंछया 'अछया वरस' ॥२७२॥

नवाब गैरत खाँ मुर्तजा अली शेरेखुदा

ईद :

टोडी-चौताला, ६४ अ

सुभ दिन सुभ धरी सुभ महरति सुभ नषत वषत वली तुम जु मुवारष होइ ईदि सौ सै जुग भरि । चाइनि गाइनि गावत अधिक वजावत निर्तकै निर्त करत ऐक असीरवाद

देत चर चरजीव हो कलपतर । पुनि सव सुषा दीनौ अनैग भातिनि वीहौ गज तुरगवर ।
वानी तिहारी जे हरि चरजीव रहौ नवाव गैरतिषा मुर्तजा अली सेरे षुदा तयवर औरनि
कै ईदि तुम्हारे हज्ज अकबर ॥२७३॥

वीरनारायण

प्रशंसा :

मालसिरि-चौताला, ८३ आ

वालापन गायौ तरुन जायौ जव थोरे थोरे भयौ गज मे मत । ग्यांन महावत सकुच
अंकुस लियै घूघर पट अधिरी जव षुरि लाकी नारि सूनी देत । कुभ कीला चौकी पीठि
कसी ऐते पर साइर संत । सव सखी मिलि महां लै आई जाहा वैठौ राजा वीर नाराइन
प्रतापवंत ॥२७४॥

खान सुजान ? सुरजान खाँ ? सुजान खाँ ?

शृंगार :

दरबारी कान्हरा-चौताला, १७८ आ

लिलाट केसरि षौरि चंद्र की आकृत तामैं मोंहै धनक नैत्र विसाल अवन कुल
(कुंडल) सौहत गैहैनै भुज पर द्रस्ट परत प्यारी के स्यांम तार तान की मानौ अधनै लेत
भमरु भमरि । सदर वाकै हुदै कमल कुच कमलनि की वनी करहार कर कमलनि द्रोन
लछिन भरौ पीअ मिलिवे कौ तै वचन चुवत अधर लागत मन रग भमर । श्रुती सेज
विश्राम गज चाल चलत कांमिनि जग जुगल कदली झझी आकृत कीयै तामैं दोहा लै
लगनै आछौ दिल दीअँ दिलावर । षान सुजान प्यारे पीअ जंवत लगनि लागी री पीअ
प्यारे चौहुर टूटै छूटै ऐ मानौ कांम जीति दुरै चमर ॥२७५॥

चकता नवाब

मंगल :

षटमंजरी-चौताला, २६२ अ

निअ्रै गुननिधान पैहैलै समांन आ भुअ मंड जमि रहै राजकाइम तैरौ रहै जो लौं
उदै भांन । जा कलजुग मै का प्रकाल अँसौ नवाब चकता सु धरनि मुरनि प्रवान ॥२७६॥

नूरसाहि

रूपशोभा :

गौड मलार-चौताला, २८१ आ

करि मंजन प्यारी ठाढी चौहोर पवन लेत लागत अँसे जैसें जलधर की घटा उनै
आई । लाल जरद वस्तर सोहत अंवर तामैं हरी कोर धमक कैसी दामिनि चौका चमकनि
भारी । अँसी कुच स्यांम तासी देषी नाहि न मानौं विभि गिरिवर पर धूमरी धाईं ।
पौहौप माल और वगुला सी वरवर लीनै साहि अचानक नूरसाहि कौ अ कौ भरि लई याते
रंगमहल रंगमूरति उमगि कांम की चौप वरसै वडी बूँदिनि दिन दिन नई नई ॥२७७॥

नवलजस खाँ

वर्षा-मंगल :

सुध मलार-चौताला, २७५ अ

विसांति कीनी भूमि हरिआई तामें वीरवहौटी सेज वनाई तामध आनि बैठे मनराज ।
वादर मत मतंग दौरत झपटत नौबति भई घन गाज । कोकलनिकी कूकनि पपीआ करत
सोर(आ)ज, हसत षेलत तषत बैठो नवलजसषां प्यारौ अंचल रहौ ध्रुवराज ॥२७८॥

नवललाल

द्वितीयवचन, मानिनी से :

संकरा-चौताला, २३७ आ

धरीअँ जू धरीअँ महल पग धरीअँ पीअ मग जोवत प्यारी । चित्र की लिखी सी
वल कैसी कह बैठी हो जू नव सत साज तन भूषन सम्हारीअँ जू । कहौ री निहोरि हारी
सोंहै कर जोरि षात चित धरि और न विसारीअँ जू । 'सिभू' नवललाल रसिक पीतम
प्यारे उठि चलि हिलि मिलि वचन न टारीअँ जू ॥२७९॥

उदयरज नवललाल

वर्षा :

गौड मलार-चौताला, २८१ आ

नीर भरे नील वरन नीरधार धरि समीर धावत ज्यों माते गज पगवदन (वधन)
तोरै । वगपंथ मतदेत धुरवां सोई सुंड डंड वलकत मगजोर हत वरपत घन घोरै ।
दामिनी की दमकनि चरषी सी लागत पिक चादग मोर करै मज सोरै । उदैराज नवललाल
पीअ के समीप वाढे हरषि हरषि धवल अटा षरकत मन मोरै ॥२८०॥

फकर खान

संगीत :

केवारा-चौताला, १६५ अ

सुध सुर लेत प्रथम अति फुनि सांचै अलापत ठीक तांन लेत सुरवूडि उठावत सुधर
धार रीति गाइ रंग करत । हांक डांक दपटि गांस गावत तीषे मन तिषी नीकी ताननि
पर जाइ होत उमगि परत असूझ उठावत गुरनि धुरनि धावत धक धक धकार धमकि धाम
धूम परत । अया अपाकरत सकल जग के विद्याधर देषत दरस गरै की हो फुनि निपट
पौहौंच दोउ षरज नीकें हो रंग करत । फकरषाने कौ घरी घरी पल पल छिन छिन
मन हरत ॥२८१॥

वीरम साहि

प्रशंसा :

बरबारी कान्हूरा-चौताला

हौ राजा वीरम साहि साहि वीरम तुम्हरौ दरगुनी जन सरद फुनै लेत जिनिकों
सकल कला जीवन भीनरौम साहि । भरत मतंग के नर जगनाइक है सुरति मूरति व्याप
तान पावत ऐक छिन मै सु तुम पै सरस ॥२८२॥

भारति साह

प्रशंसा :

ईमन-चौताला, १२ अ

तू नैनानि मिलिकै प्रान रिझावत मोहन मूरति बलमा कौ । और जो कोउ कवहुं
कवहुं दरसन पावत दूजै घरी घरी पल पल छिन छिन परभात । प्यारे के जीअ की हौ
नीकै जानत प्यारी अव जानत जाये कहा कछू वाहिनै बनावत । रुद्रावती भारत साहि
उजारे की अरधगी रुद्रानी रुद्रावत ॥२८३॥

साहि विक्रम

प्रशंसा :

ईमन कल्याण-चौताला, १२० अ

नागा तू है गुन पटितर को नाहि नै आन । जैसी साहि विक्रम के मनमानी सकल
गुन निधान ॥२८४॥



परिशिष्ट 'आ'
ध्रुवपदकारों की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद
(रागमाला से संगृहीत)
बैजू की रचनाएँ

भगवन्महिमा, प्रबोध :

सोहनी-चौताला, २३३ आ

अगम निगम नेति नेति करि गुन गावत गोविंद के ऐ नर गुरनि की साषिबानी ।
साषि सुनत नाम रटत ध्रूअ प्रहैलाद ध्रूअ धरनि अकास पवन पानी चद सूरज नेत्र नाराइन
के उग्रत उदित उदार अभिमानी । सहश्र सुष सेस कौर स्वास नही समांधान सुमेर
सरस्वती रसना रहना करि ध्यान धरन सुषदेव जती जोगी जंगम सिद्ध चौरासी बुधि
उर आनी । आनन बरनन करत नाम अनत अनेग रूप ऐक ब्रंम्ह बैजू के प्रभू परमात्मा
जीवात्मा भरन पोषन करते सुजदानी ॥१॥

प्रभु-महिमा :

अल्हईआ-तेवरा, ४२-आ

जंह रंग मों लाऐरी जाके द्रुंम द्रुंम द्रुम द्रुम अवजु मोती पर मांलरे चंपे । अस्नान
ताइन मन रचौ बलवंत बैजू बावरे जाकी कीरति कमला सिस्ट उपर रचौई चपे ॥२॥

ताल-स्वर के भेद :

देसकाल-सूरफाकता, १८ आ

तार सुर के भेद गुनीजनि की संगति करै तौ कछू पावै । सीषत सुनत रहत निसु
दिन सदां ढरनि मुरनि मुद्रा प्रवान सों आवै । आपुही गावै आपु बजावै तार गिनत के
बैउरे (ब्यौरे) समझावै । बैजू के प्रभु रस बस करि लीनें रीझि रिझावै ॥३॥

नाद-विवरण-निबन्धन, नाद-प्रभाव :

बड़हंस-झपताला, ८५ अ

साधन करते गुनी जन जेते केतौ नाद केतौ ब्रम्ह (वर्ण) केती अलंकार । कौन
ढरनि कौन मुरनि कौन सुर कौन तार जेई बैउरे (ब्यौरे) न्यारे न्यारे बाधे विचार । रचि
गए पचि गए ब्रम्हा वेद महेस काउ न पायौ पार । बैजू के गाये तें भूलि गए सप्त सुर
पिधिलौ पाहन बूडि गए तार ॥४॥

इतिहास :

भीमपलास-चौताला, ८६ आ

पार किनिहू न पायौ दूजैहू पंडित कहायौ धुरपत गीत गुनी मरजीअउ न गलायौ ।
सात गुपित सात प्रगट नाइक गोपाल गायौ ब्रम्हा वेद उचरायौ सारग बौहौरायौ गर्भधारी
(गर्वधारी) गुनी उलटि बार आयौ । देस देस के जुरे गुनी सकल सिस्ट महामुनी तेउ
पचि गए तिनि पाहन पिधिलायौ । कहें बैजू बावरे सुनौ हो सुघर नर जिनिही मिली
तिनिहीं लुकायौ ॥५॥

इतिहास :

भीमपलास-चौताला, ८६ आ

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल । रंगमहल मे दोउ जुरि बैठे रीझि अंगनि दई माल । सात गुपति सात प्रगट चौदह डांडो बाधि आए नाइक गोपाल । बैजू के गाये नें झूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूडे ताल ॥६॥

गुणसागर :

ईमन-चौताला, १२२ आ

प्रथम गुन सागर अप्रंवार, तन जिहाज कर, ता मध बीन चुनी नग अछिरे भरे आनि । घट कूप चोंप चाप प्रवेष्ट धारु धुरपद उपज लेत लगर बुधिवान । केतौ ग्यान केतौ ध्यान तजि कर्म धरै ध्यान करि सुमिरन साउधान । कहै बैजू बावरे सुनो हो सुघर नर नाइक गोपाल तजि अभिमान ॥७॥

नाद-परमेश्वर :

सोहनी-सूरफाकता, २३३ आ

प्रथम आदि सिव सक्ति नाद परमेश्वर नारंद तुबर सरस्वती मन अईआ । अनहद आदि नाद गुनसागर सरूप ब्रम्हा विसन महेस लगि मुनि अईआ । आदि धरनि सेस आदि चेरा सूरज आदि पवन पानी अन्न धन्न मन अईआ । आदि बैजू कवि गुन प्रकास या तै सुधि बुधि अछिर अति गति धन अईआ ॥८॥

अनाहत नाद, तीन ग्राम, इतिहास :

केदारनाद-चौताला

गुर प्रसाद नाद धुनि सुनि रे । पाच तत्त पाच मूल पवन पानी गावै नाद गुनी रे । अनहद नाद उचार करत है तीनि ग्राम पर चित धरि रे । नाइक बैजू पाहन पिघिलायो मोहे अग नाद ससि कुनि रे ॥९॥

रास :

सोहनी-चौताला, २३३ आ

ब्रजवनिता बनि बनि आवत भुषन सजि समुह ग्रह ग्रह तै मुरली की धुनी सुनि प्रांन प्यारे । तजो लाज गुरजन की को जावै लगनि मन की तन की तपति बुझी दरस परस देखै तै तिहारे । इक टक रहो निहारि मुगधा गौमारि मुगधा आइ रास मडिल मडि बीच बंसी वट पर बिहारिनि बिहारी बिहरै । बैजू प्रभु बदन चद निरत करत नद नंद भई छमासी रैन बाजत मद बैन विमानहू थाकत भए देव पुस्प बरषा करत होत नही उदै भान उडगन निहारे ॥१०॥

गोपाल की, अथवा उससे सम्बद्ध रचनाएँ

संगीत :

मालसिरी-पटिताल, ८३ आ

राजा नांद कत निहांल अरे नर बल विक्रम सुजांन जे आदि ताल गजल गीत ध्रुपद आन । सर्व अंगनि जोति लीऐ धुर नितान तांननि ओट गढ गाढत रे अछिर साधि धरनि त्रवट या प्रसाद पर निसु मान । तपस करंत कौन ग्याता रे सपूत सुर और ग्राम तिनि के करत विवेष बीन । अनत नाइक गोपाल तूअ गान अपरंपार वौहो निस्तार पावै होइ परम सयांन ॥११॥

संगीत :

बागेशुरी कान्हूरा-सूरफाकता, १८६ आ

भेद सों भेदनि गाइ बजाइ ज्यौ जाननि के मन अति भावै जब पच सुमित्र ऐक
मित्र मित्र मिलावै जब अछिर धरन मुरन प्रवान सौ आवै । एक अलाप द्वजै तान गावै
तीजै तान तार सप्त मान पगावै । प्रकति सौ प्रकति मिलावै विद्याधर नव तवही पावै ।
जोती सरूप सौ ध्यान लगावै जब नाइक गोपाल परम सुहावै ॥१२॥

भगवन्त की रचनाएँ

सखी-वचन, नायिका :

अल्हईआ-जत, ४३ अ

तेरी दुर डोलाने प्यारी बस कीने कुज विहारी । राजत अरुण अधर के उपर मनो
मदन फदवारी । जनु कीर गहे तारागन कों सुनि चौरस के नहि डारी । मंद हसन
दसननि की या छवि दांमिनि की उनिहारी । भगवत गुपाल के चित्त वसै अल ऐक टरै
नही टारी ॥१३॥

श्याम-छवि :

नुलतानी आडा-चौताला, ६३ अ

ना टरै री मो मनतें मन मोहन मूरति स्यांम । मोर मुकुट ऐरी मकराकृत कुडिल
और बनमाल गरे । बनते आवत गावत है सिर मोर पषांन धरें । देपि देपि ऐरी छविरूप
अनूपम मन मय लाज करे । श्री भगवंत निहाल करें निस वासर ध्यान धरें ॥१४॥

नयन :

गोरी-जत १०७ आ

अंजन सान धरे तेरे द्र (ग) बान बिसारे । ब्रम्हादिक सब पार न पावै,
ते इनि सुबस करे । कंज गुलाब करे आव लई अग षजन फद परे । मोहन मोहन हार
रचे जे सब विधि छवि अगरे । भगवंत कहै नंद नंदन के निस वासर चित्त अरे ॥१५॥

स्तुति :

ईमन-चौताला, १२५ आ

पारब्रम्ह परमेशुर बिस्न भगवंत मदसूदन मुरार मुरली, धर कमलनैन केवल कल्यांन
राहि । धनि धनि स्यांम धैनि चत्तभुज नरहर निरोतम बसदेव बीठल मुकद नाराइन गज
तारन गगाराम बाल राम वामन परसराम बामन सीतापति रघुवीर रामचद्र राधारगन
जिनिहू जइ लषु लापों के प्रभु कृपा कीजै भवत बछिल द्रोपती की रछिया करी आपु
आए ॥१६॥

तानसेन की रचनाएँ

गणेश-स्तुति :

भैरों जलद-तिलाला, १ अ

तुम हौ गनपति देवा बुधिदाता धरै सीस गज तु ड । सिधि सिरी नाम तुम्हारौई
कुहीअत जे विद्या धरे गुनी तीनि लोक मध सप्तदीप नवषड । जोई जोई धावत सो फल
पावत चदन लेप करै भुज दंड । तानसेनि प्रभु तुम्हारौ कहावत कासौ जा लग सुड ॥१७॥

गणेश-स्तुति :

भैरों-इकताला, ११ अ

जै गनेस जै गनेस जै गनेस देवा । मन बुधि हित चित लगाइ करौ नित सेवा ।
ऐकदंत दयावत चारि भुजो भारी । मस्तक सिदूर सोहै मूसे असवारी । माता वाकी

गवरि कही जै पिता महादेवा । तीनि लोक ध्यान धरत नित करत सेवा । अधनि को नन देत कुस्टनि को काया । बझनि को पुत्र देत निर्धन को माया । भालचद्र सिव विलोकि देव सकल बारी । तानसेनि गजानंद गावे सुभकारी ॥१८॥

विष्णु-स्तुति :

ईमन-सूरफाकता, १२४ आ

गोवरधन ग्रधर (गिरिधर) गुपाल गजाधर (गदाधर) गरुरापति गरुरगामी गोविंदे गोपीनाथ कृस्न केसीरलन काम करतार कूरंम केवल करुनानिधि कुंजबिहारी कांन कदन किशोर । जोग ध्यान जोतीसरूप जनारंजन मुकुट माधौ रगनाथ रपीकेस (ऋषीकेश) रनछोर । पारब्रंम्ह परमेशुर परसोत्तम प्रैहैलाद उबारन महाबली जोर । तानसेनि कौ प्रभु भक्तनि रछिकरि अधम तरत है चितवत कोर ॥१९॥

शिव-माहात्म्य :

लछिमा टोडी-चौताला, ५६ आ

काली सकर विषहारी, चद्रमा लिलाट भसम भूति जाके सोहे मुंडमाल नाग । हीअरे रिधि सिधि लीजे पार्वती महादेव ऐक कर तसूल डौर डंबर धारी । काम क्रोध बस कीये ब्रद (वरद) वाहन संग लीअरे अैसे सिभू महादेव गंगा जटाधारी । ब्रम्हड लोक पतिन लोक तीनों लोक महादेव तानसेनि कौ प्रभू कोटि जुक्ति लागी रहे तारी ॥२०॥

शिव-स्तुति :

भैरों-जलद, ५ अ

महादेव सिव सिभू महाबली महारूप महापति मंत्र सुरगुइ सिंगी । गरे मुंडमाल भुज व्याल दयाल तसूल डवरु डंबकाहित बाजत पिनाक उपगी । बाघमर जौ भस्म डगबर जटाजूट सिर राजत गंगी । तईलोचन मोचन सकल जग वषववाहन राजत सगी तानसेनि कौ प्रभु पार्वती लीआ अरधगी ॥२१॥

सरस्वती-स्तुति :

भैरों-चौताला, १ आ

महां बाकी बरदाती सनमुष दूजै आहूजै । जाई से त्रभुवन मानी जासै भमांनी जो जाकी मन अ छया तो पैं लोई सोई पुजै । रिधि सिधिदाता मांता तूअर पग पाव छूजै । मागत है तानसेनि रचै पचै फुदै जहा तहा तान इस रीति आवत रंग सूजै ॥२२॥

सरस्वती, जालपा :

आसावरी-चौताला, ५३ अ

तेरे तौ सरसुती घट घट भरि पूरि रही नांव धरौ बाकबानी । जलथल मे पूरि रही जलपा भमांनी जाई ते करीअत तोसौ सर्वानी । कोटि काठन में जानी अैसे सप्त दीप नवषड जलपा भमानी । तानसेनि को प्रभु प्रसाद दीजै दयानी मयानी भवानी कंठपाठ ठहरानी ॥२३॥

देव :

भैरों-सूरफाकता, १ अ

साधौ विद्याधर ध्यान गनेस सुरुसती मांता करौ आदेस । नमो नमो देवा रिधि सिधि दाता काटत दुषदद करन प्रगास प्रवेश । जे धावै ते फल पावै और जो होत गनेस । कहैं मीअ्रां तानसेनि तीनी लोक में जागे ब्रंम्हा विस्न महेस ॥२४॥

विनय :

मारओ-चौताला, १०१ अ

जहां जहा जननि गाढ धरी तहा तहां तुम भए हौ सहाई । इतनी कृपा करि ढील काहे करात असी जौ मोसों कराई । बूढत ते ब्रज राषि लायौ हे द्रोपती को चीर बढाई । तानसेनि को प्रभु अछया पुजवत भक्तनि सदा सहाई ॥२५॥

प्रबोध :

ईमनी बिराउरि-जलद, ३८ आ

तू जपि जपि रे मन राम नाम जापे होइ काम बनवारी स्याम हरि नाराइन निरंजन । भक्त बछिल जगदीस गोसाई अनाथन नाथि श्रीपति सुदामां दालिद्रभजना । दीनबंध दीनानाथ मनोहर कंसराइ निकंदन तानसेनि लघुविनती करते राधापति मनरजन ॥२३॥

अलख पुरुष :

केदारा-चौताला, १६४ आ

जागै रोगी भोगी कहा जागै । मन सुमिरन ग्यान ध्यान रसना रटत जाकै, अग्न पवन सीत कहा लागै । सुर नर मुनि गुनी गधर्व ध्यान धरन है अनहद नाढ आरागै । अलख पुरिस की अव गति वरनी न जाड तानसेनि प्रभु अनुरागै ॥२७॥

अलहनाम, शेख (सलीम) :

अैरों-चौताला, ४ आ

मेरें तौ अलहनाम कौ आधार जिनि रचौ सिसार काम क्रोध लोभ तजि जंजाल । जिनि रचौ अरस कुरस जिसी आसमान निरंजन निरकार साची क्यों न जपौ परवर-दिगार । जाही ते जह गुन गायौ सांचे तुम सेष बार बार कहें जाको नाम भुजवार । कहें मीआं तानसेनि पाक साफ रहीअ जाते जनम जीतव नाहिने बार बार ॥२८॥

शाह मदार-स्तुति :

ललित-जलद, २६ अ

नूरी मन सुमिरन करि करि निसु दिन रढि रढि साहिनि साहि मदार । हौ तिहारे दरबार को जाचिक तुम अल्लाह हजूरी । जोई जोई धावत सो फल पावत न्यामति देत भरिपूरी । तानसेनि प्रभु इतनोंई मांगत तार तांन सम पूरी ॥२९॥

गोपाचल, गुरु मकरन्द :

चौराष्टक जलद-तिताला, १८ अ

गढ गोपाचल रे जाकी है कमला सन नारि कमला जाकी लाली लीये प्रथम औतार कीनो । तुम त्रईफन धर चारि वरन इनिके जतन जतन गुन तीनो । अस्तर जल पुसकर जल ताके चारौ कगूरा तीजे नीके लागत नों । दलसल कर गुरु मकरद पर राग रागनी कीरति सुवासन तानसेनि को दीनो ॥३०॥

प्रताप :

परज जलद-तिताला, २०२ आ,

जाकै दान थरथरात मेदिनी असौ वीरभान कौ नंदन राजा राम वघैलो वीर । जाके चढत सेस कलमलौ असौ प्रचंड बलवीर अपवली तपवली भागिवली दान किरबांन वली हद करनी साइरतीर, सप्तदीप लौं चरंजीव रहौ तानसैनि करै परदुष काटन पीर ॥३१॥

प्रशंसा :

मालकोस-चौताला, २२७ आ

राजनि कौ राजा महाराजाधिराज चतुर्दिसि विद्वानिधान राजा राम । जोई जोई धावत मन अछया फल पावत रचौ विधाता करन के जे काम । लाज कौ जिहाज

सिरताज गरीबनवाज गरीबनि की भनसा पूरन होत तेरै धांग । जेसरनि सरनि हरनि
दुष दुमिनि कौ अब तानसैनि लै गावै तेरौ नांम ॥३२॥

प्रशंसा :

मेघमलार-चौताला, २७४ अ

गगन रौर दालिद्र भी कौन हरै जौ निरंद के जीअ मै जौनं धरे । कहा भयौ जौ
भरो छत्रपति नरेस, राम गजा कौ परसाद पाये विना विपति सागर कौन तारै तरै ।
बलि भए बैन भए सप्त (सत्त) हरिचंद भए जिनि कि कीरति कौन तारै करे । वीरभान जू
कौ नंद काटन दुष दंद फंद विनती करत तानसैनि डरै उत्तर दिसा ते पछिम जौ उगै भान
दैवे को राम स्यानं करै ॥३३॥

राजा राम, सुलितान-प्रशंसा :

ईमनी-बिराडरि, ३८ अ

राजा राम निरंजन देस निरजन मनि मतौ ग्यान गुन मंत्र भरे । जैसै जो विद्यागुनी
जीअ सुष सुलितान धर्म पथ पग पाई धरे । सरन गऐ ते अटल करे भरे । कहे मीआ
तानसेनि प्रैसी सर गोड नहि तिहारी सरवर कोड नाहि करे ॥३४॥

अकबर-प्रशंसा :

कल्याणी कल्हटा-चौताला, १८० अ

धनि धनि धरणी धरै साहि अकबर जाकी जगत मै चली धुआई उदीआचल
अस्ताचल । धनि धनि तुअ रसनौ तूअ कर्तार राज साज दीयौ है तपत वषत अटल नर
नरिद जाकी सेवा करत जेउ भरे ते तजि गऐ है माल । तानसैनि कौ प्रभु राजत सदा
दिनमनि मध्र मंडिल गढ गोपाचल ॥३५॥

प्रताप, तुहम्पद अली :

भोवाली-सूरफाकता, १३५ अ

चारौ चका चकता लीअे अकबर गहै समसर मरदान अली जमसेर । महगद अली
की सेवा सुमिरन जौ उवरौ अवरै वती गर भेद । असपती गजपती भूअपती राजा साहि
के दरबार रहत भीरा भीर । कहे मीआं तानसेनि धूअ जटल जेसे गग सुमेर ॥३६॥

प्रशंसा :

केदारा-चौताला, १६३ अ

छत्रपती अकबर चरजीव रहौ जौलौ धरनि धूअ तारौ । करत सलाम टोरौ कुफर
अधिमारौ हिमाउ कौ जगत उज्यारौ । दिनकरि प्रताप गैहैरौ गर सागर कल्प
ब्रंछ छायो सुमेर हूते भारौ । करत असीस फुनेस सेस महैस अस्तुति करत तानसैनि
लघु विचारौ ॥३७॥

प्रशंसा :

ईमन-धीमा, १२४ अ

रचि पचि विरंच कीनो, लीनो साहि अकबर तीन लोक नाथ माथे करि
धरिय भार मेरे गुन आधारनि अवार । नर नाराइन रागपसोई विचित्र धनि दीदार
पाइनि पर संसार जुहार । गरीबनवाज लाज काज साहिनि सिरताज लाज कौ कीयौ
विचार । तानसैनि के प्रभु उनचास कोटि बसत बसन बसत कहि न सकत जलाल मुहंमद
कौ औतार ॥३८॥

मंगलकामना, प्रशंसा :

हमीर-चपक, ११४ अ

इक छत राज करौ सुपसचति संपति भूअ लोक पर सुभघरी सुभदिन महरति आपवर तपवर जानि ऐकरनि वर । दसन दपटि और लका पर पोल कीनी हिंद लौ हद बाधी चारौ चक ऊपर । तानसैनि कौ प्रभु तुम वौहौनायक दीन दूनी मे जगत गुर अकबर ॥३६॥

मंगलकामना :

मारओ-जलद, १०१ आ

अन्हात जिनि बार पसै सोहत वर्न बार लौ होये तुमको दोस्त सदा दुसमन पायमाल । इतनोई मांगत करता तुम पर जाउ कस्न जंजाल । दीरग आबल भूअ लौवै है चल चक्र वै चकता सब ही कौ प्रतपाल । तानसैनि असीस देत चरजेवी रहौ छतपती साहि जलाल ॥४०॥

कृष्ण-जलद :

भैरो-चपक, ५ आ

कान्ह ओलरि आयौ हो बरसि बरसि रिमि झिमि रस बूदिनि । मुरली की गरजन तपनि तडत मुसिक्यानि दसन ओप बगपाति श्रीम डुलनि पौहौप गूधन । चहू ओर धुरवा से धरें तामे मोर चंद्रका इंद्र भयौ रस गूधन । तानसेनि प्रभु की अधिक झकोरनि भीजि गई बृजवनिता सहित भूषन फूदन ॥४१॥

कृष्ण :

दरबारी जलद-तिताला, १८१ अ

केते बंद छंद करत दु टौना बारे कान्हा सुंदर नद दुलारे तब बे बन घन जात ललारे तब बे षेलत न्यारे । भोर ही सै मिसु करि जात सौ कारे गोपिनि सौ मिलवत नैनं सैन तारे बहीआं गहत कूल कनारे दूढत फिरत ग्वाल विचारे । मुरली नाद साधि सब मोहे बिरद (वृद्ध) तरुन और बारे । गौरी इंद्र चंद्र ब्रम्हा रे तट छिन ते उतारे । तानसेनि कौ प्रभु कबहुं बालक कबहु व डारे कस्न कारे ऐहो अबगति तेरी अकथ कृपा रे ॥४२॥

लाल रंग :

मालकोत-चौताला, २२७ आ

लोयन लाल चुनरी लाल बूटे छूटे सबुज लाल । गरै बीच हीरा लाल नासिका कौ मोती लाल पांय लाल प्यारी लाल सेज लाल । बाजूबद लाल लाल कर कगन लाल लाल चरन पाइं लाल चलत हैं मंद चालि । तानसैनि भूमि लाल ब्रज की सब गोपी लाल ता मध मदन गुपाल लाल ॥४३॥

गोपी :

सूहौ-धमार, ३४ अ

लै चली हो गोरस बेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल । तरफरात प्रात बिथुरी अलकै आननि पर और सोहै कुम्हिलानी माल । गोरस के मिस झूठे हूं डोलत दूढत फिरत गोपाल । तानसेनि के प्रभु सौ हिलि मिल अन बैन चली गज की चाल (लै चली) ॥४४॥

गोपी-प्रेम :

आसावरी धीमा-तिताला

मेरौ मन बौराइ राषौ इनि गोविंद बैननि, हौ पचि करि पछिताइ रही । वे जौ अंतरजामी स्वामी कहीअत है दीसे न परे चैनन । रूप ठगौरी मोहि ठगी जौ चले और फिरि हू न चितऐ सूधे नैननि । तानसेनि कौ प्रभु रस सागर गर सुनों बू दहू न देपी मेंहें चैननि ॥४५॥

ग्वालिनी :

मुलतानी-धमार, ६० आ

ग्वालिनि घूघटवारी खेलन जौ आवै । और दिना होरी के गोरी अब किन लाज भंजावै । हमही पै तें लै गुलाल अरु हमारे मुषहि लगावै । सकरी पोरि लजीली ग्वालिनि मुरि मुरि बदन छिपावै । तानसेनि प्रभु रंग रगीले तारी दै दै नचावै ॥४६॥

चिरहिणी :

जैत-चपक, १५६ अ

कान तेरै बिन देखै गईयां काजर पीअरी धौरी धुंमरी दूबरी । और ग्वाल पैहैं-चानत नाही, अधरनि दसनि तिरन चरत जह पाय लीअौ है कूवरी । ऐकनि तजे बान ऐकनि तजे प्रांन ऐक रही सूपि सूपरी । तानसैनि को प्रभु वेगि ओमन कीजै कब दैहौ हेरी उबरी ॥४७॥

नायिका मुग्धा :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ अ

उंचे चितै री तु नीचे चितै चितवत तूं निहारत लालन डर सौतिनि चितवत । दरस देखि दिस्ट परी रचि पचि प्राणसुर सों बिन सनीप (समीप ?) बिन रस बिनही अनुराग अति सुषु दैरी इतविता ज्यों ज्यों तू अमन ना मिलवत । पीअ सों सांची कहत तो सो वा उत डरवत । ज्यों अयानी ज्यो मयानी दोउ तजिहें री तानसेनि प्रभु की प्रकति लीये तूं अ काहे कों जोबन वितवत ॥४८॥

नयन :

गौर सारंग-चौताला, ७६ अ

अैसे नैना अरुन वरन तेरे री पीअ सग जाये रग रस पाये । सेत सेत तारे कमल दल लोचन निरखि आनन कुल त्यागे । पलक पपुरीआ सी मुदत चितवत ही मनो बान से लागे । पौहौप सरोवरि पानप पूरे तानसेनि प्रभु अनुरागे ॥४९॥

कटाक्ष :

गौर सारंग-चौताला, ७६ अ

त्रिबेनी उलटि वही मानों तिरछी चितवनि त्रीआ पीआ तन देषों त्रिबेनी गगा सलिता कों संग लीयें सागर सों कुछ अनबन देषौ । कैधौ कहू पति तन घेरी कैधों कहू पाप मोछ कैधों बौहौराइवे के ठन गन पेषौ । तानसैनि कौ प्रभु मोहिनी सी पाठि डारत कैधों कहू जागे संकर मुनि देषौ ॥५०॥

छवि :

विहाग-चौताला, २४१ अ

झूंमि झूंमि आवत नैनां भारे तिहारे । बिथुरी अलकै स्याम घन सों लागत झपकि झपकि उघरि जात मेरै जान तारे । अरुन वरन नैनां ता नै लाल लाल डोरे

तापर यह मौज बारि बारि डारे । तानसैनि कौ प्रभु सदा ई छके रहत कोकिल की
धुनि मोहि बिन अंजन कारे ॥५१॥

प्रेम-निवेदन :

विहाग-चपक, २४१ आ

नैनां सलौने री तेरे चितवनि मै बस कीयौ दीरग जमांल विलोच कटाछिन ता मध
भरि भरि कजरा दीयौ । भौहै धनक और चंद सौ बरन कंचन गात तेरौ रूप दीयौ ।
कमलकली छवि छाई तानसैन प्रभु रीझि रीझि करि बोलिबे कौ नैनं लायौ ॥५२॥

नायिका :

सुध मलार-चौताला, २७५ अ

चली अँड बैड पैडनि नां चली उमग ना चलत बैड । अनेग भांतिनि करि लाड
लडावत काहे न छोडत अँड । बाल तरुन होइ बाल नाइक जाते कछू कहै न सकत सारंग
तेरी उमैड । अँसेई पावत री तानसैनि कौ प्रभु मिलि क्यौ न री याते जीअ डरपत हौ
लागी काम उमैड ॥५४॥

नयन-बन्दूक :

दरबारी-चौताला, १७६ आ

नैन बंदूक, साधै घूघट पट ओट कीअ । पलकुदा नौसिका पै भौहै चढायै सैननि
मूक । रस रंजक ताई लगनि जामगी ढारि दई विधिरूप अनूपक । तोपची मीआ तानसैनि
मांरत बिरहा अचूक ॥५४॥

द्वितीयचन, मानिनी से :

टोड़ी धीमा-तिताला, ६५ अ

जेइ जेइ बचन कहत हो तो सों तेइ तेइ बचन तू मानि लै सुजांन । मेरे कहे तू
चलि री पीअ पै धरौई रहैगो तेरौ मान कौ गुमान । वे तौ बिनि के अंग संग रीझे लाल
तूअं बिनि के प्यारी प्रांन । तानसेनि के प्रभु तुम बौहौनाइक कै तू मूरिष कै कुपढ
अजांन ॥५५॥

नायिका :

परज-चौताला

आईअ जू कैसै आमंन पाए भलै ही आऐ मेरै नवल लाल । तुम हौ जान सुजांन
पूछत सब गुर ग्यांन महाजांन मूरति अति विसाल । जौ लौ इनि नैननि हौ नाहीं देषत
तौलों फिरत हौं बेहाल । तांनसैनि को प्रभु कीजीअ मया मोहि दीजीअ दरस कीजीअ
निहाल ॥५५॥

खण्डिता :

मालकोस धीमा-तिताला, १२८ आ

आजु आऐ रसमसे अलसांनै गात, धनि वह को है गावै वसरि रासै हौ जू ।
चरननि डगमगात बचननि तुतरात बारबार हौ जम्हात सौ है जूठी हौ जू षात । रैन के
चिन्ह जानै जानै हौ जू जानि जाउ प्रगट बताअ देत दुरत न रस बात । तानसैनि कौ
प्रभु तुम बौहौनाइक भली कीनी सुधि लीनी मेरै जाऐ हौ जू प्रात ॥५७॥

वियोग :

महीअरी टोड़ी-झपताला, ५२ आ

माई री माहावि (कट) कठिन मिलि बिछुरे की है पीर । घरी घरी पलछिन जुग
से बीतन लागे नैननि भरि भरि आवत नीर । जब तै प्यारौ भयौ न्यारौ तब से कछू न सुहता
मेरी बीर । तानसेनि कौ प्रभु बेगि दरस दीजै हीअरा धरत न धीर ॥५८॥

नायिका, वर्षा :

सुधराई-चौताला, ३६ आ

ऐरी हो कैसे भरौ दिन रैनि ग्रंधेरी, नीद उचटि गई लाल बिन । चहूं ओरते घन उमडि धुमडि आवत रिनु फेरी पीआ मे हेरि न फेरी । काहे को गरुरी करत मन मुकताई प्राली चतुदेस चतुरा मुंडगाल फेरी । तानसेनि जगत गुरु अकवर से नर रंग रस लै चढी दूनी फौजे फेरी ॥५९॥

विरहिणी :

मालकोस-शूरफाकता, २२८ आ

आमन कैहै गए अजहूं न आऐ प्यारे सब निसु बीती मोहि गिनत तारे । दीपक जोति मलिन हो बली अब कहा करीअै री सषी किनि दूती बिरमाऐ प्यारे । हौ तौ चेरी जनम जनम की कृपा करौ मो पर नद दुलारे । तानसेनि के प्रभु अब कैसे पाउ छतीआं लगाइ न करिहौ न्यारे ॥६०॥

विरहिणी :

ईमन-चौताला, १२४ आ

ऐते दिन अनगिलें गए है री पीअ बिन मोकों ऐते दिन मेरे अनलेषे । निसु बासर मोहि गिनत गए री आली आवत है री नैननि देषे । बा पीअ पाती पढाई ना आमन भयौ दो में ऐक न भई रही हेषे भेषे । तानसेनि कौ प्रभु असी अनबूझीअत जोवन जान परेषे ॥६१॥

नायिका, विरहिणी :

परज-चौताला २०२ आ

मति कोउ प्रीति के बस परौ हो लालन दै दै अपनौ सरबस । हमसौ अवधि बदि अनत विलमि रहे बिरह बीज बोयौ बरबस । तन तल बेली लागी रसना रटनहारी जैसै पंछी भयो पिंजराबस । तानसेनि के प्रभु उसकी प्रतीति देषौ उनकी न्यारी उनकी न्यारी अंतरगति दिन निस ॥६२॥

विरहिणी, वर्षा :

षमाइच-चौताला, २११ आ

आमन कै है जुं गए माई अजहू न आऐ मन आमन चहू ओर ते घन उमडि धुमडि आवत पपीआ जु बोले बरसावन । का उनै न सुनाई आली पिय की षबरि मोहि भई हौ बिहाल हाल मरन सतावन । तानसेनि के प्रभु तुम वौहौनाइक अवधि गदी भर सांमन ॥६३॥

विरहिणी, वर्षा :

गौड मलार-चौताला, २८१ आ

घन न हौइ री माई जे आई मो पर मनमथ की फौजै धांवन । दामिनि पर्ग लीयै बूंद बांन बरसत गरजन बीर रस दमांमौ बजावन । जासूस चात्रग लायौ हौ टेर मोहि माहि अकेली सप्त सुरन दादुर नंफीरी सुनावन । सैहैनाइनि मौर मार करन है नाचि नाचि जे सब तानसेनि के प्रभु के आगै आवत करन ॥६४॥

अनाहत नाद :

परज-चौताला, २०२ आ

अन अनहद नाद नमो नमो अईआ त्रगुन सरूप मत सुप सागर भरत । कंटक मोचन अघहरन प्रकास रास तंत यंत्र सुभ अछिर सोधि धरत । अषल (अखिल?) बृंहंड

देव तुही जीवन मूल तुंही हरत । तांनसैनि साधै ताकौ कौउ न साधै जे गुनी पचि हारे ते
उनिहूँ धरत ॥६५॥

नाद :

सोहनी-चौताला, २३३ आ

कैसौ ग्यान कौसौ ध्यांन पुरन नैम बिरस कैसै सूधी विकट गावै । कैसे गन कैसे
अगन कैसी संगति कैसी असंगति नांद ब्रम्ह कंठ अलापि सुनावै । तांनसैनि प्रभु को भेद
पावै । भाति भांति के तौ गुनीअं कहावै ॥६६॥

नादनगर :

टोडी-चौताला

नाद नगर बसायौ सुरपति मेहैल छायो उनचास कोटि तान अछिर विश्राम पायौ ।
गीत छद तत बितत धारू कचन जलद ताल काल के किबार लागे हीरा तर षरे जंजीर
त्रेवट कु जी तामें धुरपत सौ नग छिपायौ । आरोही अवरोही अस्ताई सचाई जवाहर ओडव
षाडव ढरनि मुरनि तेउ लाल कहायौ । जोंहरी मीआं तानसेनि गाहक जलालदीन जिनि
जानौ मोल कीयौ अर्ब जब और करोर मन मिलाइ कंठ लाइ जनवर पारखी पायौ ॥६७॥

नादगढ़ :

मालसिरी-सूरफाकता, ८४ अ

नादगढ़ सुघर गढ़ वाकौ कीनो सप्तसुर कोटि कगूरा विकट गढ़ षाई । आरोही
अवरोही इकईस मूरछिना चारौ गुरज चारौ रज चारौ दिसा तोमे लगाई । तांन मांन
आछी तीषी नीकी लागी असौ बिरच गढ़ विधना बनाई । करै मीआ तानसेनि सुनो हो
सुघर नगर (नर) अपबल भुजबल लियौ हू न जाई ॥६८॥

संगीत-व्यापार:

छाया-भीमा, १४५ अ

धर्म कर्म की अलाप हाट सम्हारी गुन पूरौ करिबे कौ बैठौ हटवारी । अकार की
डांडी कीनी जोति करि काइम ग्राम डोरे मांनौ श्रवननि पालरा तारकी चटक पाटी पाछै
गहि डारी । अर्थ मूल ते अछिर समझौ नीकी नीकी धुरपत चतुर तौल तुंक अति भारी ।
जा गुन कौ गाहक राजा रामचद्र देत करोरनि बेचत तानसैनि बैपारी ॥६९॥

तानसेन-विधान :

कान्हूरा-चौताला, १८७ अ

धईवत पचम मधिम गंधार, रेषब खरज सुर साधि साधि साधि गुनी निषाद रे ।
तेरौ अलंकार बाईस श्रुती साधि बाद चारि (उचारि) सारे गम पधनी सा सुघर सानी धानी
ध प म ग रे । त्रिविधि त्रिविधि सुरनि मधि त्रतीअ त्रतीअ त्रतीअ अरे विर्तत जानत
वेदमांन (विद्वान्) सप्त सुर तीनि ग्राम इकईस मूरछना छतीस भेद नादवाद तानसैनि
विधान रे ॥७०॥

गानवाद :

षट-सूरफाकता

विद्याधर गुनीअनि सो क्यो अरीअ गुन चरचा की लराई लरीअ जाइ कछू आवै
नही तासों कहा कहीअ दौरि गुनीनि के चरन परीअ । मेरो तेरो न्याउ निरंजन
आगे चंदन बभूर कैसे इक ठौरे धरीअ । और लराई नहीं गुन की लराई तानसेनि
तानंनि तरीअ ॥७१॥

प्रकृति, भैरव राग प्रथम :

भैरों-चौताला, २ आ

सघन बन छायाँ द्रुम वेली मध पवन अति प्रगास वरन बदन पहुँप रग लायौ ।
बोलत कोकिला कीर पीक कपोत चात्रक सब ही आनंद करै चहूँ ओर रंग बरसायौ ।
बाजत किनिरि रिसाल बीन मृदंग सुखसुती बर पायौ । कहै मीआ तानसैनि सुनौँ ही
अलाप करि प्रथम ही राग भैरो गायौ ॥७२॥

वसन्त :

हिन्दोल-चौताला, २५० आ

सब मिलि करौ अनेग रग कौ अब जाई हो रितु बसंत । कोउ हसि तार देत
कोउ छूअन किनेर कोउ मोरे बधावत री लीआ प्रसंग । कोउ गावत कोउ अदंग
बजावत कोउ सुगंध लै लगावत अग । तानसैनि कौ प्रभु रीझि रीझि बारत सषीआं
सहित सब संग ॥७३॥

इलाहाबास :

हिन्दोल जलद-तिताला, २५१ अ

ब्रम्हा विस्न महेशुर गंगा जमुनां सरस्वती नीर सरिर धरै सत रज तम त्रई तीनों
पाप पषारन कौं जगत तारन कौ निपट प्रगट प्रगास । नाग नर झूमि झूमि रहै नित नित इंद्र
आदि दै सुरनर मुनि गुनी गंधप किन्निरि यच्छिक कहीअत है हो तिनिहूँ की मन मुक्ति
हौंन की आस । तब प्रआग वैराग महा ऐक करवत लेत ऐक अग्न जीअँ देत एक सीचत
जल गल कल्पत ऐक काया कर्म करत यातै भयौ विधि अस्तल अब निर्मल भयौ तीरथ
राज राज धरै साचौ त्रास । तानसैनि कहै सकल जीवधरन कनभूँमि भरन छत्रपती साहि
अकबर धर्मनीव धरी सुभ ग्रेहनि ग्रेह छतीस कुली बसाई इलाहाबास ॥७४॥

तानतरंग की रचनाएँ

पनिहारिन-छवि :

कुकब-चपक, २६० आ

चुनरीआरी प्यारी पचरँग पैहैरे सु पनीआं गगरीआ भरै आवत और दोउ हाथ
ग्रीवानि धरै । गोरे भुजनि मे गाढे बरा फूनि दडवनि में स्याम चुरी हथेरिनि नौहंनि
मैहैदी गैहैरौई रंग करै । उसासनि बेसरि दधिसुत डोलत ता मध मुष प्रसिद्धि भौहै तांनै
अधर दसन दंपति सो काननि वीरै गरै मोतिनि लरै कुच उतग मतग से देशीअत बनीता
जनौरी सु चोषे फुलेल भरै । जेहरि जोति सूरज सौ होउ परी आगँ विछीआ बाजनै
तिनि मध लाल गुधाअँ महावर पगनि तरै । तांन तरंग प्रभु कौ मन मोहत गति सी दिषावत
सो मुसिक्याई बाल हरै ॥७५॥

बानलीला :

गौरा-चौताला, ८६ अ

सुधेई मांगि लैहो दान, हम पर जाति को रही न नाती । मन मिली बातें
काहे कौं बनावत राषौजू अपनो ग्यान । औसी छलबल की बतीआं काहे कौं करत हौ
जू जैसी न देशी सुनी कहूँ कान । तानतरंग प्रभु अपने ही गों की करत मानत न काहूँ
की आन ॥७६॥

चंचलसस की रचनाएँ

नाद-समुद्र :

हमीर-चौताला, ११२ आ

नाद समुद्र अपरंपार काहू नही जाकौ भेद पायौ । ऐक गाइनि पैरि पैरि इडा पिंगला सुषमुनि तुवी धरि आंगे कहू अंत न पायौ । पैरि पैरि हारे और बार फिरि फिरि गायौ । फुनि सप्त सुर जिहाज कीने पुलबांधन कों मूरति अमूरति तरंदान वनि नहीं आयौ । चंचलससि प्रभु कौ ग्यान कहत सुनो गूनी ग्यानी ध्यानी अभोग (अमोघ ?) दधि जेहें विधि बतायौ ॥७७॥

मेघ :

गौड-मलार, २८१ आ

धूमरे रग बादर पहरै स्याम सेत लीलांमर बिरह धारनि धरै । निसु सब सम ऐक भए चात्रग पिक मोर सोर करत रहत है दूजै पावस जामै चतुर मेघ जसरै । जे समीप तिनि कौ सुषदाता मों बिरहिनि जानि उमडि उमडि उमडि उमडि तकत फिरै अकस करै । है हैं न चंचलससि प्रभु के आंगे गे रसविनोद कीनै होत चले रैन मोर विन धरै ॥७८॥

नायिका :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ

दुरि दुरि डेषत मुरै मुरि चलत है री सुकौन कारन मानों पीआ कों अंको भरत पल पल पल कलनां । मोसी चातुर आतुर मिलों चाहत दरस परस करिहो रीझी तुम रीझे निरषत फिरि फिरि फिरि चलि द्रग मलिन । अब जानी रितु मानीअै मन मांनी अैसी कैधौ नंद वैहैरत फिरत चित्त कलल्यान । चंचलससि प्रभु मोहन के अंग संग देषिवे कों जे अचरज जे कटाछि वस्तर निर्मल ते भए मलिन ॥७९॥

नायिका :

टोटी-चौताला, ६३ आ

जेई जेई अंग तिने तिने रिझावत पीआकों अनरागै रग करि सुदे जु तरंगनि । आउ (हाव) भाउ कटाछ गुन रूप जेहैं विधि मन मनावत लाल कौ ललनि तोहि दीनी सुहामनि । निपट चतुर आतुर चौप बढावत गावत सुरसुती परसन भई कंठ पाठ मुष रसना भनि । चंचलससि प्रभु के अंग संग अरधंग राग तोसी सुघर तुही धनि धनि ॥८०॥

हुती :

केदारा-सूरफाकता, १६७ आ

उठि चलि सूधै ने चितौरी आली हौं आई तोहि लैना लालन तेरी आरति करत तुम सुंदर नट नांगर नारी । बैठे हरि कुंजनि मै तेरौ मग जोवत करि सिंगार पंहुचि कै सम्हारी । चंचलससि प्रभु तेरी सौ राधे उठि चलि मिलि कु ज बिहारी ॥८१॥

रतान्ता :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ

उरझे फूल वसीले वारन मांनौ घटा मधि तराइन अैसे नीके मोमन । मुक्ति माल बगपांति तरषासी कौधत सुरति अत लट छूटी स्याम घन । जंह अचरज देषौ अंग मीन कमलवनि रहे ऐक ठौर मोमन सोमन । चंचलससि प्रभु के अंग सग राषोरी भुअ पर तुअवनि रही ई धनि धनि ॥८२॥

दक्षिण नायक :

ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ

बरनीनि कौ अजन ऐ बिराजै लाल अधरनि पर ताही में अत ही उजागर कपोलनि
लागीयै ते ऐ ठठ अंक । बिनां अंग पीठि पाछे मुद्रका गठि रही गाढे आनंदन (आलिंगन ?)
सोहत मुक्ति माल और और अंक । फुनि शाल तीलक दीये लिलाट सो लगै जगै और दोउ
पर रीझीं सूधी सूधी अलक परत परत बक । चंचलससि प्रभु रीझे भीजे वा छविसो आए
मेरे सोहे भऐ निसंक ॥८३॥

विरहिणी :

पूरबी-चौताला, ६५ अ

री हौ तौ मांन करि पछितानी भाई बौहौरि आवै कब मिलेंगे री मनभांमन । वे
जौ मनावत हों अनबोली ह्वै रही जोवन अति गर्व कहा कीजै लागौ बिरहा तन तांवन ।
हो तौ कबहू न भई न्यारी जब तौ में जानी बिछुरन की सार । त्यों त्यो सुधि आवत
पीय की त्यो त्यो लागी दुष पावन । मेरौ तौ जनम जीतब तबही गिनो माई जब मिले
चंचलससि प्रभु आवेंगे मेरे प्रान जिवावन ॥८४॥

होरी :

कामोद-धमार, १५२ अ

उठत तरंग सुगंध की छवीली आउत है तेरे अंग । षेलत होरी छिपाउत काहे कौ
वे न गए तेरे ढग । लाज भरे नैना रतनारे भीजे है अंग अंग । चंचलससि अब प्रगट
देखीअत रंगे स्याम के रंग ॥८५॥

सुरज्ञान (सुजान) खाँ की रचनाएँ

इस्लाम :

पूरबी-चौताला, ६६ अ

करत सब जग कामें सुभै हौत तबही जब पैहैले कैहै लेत विसमिल्लाह । जासों
बढै दीन उदोत इलम जे पावे अति बुधि को ततछिन पढत रहत मोंला मोंला । अरस कुद
(स) लोह कलम को भेद जब पावै रसना सों पढत रहत लाइलाइइलिला (लाइलाह
इल्लिल्लाह) । फरज सुनति (सुन्नत) सों लगाइ ग्यांन ध्यान सुजान सेवक पर करम कीजै
महंमद रसूलिला (मुहम्मदुरसूलिल्लाह) ॥८६॥

नाद-दल :

टोडी-झपताला, ६५ अ

नाद दल कटक अलाप सुर करनांल तार छरीदार रवाब नगारौ । बीन सुरबीन
सुरमंडिल कीनों उमराउ तोपची तमूरा सेंन सम्हारौ । गुनी जुरे सब मजलसि मेंदान
दारु धुरपत सुढाल तरवार । तांन कमांन षिरिर गांसी भई लागी सुजांन के आर
पार ॥८७॥

नीति :

अमन-तेवरा, १५५ अ

ऐक संचरत संजोग तिनि मध आजु रासै मन मै कालिमां तासों न रीअै नेह ।
ऐकै तजत ही ऐकै करत ही जेहै सुरग्यान जो जा भावै सो सोइ लेइ ॥८८॥

नायिका-प्रशंसा :

ढोडी-चौताला, ६६ अ

रूप जोवन गुन विद्यावर रिझाई लीनों प्यारे सब तीअनि में विचित्र घन । अंग अंग के प्रसंग राषत तूअ तन भावत मन । तोसी तुंही और नांहिनै मेरे जान इतने नानां प्रकाल इतने मे पाई मन । प्रभु सुजान प्यारे कों राषोंगी अरधग जान न दीजै अन तन ॥८६॥

धौधू की रचनाएँ

नायिका :

वरबारी-कान्हूरा, १८१ आ

तैं ही मोह्यों मनमोहन ब्रज को ठाकुर तू काहे न अडे डोलै । हाथ लकुट बन धैन चरावत गयौ हो मो पूछत कहा कोउ आइ बतायौ जौ कबहूं बोलै । कहू है लकुट कहू मोर मुकट कहू मुरली अधर धरै डोलै । असौ कान ग्वाल अओलनौ उठि चलि हिलि मिलि धौधू के प्रभु कौ ऐचपरी तू दोलै ॥८७॥

लीला :

अडाना-इकताला, १८६ अ

अरे कान्हू धीरौ रे धीरौ रे । हाथ लकुटीआ कांधै कमरीआ निडर आवै वीरौ । जानत हौ कुल गोत बडे हौ काहे कौ होत रातौ पीरौ । धौधू के प्रभु तुम बौहौनाइक आषरि जात अहीरौ ॥८८॥

वर्षा :

संकरा-चौताला, २३७ आ

आली री गरजत, घन रिमिझिमि झनंकार ता समयै प्यारे कीनौ आंमन । चातग घन मोर सोर तैं सौई तैसी तिरछी तरेर बुदिनि बरसत सामन । कोकला रितु मांनी प्रान प्यारे सुषदैनी बोलत इअत बानी हर्ष बढावन । धौधू के प्रभु तुल बहुनाइक पै नही मानत दंपति प्रीति बाढी लीगे (लागे ?) री अति सुष पावन ॥८९॥

मदनराइ की रचनाएँ

देवी की कृपा, गर्वोक्ति :

आसावरी-चौताला, ५३ अ

ऐक कर षपर होत सुतो कों दांहिनी भई । जहा जहा गुन की चाह होति तहां तहां राषति रसु कावि नई । फुनि तुअ वे अदलि बदलि करिवें जानत राग की होति कंठ जोति दिन दिन सांचु सहाई । मदनराइ कों असौ दीयौ प्रसाद अलापि सुनावै अनगनती अंग निकाई ॥९०॥

तन-मन्दिर :

आसावरी-चौताला, ५४ अ

काम नीम (नींव) धरौ हो ता पर अग्न मारी पांणी कयारि मिलि कियौ गारौ । अस्त पषांन बनाइ भरे विचित्र रजरोसन सजिकै प्रकत पचीस लगाइ कीनों मंदिर भारौ । आषै करीअ झरोषा पलक पट और धरे कुच कलस नीकी बात धरिबे को कीनों हो दिलुआरो । मदन कौ साहिब अलष लष्यौ न जाइ सो रसनां के बोलन मै उनारौ ॥९१॥

अल्लाह-स्मरण :

पूरबी-चौताला, ६६ आ

मेरे मन याहू याहू लै हरदम लै नाम और जो होइ तेरे नीके काम । निसु वासर वाही सुमिरन वाही सुमिरन मे रहि रे रठि रे अग्यान ओर मग पग जिनि धरि सूधे कयो देन जो मागे आइ दीन धन । जो तू वाहि ऐक वारि यादि करै तौ तोहि वह यादि आवै अस्ट जाम । मदन के साहिब कों यौ पैहैचानो यो अलप अल्ला साहिब छिन मे देत अस्टसिद्धि रिधि नवनिधि और अमान ॥६५॥

नाद :

हमीर-चौताला, ११२ आ

बोल पवन जाते जु नाद होत मेरे जान करतार को जह है मग । ज्यौ ज्यौ रीझि होत त्यौ त्यौ मानों विधात के जीअ में आइबे को रही है जगै उग । मो मे अब पाक जाति प्रथम ते कहौ न जात ताते रहै अस्टजाम मे ऐक टुग । मदन कहत आनंद सुजान सुनो पाईअै अलष नग ॥६६॥

हरिदास डागुर की रचनाएँ

शिव-स्तुति :

शौरी-चौताला, १०५ आ

सिव सिव सिव करत देव तेतीस कोटि महादेव तूअं नाम जपत पावन्ती पति पतितपावन पातिगहर तेउ तन के जे सुमिरत । त्रैलोक अनाथ सकर त्रसूल धरै मन मुक्ति पराई मन महेस दस देसनि के नरेस जोई जोई मागत सोई सोई पावत है हो तुरत । देवाग्रिदेव देव जिनिकी अस्तुति को करि सकै जटा गंग डबरु संग ब्रपवाहन कर त्रसूल भोर भये सब ही को फुरत । वामदेव कामदेव लीलकंठ चरनकठ है हो हरिदास डागुर कहे उनि सहित गाउ कावि करौ जाकौ जस कहीअत हे हो मास्त्रमत ॥६७॥

त्रिवेणी :

तिरबन-अपताला, १०४ आ

त्रवेनी कालिंदी सरस्वती अरुन वसन और उजिल वरन सोई गंगा । बेनी प्रवाह कटाछि तरंगनी नैन मीन लिये संग । तुही तारन निस्तारन तू ही अघ दुप दालिद्र पाप कटगा । इतनी बिनती करे हरिदास डागुर देवान सेवा सीस अंगा ॥६८॥

ज्ञान-प्रशंसा :

गूजरी-चौताला, ५१ आ

ग्यान मध माते जे नल (नर) निसुदिन तिनिकों कबहुं न होत षुमारी । सत्त के प्याले में धर्म भरि भरि पीवत छके रहत निसु दिन लगी रहत तारी । तन करि माटी मन करि चढाओ पंच भूतारी अगिन पर जारी । हरिदास डागुर प्रभु तुम्हारौ सुमिरन करत धनि विधना रचौ पुरिष यौर (और ?) नारी ॥६९॥

बहुरमणी-रमण :

केदारा धीमा-तिताला, १६७ आ

लाल कहौ आग कौन कौन सौ रितु मानी कासौ कासौ कानी प्रीति कासौ नेह बाढौ है बौरौ रमनीरमन । कौन कौन धौं मनाई कौन कौन धौ रिसाई कासौ कासौ कीनी भामरि

को है भागिमंती कांमहू के काम डोलत हौ भमन भमन । तुम वौहौनाइक ऐकनि सो हसत बोलत डोलत ऐकनि रिझावत ऐकनि षिजावत ऐकनि सो घातै मिलवत तात्नीअ के कठिन जो तुम्है ही देखै ही अनदेखै बेकल होत घर घरी के गमन मै हरदास डागुर के प्रभु या प्यारी सौ अवधि बदि जात जे होत बोल पवन ॥१००॥

खालिन :

टोडी जलद-तिताला, ६५ आ

भरि भरि धरि धरि आवत गागरि नागरि नांरि री तू कोन के रस मिस करि । थोरे दिननि तू ऐक ही बेर री पनीआ भरन, आज कईयौ बेर आई गई अैसे कहा भए नंद के हरि । जौ तू सासु ननद की कान न करिहै जौ तू अपने कुलहि लजावै करि । मोहि दोस हरिदास डागुर के स्वामी नैन प्रान जु गए डरि ॥१०१॥

नादगढ :

सुधकल्यान-चौताला, ११८ आ

कै लीयौ नादगढ महा आतंग आरोई अबरोई अस्ताई संचाई महाविकट निपट अति । छ राग गुरज भये तीस भारजा के कोट इकईस मुरछिना बाईस सुरति के कगूरा तीसे नीके लागत । सप्त सुर सप्त पुर ओडब षाडव किवार तीन ग्राम परकोट ओला गोला वनि । धुरपत की चारो तुकै चतुर दिसा को चिनोती दीये असौ बाकौ कीनो नो रंग जल भरि राषौ कंठ गुनिनि करि रिसाल लागत लागत हरिदास डागुर ग्यान गुरु अैसे कहे लरि लरि पचि पचि अटूट टूटन जात मेरे जान वे रीझें प्रानन ॥१०२॥

संगीत-सैन्य :

टोडी जलद-तिताला, ६५ आ

तान तरवार, तार की, सपरलीये फिरत गुनी जहां तहा जीतत तुरत । सुर कमान, बोल वांन, छूटे जहां लागत रीझत जांनि सभा जे आगे विद्याधर सब जुरत । सप्तक तरकस, ऊंची सुरति नेजा, समांन बषतर बनाइ उर षपरा सों फोरत । इकईस बाईस छतीसौ अवाजे लागति गडग कैसे करि रंगनि हरिदास डागुर यौ कहत तुम सुनों सुधर सुग्यान अग्यांन आगे फौजे मुरत ॥१०३॥

व्यास की रचनाएँ

सिंहासन-अभिषेक :

दरबारी कान्हरा-चौताला, १८० आ

जहा पातसाई बैठो साहि नवल बाल बलि जईअै वह लषत की । कनिक डंड चमर, डुरत गुनी गध्रप गावत मगल इंद्र ठाढे सिधरै कुरसी ईस लीअै आवत हैं नगन जटत की । छत्र कुला हीरनि बनाई हो ताढिग मुकता लागे कही न जाइ सोभा नषत की । व्यास कहत सुलितान महंमद चिर जीजो जह निकाई को गुनीअनि के बषत की ॥१०४॥

आशीर्वाद :

नाइकी-चौताला, २०० आ

आली री गगनथार तामै उडगन पौहौप सकल वरन वरन नादर चंदन अबीर लीअै हैं री अवछरा साहिजादे कौ अैहै विधि इंद्र कीयौ टीकौ । सेत सेत अैरापति तुरंग अति

सोहत तुअनारद मगल गावत है ऐ अब तुम नर चारौ चंकी कौ । कलपबृछ सफल हम जानैरी आगै भऐ निहालं उदीआचल अस्ताचल ज्यौ बदी बद नीकौ । व्यास आसीरवाद यौ दीनौ काइम सुलितांन जुगानिजुग चरजीव अकबर छत्रपति कौ ॥१०५॥

जगन्नाथ कविराय की रचनाएँ

नौरोज-शाहजहाँ :

भोपाली-चौताला, १३५ अ

जेहै विधि कीयौ नौरोज मुसजर लीलक मषमल गरवाफ भमन बनाऐ दिवि बसन छाऐ अनूप बिछौना बिछाऐ अनेग सुगधनि सुबसत (सुवासित ?) अगर धूप दीप दिपत अति । चेत्रविधि बाजे बाजत नित नित गाइनि गावत बेद ब्रंम्हावत विप्र पढत कवि कवित्त सरस नारी रिआवत है अनेग जुगति । तैसी सोहत भीर उमराउ राजा राइ द्रगपाल समता मध विराजत साहिजहाँ नगिन जटत लसत जैसी मूरति प्रथीपति । जगन्नाथ कविराइ देव आसीरवाद चरजीव रहै ग्रँसौ दाता ग्याता चक्रता चक्रवती ॥१०६॥

प्रमुख गुणी :

कान्हुरा-धीमा, १८६ अ

सर्व कलासंपूरन मति अपार विस्तार मति नाद कौ नाइक बैजू गोपाल । ता पाछै बकसू वैहैसि बस कीनो, मैहैचू मैहै मडल मै उदोत चहूँ चक्र भरौ छिठ विद्यानितान (निधान ?) सरस धरु करन छिठताल । भगवत सुरमरन, रामदास जसुपायी, तानसैनि जुगतिगुरु (जगद्गुरु ?) कहायौ, धौधू बानी रिसाल । सुरतिविलास (श्रुतिविलास ?) हरिदास डागुर, जगन्नाथ कविराइ तिनि के पग परसिवे कौ स्याम रांम रंग लाल ॥१०७॥

नायिका-छवि :

चिरवन-चौताला, १०४ अ

ते आज दीनो लिलाट वधू कुजगौ टीकौ सुतामध नीकौ लागे भाई । मनो पुरन ससि बिभिमंडल मे अरुन नैन बिभि जाई । जोबन के बर काहू बदत नाहि नैरी तेरे नैननि की निकाई । जगन्नाथ कविराइ के प्रभु को मनो प्रीति रूप धरि कै आई ॥१०८॥

दम्पती-केलि :

अल्हईआ-चौताला, ४२ अ

एहो बैठे दंपति सुरति सुजकी बाते करत प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत । छिनुकु आषि षुलि जात पुनि मुसिक्यात अचल ओट दै जम्हांत अरसात बहि रसिक रंग उपजावत । बदन चिबुक गहि आपु तन सूधौ करि हरजि निरषि हरि हीये लगावत । जगन्नाथ कविराइ के प्रभु रिझवार रीझि नैननि सो बेन प्रान प्यारे मुष गावत ॥१०९॥

मानिनी :

बरारी टोडी-चौताला, ७० अ

कैसेहूँ न बोलों तुमसौ जौ मोहन मोंहों (मुंह) और जीअ और । कहत रस की करत अनरस की काहूँ सों सांचे हौर । नेक सुनो अपने कपट कौ घेर ठौर ठौर । जगन्नाथ कविराइ के प्रभु कैसे पतिआईअै तुम दूतिनि के सिरमौर ॥११०॥

सदारंग की रचनाएँ

संगीत :

कान्हारा-चौताला, १८६ अ

षरज् रसब गंधार मधिम पंचम धैवत निषाद ऐ सप्त सुर सोधि नीकै बुलाइ दऐ
धुरपद मध सुनि लेउ गाइनि गुनी । आरोही अवरोही जाकी उलटि पलटि असै होत निषाद
धैवत पंचम मधिम गंधार रषव । दुगन सरिगम की सदारंग नै तुमकों जाकै बताइ दई
समझि लेउ सुमति वारे सारेसा सारेगारेसा सारेगम गरेसा, सारेगम पमगरेसा सारेगमपध-
पमगरेसा सारेगमपधनी धपमगरेसा नीधप नीध पधनी नीध पमपधनी नीधपमगमपधनी
नीधपमगरेगम पधनी नीधपम गरेसा षोटमन की पैहैले दूरि कूरि लेउ तब फुरैगी
जह विद्या ॥१११॥

होरी :

संकरा-धमार, २३६ अ

कैसे नाचत आवैरी ललना करि हो हो षेलत होरी । डफ अदंग षटि तार
संगति सौ और बाजत मजीरनि की जोरी । देषि डरपि भाजी मै जब तब दिस्टिवचइ
निरषि भरी ओरी । असौ निलज सदारंग मधमातौ लाज न करत काहू की थोरी
षेलत होरी ॥११२॥

होरी :

सोरठी-धमार, २२३ अ

तुम बिन हीअ मै उठत पीर अति भारी । जैहैं विधि होरी तू षेलिलै मोहन संग
सदारंगीले बारी । बाजत है डफ ढोल पषावज और मजीरनि की जोरी । महहद साहि कै
फागु मची है इतनी कैहौ हमारी ॥११३॥

होरी :

गौरी-धमार, १०७ अ

सकल समाज या होरी करै आयौ माई री कैसी नीकी भाति बनि आयौ जह । बीन
रबाब अदंग झाझ लै राग रंग बरसायौ यह । हिलि मिलि झुरमट कीनी सब बनिता अबीर
अरगचा गुलाल उडायौ (यह) । सदारंगीले महंमद साहि पै फगूआ लैहों अंको भरि भरि
गरें ही लगायौ यह ॥११४॥

होरी :

पूरीआ-धमार, ८१ अ

अब तौ महंमद साहि पीआ घर आए । चैहैल पैहैल फागुन की देषी जित तित
सदारंग बरसाए । चैन गाओ रहसि रहसि करि लाषनि लाषनि पाए । ऐक होरी दूजै
अन्हाए रंग सों यह सुषु गिने न जात गिनाए ॥११५॥

होरी :

टोडी-धमार, ६७ अ

नऐ हौ षिलार नऐ हौ रसीआ अनोषे नई भई ठकुराई । भलौ बुरौ पहचानत
नाही ऐक ही बेर चले इतराई । नाउ न जानौ गाउ न बूझौ असौ ब्रज में धूम मचाई ।
रस में फागुलला पैहैलेई रसिक छैल रसभीने गिरधर सदा रंग सुषदाई ॥११६॥

होरी, वर्षा :

टोडी-धमार, ६७ अ

फागुन मास में बरषा जहि रितु प्रगट दिषाई । पिचकारी और भो डर चपला
अबीर गुलाल घटा छाई । करि सिंगार हार मोती माल बगपगति छवि छाई । सदारंगीले
छबीले महंमद सा उमगे पनरे उमगौ झर लाई ॥११७॥

होरी :

षट-धमार, ५६ अ

अब तौ कोकिल धूम मचाई पीआ विदेस मोहि पाइ अकेली बिरहिनि जानि
सताई । ऐक तौ हती मै बैरिनि उनकी करत चंबाउनि आई बोलि बोलि जब बान से
मारत तन मन बेधत जाई । कुकि कुकि डरपाई रीजीअ मे अति ही उक बढाई ।
चीतौ बसंत जब आयौ फागुन अब कहा करो मोरी माई । ये समये सुधि लीजौ सदारंग
सुषदाई दुषदाई ॥११८॥

मानिनी :

आसावरी-झपताला, ५४ अ

कोउ तो मोहि बताओ री पीअ सों मान करिब कौ ढब । पै अैसे कीजै जामै नैके
मलीन न होवे और अपनी हूं बात रहै सब । उनकी कहा कहौं वै तो निपट प्रवीन रसिक
लाल देषि रहे अनेग औषिनि की फरकनि तिनि सो छिपि सकै कब । यह भूल मो मन आई
गई तातें सदारंग पीअ सो रिस हूं मे न रूसीअै कबहुं अब जब तब ॥११९॥

अदारंग की रचनाएँ

पीर गुलशन :

टोडी-चौताला, ६३ अ

अपने अदारंग कों मोज तकि भेजी नां सरै पीर गुल्सं (गुलशन) नामी । जह
बिनती कबूल कीजै कैत दरिद दिल सों इलाही आमी । सब गुनीअनि के कदरदान
तुम प्यारे मोरे अंतरजामी । जो सेवक तिहांरौ तुमही को जानत दूरि करौ उनकी
वेद अरामी ॥१२०॥

प्रशंसा :

टोडी-चौताला, ६३ अ

कीयौ करतार प्रतिपाल कौ करनहार 'आलमगीर' पातसा बषत बली दानी । परजा
सुषी भयौ षोज दुष कौ गयौ बढौ आनद और जुगति जानी । अदारंग देषत बुधिसरस
(सरिस) न लेषत रसनां तकत प्रगट गति जात बषांनी । अटल राज जटल छत्र राजै करीम
कर सधि जौ लग गंग जमुन पांनी ॥१२१॥

प्रशंसा :

अल्हईआ-चौताला, ४२ अ

अरज सुनि लीजौ हमारी साहिनिसाहि, साहिनिसाह दिन दूल्हौ अब तिहारौई सुनि
सीर जस को धाए जाए ठाम ठाम तैं देषत जमाल भए निहाल दुष दूरि भयौ बिनि कौ
सब । गज तुरंग इनाम पावत गावत रिझावत सुष आनंद होत चहू ओरनि प्रताप कीनो
रमि । अदारंग तुम्हारौई कहावत कदीम ते निसुदिन नाम तुम्हारौई जपत करम करि कृपा
करि यादि करौगे कब ॥१२२॥

संगीत :

टोडी-चौताला, ६४ अ

होत मधिम पंचम (खरज ?) पंचम रषब धैवत गंधार, मधिम निषाद पंचम सुर ।
अदारंग जाकौ ब्यौरो काउ सों न बूझीएँ जे जानत है तिनि पायौ बडो गुर ॥१२३॥

संगीत :

टोडी-चौताला, ६२ अ

संगति मुद्रा सुभेद उगति जुगति सुधिवानी तुम ही पै पाइअँ । हाहाकरत नांद तीनि
ग्राम सप्तसुर भरे सारेगमपद (ध) नी सा कंठ भरन बनाईअँ । बा गुर सों सो तैने जह
पायौ अदारंग बाकौ जह चाहीअँ । जहां जहां जुरति फुरति तान अछिर की होति तहां
तहां सदारंग कौ नाम लै गाईअँ ॥१२४॥

होरी :

हमीर-धमार, ११५ अ

अरगजा गुलाल लै केसरि रंग पिचकारी भरि भरि छोडत । अतर गुलाब और
चोबा चदन पीअ मुप मीजत बनि बनि बनितासो तब बेहू लाल मिलि गए गुपित गांठि
टकटोरत । लाज सकुच छाडि दीनी लोगनि की जब ऐक ऐक कों जो बस करि रस में
बोरत । कहा कहौ समयौ अति सुदर सदारंगीले ऐ नोंला सी तिनि कों भुज भेटत कुचहि
मरोरत । मध कौ मतवारौ अदारंग करिहौर गरबहीआ ठारत मसकोरत ऐ सषी री याह
बौहौत दिननि कौ बिछुरौ मिलौ याते फागु प्रीति नाहन जुरत ॥१२५॥

होरी :

अडाना-धमार, १६७ अ

नारि ऐरी नैक सूधे हमसों बोलि । होरी मै गुमान कांम नही आवै तू तौ मुगद
गमारि । कहू रग कहूं अबीर गुलाल कहूं कुमकुमा कहूं पिचकारि । हसि हसि फगुआ
मांगीअँ, मुषते अदारंग अचरा डारि ॥१२६॥

दूतीवचन :

मालकोस-चौताला, १२७ अ

ऐरी यह औसर भलौ है अलबेली चतुर नारि चलि चलि पीअ पास । नवसत
सिंगार साज तजि त्रीअ लाज आस अधराति भई चंद्र हू चढौ अकास । मेरौ कहौ मांनि
अैसी छांडी कै रसरी बाम तुम अब जानि करि विविधि विलास जास । जब हौं निहारी
तोहि अदारंग जब तै महमद सा प्यारे देषि प्रान लागि रही तेरी आस ॥१२७॥

मनरंग की रचनाएँ

होरी :

ईमनी बिराडरि-धमार, ४० अ

कुछू अैसो मत्र पढि रग छिरकै री होरी के दिननि में इनि मन मोहन बनवारी ।
सकल त्रीअनि में कोने सिषाई हों न जानों अैसी कौन है नारी बारी । मोहि जानि ब्रषभान
दुलारी मनहरि लीनों नंद के बिहारी । जौ हों अैसी जानती मनरंग सै हैस गारी है भई
मतवारी बजाई तारी ॥१२८॥

लीला :

मुलतानी-जत, ३ अ

अैसौ लंगर ढोटा कान सषी चितवत ही चोरी लगावै । फेंकत गेंद अचराकी ओट में
ऐक गई दो मांझ लै पावै । चंचल चपल करौ मनरंग गाइ लोक लाज नही आवै ॥१२९॥

नूररंग की रचनाएँ

होरी :

टोडी-धमार, ६७ अ

आली आयौ जह फागुन मास पीअ कीनों गमन मो पै कैसे कटै जह रितु उन बिन माई । ज्यौं ज्यौ सुधि आवत मोहन की गेह आंगन अति दुबर भईली देत बिरह दुष दुषदाई । चहू ओर डफ बाजन लागे मनमत (थ) करत चढाई जह दुष बैरी पाछै लगौ बडौ कठिन है माई । पल पल छिन छिन औसी बीतत कहै न सकत तेरी धुआई । नूर रंग के दरस देषे बिनां बैननि नींद न आई ॥१३०॥

होरी :

हमीर-धमार, ११५ अ

आवत हीं फागुन औसे निलज भए सब कै देषत जह ढंग करत हौ प्यारे । जह होरी कैसे खेलत हौ गुलाल मसल अपने मन के कारज करत आंगे बारे । वे का कहैगी इतनों अपने जीअ में समझि ठीठ हा हारे । नूर रंग हो लाजन भीजी मानि मेरी सिष अबूत मेरी से हों अब तौ सरकि जारे ॥१३१॥

होरी :

संकरा-होरी, २३६ अ

कट लचकावत भौहै मटकावत औसी ठीठ निलज यह दईआ । जहां पावत तहां पकरि रंग में बोरत है हलधर कौ भईआ । नूररंग कहै या कौ तकत हैं जैसौ होइगौ ब्रज कौ बसईआ ॥१३२॥

सबरंग की रचना

होरी :

मालकोस-धमार, २२६ अ

लाल लै गुलाल सषी मेरौ मुष मांडो गरज मुरकी नथ की इनि बरजोरी । कंचुकी दरकी मोरी अंक भरि लीनी यह गति कीनी हैं मोरी । लाल लगर लगराई करत है गोरी दिननि की थोरी । जाही नगर में अब सब रंग सौ षेली है मन भाई होरी ॥१३३॥

रसरंग की रचना

लीला :

षटमंजरी-चौताला, २६२ अ

जो पीअ तोसों कहत सषी सो पीअ है प्यारी राधे संग । वह देषी जमुना कुंजविहारी नितंत मोहन भयौ रसरंग ॥१३४॥

अदारस की रचना

होरी :

दरबारीकांन्हुरा-मलार, १८४ अ

कहा बैठी है री तू नारि उठि चलि पीआ पास षेलिलै होरी । अतर गुलाब और चोबा चंदन और अबीर गुलाल की भरि लै झोरी । मेरे कहैं तूं उठि चलि पीअ पर मति करि मान ऐ गोरी अदारस मिलि करि फागु षेलिलै अभिचल रहौ राधा कृष्ण की जोरी ॥१३५॥

इंछाबरस की रचनाएँ

होरी :

आसावरी-धमार, ५५ अ

ढीठोंही दै दै को षेलत जैसें तुम षेलत जह होरी । अंक भरत कंचुकी भोरी दरकी गुलाल मुष मीडत बरजोरी । धरके लोग लरैगै मोसो जब देखेंगे सब रंग बोरी । जाइ कहौ अंछयावर सखिआ सों निकसि जाइगी चोरी ॥१३६॥

नाद-बन्दूक :

हमीरनाट-चौताला, १५६ अ

कर साधै नांद बंदूष धुरपद कुदा धरै ताल बंद मगरै अलाप करै । दाह गोली गोला पूरकी आधी ठासि तांन साचेज भरै । मीन सूजन कीअँ चातुरी रंजक ता मै होइगी अवाज धरै । मनके अठ्या प्रभु तुम बौहौनाइक अधम पलीती लागी कर्म करै ॥१३७॥

होरी :

केवारा-धमार, १७० अ

रंगमहल मै रग मचौ रँगभीनी दवि सोहत नारी । ऐक नांचत ऐक अदंग बजावत ऐक गावत होरी दै दै तारी । ऐक ओट होत अलसात ऐक तकत घात सौ दाउ । ऐक पाछै मुष मीडत पूरन करत आपनौ चाउ । मूठि गुलाल लाल मुष केसरि करत फिरत अनुराग । महंमद साह कौ अंछयावर पायौ सोउ लहै रीझि सुहाग ॥१३८॥

संगीत :

बागेशरी कान्हारा-चौताला

गुन समुद्र तामैं तन जिहाज मन सौदा गलौ सांस पवन कै जोर । गमक बादबांन सप्तसर लरि परे सुरनि षुदा सुरति अँनक दीअँ चितवत मगर विवादी की ओर चारौं तुकै तेउ चारौ कोटनि मै बोल मोती जोति जवाहर अनत सुबरन देषत ओर छोर । अँसौ धुरपत जहाज सौ पुरौ महंमद साहि कौ लाअँ गाअँ अंछयावर सब कौं सकल गिनि दीन्हें लाष करोर ॥१३९॥

नयन :

गौड मलार-चौताला, २८१ अ

तूअ नैनां मै मानौं काम की घटा सी उमड़ि आई । पलक धुनि सोई गरजनि चंचल चितवत चपला सी कौधत अँसी सुहाई । अरु बरुनी धुरवा सी ताही वग पंथ तारन की जोति जोगन सो मन भाई । अरुन डोरिनि मानौ इंद्रवधू पाति सौहै पानपै रसबूदिनि सौ महंमद साहि पीआ की अंछया बरसाई ॥१४०॥

वर्षा :

गौड मलार-चौताला, २८१ अ

भमन जानौं सूनौ भाई काम कैसे मोपै आज घन असवारी करी है जहै कोप । पवन तुरंग छाडि धुरवा निसांन आगैं गरजि दमामुद पछी मोर ब्रम्हांवत चपलान हौंई दई अती अरुन ओप । अनेग दल बादल सैनां तमकि पचि पैहैरवान बूंद बरसावत धरिन जांम गीलगा मांरत ओला गोला धर धरात सो मानौ बरषै तोप । सुष सब लूटि लयौ बैठौं जब दिनकर छत्रपती महंमद साहि अपनी अंछयावर सौ सादि नाहीं करत हैं तप ॥१४१॥

फुटकर रचनाएँ

तानबरस की रचना

संगीत :

ईमन-पटिताल, १२५ अ

कवितांन करत भरी है कबहू और जु विधि की, विधि होयै विधि की,
विधि तब किनरी विधि भक्त जान । और जो संगीत मत डइडहारो कवि तांन
बरस वषान ॥१४२॥

निर्मल की रचना

विष्णु-स्तुति :

विभास-चौताला, २१ अ

ऐ नरहरि नाराइन गोपाल गिरधर । गोपीपति घनस्याम कमलनैन बनवारी
गुरुडधुज चतुरभुज मदहार । उपद्र पद्मनाब (पद्मनाम ?) ब्रजनाथ सारगै कहूं सुर
असुर संघारन और निजु भगवत कौ दुष निवारन असौ तिलोक मैं न कीजै समसर । प्रभु
निरमोल कों आनंद आत दीजै सचति संपति सुफल तरंगनि जै जह बिनती सुनि लीजै तुम
दयाल दयाकर ॥१४३॥

गुलाब की रचनाएँ

ध्यान :

ईमन-चौताला, १२५ अ

तेरौई ध्यान धरत ब्रम्हां सिब व्यास बाल नारद मुनि सनकादिक सेस सुरेस सुनत
रहत रहत निसुवासर चंद सूरज और तराइन धूअ मेर पवन पांनी पसु छंती जलथल के
ग्यान... तमुनि हैं नारी नर । दीनबंद दीनानाथ दीनदयाल जगत के जगजीवन जगनाथ
नरहर । भरन पोषन विस्वबर संचति संपति तेरौई सब समूंह दीजै गुलाब कौ दिनप्रत यह
रामकृष्ण वासुदेव चरन सहन दया कर ॥१४४॥

प्रबोध :

बिहारा-चौताला, २४१ अ

नित जीअ धरि रे मन राम नाम या तै होइ तेरे नीके काम । झूठौ जग माया
लोभ देजि भूलौ भूलौ देस देस बिपति परत पर स्वारथ हित कोउ कोउ अस्ट जाम । यंद्री
बलि मान जौ पैहैंचानौ आत्मांराम अंतकाल संग चलै न सुत बाम । याही तै नैम धर्म
नैम ही सों लीजै नाम तब पावैगौ प्रभु गुलाब कौ श्री माधौ सुष धाम ॥१४५॥

मंगलकामना, वसन्त :

हिन्दोल-चौताला, २५० अ

आए हैं सब गुनी गांईनि तब वितत घन सिषर बजावत गावत राग हिंडोल सरस
सुभ आछर मुद्रां सुधंग संगति सौं सुर तांन तार । नरगस नौरंग सोसन सेवती सरसौ
करनां केतु की चंपौ चमेली बरन बरन के पुस्पनि भरि भरि गडुआ बनाइ नगन जटत लसत
सरस कनिक पार । कवि पंडित सोधि लग्न वधावत वसंत मोर निर्तकाली निर्त करत
बरप तिरप लाग डाट लास तंड और मई (माई) संगीत रीति करि दिषावत रिझावत अति

चतुर नारि । रीझि रीझि बसन भूषन गज तुरंग दांन दीनै अजाची जाचिग कीऐ गुलाब कौ प्रभु माधौ महाराज राज करौ भूअ लोक मध जौलौ नारद सुष व्यास बेद बेद चारि ॥१४६॥

संगीत :

मुलतानी सिरी-चौताला, ८८ आ

जाइ करतार देत सब विधि के ग्यांन अति प्रवांन तांन राग की भरन की । सतजुग तैता द्वापर सिव हनु भरत मत सुनावत समझावत नई उपज की धरनि की । आरोही अवरोही ओडब षाडब संपूरन ग्यांन अर्थ भेद बरन की । प्रभु गुलाब कौ जब मानत है गुनी ग्यान धुरपद की तांन तार संगति सो ओप देत सदा राजि ध्यान गुरनि के चरन की ॥१४७॥

संगीत :

सुध कल्याण-चौताला, ११८ अ

षरज पंचम मधिम गंधार रषब गंधार धईवत रषब गंधार जरजं रसबं षरज पंचम धईवत निषाद रषब गंधार धईवत मधिम गंधार रषब जर । पंचम षरज रषब निषाद धईवत रषब गंधार धैवत निषाद धैवत पंचम मधिम गंधार रषब मूरछिनां सुहति सों बुलावै सुर सरेगम के सरेगरेगम गमपम पध पधनी धनीसा सानीधप मगरेसा आरोही अवरोही वादी समवादी अनुवादी विवादी ओडब षाडब संपूरन सुध मुद्राबानी अर्थ तांन तार गावै जो सेवै मनविच क्रम करि गुनिनि के चरननि हू रज कहत गुलाब सीषि सुनें साधि रागभेद करै नित षेद कोउ सकै नही ताहि बरज ॥१४८॥

बंशी :

संकटा-धमार, २३६ अ

अरे निरदई लंगर मोहन मोहि लई । बंसी तांन सुनत ही अवननि सुधि बुधि बिसरि गई । इत कुल कांन प्रीति अति तेरी तापर होरी चौप नई । प्रभु गुलाब दोउ ओर फिरत जैसैं मानौ फिरत नई ॥१४९॥

होरी :

बिहाग-धमार, २४३ अ

देषौ री ठीठ हठीलौ और रसमांतौ और मातौ जोबन कौ लगर ठीठ कन्हाई । मानत नाहि नै आंन काहूं की कासौ कहीअ भाई । हौ जल जमुना भरन गई ताहा आइ अचानक मेरी ओर मुसिक्याइ नीके सुर तांननि होरी गाई । प्रभु गुलाब दई भिजै दई मेरी अगीआ रेंगी रंगाई ॥१५०॥

होरी :

मधमाध-धमार, ७६ अ

अतरस भारी पीअ प्यारी नारी षेलत हैं होरी । गोद गुलाल भरि लीयें कर पिचकारी कंचन की ता पद रंग डारत बरजोरी । अबीर कुमकुमा अरगजा अंमर मुष मांडो लै केसरि रोरी । रीझि रिझाइ गुलाब कौ प्रधु माधौ महाराज कौ बस करि लीनें द्रगनि की चोरी ॥१५१॥

नख-शिख :

दरबारी कान्हरा-चौताला, १८६ आ

आली तेरौ बदन चंद्र भाल कला भौहैं धनक पला सुषपला नेत्र षंजन बरुनी सम्हारि अवन छीप दसन हीरक रसना पौहोप दल कपोल दर्पन नासा कीर अध (अधर ?) विद्रम

कंचन की पाटी पीठि तापर सोहै वैनी व्याल । ठोड़ी गाड स्याम कुद रूप दस गुनौ भयौ
कु (च) श्रीफल अंधर पांन रौमावली सलिता ना (भ) भमर भुज मृनाल (मृणाल) कंठ
अंगीरव षंभ जाधै पिडुरी बिनान जाबक चरन ऐडी (एडी) तरवा अगुरी नप अरुन अति
रिसाल । यह छवि देपि रीझे नाइक दछिन चतुर विच छिन षुलछि भल छिन बौहौ
भांतिनि करि गुलाब कौ प्रभु माधौ मनमोहन लाल ॥१५२॥

पुतरी-पातुर :

मालकोस-धमार, २२६ आ

आली री तेरी पुतरी पातुर नीकौ निरत करत है डोरे बस्तर पैहरै सुरंग । हाउ
भाउ औसी सुधंग बतावत निपट चतुर अग अंग । त्रविधि कटाछि सगीत भेद सौ सोभा
अधिक सुधंग तारहों तार गुलाब बाजत सभ पलक थाप नैना अदंग ॥१५३॥

नयन-गोपी :

सोरठि-चौताला, २२२ अ

हुनि अंषीअनि भेष धरौ जोग जुगति सकल सिद्धि जब ते तब ते पीअ विदेस गमन
कीनौ ब्रह्म (विरह ?) गुरु मंत्र अवन फूकि दीनी । अंजन सेली बनाइ, सुरति साधि ध्यांन
लाइअ रक्त बरन भई सुभ गुन बसन लसत असूआ टपकि परत जपत स्याम नाम मनमाल
लीनी । बरुनी सघन जामैं जटाजूट ससि सोहै तारे चक्र कटाछि तसूल भभूति व बरुन
कीनी । निसु दिन मागत गुलाब के प्रभु पर अवधि मुकुति मिलिबै की प्रेम भीनी ॥१५४॥

सखीवचन, मानिनी से :

मुलतानी सिरी-चौताला

तेरे आली दास की तरस लागी रहत मोहन कैं पीति कटि पिकबैनी क्रैस्न संगुन
गुन मूरति अनेग रागरंग करत सुरतन (श्रुतिन ?) मध उतिम ग्यानी । वे तौ बौहौनाइक
पीति न करत कासों तू तौ हित रीति की जांनि समझि अपानी । प्रभु गुलाब कौ अब बस
करि लैरी बौरी तन मन धन कुरबानी ॥१५५॥

विरह :

मुलतानी सिरी-चौताला, ८८ आ

जाकौ पीतम परत्नीअ हित बिने बिरहिनि नोद कैसे आवै री । वरषा रितु
दादुर मोर चातग चपल घन घोर, सरद चांद चांदनी नई न भावै री । हेमत तेल तूल
असन बसन, सिसिरि सीत अरगजा अबीर रितु बसंत फूलीं द्रुम बेली, ग्रीषम कुम कुमांनी
इतन तपति बढावै री । ज्यों ज्यों छिन मिले मोहि प्रभु गुलाब ते ते छिन सुष बाढै तन
मन मैं निरषि नेंब प्रान सुषु पावै री ॥१५६॥

प्रेमदास की रचनाएँ

गणेश-स्तुति :

भैरों-चौताला, १ अ

ऐ गननाइक सब सुषदाइक मो पर कीजै कृपा दीजै कुछि बांनी । लंबोदर
आनंदकरन सकल विग्न हरन मोद बढावन अति मंगल महामति गतिदांनी । इतनों प्रसाद
पाउं सदां हरि गुन गाउं सुधि बुधि हित चित चारि तन मन और आनी । प्रेमदास
म्हारोई ध्यान धरत निसुदिन अब तुम तौ पूरन जगतगुर ग्यानी ॥१५७॥

सरस्वती-स्तुति :

भैरों-चौताला, १ अ

बानी री वाकबानी दयानी दया करि मो पै सुदिस्टि कीजै जगरानी कृपा की कटाछि
होत कमषनि उचरत षटसास्त्र पुरान विद्या बेद दानी । जो तिहारे चरननि ध्यांन धरत
निसिवासर तिनि प्रसाद देत करत प्रसिद्धि प्रवानी । प्रेमदास मांगत यह मन बाच कुम
करि श्री रघुवरके गुन उतिम उतिम नानां विधि गाइ गाइ रिझाइ रिझाइ पाउ
मनमानी ॥१५८॥

अर्द्धनारीश्वर :

गन्धार-चौताला, ३१ अ

ऐक ओर पाटी सम्हारि गुहे मुक्ताहल एक ओर जटाजूट सोहत है सिर गंग ।
ऐक ओर चद्रमाल ऐक ओर आड दीये ऐक ओर नेत्र लाल ऐक ओर अजन छवि ऐक ओर
गौर बदन ऐक ओर भस्म लाये ऐक ओर अरुन अधर तमोल (ताम्बूल) ऐक ओर विष
मुभेष अवत लै भंग । ऐक ओर श्रवन ताटक नासा पसरि ऐक ओर मुद्रा छवि अध
बदन केस ऐक ओर स्याम पीति ऐक ओर लील कठ ऐक ओर रत्नहार मुंडमाल ऐक ओर
ऐक ओर बाधंमर ऐक ओर कुचकी बसन अति सुरग । ऐक ओर अंग अंग आभूषन
झिलमिलात ऐक ओर ठौर ठौर नाग लिपिटाये ऐक ओर बीन बजत ऐक ओर डबरनाद
ऐक ओर त्रसूल कर कमल ऐक ओर ऐक ओर चरन पार ऐक ओर नूपुर धुनि प्रेमदास जाको
तैलोक । सकल ध्यांन धरत सो गिरिजापति अरधंग ॥१५९॥

राम-दूल्हा :

दरबारी-कान्हूरा, १७७ आ

श्री रघुवति बर सदाई दिन दुलह सीतापति दूल्हो चरंजेवी रहौ अटलराज जगत
सुषु तुम्हारौ । नगन जटत कचन सिर सेहरौ बारद धरौ विचविच मनि मुक्ताहल कोटिक
सोहै कोटि मान उजिआरौ । सजे राजा जसरथ देव सकल छत्रधारी औरापति नौवति
वाजै हलै सेस थरहरात सुनै झनकारौ । साहि करन लछिन दिपै हवाई मसाल तिलकु कीयै
रघुनदन जनकराइ हसि लषि प्रेमदास हरषि निरषि या छवि पर कोटि काम
बारौ ॥१६०॥

प्रबोध :

भैरवी-चौताला, ४६ अ

जौ तूं रचौ समाई दया सो नाना प्रकार ताहि नां बिसारि सदा हरिगुन गाइ गाइ ।
दुष सुष जौ है सहाइ और न औरा उपाइ हित चित सुषु पाइ हुलसि ध्यांन अंतर लाइ
लाइ । जाकी माया निरकार लखी न जात अप्रंसार सुरबर मुनि कर विचार थके सब
धाइ धाइ । प्रेमदास श्रीनिवास पूरन घट प्रगास त्रभूअन जल थल बिलास रहौ है प्रभु
छाइ छाइ ॥१६१॥

प्रबोध :

चौराष्टक-तेवरा, १८ अ

श्रीपति राम नाम सम्हारि रे धरि रे ध्यांन करन जगविस्तार । सकल जीवन
भरन पोषन सर्व दोष निवारन विस्वरूप सरूप सुंदर तीन लोक विस्तार । जाकी

अद्भुति अनत अवगति अत नाहि अपार रे प्रेमदास दासनिदास नित प्रत कीयी जह
निरधार ॥१६२॥

ग्रीष्म :

सांरग-चौताला, ७१ आ

सघन कुंजन आज रचौ षसषानो राजत देपति अति रसभीने । नगन जटत लसत
पांति नग अमोल भाति भाति जनन जूथि जन बरुथि साज कीने । अनेग सुगंधनि सो सीचि
सीचि सम्हारि पोर (और) विच विचित्र चित्र वरन वरन सुमन सरस सुहाए लागत असन
बसन भूषन सकल लसत नवीने । चहु ओर गावत गुन गध्रव जस विमल विमल नाचत
नव (नभ) उवैसी वसीकरन सुरनर मुनि प्रेमदास सेवक जन बीजना डुरावत वरपि मोद
महा सुष दीने ॥१६३॥

वसन्त :

हिन्दोल-चौताला, २५० आ

षेलत बसत लाल रंग भीनै प्यारी सग बसी बट जमुना तट सघन कुज । बागत
सुरबनि किनर सुरमंडिल अदंग धुनि निरत सब ब्रज बनिता अनेग प्रकालनि करि तामध
सोभा देत कोकिला मयूर भमर करत गुंज । बौहौ सुगध लै केसरि छिरकत सब बाल
ग्वाल पीरे पट सुभग सोहत स्याम तन मझ । प्रेमदास प्रभु प्यारे बैहुरत आनंद भरे डारत
और पुस्पनि की माल पुज ॥१६४॥

होरी :

मुलतानी-धमार, ८६ आ

अरी जह जोबन तेरौ होरी में कैसें वचैगो री । ऐक डर है मोहि बा दिन को
सषी जा दिन रंग मचैगो । जौ कहू डीठि परैगी स्याम के तब बासों को न पचैगो ।
प्रेमदास प्रभु कठिन कानरस लै और संग नचैगो ॥१६५॥

होरी :

टोडी-धमार, ६७ आ

तोहि कछू सुधि है कहा बैठी भूलि तेरे षेलन आवत हरि होरी । बाजत अदंग
धुकार तार सम गावत नई नई तान और सब निरत हैं ब्रजगोरी । ऐकनि पकरि गुलाल
मीडि मुष ऐक ऐक सों लै गांठि गैहै जोरी । प्रेमदास प्रभु तोसों कहत है ऐ अषभानं
किसोरी ॥१६६॥

सिंगार :

केदारा-चौताला, १६२ आ

प्रथम मंजन करि सिंगार बैठी कामिनि बार बार रचि रचि बैनी गुह्री मुक्तनि
सौ मांग सम्हारि दीनी । सीस फूल सिर धरै काननि करन फूल कैसे नीके रागत मुंकुटी
कमान जौक सीस जौ लागत तानि तानि निहारत नेत्रनि छवि अति विसाल ता मध अंजन की
लीक सम्हारि दीनी । नांसिका बेसरि अनूप बिराजत अधर हसन दसननि दुनि दांमिनी
सो दमकत कंठ सिरी दुलरी तिलरी छवि राजत कुंचुकी तापर मुक्ति माल सोहत उर
हार भुजनि बाजूबंद मोहत डार बगरी हरी हरी चुरी मधि राजत कर कंकन रतन जुटत
हातनि मैहैदी सुरंग आरसी अगूठी छिगुरीवि छाप सोहत पीति पट सारी पैहैरै कट
निरषि केहरि तें अति ही सुधार बनौ जैसी विधि मुरति रचि रचि कीनी । घांघरौ अति
विचित्र पाइल बाजत आवै झंझननन झंझननन मंद मंद चालि चलत मन महाल गति

लेत अनवट विछुआ नषनि महावर ऐठी अति राजत छह छवि निरषि प्रेमदास प्रभु
प्रफुलित होत आजु प्यारी राजत रंगभीनी ॥१६७॥

सखीवचन :

षमाइच-चौताला, २११ अ

आली आजु तेरै आवत मोहन बनि ठनि उठि उठि चलि करि सजि सिंगार । बनि
अदग बजाइ रिझाइ गाइ सप्त सुरनि सरस तांन तार । धांम धांम धूपभ समीप सुगंध
लेय रुचिर सिंगासन आसन सम्हारि । प्रेमदास प्रभु के प्रीति सौं परसि चरन परम
प्रवीन सुष करनिहार ॥१६८॥

नायिका-छवि :

विभास-चौताला, २१ आ

तेरौ वदन चंद्र नीकौ लगत अति सौतिनि के देषि मुष रुषे परे हैंरी । आई सब सजि
सिंगार अनेग प्रकालन करि जाकी छवि छीनि मध मांन हरे हैंरी । असो सरूप रूप विधनां
दीयो सम्हारि बार बार नारिनि जु उतार धरे हैंरी । प्रेमदास प्रभु प्यारे रीझि रीझि
तोरत तन दूजे षीझि षीझि रतिपति झगरे है री ॥१६९॥

आगतपतिका :

ललित-चौताला, २५ आ

आजु मेरे भागि जागे हरि आए आंगन पलकनि सौं मग झारों । धरत चरन
डगमगात दरसत अलसोहै गात जा छवि पै कोटि काम बारो । असी रमनि छाडि गमनि
कैसे कीनों जह जीअ सोच विचारौ । प्रेमदास प्रभु प्यारे मोहू अभिलाष जह प्यारी कौ
दरसनिहारौ ॥१७०॥

दूतीवचन, मानिनी से :

रामकली-चौताला, १४ अ

तोहि मनावत केतीअक बेर भई समझि समझि सुनि सुनि सिख अति हौ अयांनी
री । बैठ भमन रमन तेरौई मग जोवत अब लागि रह्यौ हित तो तन मोहि कर जोरत
सब रैन बिहानी री । बौहौत वकाई हों आई पछिताई माई कहां लौ कहौ तोसोअं
कह कहाणी । प्रेमदास प्रभु सौं मिलि चलि री गोयारि नारि असो हठ कौन आली मांन
ही बिकांनी री ॥१७१॥

संगीत :

मारओ-चौताला, १०१ अ

सकल गुनी गाइनि नीके सुनि लेउ जह मत गुन पाइ काउसों वाद विवाद न कीजै ।
जोई जोई तान लेत नांना प्रकालनि करि न तरक विद्या धरनि श्रवन सो अमृत रस
पीजै । नई नई उक्त जुक्त सुध मुद्रा सुरति सोधि तांन तार सम प्रवान तन उपज लीजै ।
प्रेमदास सोई सुजांन जाननि रिझाइ गाइ रग करत तन मन सुषु दीजै ॥१७२॥

मृदंग-वादन :

हमीर-चौताला, ११३ आ

बाजत हैं हो मिरदंगी इनि भेदनि तकिटि तक धिधिकिटि तक धाधा किटि तक ।
सम विसम अतीत अनाघात आंन आंन भांतिनि दिषावत तकिटि धिकिटि धिधिकिटि धिलांग
तक धा किटितक । उलटि पलटि परनि ढरनि मुरनि संगीत रीति नैम बिरस सरस
करत सुध मुद्रा जानता प्रेमदास यह प्रकाल गुनीअनि मन आवत तकिटि तक धिधिकिटि
तकधिधि धिलांग धिलांग तकधिधि धिलांग धिलांग धिलांग तक धाधा किटितक ॥१७३॥

सहायक ग्रन्थ-सूची

(संस्कृत)

१. ऋग्वेद ।
२. अथर्ववेद ।
३. तैत्तिरीय संहिता ।
४. तैत्तिरीय आरण्यक ।
५. ऐतरेय ब्राह्मण ।
६. शांखायन ब्राह्मण ।
७. मनुस्मृति, गुजराती मुद्रणालय, बम्बई, सन् १९१३ ई०—संस्करण ।
८. वाल्मीकीय रामायण, निर्णयगगर प्रेस, सन् १९३० ई० ।
९. अमरकोश, राजकीय ग्रन्थमाला, बम्बई, सन् १८८२ ई० ।
१०. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, गायकवाड-संस्करण ।
११. ध्वन्यालोक : आनन्दवर्द्धनाचार्य, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, सन् १९५२ ई० ।
१२. काव्यप्रकाश : मम्मट, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल प्रेस, सन् १९१७ ई० ।
१३. साहित्यदर्पण विश्वनाथ, विमला टीका-सहित, द्वितीय संस्करण ।
१४. संगीतरत्नाकर : निःशंकशांगदेव, अडयार-संस्करण, प्र० खं०, सन् १९४३ ई०; द्वि० खं०, सन् १९४४ ई०; तृ० खं०, सन् १९५१ ई० तथा द्वितीय आनन्दाश्रम-संस्करण ।
१५. कलानिधि, संगीतरत्नाकर की कल्लिनाथी टीका ।
१६. बृहद्देशी : मतंग, राजकीय मुद्रण-यन्त्रालय, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९२८ ई० ।
१७. नैषधीयचरितम् : श्रीहर्ष ।
१८. चतुर्दण्डप्रकाशिका : वेंकटमंगी ।
१९. भरतकोश : प्रो० रामकृष्ण कवि (प्रथम संस्करण) ।
२०. नृत्तसंग्रह : जयपुर (प्रथम संस्करण), सन् १९५६ ई० ।

(फारसी)

२१. सौतुल्मुबारक : वाजिद अलीशाह, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२२. रागदर्पण, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२३. बादशाहनामा, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।

२४. खुलासतुल्-ऐश-आलमशाही, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई०
 २५. मिराति-आफताबनुमः, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
 २६. इकबालनामा जहाँगीरी, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
 २७. किरानुस्सादन : खुसरो, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
 २८. नूह-सिपहूर : खुसरो, इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, हस्तलेख-संस्करण, सन् ११८७,
 १२१६ ई० ।
 २९. हयाते-खुसरो : अमीर सैय्यद महरवी, ब्रिटिश-म्यूजियम-प्रति, सन् ११०६ ई०,
 ए० वी० वी० ३ ।
 ३०. इजाजे-खुसरो, रामपुर-प्रति ।

(उर्दू)

३१. मअदन्-उल्-मूसिकी : मोहम्मद करम इमाम . प्र० संस्करण, सन् १६२५ ई०, लखनऊ ।
 ३२. नादिरातेशाही : सआद शाह आलम : रामपुर, सन् १६४४ ई० ।
 ३३. औरगजेब आलमगीर पर एक नजर : मौलाना शिवली (प्रथम संस्करण), दिल्ली ।

हस्तलिखित (हिन्दी)

३४. रागमाला; प्राप्तिस्थान : अयोध्याप्रसाद पखावजी, रामपुर ।
 ३५. व्यंजन-प्रकाश; प्राप्तिस्थान : डॉ० शरणविहारी गोस्वामी, कानपुर ।
 ३६. बैनदास की पदावली; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
 ३७. वृन्दावनधामानुरागावली; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
 ३८. वंशावली : वलदेव-कृत, प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
 ३९. श्रीकुंजविहारी-सर्वस्व; प्राप्तिस्थान : गो० रामनाथ शास्त्री, वृन्दावन ।
 ४०. विहारिणीदास की वाणी; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
 ४१. वाणी-संग्रह : लालस्वामी; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।

(हिन्दी)

४२. उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास : भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
 ४३. भारत में अँगरेजी-राज्य : सुन्दरलाल, ओकार प्रेस, प्रयाग, सन् १९३८ ई० ।
 ४४. दक्खिनी हिन्दी : डॉ० बाबूराम सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, सन् १९५२ ई० ।
 ४५. भारत का इतिहास : डॉ० ईश्वरीप्रसाद, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९५० ई० ।
 ४६. खिलजीकालीन भारत : रिजवी : अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।
 ४७. खुसरो की हिन्दी-कविता, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
 ४८. मानसिंह और मानकृतुहल : हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्यामन्दिर-प्रकाशन, मुरार,
 ग्वालियर, सं० २०१० वि० ।

४६. संगीतशास्त्र : वासुदेव शास्त्री, सूचना-विभाग, लखनऊ, सन् १९५८ ई० ।
५०. हमारे संगीत-रत्न . लक्ष्मीनारायण गर्ग : संगीत-कार्यालय, हाथरस, प्रथम सं०, सन् १९५७ ई० ।
५१. मध्यकालीन भारत : गोरखनाथ चौबे, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सन् १९४६ ई० ।
५२. भरत का संगीत-सिद्धान्त : बृहस्पति : सूचना-विभाग, लखनऊ, सन् १९५६ ई० ।
५३. बाबरनामा (हिन्दी-अनुवाद) : देवीप्रसाद मुंसिफ, रिजवी प्रेस, दिल्ली, सं० १९६७ वि० ।
५४. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि : डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्र० लखनऊ-विश्व-विद्यालय, सं० २००७ वि० ।
५५. अकबर : राहुल सांकृत्यायन : किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५७ ई० ।
५६. जहाँगीरनामा (हिन्दी-अनुवाद) : मु० देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता, सन् १०६६ ई० ।
५७. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सशोधित संस्करण ।
५८. देव और उनकी कविता : डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, सन् १९४६ ई० ।
५९. श्रीहितहरिवंश गोस्वामी-सम्प्रदाय और साहित्य : लालताचरण गोस्वामी, वेणु-प्रकाशन, वृन्दावन, सं० २०१६ वि ।
६०. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास, ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त, सन् १९५१ ई० ।
६१. सर्वेक्षण : ग्रियर्सन ; अनु० किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ ई० ।
६२. रागकल्पद्रुम (द्वितीय संस्करण), कलकत्ता, बंगीय साहित्य-परिषद्, सन् १९१४ ई० ।
६३. मअसिरुल् उमरा (हिन्दी-अनुवाद) : ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
६४. हिन्दी-वीरकाव्य : डॉ० टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, सन् १९५४ ई० ।
६५. भारतीय संगीत का इतिहास : उमेश जोशी, आदर्श प्रेस, आगरा, सन् १९५७ ई० ।
६६. मुगल-राजमहलों का जीवन : भगवतीप्रसाद पान्थरी : किताबमहल, प्रयाग, सन् १९४७ ई० ।
६७. किताबे-नौरस, संगीत-नाटक-एकेडमी, दिल्ली, प्र० संस्करण, सन् १९५६ ई० ।
६८. औरंगजेब : यदुनाथ सरकार; अनुवादक : महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई सन् १९५१ ई० ।
६९. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या : राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह, आत्माराम ऐण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५७ ई० ।
७०. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा : मोतीलाल मेनारिया, प्रयाग, सन् १९३६ ई० ।

७१. मिश्रबन्धु-विनोद : मिश्रबन्धु (प्रथम संस्करण), गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ ।
७२. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग ।
७३. शिवसिंह-सरोज : डॉ० शिवसिंह सेंगर (प्रथम संस्करण) ।
७४. भातखण्डे संगीतशास्त्र : भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
७५. ध्वनि और संगीत : श्रीललितकिशोर सिंह : भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५५ ई० ।
७६. केलिमाल : स्वामी हरिदास : भूमिका-ले० श्रीचक्र, श्रीकुंजविहारी पुस्तकालय, वृन्दावन, स० २००६ वि० ।
७७. भक्त कवि व्यासजी वासुदेव गोस्वामी, मथुरा ।
७८. भक्तमाल : नाभादासजी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
७९. क्रमिक पुस्तकमालिका : भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
८०. बैजू और गोपाल : प्रभुदयाल मीतल, मथुरा, सं० २०१७ वि० ।
८१. निजमतसिद्धान्त : किशोरीदास, केदारनाथ, लखनऊ ।
८२. जहाँगीरनामा : ब्रजरत्नदास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
८३. हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
८४. दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता, प्रका० ब्रजभूषण गोस्वामी, सं० २००६ वि० ।
८५. चिन्तामणि (प्रथम भाग) : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ।

(अंगरेजी)

मूल

८६. Akbar, the Great Moghul : Smith; 2nd Edn.
८७. Mathura Memoirs : Grouse.
८८. Life and Work of Amir Khusro : M. Wahid, Lahore, 1935.

अनुवाद

८९. Aine-Akbari : Gladwin, 1783 A. D. Edition.
९०. Aine-Akbari : Blockman, 2nd Edn. 1927.
९१. Hazrat Amir Khusro : Prof. Habib, Aligarh.
९२. Akbarnama : Beveridge, Second Vol. 1912.
९३. Alberuni's India : Dr. Sachan.
९४. Tuzuke-Jahangiri : Alexander Rogers, 1909.
९५. Firishta : John Briggs.

पत्र-पत्रिकाएँ

- ६६ 'आजकल' (उर्दू), म्यूजिक-न०, सूचना-विभाग, दिल्ली ।
६७. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नई दिल्ली ।
६८. 'संगीत' मासिक, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
६९. 'संगीत' मासिक, रजत-जयन्ती-विशेषांक : संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
१००. 'संगीत' मासिक, हरिदास-विशेषांक : संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

नामानुक्रमणिका

अ	२१५, २२०, २४५, २४६, २४८, २७६
अंगिरा-२	अबुल् फतह दाऊद-३६
अकबर (द्वितीय)-३०२	अबुल् हसन खवाजा-१२३
अकबर (सम्राट्)-१०८, ११३, ११४, ११५, ११८, ११९, १२०, १२२, १२३, १३०, १७३, १७४, १७६, १८७, १८९, १९१, १९२, १९४, १९५, १९६, १९८, १९९, २०३, २०४, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१७, २२१, २२२, २५८, २६०, २६९, २७३, २७४, २७५, २८५, २८७, २८८, २८९, ३०१, ३०६, ३०७	अबूबक्र तुसी शैखो-४५
अखी सिराज-८६	अबूबक्र शहजादा-५०
अचपल मियाँ-२४१, ३१५	अबूहनीफ:-६२
अजयपाल-४१	अब्दुर्रज्जाक-१००
अताउल्मुल्क (कोतवाल)-४५, ४६, ५४, ५५, ७७	अब्दुर्रहमान कवि-३०३
अदहम खाँ-१०७	अब्दुर्रहीम खानखाना 'रहीम'-११७, १७७, २८५
अदारस-२४२, २६४, ३१६	अब्दुल्कादिर-८५
अनिरुद्ध गौड-१२८	अब्दुल्कादिर बदायूनी मुल्ला-११४, १९१, १९३, २०२, २०९, २१३, २७५
अनुम्लोचन्ती-३	अब्दुल्जलील बिलग्रामी-१७७
अनूपसिंह-१२८	अब्दुल्ला खाँ-१२७
अबुल फजल-१०४, ११४, ११७, १७०, १७४, १८३, १८५, १८८, १८९, १९१, १९२, १९३, २०२, २०५, २०६, २०९, २१०, २१२, २१३,	अब्दुल्ला खाँ उजबक-१०७
	अब्दुल्ला मियाँ-१३६
	अब्दुल्ला मीर-११७
	अब्दुल्ला शाह सूफी-२००
	अब्दुल्लाह-२२२
	अब्दुल्लाह सैयद १३६
	अब्दुल्ला नायक-१०५
	अभिनवगुप्त-६, ९, ३८, ३२१
	अमीर अली जामदार-७५
	अमीर खाँ मीर इसहाक-१४९, २३५
	अमीर खुसरो-४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४९, ५०, ५२, ५३, ५४, ५८, ६१, ६५, ६७, ६८, ६९, ७१, ७२, ७५, ७७, ७८, ७९, ८०, ८४,

६३, ६८, १०२, १६२, १६८,
१७१, १७६, १८०, १८१,
२६१, २७०

अरकुली खाँ-४५, ५३

अरस्तू-७८

अशी इम्तियाज अली खाँ-१०४, १७१,
१८२, १८३

अलाउद्दीन उसूली-५१, ५२, ५३

अलाउद्दीन खिलजी-४३, ४५, ४६, ४७,
४९, ५०, ५२, ५३, ५४, ५८, ६१,
६५, ६७, ६८, ६९, ७१, ७२, ७५, ७७,
७८, ७९, ८०, ८४, ८३, ८८, १०२,
१६२, १६८, १७७, १७९, १८०, १८१,
२६१, २७०

अलाउद्दीन नीली मौलाना-६०

अलाउद्दीन (द्वितीय) बहमनी-६७, १००

अलाउद्दीन सैयद-८१

अलाउल्हक (शेख अहमद)-६०

अलाहसन संजरी-५२

अली-२०६

अली जोवेली-७३

अली बेग-११३

अलीमर्दानि खाँ-१२७, २१८

अली शाह-६०

अलीसिराज मखदूम-८१

अलेक्जेंडर-११६

अल्बेरूनी-३६

अल्लाह बन्दे खाँ-२२०

असत खाँ-२०७

असद बेग-१३०, २०४

असवती मौलाना-१२०

अहमद खाँ-२१७

अहमदखाँ बहमनी-६४, ६६, ६७, १००

अहमद जाम-५६

अहमद (द्वितीय) गुजराती-१८६

अहमदशाह गुजराती-६

अहमदशाह दुर्रानी-१५०

अहमदशाह सम्राट्-१५०, १५१, १५२,
२३७, ३०२, ३१२

अहोबल-८७

आ

आंजनेय-८७

आकिल-११७

आजम-१४०, १४१, १४२, १७६, १७७,
२३२, ३०३, ३०६, ३०७

आजम कवि-१७७

आजम खाँ-१२७

आजम हुमायूँ-१६५

आदम (पैगम्बर)-५६, ८४

आदिनराइन-२४२, ३१६

आदिलशाह द्वितीय-२६४

आनन्द खाँ शौकी-१२१, २२१, २७३, २६१

आनन्दपाल-३६

आनन्दप्रभु-२६६

आलम-१५०, २३७, ३०३

आलमगीर द्वितीय-१७७, २३५, ३०२, ३०८

आसकरन राजा-१७७, २८५

आसधीर-२१५, २१६

आसफ खाँ-१२२

आसफुद्दौला-२३७, २४१

इ

इंठाबरस-१४७, १४९, २१६, २६४, २६७,
३०६, ३१०

इकबाल खाँ-१६३

इकबाल खाजा-६१, ७१

इकबाल (दिल्लीश)-५०

इन्तजामुद्दौला-१५०

इन्द्र-१५४

इन्द्रजीत कवि-१७७, ३०३

इन्द्रजीतसिंह 'धीरज'-१७४, २२१, २२२,
२७३, २६८, २६९,
३००

इन्द्रभान-१२८

इबाद मुहम्मद कामिलखानी-१३५

इब्नुरसूल सैयद-१६१

इब्नबतूता-६४, ६९

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय-१२२, १३०,
१३१, १३२, १७४, १७६, २०४

इब्राहीम लोदी-८१, १६५, १६६, १७१,
१६१, २७५

इब्राहीम शर्की-१०३, १६२

इब्राहीम सूर-१७२, २०१

इमाद-१५०

इमाम, मुहम्मद सैयद-६१

इल्मुद्दीन शेख-६०

इश्करंग-२४२, ३१६

इसहाक ठारी मुल्ला-११६, ११७

इस्माइल हाजी-१२०

इस्लामशाह (सूर) सलीमशाह-१०६, १०७,
११३, ११४, १७१, १७३, २०१, २७०

ई

ईश्वर कवि-१७७, ३०३

ईश्वरसिंह (जयपुर-नरेश)-२२६

ईश्वरीप्रसाद (डॉ०)-१३६

ईश्वरीप्रसाद सिंह (काशी-नरेश)-२४०

ईश्वरी सिंह-१५०, १५१

उ

उदयपुरी महल-१३४

उदयराज-१६०

उदयसिंह राणा-१०७

उदितनारायण सिंह (काशी-नरेश)-२४०

उदितप्रकाश सिंह (बक्सर-नरेश)-२४०

उमर खाँ-४७

उर्वशी-३

उलुग खाँ-४८

उलुग खाँ जूना (मुहम्मद तुगलक)-६१, ६२,
६४, ६५, ६६, ७४, ७८, ८०, ८१, ९०,
९१, ९२

औ

औरंगजेब-११५, १२४, १२८, १२९, १३३,
१३४, १३५, १३६, १३७, १३८,
१४०, १४१, १४३, १४४, १५०,
१६९, १७६, १७७, १८०, २२७,
२२८, २२९, २३३, २३५, २६०,
२७४, ३०२, ३०३, ३०५, ३०६

क

कत्ताल राजू-८१, ९१

कपिल-२५८

कमरुद्दीन खाँ-१५०

कमालुद्दीन खाँ नवाब-२३१

कमालुद्दीन समरकन्दी-९०

करनसाह-१५९, ३३७

करनेस-२८५

करीमुद्दीन बयाना ख्वाजा-९०

कर्ण (गुजरात-नरेश)-४६

कर्णवती-४८, ७७

कर्दम-२५८

कल्याणराय गोस्वामी-२३९

कल्याणसिंह (ग्वालियर-नरेश)-१६४

कल्लिनाथ-३७, १०२, ११९, १७९, १८२,
१८७

कवीन्द्र सरस्वती-१७७, ३०१

कसब कुव्वत ठारी-२३०, ३०५

कामबखश-१४०

कालिकाजी-७२

कालिदास-५
 कालिदास त्रिवेदी-१७ ३०३
 कासिम कोहबर-११६
 कासीराम-१७७, ३०३
 किरपा मृदंगराय-१३५
 किशन कवि-१७७, ३०३
 किशन खाँ कलावन्त-१२५, १३०, १७६,
 २३०, ३०५
 किशनसेन नायक अफजल-२२६, ३०५
 किशोरदास महन्त-२२५
 कीरत-११३, १७१, १७२, १८६
 कीरतसिंह (कछवाहा)-१३८, १३९
 कीर्तिसिंह (ग्वालियर-नरेश)-६४
 कुतुबशाह-१४३
 कुतुबुद्दीन ऐबक-४१, ४२
 कुतुबुद्दीन खिलजी-४७, ४८, ४९, ५२, ५५,
 ५६, ५७, ५८, ६६, ७५
 ७७, ७८
 कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी-४२, ७१, ७२,
 ७५, २४१
 कुतुबुल्मुल्क-१४९
 कुल्हन राजा-१०२
 कुम्भनदास-१७६, २८५
 कुम्भा महाराणा-१६६
 कुश-५, २५६, २५७
 कूकुलताश खाँ-१३५
 केशवदास महाकवि-१७४, १७७, २६८,
 ३२१
 कैकुबाद (मुईजुद्दीन)-४४, ५२, ५३, ६६,
 ७३, ७४, ७५, ७६
 कृतस्थला-३
 कृष्ण-१, १७०, २२२, २६३, २६४, २६६,
 २६९, २७६, २७८, २८२
 कृष्णदेवराय-१६२

कृष्णानन्द रागसागर-२३६, २४०, २४१,
 ३१५

ख

खड्गसिंह महाराजा-२४०
 खतीरुद्दीन मलिक-५४, ७६
 खानदौराँ-१२७
 खानेजहाँ-१२३, १२७, १६५
 खाँ जहाँ मकबूल-५०
 खिज्र-११७
 खिज्र खाँ खिलजी-४५, ४६, ४८, ५४,
 ५५, ७६, ७७
 खिज्रखाँ सैयद-५०, १६३
 खुर्रम दाद-१२२
 खुशहाल खाँ-१२५, १३५, १७६, २०७,
 २२८, २२९, २३१, २३२,
 ३०२, ३०३
 खुशहालबेग कूर्ची-१८३
 खुसरो खाँ (नासिरुद्दीन)-४७, ४८, ४९,
 ५८, ५९, ७५, ७६, ७८, ८१, २७०
 खेमरसिक-२४२, ३१६
 खेम हरमन-१०५
 खवाजा अली हाफिज-११७
 खवाजा इकबाल-५७
 खवाजा हिन्द-२३४

ग

गंग कवि-१७७, २१८, २८५, २९३
 गंगा-१५४, २२२, २६०
 गंगादेवी-२२६
 गंगाधर-२२५, २३४
 गजसिंह-१५५
 गणेश-२०६, २२२, २३६, २५६, २६०,
 २७८, २८१, ३२०
 गदाई शेख-२११

गदाधर-२२६

गयासुद्दीन द्वितीय-५०, ५२, ८१

गयासुद्दीन खिलजी (मालवा-नरेश)-१६२,
१६३

गयासुद्दीन तुगलक-४६, ५०, ५४, ५८, ५९,
६०, ६१, ६२, ६३, ६४,
६५, ६६, ७४, ७८, ८०,
८१

गयासुद्दीन बहमनी-६४

गाजी उद्दीन हैदर-२४१, ३१५

गाजी मलिक-४६, ५६

गालिब-३०१

गिरधर-२३६

गुमान मिसिर-१७७, ३०३

गुलशन पीर-२३४

गुलाब-१५१, २३६, २६३, २६४, ३०३,
३१३, ३१४

गुलाम मुहीउद्दीन-२३०

गैरत खाँ-१३६, १४०

गोकुलदास बन्दीजन-१५४

गोपाल कवि-२४१, २४२, ३१५

गोपालदास-१५५

गोपाल द्वितीय-१०५, १७१, १८४, १८५,
१८६, २०१, २४०, २७५

गोपाल नायक-७६, १०२, १७८, १७९,
१८०, १८१, १८२, १८७,
२५०

गोविन्द दीक्षित-१०१

गोविन्दसिंह गुरु-२२७

गोविन्दस्वामी-१६६

ग्रियर्सन-२३७, २३६, २४१, २४२

घ

घनानन्द-१७७, २३७, ३०३

घृताची-३

च

चंचलसस-२१५, २६४, २६७, २७२,
२८६, ३१०

चंचलसेन-२१५

चंगेज खाँ-५१

चंगेज खाँ गुजराती-१०७

चगता नवाब-१५६

चतुरसिंह राणा-१५६

चतस्री चत्ती-१५६

चन्द्रभान-१७७, २८५

चरजू नायक-११६, ११७, १७६, २१५,
२१७, २२१, २६२

चाँद खाँ ग्वालियरी-११६, ११७, १७६

चाँद खाँ बीजापुरी-१३२

चाँद खाँ मियाँ-११६, १७६, १७७, २१३,
२४६

चाँद सुलताना-१३०

चित्ररथ-३

चिन्तामणि-१७७, ३०१

चेतसिंह (राजबहादुर)-१५४, १५५, २३७,
२३८, २५१, ३०३, ३१२, ३१३

छ

छज्जू खाँ-२०७

छतर खाँ-१२२, १७६

छत्रपति-१५६

छत्रसाल- २७

छत्रसिंह राजा-१५५, १५६, १५७, २३२,
३०६

ज

जगतसिंह (जयपुर-नरेश)-१५७

जगदेकमल्ल-४१

जगन्नाथ कविराय-१२५, १८७, २१६,

२१८, २१९, २२२, २२३, २७१,
२७३, २७४, २९४, ३००, ३०१

जगन्नाथ गोस्वामी-२२६

जगन्नाथ सिंह (छोटानागपुर-नरेश) २४०

जनक-२५७

जमालुद्दीन अंजू-१३०

जयकीर्ति-१६४

जयचन्द-४१

जयपाल-३९

जयसिंह मिर्जा राजा-१३८, १३९

जयसिंह सवाई-१५०, १५२

जलालखाँ कूर्ची-१७३, २०२, २०३

जलालुद्दीन काशानी काजी-४५

जलालुद्दीन खिलजी-४४, ४५, ५२, ५३,
५४, ६६, ७६, २७०

जलालुद्दीन तबरेजी-९०

जलालुद्दीन रूमी मौलाना-५१

जवाहरसिंह-१५७

जसवन्त कवि-१५५

जसवन्तसिंह-१४३

जहाँगीर-१२१, १२२, १२३, १२९, १३०,
१३१, १७६, १७७, १८९, १९३,
१९४, १९९, २०७, २१०, २११,
२१३, २१७, २२०, २२१, २६०,
२६९, २७३, २८५, २८९, ३०६,
३०७

जहाँदारशाह-१३५, १४५, १४६, १४९,
१७६, २३३, ३०२

जामशाह (नवानगर-नरेश)-२४०

जीतलदेव-६८

जीवनशाह-२०८, २०९

जीवन खाँ-२०७

जुगराजदास-२४२, ३१७

जुगलकिशोर-१७७

जुझारसिंह-१२७, १२८

ज्ञानगुरु-१९८, २१६, २२०, २९१

ज्ञानी मियाँ-२४१, ३१५

ट

टॉरेंस-२३७

टोडरमल-१७७

डूंगरेन्द्रसिंह-१६३, १६४, १६६

त

तकीउद्दीन नूह-७२

तखतसिंह (जोधपुर-नरेश)-२४०

तर्गी मंगोल-४५, ५४

ताज निजाम-१६५

ताजुल्मुल्क-१६३

तातार खाँ-१६५, १६६

तानतरंग खाँ-११६, ११७, १७६, २०४,
२०५, २१०, २१३, २२०,
२२१, २९५, २९६

तानबर-२४८, ३१७

तानबरस-२४२, ३१७

तानरस खाँ-२४१

तानसेन-१०७, १०८, १०९, ११४, ११६,
११७, ११८, १२४, १२५, १३५,
१७१, १७२, १७३, १७६, १८७,
१८९, १९०, १९१, १९२, १९३,
१९५, १९६, १९७, १९९, २००,
२०१, २०२, २०३, २०४, २०५,
२०८, २०९, २१०, २११, २१२,
२१३, २१५, २१७, २१८, २२०,
२२१, २२२, २२७, २२८, २३१,
२३४, २३५, २४०, २४२, २४४,
२४८, २४९, २६१, २६४, २६५,
२६६, २६७, २६८, २६९, २७०,
२७२, २७३, २७४, २७५, २७६,

२७७, २७८, २८४, २८५, २८६,
२८७, २८८, २९१, २९७, ३०२,
३०७ ३०८, ३१०

ताशबेग-११६, ११७

ताहा मियाँ-१६१

तुलसीदास गोस्वामी-२१४, २८०

तैमूर-५०, १६१, ३०५

द

दरिया खाँ-१०५, १७१, १७२, १७६

दाऊद-६३, ६६,

दाऊद ठारी-११६, ११७

दानियाल शहजादा-१३०

दामोदर-२३६

दाराशिकोह-१२८, १३४, २२८

दावन ठारी-११६

दिलरसबानु-१३३, १४०

दिलीपसिंह महाराजा-२४०

दिलेर खाँ-१४३

दिलेर खाँ नवाब-२३१

दीनदयाल गुप्त-२२६

दुरसाजी-१७६, २८५

दुर्गा-२७८

दुर्गादास राठौर-२२७

दुर्गावती-१०७

दुष्यन्त-२७६

देवकीनन्दन राजा-२४०

देवदत्त कवीश्वर-१४६, १७६, १७७, २३३,
३०२

देवराय-६७, १००, १०२, १७६

देवलदेवी-४५, ४८, ७६

देवसेन-१६४

देवहूति-२५८

देवी-११७

देवीदत्त-२३७, ३१२

देशरजी (कच्छ-नरेश)-२४०

दोस्त उस्ता-११६

दौलत खाँ-१०७, १७१, २०१, २७०

ध

धरमगद-१५५, १६५

धौधू-११७, २१६, २१७, २१८, २६२

न

नजरअली उस्ताद-१५३

नजीबुद्दीन मुतवककल-६६

नबात खाँ-११७

नवलकिशोर सिंह (बेतिया-नरेश)-२४०

नवाब बाई-१४३

नरहर-१५५, २८५

नरहरि महापात्र-१७७

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी-१६६, २८५

नवलजस खाँ-१५६

नसीरुद्दीन खाँ-२२०

नसीरुद्दीन चिराग देहली-५०, ६२, ६३,
६५, ७०, ७१, ८१

नसीरुद्दीन महमूद-७०, ७१

नसीरुद्दीन शेख-२२४

नागरीदास (किशनगढ-नरेश सावन्तसिंह)-
१६५

नागेन्द्रनाथ वसु-२३६

नाजरा हाफिज-१२०

नादिरशाह-१४६, १६०

नाभाजी-२२५

नायक मलिक-६८

नारद-१८२

नासिर खाँ-६७

नासिरुद्दीन महमूद-४३, ४४, ५०, ५१, ८१

निजाम खाँ-१०७

निजामुद्दीन चिश्ती शेख—४३, ४४, ४५, ४७,
४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४,
५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१,
६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८,
६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७५, ७७,
७८, ८०, ८१, ८६, ९०, ९१, ९२,
९८, ९९, १३०, २१०

निजामुल्मुल्क दक्खिनी—१०७

नियामत खाँ (मुगल-सरदार)—११३

निर्मलशाह—२०८

नुसरत खाँ—४८

नुसरत मलिक—५४

नुसरत शाह—५०

नूरबाई—१६०, २६८

नूररंग—२४२, २६४, २६५, ३१७

नूरुद्दीन फिरदौसी शेख—५६

नूरुल्लाह मीरान सैयद—१६१

नेमत खाँ (सदारंग)—१४६, १४७, १७७,
१८५, २०७, २२८, २३३, २३५, २३६,
२४२, २४३, २६४, ३०२, ३०७

नेवाज—१७७, ३०३

नौनिहालसिंह महाराजा—२४०

नौबात खाँ—२०५, २०६, २०९

प

पद्मनाभ कर्णाटपति—२४०

पद्माकर भट्ट—१५७, २५९

परमर्दी—४१

परमोल खाँ—१४६, २०७

परवतेस—१५५

परवीन खाँ—१७६

परवेज दाद—१२२

परशुराम किलेदार—१४२

पहाड़सिंह बुन्देला—१२७

पाण्डवी नायक—१६८, १७४

पार्श्वदेव—२५४

पीरजादा—११७

पीर मोहम्मद—१०७, २२३, २२४, २३०,
३०१

पुंजिकस्थला—३

पूजा—२३०, ३०५

पूरन नायक—२३२, ३०६, ३०७

पुर्वचित्ति—३

पृथ्वीराज—४१, ४३

पृथ्वीराज (बीकानेर-नरेश)—१७७, २८५

पृथ्वीसिंह—१५८

प्यार खाँ—२०७

प्रतापरुद्रदेव—९८

प्रतापसिंह सवाई (ब्रजनिधि)—१५७, १५८,
१५९

प्रभुदयाल मीतल—२८५

प्रम्लोचन्ती—३

प्रवीण राय—१७४, २२१, २६८

प्रियवाला शाह—२४७

प्रेमदास—१५९, २३६, २६४, २६८, ३०३,
३१०

प्रेमरंग—२४२, ३१८

ब

बंझू शेख—१८९

बख्त खाँ कलावन्त—२१३

बख्तर खाँ—१२२, १३०, १३१, १३२, १७४,
१७६

बख्शू नायक—१०४, १०५, १६७, १६८,
१७०, १७१, १७२, १७६,
१८५, १८६, १८७, १८९,
१९७, १९८, १९९, २७६,
२८०

बदनसिंह—१५२

बदरुद्दीन इसहाक—६९

बन्दानवाज गेसूदराज-६१
 बर्नी जियाउद्दीन-४६, ५०, २००
 बलबन-४३, ४४, ५२, ५३
 बलवन्तसिंह (काशी-नरेश)-२३७, २४०
 बलवन्तसिंह (भरतपुर-नरेश)-२४०
 बलि-१०८
 बशीर-५५
 बसन्ती-२१३
 बहमन बिन अस्फन्दयार-६२
 बहमन शाह-६२
 बहराम कुली-११७
 बहराम शाह-८६
 बहलोल लोदी-८१, १०१, १६५
 बहलोल शेख-२११
 बहाउद्दीन जकरिया-४२, ४४, ५६, ६०
 बहाउद्दीन शेख-२२३, २२४, ३०१
 बहादुर मलिक-१६२
 बहादुरहुसेन खाँ-२०७, २०८
 बहादुरशाह गुजराती-१०४, १०५, १६८,
 १७०, १७१, १७२, १८३, १८४, १८६,
 १८७, १८८, २००, २७७
 बहादुरशाह प्रथम बहमनी-६६
 बहादुरशाह प्रथम (मुगल-सम्राट्)-१३६,
 १४२, १४४, १४५, १७६, १७७, २३३,
 २५८, २६०, २७३, ३०२, ३०३
 बाजबहादुर-१०७, १०८, ११६, ११७,
 २१५, २१७, २६३
 बाजीराव पेशवा-२४०
 बाबर-२४६, ३०६
 बिल्हण-४१
 बिसराम खाँ-१२५, १७६, २८८, २३२,
 ३०२, ३०६
 बिहारिनिदास-२२५, २२७
 बिहारीमल-११४, १७३

बीठल विपुल-२२७
 बीरबल-१२०, १७७, २१२, २२१, २८५
 बुक्क-६२, ६८, ६९
 बुगरा खाँ-४४, ५३, ७५, ७६
 बुरहानुद्दीन गरीब-६१, १३०
 बेदलशाह सवाई-११४
 बेदारबख्त-१४२, १४३
 बेनजीर खाँ-२०७
 बैजू नायक-१०४, १०५, १७१, १७२, १८२,
 १८३, १८४, १८५, १८७, १८७,
 १८८, २००, २०१, २२७, २४०,
 २५१, २६१, २६२, २६३, २७५,
 २७७, २७८, २७९, २८०, २८४,
 ३१०
 बैन कवि-२२६
 बैरम खाँ खानखाना-११३, ११४, १२०,
 १७३, २११, २१३
 ब्रजचन्द-२४६
 ब्रह्मभट्ट-२८५
 ब्रह्मा-४, ६, ८, १५, १६५, २६०, २७८,
 ३२०
 ब्रह्मी-११७
 ब्लॉकमैन-२०१
 भ
 भगवन्त-१८७, १८४
 भगवान्दास-१७३, १८६, २१२
 भट्टनायक-६
 भट्टलोल्लट-६
 भन्नू-१०४, १६७, २२६
 भरत (मुनि)-४, ५, ६, ८, १५, ११६,
 १२३, २५३, २५५, २५६,
 २५७, २६०, २७१
 भरद्वाज-२

भर्तृहरि-२७६
 भवानीदीन पखावजी-१४७
 भातखण्डे विष्णुनारायण-८२, ८३, ८७,
 २०६, २०८, २१५, २४७, ३२०
 भारतसाह बुन्देला-१२३
 भारतीचन्द-११३
 भावभट्ट-२४६, २४७
 भास-५
 भास्कर-४३
 भिल्लम-४३
 भीमदेव-४२
 भीमपाल-३६, ४१
 भूपत-१५६, १५७, २३३, ३०६
 भोजराजसिंह (द्वारका-नरेश)-२४०

म

मंझू-१६८, १७०, १७२
 मकरन्द-१८८, १९०
 मक्खू-१२२
 मझू-१०४
 मतंग-८७, १२३
 मदनकिशोर-३०३
 मदन खाँ ठारी-२१६, २६१, २६१
 मधुकरशाह-११३, १२३, १५६, १७४,
 १७५, २२१
 मधुनायक (मीराँ निजामुद्दीन सैयद)-२३१
 २३५, ३०५, ३०६
 मनरंग-२३६, २६४, २६५, ३११
 मनु-२५८
 मनुक्कि-१३५, २६३
 मनु स्वायम्भुव-२६१
 मनोहर कवि-१७७, २८५
 मम्मट-३००
 मरियम जमानी (जोधाबाई)-१७३
 मलिक (कवि)-१३२

मलिक काफूर-४५, ४६, ४७, ४८, ४९,
 ५५, ७६, ७७, ६८
 मलिक सरवर-१०२
 मल्ही-१०२
 मसऊद खिलजी-४१
 महचू-१८७
 महमूद (तुर्क)-५०
 महमूद गजनवी-३६, ४१, ४८
 महमूद तुगलक-६१, ६३, ६४, ८५, १०३
 महमूद द्वितीय (गुजराती)-१७२, २००
 महमूद बीगड़ा-१०५, १६२
 महमूदशाह बहमनी-१६२
 महमूद सैयद-६४
 महानादसेन-२४२, ३१८
 महापात्र-१०५
 महावत खाँ-१२७, २०७
 महेश (शिव)-१६७, २६०
 महेश्वर (शिव)-६
 महेश्वर (टीकाकार)-२५७
 माधव (कृष्ण)-२२२
 माधवसिंह कछवाहा-१५०, १५१, १५५,
 १५८
 माधवसिंह (रामपुर-नरेश)-१५५
 माधवसिंह सवाई-२३६
 मानसिंह कछवाहा-११४, २१३
 मानसिंह तोमर-१०४, १०५, ११७, १३०,
 १६१, १६२, १६३, १६४, १६५,
 १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१,
 १७२, १७३, १७४, १७७, १८२,
 १८३, १८४, १८६, १८८, १८९, २००
 २१२, २२४, २२५, २२६, २३०,
 २४४, २५०, २६१, २७१, २७४,
 २७६, २७७, २८०
 मानुद्दीन पायचा काजी-६८
 मिर्जा अली उस्ताद-१२०

- मिर्जा हैदर-१२१
 मिश्रबन्धु-१०६, १८४, १९८
 मिसरी खाँ ठारी-१३०, २०६, २३३, ३०६
 मिसरी सिंह-२०६
 मीर जलाल-१३३
 मीर ददं खाजा-१४७, १५२, २३८
 मीर बखशी इमाद-१५१, १५२
 मीर मुहम्मदी रंज-१४७
 मीराँ-२२१
 मुईनुद्दीन चिश्ती-४१, ४२, २१०
 मुकुटमणि-१५५
 मुकुन्ददेव-१०६
 मुख्तार खाँ कमरुद्दीन-१४३
 मुजफ्फरशाह गुजराती-१०५, १६२
 मुजाहिदशाह बहमनी-९३, ९९
 मुबश्शिर-५५
 मुबारक (ध्रुवपदकार)-१४१, २३२, ३०७
 मुबारकशाह (कुतुबुद्दीन खिलजी)-२७०
 मुबारकशाह (जौनपुर-सुलतान)-१६३
 मुबारक शेख-१८९
 मुबारक खाँ-१०७
 मुमताजमहल-१३३
 मुरसद-२४२, ३१८
 मुराद बख्श-१२७
 मुर्शिदकुली खाँ-२२८, २२९
 मुहम्मद अमीन-११७
 मुहम्मद आदिलशाह अदली-१०६, १०७, १०८, १७१, २०१, २१३
 मुहम्मद इमाम खाजा-५७, ६०, ६१, ६२, ६६, ६७, ६९, ७०, ७१, ७३, ७५
 मुहम्मद करम इमाम-८१, ८३, ८९, १०२, १८०, १८१, १८५, १८७, १९१, १९३, २००, २०५, २०८, २१५, २३१, २३५, २४७, २४९, ३०२
 मुहम्मद खाँ ठारी-११७
 मुहम्मद खाँ रहेला-१४९
 मुहम्मद खिलजी-४१, १६३
 मुहम्मद गोरी-४१
 मुहम्मद गौस शेख-१६५, १६६, १९०, १९१, १९२, १९३, १९७, १९८, २११, २१३
 मुहम्मद तुगलक-४९, ५०, ५२, ९९
 मुहम्मद नई आगा-१२०
 मुहम्मद बाकी-२३१, ३०५
 मुहम्मद बिन बख्तियार काकी-४८
 मुहम्मद मिर्जा (लेखक)-१३५
 मुहम्मद मूनिन-१२०
 मुहम्मद (शहीद)-४४, ७५
 मुहम्मदशाह बहमनी (प्रथम)-९३, ९९
 मुहम्मदशाह बहमनी (द्वितीय)-९४, ९९
 मुहम्मदशाह रंगीला-१४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १६०, १७१, १७७, २१६, २३३, २३५, २३६, २६६, २६८, ३०२, ३०३, ३०७, ३०८, ३१०
 मुहम्मद शीराजी-८२, ८४
 मुहम्मद सुलतान-१२९
 मुहम्मद सुलतान सूबेदार-५२
 मुहम्मद (हजरत)-२०९, २१६, २६१
 मुहम्मद हुसेन उस्ता-११७, १२०
 मुहीउद्दीन काशानी काजी-६०, ६३
 मूसवी खाँ-१२९
 मूसा-१०७
 मूसा सैयद-६०, ६८, ६९, ७१, ७२
 मेनका-२
 मेराज धौलपुरी-१०६, १९७, २००

मैकडानलड-११६

य

यशःकीर्ति-१६४

युगलकिशोर-३०३

यूसुफ उस्ता-११६

यूसुफ पैगम्बर-५६

र

रंग खाँ-१०५, ११६, ११७, १७६

रघुजी भोंसले-२४०

रजब-५०

रजिया-४३, ५१

रणजीतसिंह महाराजा-२४०

रणमल्ल भट्टी-५०

रतनसिंह-१५७, १५८

रतनसिंह (चरखारी-नरेश)-२४१

रफीउद्दीन-६५

रफीउद्दीन हारून-५७, ६१, ६२, ६८

रसनिधान-३१६

रसबैन खाँ-२३२, ३०६

रसरंग-२४३

रसूलखाँ कव्वाल-१४७, २३३

रहमतुल्लाह-११६

रहीमदाद किलेदार-१६५

रहीमदाद ठारी-२३१

रहीमुद्दीन खाँ-२२०

राजसिंह महाराणा-२२७

राजसिंह सवाई-२४०

राजाराम-२४१

राजेन्द्रलाल मित्र राजा-२३६

राज्यपाल-३६

राधा-२२२, २६४, २८२, २८३

राधाकान्तदेव राजा-२३६

राम (टीकाकार)-२५७

रामकृष्ण कवि-११५

रामचन्द्र बघेला-१०८, १०९, ११२, ११४,

१२०, १२३, १७२, १७३,

१८६, १८५, १८७, २०२,

२०३, २७३, २७५, २८१,

२८७

रामचन्द्र (भगवान्)-२२२, २५७, २५६,

२६०, २७६, २७८

रामदास बाबा-१०६, ११३, ११६, १७३,

१७६, १८७, २०१, २१३,

२१५, २२१, २७५, २८६

रामदास मुँडिया-११७

रामदेव-४२, ४३, ७७, १८२

रामराजासिंह-२४६

राभराय-२४३, ३१८

रामसाहि-१५५

रामसिंह (कोटा-नरेश)-२४०

रामसिंह (बूँदी-नरेश)-२००

रामसिंह तोमर-१६५, १६६

रामामात्य-८७, ६८, १०१, ११५

रायसिंह राठौर-१२०

रावरत्न हाड़ा-१२३

रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी-४३, ५६, ६३, ६४, ६५

रुद्रप्रताप-११३

रुद्रसिंह (दरभंगा-नरेश)-२४०

रुद्रावती-१२४

रूपमती-१०७, १०८, २६२

रूपमल-१६६

रूपानन्द गुसाई-१५८

रूहपरवर आगा-६३

रौशन जमीर मिर्जा-१३५

ल

लक्ष्मण-१६३

लक्ष्मणदास-२४३, ३१८

लक्ष्मी-२८३

लक्ष्मीनारायण-१६३, १७४
 लव-५, २५६, २५७
 लाल कलावन्त-११५, १२२, १२५, २०७,
 २१३, २१७, २६३
 लाल कवि-१५४
 लालकुँवरि-१४५, १५३
 लाल खाँ-१२५, १७६, २०६, २०७, २२१,
 २३३, ३०३
 लाल मियाँ-११६, १७६
 लाल स्वामी-२२५
 लाला-११७
 लोहंग-१६८

व

वंशीधर-२४३, ३१६
 वजीर खाँ-२०५, २०६, २०७, २०८
 वली मुहम्मद सुलतान-१६०
 वशिष्ठ-२
 वाजिद अलीशाह-८१, ८२, १०७, १८२,
 २००, २०४, २४७, ३०२
 वाणीविलास-३१६
 वारेन हेस्टिंग्स-२३८
 वाल्मीकि-२, ५, २५७, २५८
 वासुदेव शास्त्री-४६
 विक्टोरिया-२४०, ३२०
 विक्रमदेव-१८३
 विक्रमशाह (नेपाल-नरेश)-२४०
 विक्रमसाह (विजयबहादुर बुन्देला)-१५६
 विक्रमाजीत-१५५, १६५, १६६, १७०,
 १६०, १६१, १६७, २००
 विचित्र खाँ-११६, १७६
 विजय-१००
 विजयसिंह (भावनगर-नरेश)-२४०
 विठ्ठल-१६२

विठ्ठलदास गुसाई-१६६
 विठ्ठलदास राजा-१२८
 विद्यारण्य-८०, ६८, १०१, १०२, १०४
 विनायकराव पेशवा-२४०
 विन्ध्यवासिनी-१५४
 विलास खाँ-११७, १२२, १२४, १३५, १७६,
 २०४, २०५, २०६, २१०, २१३
 २२१, २२८, २३१, २६७
 विश्वकर्मा-१२७
 विश्वनाथ-१८१
 विश्वनाथदेव सिंह (रीवाँ-नरेश)-२४०
 विश्वाची-३
 विष्णु-६, १५५, १६१, २२२, २५६, २६०,
 २७८, २८३

विष्णु भट्टाचार्य-१६२
 विष्णुसिंह-१४५
 वीरनसाह-१६०
 वीरभद्र-१२०, १२१
 वीरभानु-१०८
 वीरमण्डल खाँ-११६, १७६
 वीरमदेव-१५५
 वीरसिंह देव-१५५, १६३, १७४
 वृन्द-१७७, ३०३
 वृन्दावनदास चाचा-२२६
 वेंकटमखी-८७, ६८, १०१, १७६, १८२
 वेद पण्डित-२४५, २४६
 वेदव्यास-१, १५४
 वेदाग राय-१७७, ३०१
 वेन-१०८
 व्यास-१३१, १७६, २१४, २८५, २८६

श

शकुन्तला-२७६
 शंकर (भगवान्)-१४२, २५६, २६०,
 २७८, ३१०

शंकराचार्य—२५७
 शम्भू (ध्रुवपदकार)—१६०, २३७
 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश—४२, ४३
 शम्सुद्दीन बहमनी—६४
 शम्सुद्दीन याह्या मौलाना—६०
 शरीक सरमदी—१३०
 शरीर मौलाना—१२०
 शर्फुद्दीन काजी—६१
 शहाब खाँ—११६, १७६
 शहाबुद्दीन शेख—५६
 शादी खाँ—४५, ४८, ५४, ५५, ५६, ७६,
 ७७
 शायस्ता खाँ—१२७
 शांगंदेव—४३, ७६, ११५, २५५
 शाह अब्बास—२२६
 शाह आलम—१५३, १५४, १७६, २३५,
 २३६, २३८, २६४, ३०२,
 ३०७
 शाहजहाँ—१२३, १२४, १२५, १२७, १२८
 १२९, १३२, १३५, १३६, १३७,
 १३८, १६९, १७६, १७६, १७७
 १८८, १९७, २०६, २१८, २२२,
 २२३, २२७, २२८, २२९, २३२,
 २६०, २७३, २७४, २७८, २८०,
 २८१, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४,
 ३०६, ३०७
 शाहजी—२४५
 शाहनवाज खाँ—१३३, १४०
 शाह मुहम्मद उस्ता—११७
 शिब्ली मौलाना—१३५
 शिरोमणि—१७७, ३०१
 शिव (भगवान्)—४, १५४
 शिवाजी—१३६, १३९, १४३, १८९, २२७,
 २४५

शुजाअत खाँ—१०७
 शुजाउद्दौला नवाब—२०८, २३८
 शुजा सुलतान—१२५, १२८, १२९, १७६,
 २०६, २३२
 शेख दावन ढारी—११६
 शेख मीर (ध्रुवपदकार)—३१७
 शेखुलू आलम—७३
 शेर खाँ—१०७
 शेर खाँ गुजराती—१०७
 शेरशाह सूर—१०६, १०७, ११३, १७१,
 १७२, २००, २०१, २११,
 २७५
 शेरसिंह महाराजा—२४०
 श्रीकृष्ण (भगवान्)—७०, ७१, १०४
 श्रीहर्ष—५

स

संग्राम साह—१२७
 सदाशिवराव भाऊ—१५२
 सफदरजंग सूबेदार—१४९, १५०
 सबरंग—२४३, २६४, ३१९
 समोखन सिंह—२०५, २०६, २०७, २०८,
 २४९
 सम्भलदेव—६८
 सम्भाजी—१४४
 सयाजी गायकवाड (बड़ौदा-नरेश)—२४०
 सरयूप्रसाद अग्रवाल—१८९, १९९, २१४,
 २८५
 सरस्वती (देवी)—१२६, १९६, १९७, २०९
 २३६, २६१, २६४, २९१
 ३०६
 सरोद खाँ—११६, १७६
 सलीम चिश्ती शेख—१९३, १९४, २१०, २११
 सवाद खाँ ढारी—२२९, ३०५
 सहजग्या—३

सांगा राणा-१६५, १६६, २४६, २८१

साजन (ध्रुवपदकार)-३१६

सादी शेख-६५, ७५

सादुल्लाह खाँ-१२८

सामन्त-१७७, ३०३

सायण-२, ३

सालिम खाँ डागुर-२३०, ३०५

सालिमचन्द डागुर-२४६

साहब-१५६

साहूजी-१४४

सिंहण-४३, ४६

सिकन्दर लोदी-१०५, १६१, १६७

सिकन्दर सूर (निजामशाह)-११४, २८१

सिम्भू (ध्रुवपदकार)-३१२

सिराज काजी-६४

सीतलदेव-६८

सीदी मौला-४५, ५३, ५४, ७७

सुखदेव मिश्र-२३७

सुखीसेन कलावन्त-१७६

सुजान खाँ-२३५

सुजानसिंह-१२८, १२६

सुतसोम-२

सुधीन सेन-२०५

सुनीतिकुमार चटर्जी-१६१

सुन्दरदास-१७७

सुबहान खाँ-११६, ११७, ११८, ६

सुभानजी-१४०

सुरग्यान खाँ-११६, ११७, २१५, २१६,

२२०, २३४, २६१, २६७,

२६०

सुरभावन-१५०, १५४

सुलतान इबराहीम-१४६

सुलतान बेगम-१३०

सुलतान मलिक-१६२

सुलेमान शिकोह सुलतान-१२८, १२६,
१३६

सुहेल खाँ-११३

सूदन कवि-१५२

सूज खाँ-११७, २४६

सूरजमल (सुजानसिंह)-१५०, १५२, १५३

सूरतमिश्र-१७७

सूरतसेन-११७, २०५, २१०, २१३

सूरदास (कवि)-१७०, २१३, २२१, २४०,
२७६, २७७, २८०, २८५,
३२१

सूरदास (गायक)-११६, १७३, १७६,
१७७, २१३, २२०,
२६६

सूरदास मदनमोहन-१७७, २८५

सूर्य-१५४, २७८

सैफुद्दीन गोरी-६३

सैफुद्दीन महमूद-६६, ७६

सैयद अरब-५१

सैयद अली मीर-११६

सैयद कबीर-१३०

सैयद मुहम्मद किरमानी-६१

सैयद हुसेन किरमानी-६१

सैयद हुसेन मशहदी-४१

सैयदी शाह-१२२

सोढल-४३

सोन वाजपेयी-११७

सोमनाथ-४७

सोमराजदेव-४१

सोमेश्वर-२६, ४७

सोहिलसेन-१३०, २०५, २३१

स्मिथ-११५, १६२

स्वरूपसिंह (उदयपुर-नरेश)-२४०

ह

हनुमान्-११६, १५४

हमजा सैयद-२३१

हमजान-१२२

हमीरसेन-२०५

हयात सरसनैन-१३५

हरदेव (अहमद अयाज)-४८, ४९, ५५,

५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३,

६४, ६५, ६७, ६८, ७०, ७२, ७३,

७४, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२

हरसिंह-१५५

हरिदास डागुर-२१६, २१७, २१८, २२७,

२४८, २६१, २६७, २६४,

२६५

हरिदास स्वामी-१७०, १८४, १९१, १९५,

१९६, १९७, २००, २२०,

२२४, २७५, २७६, २७७,

२८१, २८२, २८३, २८४,

२९४, ३००

हरिपाल-४१

हरिप्रसाद-१५४

हरिराम व्यास-११३

हरिश्चन्द्र-१०८

हरिहर-२७८

हरिहर द्वितीय-९४, ९५, ९९, १००

हसन-४४

हसन अला संजरी-६६, ६८, ७१, ७५, ८०,

८१

हसन ईरानी (अलाउद्दीन हसन बहमनशाह)-

६२, ८१, ८२, ८३, ८४, ८९

हसन खाँ अफगान-११७

हसन खाँ खजानची-१०८

हसन खाँ नौहार-२४९

हसन निजामी ख्वाजा-६४, ९०

हाफिज कवि-९४

हाफिज हुसेन-११७

हाशिम सुलतान-११७

हितनारायणसिंह (पन्ना-नरेश)-२४०

हितरूपलाल-२२६, २३६

हितहरिवंश-११३, २१४, २३५

हीरादेवी-१२८

हीराबाई (जैनाबादी)-१३३, १३४, १३५,

हुमायूँ तुगलक-५०, ८१

हुमायूँ बादशाह-११३, १७१, १७२, १७३,

१८३, १८४, २००, २७५,

३०६, ३०७

हुशंग शाह-९७, १६३, १६६

हुसेन अंजु-१३०

हुसेनअली खाँ-१४९

हुसेनअली खाँ अमीरुल उमरा-१३९

हुसेन खाँ-२०७

हुसेन खाँ पखावजी-१४७

हुसेन किरमानी सैयद-६२

हुसेनशाह शर्की-१४३, १६२, १६४, १६८

हुसेनी नायक-१०५, १७१, १७२, १८६

हुस्सामुद्दीन मुलतानी-९१

हृदयराम-१२८

हेमू-२०१

होलराय-१७७, २८५.